卐 ॥ श्रीः ॥ 卐

श्रीहरि-तोषिणी टीका-समलंकृता

श्रीगोस्वामी तुलसीदास-रचित

# विनय-पत्रिका

( हरितोषिणी टीका )

वियोगी हरि

प्रकाशकः—

गोपालदास 'सेवक'

साहित्य-सेवा-सदन

वाराणसी।

सप्तम संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण

जन्माष्टमी.] २०१३ वि० [ मूल्य ६)

श्रीराम-भक्ति-रसिकों

के

कर कमलों में

सप्रेम समर्पित

—वियोगी हरि

# प्रकाशकीय निवेदन

काव्य-ग्रन्थमाला का यह छठा रत्न सन्त शिरोमणि कविकुल सूर्य गोस्वामी तुलसीदास-प्रणीत विनय-पत्रिका का पाचवाँ संस्करण लेकर आज आप हिन्दी-प्रेमियों की सेवा में उपस्थित होते हुए हमें अपार आनन्द होता है। गोस्वामीजी के रामचरित-मानस के बाद इसी ग्रन्थ का सर्वाधिक प्रचार है। यह ग्रन्थ उनकी अमूल्य निधि है। यदि उनकी कृतियों में से रामचरितमानस को हटा दिया जाय तो भी केवल इस ग्रन्थ के कारण ही उनकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी। इसकी टीका हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री वियोगी हरि जी ने लिखी है। वह सोने में सुगन्ध का काम करती है। अभी तक विनय-पत्रिका की ऐसी सांगोपांग सुन्दर टीका कोई भी नहीं प्रकाशित हुई है। पाठकों ने इस टीका को जितना आदर प्रदान किया है, उससे मैं गौरव का अनुभव करता हूँ। हमारी इच्छा थी कि इस ग्रन्थ का यह संस्करण कुछ परिवर्द्धित और संशोधित रूप में प्रकाशित हो और इसके लिए श्री वियोगी हरिजी से निवेदन भी किया गया था, पर समयाभाव के कारण इसका प्रकाशन द्वितीय संस्करण के अनुसार हो रहा है। अनुकूल अवसर मिलने पर फिर कभी अपनी इस इच्छा को चरितार्थ करेंगे।

हमें इस बात का अपार हर्ष है कि साहित्य-सेवा-सदन द्वारा प्रकाशित भ्रमर-गीत-सार, बिहारी सतसई ( सटीक ), पद्य-रत्नावली, रहीम-रत्नावली, तुलसी सूक्ति सुधा, भँवर गीत, मुद्राराक्षस, रामचन्द्रिका ( सटीक ), कुसुम-संग्रह आदि ग्रन्थों का पाठकों ने विशेष आदर किया है वे सभी प्रायः भारत के सभी विश्वविद्यालयों में पाठ्य-क्रम, रिफरेंस और पुस्तकालयों के लिए

निर्धारित हैं। उक्त सभी पुस्तकों के कई संस्करण हो चुके हैं फिर भी लोगो की चाह ज्यो की त्यों बनी हुई है। हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि हमारे प्रेमी पाठक शीघ्र ही स्थायी-ग्राहक में अपना नाम लिखा कर हमें प्रोत्साहित करेंगे।

टेक्स्टबुक कमेटी के अधिकारियों से हमारी अपील है कि वे जिस किसी भी प्रकाशक की पुस्तक अपने यहाँ के पाठ्य-क्रम में नियत करे उसकी सूचना प्रकाशक को अवश्य दे दे। साथ ही सिलेबस में पुस्तक के साथ-साथ प्रकाशक के नाम का भी उल्लेख कर दिया करे। इससे प्रकाशको, पुस्तक-विक्रेताओ और ग्राहको का बहुत-सा भ्रम दूर हो जायगा।

चौखम्भा, वाराणसी।<br>
सं० २०१३

गोपालदास सेवक

# सातवें संस्करण पर वक्तव्य

इधर दक्षिण भारत के बम्बई, पूना, सागर, मद्रास आदि स्थानों के विश्व-विद्यालयों ने इस ग्रन्थ को अपने यहाँ के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया है जिसके लिये हम उनके अधिकारियों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं।

इन विश्वविद्यालयों को पिछले संस्करण के बारे में जो आपत्तियाँ थीं वे उनके आदेशानुसार दूर कर दी गयी हैं। कागज छपाई आदि चारुता लाने की चेष्टा की गयी है। पुस्तक को सजिल्द भी कर दिया गया है। आशा है, इससे विश्वविद्यालयों के अधिकारियों और पाठकों को सन्तोष होगा। अब हम शीघ्र ही इसी प्रकार तुलसी-कृत रामचरित-मानस (सटीक), बाल्मीकि रामायण (सटीक), बिहारी-बोधिनी, रहीम-रत्नावली, भ्रमर-गीतसार, उराज आदि का भी प्रकाशन करने जा रहे हैं। साहित्य-प्रेमी हमारे कार्यालय के स्थायी ग्राहक बन कर स्वतः लाभ उठायें और हमें भी उत्साहित करें। स्थायी ग्राहकों में नाम लिखाने का शुल्क दो रुपये मात्र है जो लौटाया नहीं जाता है। स्थायी ग्राहकों को सभी पुस्तकों पर पुस्तक के मूल्य का पञ्चमांश ( २० प्रतिशत ) कमीशन दिया जाता है। मैं 'शारदा लाइब्रेरी' शिवानगर, वाराणसी, के संचालक श्री अमरनाथ घोष का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने हमारी पुस्तकों के प्रकाशन का भार अपने हाथ में ले लिया है। 'शारदा-साहित्य-सदन' और 'साहित्य-सदन' से हमारे कार्यालय से कोई सम्बन्ध नहीं है। सहयोगी पुस्तक-विक्रेताओं को उक्त कार्यालयों के बारे में हमारे पास कोई शिकायत नहीं भेजनी चाहिए।

साहित्य-सेवा-सदन वाटिका
सारनाथ वाराणसी
जन्माष्टमी सं० २०१३

गोपाल दास 'सेवक'

# अनुक्रमणिका

—*—



—*—

# परिचय

—※—

भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनयपत्रिका में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अङ्ग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल शब्द-स्रोत निकले हैं, जिनमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है। गोस्वामीजी के भक्ति-क्षेत्र में शील, शक्ति और सौन्दर्य्य तीनों की प्रतिष्ठा होने के कारण मनुष्य की सम्पूर्ण रागात्मिका प्रकृति के परिष्कार और प्रसार के लिए मैदान पड़ा हुआ है। जिस प्रकार लोक-व्यवहार से अपने को अलग कर के आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होनेवाले काम, क्रोध आदि शत्रुओंसे बहुत दूर रहनेका मार्ग पा सकते हैं, उसी प्रकार लोक-व्यवहार में मग्न रहनेवाले अपने भिन्न-भिन्न कर्तव्यों के भीतर ही आनंद की वह ज्योति पा सकते हैं जिससे इस जीवन में दिव्य जीवन का आभास मिलने लगता है और मनुष्य के वे सब कर्म, वे सब बचन और वे सब भाव—क्या डूबते हुए को बचाना, क्या अत्याचारी पर शस्त्र चलाना, क्या स्तुति करना, क्या निन्दा करना, क्या दया से आर्द्र होना, क्या क्रोधसे तमतमाना—जिनसे लोक का कल्याण होता आया है, भगवान् के लोक-पालन करनेवाले कर्म, वचन और भाव दिखाई पड़ते हैं।

यह प्राचीन भक्ति-मार्ग एकदेशीय आधार पर स्थित नहीं, यह एकांगदर्शी नहीं। यह हमारे हृदय को ऐसा नहीं करना चाहता कि हम केवल व्रत-उपवास करनेवालों और उपदेश करनेवालों ही पर श्रद्धा रखें

और जो लोग संसार के पदार्थों का उचित उपभोग करके अपनी विशाल भुजाओं से रणक्षेत्र में अत्याचारियों का दमन करते हैं, या अपनी अन्तर्दृष्टि की साधना और शारीरिक अध्यवसाय के बल से मनुष्य-जाति के ज्ञान की वृद्धि करते हैं, उनके प्रति उदासीन रहे। गोस्वामीजी की रामभक्ति वह पदार्थ है जिससे जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता सब कुछ प्राप्त हो सकती है। आलम्बन की महत्वभावना से प्रेरित दैन्य के अतिरिक्त भक्ति के और जितने अंग हैं—भक्ति के कारण अन्तःकरण को जो और-और शुभ वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं—सब की अभिव्यंजना विनयपत्रिका के भीतर हम पा सकते हैं। राम में सौन्दर्य, शक्ति और शील तीनों की चरम अभिव्यक्ति एक साथ समन्वित हो कर मनुष्य के सम्पूर्ण हृदय को—उसके किसी एक ही अंश को नहीं—आकर्षित कर लेती है। कोरी साधुता का उपदेश पाखंड है, कोरी वीरता का उपदेश उद्दंडता है, कोरे ज्ञान का उपदेश आलस्य है, और कोरी चतुराई का उपदेश धूर्तता है।

सूर और तुलसी को हमें उपदेशक के रूप में न देखना चाहिए। ये उपदेशक नहीं हैं, अपनी भावुकता और प्रतिभा के बल से लोकादर्श की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित करनेवाले हैं। हमारा प्राचीन भक्ति-मार्ग उपदेशकों की सृष्टि करनेवाला नहीं है। सदाचार और ब्रह्मज्ञान के रूखे उपदेशों द्वारा इसके प्रचार की व्यवस्था नहीं है। न हमारे राम और कृष्ण उपदेशक, न उनके भक्त तुलसी और सूर। लोक-व्यवहार में मग्न हो कर जो मंगल-ज्योति इन अवतारों ने उसके भीतर जगाई, उसके माधुर्य्य का अनेक रूपों में साक्षात्कार करके मुग्ध होना और मुग्ध करना ही इन भक्तों का प्रधान व्यवसाय है। उनका शस्त्र भी मानव-हृदय है और लक्ष्य भी। उपदेशों का ग्रहण ऊपर ही ऊपर से होता है। न वे हृदय के मर्म को ही भेद सकते हैं, न बुद्धि की कसौटी पर ही स्थिर भाव से जमे रह सकते हैं। हृदय तो उनकी ओर मुड़ता ही नहीं और बुद्धि उनको लेकर अनेक दार्शनिक वादों के बीच जा उलझती है।

उपदेश, वाद या तर्क गोस्वामीजी के अनुसार "वाक्य-ज्ञान" मात्र कराते हैं, जिससे जीवकल्याण का लक्ष्य पूरा नहीं होता—

वाक्य-ज्ञान अत्यंत निपुन भव-पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहीं होई। (१२३)

"वाक्य ज्ञान" और बात है, अनुभूति और बात। इसी से प्राचीन परंपरा के भक्त लोग उपदेश, वाद या तर्क की अपेक्षा चरित्र-श्रवण और चरित्र-कीर्तन आदि का ही अधिक नाम लिया करते हैं।

प्राचीन भागवत सम्प्रदाय के बीच भगवान् के उस लोक-रंजनकारी रूप की प्रतिष्ठा हुई जिसके अवलम्बन से मानव-हृदय अपने पूर्ण भाव-संघात के साथ कल्याण-मार्ग की ओर आप से आप आकर्षित हो सके। इसी लोकरंजनकारी रूप का प्रत्यक्षीकरण प्राचीन परंपरा के भक्तों का लक्ष्य है, उपदेश देना नहीं। उसी मनोहर रूप की अनुभूति में गद्गद और पुलकित होना, उसी रूप की एक एक छटा को औरों के सामने भी रख कर उन्हें मानव-जीवन के सौन्दर्य्य-साधन में प्रवृत्त करना भक्तों का काम है।

गोस्वामीजीने अनन्त सौन्दर्य्य का साक्षात्कार करके उसके भीतर ही अनन्त शक्ति और अनन्त शील की वह झलक दिखाई है, जिससे लोक का प्रमोद-पूर्ण परिचालन होता है। सौन्दर्य, शक्ति और शील तीनों में मनुष्य मात्र के लिये आकर्षण विद्यमान है। रूप-लावण्य के बीच प्रतिष्ठित होने से शक्ति और शील को और भी अधिक सौन्दर्य्य प्राप्त हो जाता है, उनमें एक अपूर्व मनोहरता आ जाती है। जिसे शक्ति-सौन्दर्य्य की यह झलक मिल गई, उसके हृदय में सच्चे वीर होने का अभिलाष जीवन भर के लिये जग गया, जिसने शील-सौन्दर्य्य की यह झाँकी पाई, उसके आचरण पर इसके मधुर प्रतिबिम्ब की छाप बैठी। प्राचीन भक्ति के इस तत्त्व की ओर ध्यान न देकर जो लोग लोकादर्श-स्थापक

सूर और तुलसी को कबीर, दादू आदि की श्रेणी में रख कर देखते हैं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं।

अनन्त-शक्ति-सौन्दर्य्य-समन्वित अनन्त शील की प्रतिष्ठा करके गोस्वामीजी को पूर्ण आशा होती है कि उसका आभास पाकर जो पूरी मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय होगा वह अवश्य द्रवीभूत होगा—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ॥

इसी हृदय-पद्धति द्वारा ही मनुष्य में शील और सदाचार का स्थायी संस्कार जम सकता है। दूसरी कोई पद्धति है ही नहीं।

चरम महत्त्व के इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूप के सम्मुख भव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो जो भाव-तरंगें उठती हैं उन्हीं की माला यह विनयपत्रिका है। महत्व और इन भाव-तरंगों की स्थिति परस्पर बिंब-प्रतिबिंब समझनी चाहिए। भक्त में दैन्य, आत्म-समर्पण, आशा, उत्साह, आत्मग्लानि अनुताप, आत्म-निवेदन आदि की गंभीरता उस महत्व की अनुभूति की मात्रा के अनुसार समझिए। महत्व का जितना ही सान्निध्य प्राप्त होता जायगा—उसका जितना ही स्पष्ट साक्षात्कार होता जायगा—उतना ही अधिक स्फुट इन भावों का विकाश होता जायगा, और इनपर भी महत्व की आभा चढ़ती जायगी। मानो ये भाव महत्व की ओर बढ़ते जाते हैं और महत्व इन भावों की ओर बढ़ता आता है। इस प्रकार लघुत्व का महत्व में लय हो जाता है।

सारांश यह कि भक्ति का मूल तत्व है महत्व की अनुभूति। इस अनुभूति के साथ ही दैन्य अर्थात् अपने लघुत्व की अनुभूति का उदय होता है। इस अनुभूति को दो ही पंक्तियों में गोस्वामी जी ने बड़े ही सीधे-सादे ढंग से कह दिया है—

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सों खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?

प्रभु के महत्व के सामने होते ही भक्त के हृदय में अपने लघुत्व का अनुभव होने लगता है। उसे जिस प्रकार प्रभु का महत्व वर्णन करने में आनन्द आता है उसी प्रकार अपना लघुत्व वर्णन करने में भी। प्रभु की अनन्त शक्ति के प्रकाश में उसकी असामर्थ्य का, उसकी दीन दशा का, बहुत साफ चित्र दिखाई पड़ता है, और वह अपने ऐसा दीन-हीन संसार में किसी को नहीं देखता। प्रभु के अनन्त शील और पवित्रता के सामने उसे अपने में दोष ही दोष और पाप ही पाप दिखाई पड़ने लगते हैं। इसी दृश्य के क्षोभ से आत्म-शुद्धि का आयोजन आप से आप होता है। इस अवस्था को प्राप्त भक्त अपने दोषों, पापों और त्रुटियों को अत्यन्त अधिक परिमाण में देखता है और उनका जी खोल कर वर्णन करने मे बहुत कुछ सन्तोष लाभ करता है। दंभ, अभिमान, छल, कपट आदि में से कोई उस समय बाधक नहीं हो सकता। इस प्रकार अपने पापों की पूरी सूचना देने से जी का बोझ ही नहीं, सिर का बोझ भी कुछ हलका हो जाता है। उसके सुधार का भार उसी पर न रह कर बँट सा जाता है।

इस अवस्था के पद इस ग्रन्थ में बहुत अधिक हैं। ऐसी उच्च मनोभूमि की प्राप्ति, जिसमें अपने दोषों को झुक झुक कर देखने ही की नहीं, उठा उठा कर दिखाने की भी प्रवृत्ति होती है, ऐसी नहीं जिसे कोई कहे कि यह कौन बड़ी बात है। लोक की सामान्य प्रवृत्ति तो प्रायः इसके विपरीत ही होती है, जिसे अपनी ही मान कर गोसाईं जी कहते हैं—

> जानत हू निज पाप जलधि जिय, जलसीकर सम सुनत लरौं।
> रजसम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरिसम रज ते निदरौं॥

ऐसे वचनों के सम्बन्ध में यह समझ रखना चाहिए कि ये दैन्य भाव के उत्कर्ष की व्यंजना करनेवाले उद्गार हैं। ऐतिहासिक खोज की धुन में इन्हें आत्म-वृत्ति समझ बैठना ठीक न होगा। इन शब्दप्रवाहों

में लोक की सामान्य प्रवृत्ति की व्यंजना हो जाती है, इससे इनके द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपने दोषो और बुराइयो की ओर दृष्टि ले जाने का साहस प्राप्त कर सकता है। दैन्य भक्तो का बड़ा भारी बल है।

परम महत्व के सान्निध्य से हृदय में उस महत्व में लीन होने के लिए जो अनेक प्रकार के आन्दोलन उत्पन्न होते हैं, वे ही भक्तों के भाव हैं। कभी भक्त अनन्त रूप-राशि के अनुभव से प्रेम-पुलकित हो जाता है, कभी अनन्त शक्ति की झलक पाकर आश्चर्य्य और उत्साह से पूर्ण होता है, कभी अनन्तशील की भावना से अपने कर्मों पर पछताता है। और कभी प्रभु के दया-दाक्षिण्य को देख मन में इस प्रकार ढाढ़स बाँधता है—

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियौं भौतुवा भौंर को हौ।
तुलसिदास सीतल नित एहि बल, बडे ठेकाने ठौर को हौ॥

दिन रात स्वामी के पास रहते रहते जिस प्रकार सेवक की कुछ धडक खुल जाती है, उसी प्रकार प्रभु के सतत ध्यान से जो सान्निध्य की अनुभूति भक्त के हृदय में उत्पन्न होती है, उसके कारण वह कभी कभी मीठा उपालंभ भी देता है।

भक्ति में लेन-देन का भाव नहीं रह जाता है। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी, इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्त के लिये भक्ति का आनन्द ही उसका फल है। वह शक्ति, सौन्दर्य्य और शील के अनन्त समुद्र के तट पर खड़ा होकर लहरें लेने में ही जीवन का परम फल मानता है—

इहै परम फल, परम बड़ाई।
नख सिख रुचिर बिंदुमाधव छबि निरखहि नयन अघाई॥

वह यही चाहता है कि प्रभु के सौन्दर्य्य, शक्ति आदि की अनन्तता की जो मधुर भावना है वह अबाध रहे—उसमें किसी प्रकार की कसर न आने पावे। अपने ऐसे पापी की सुगति को वह प्रभु की शक्ति का

एक चमत्कार समझता है। अतः उसे यदि सुगति न प्राप्त हुई तो उसे इसका पछतावा न होगा, पछतावा होगा इस बात का कि प्रभु की अनन्त शक्ति की भावना बाधित हो गई—

नाहिंन नरक परत मो कहँ डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बडि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो॥

विनय में कई एक पद ऐसे हैं जिनमें भक्ति की चरमावस्था ज्ञानयोग की चरमावस्था सी ही कही गई है, जैसे—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई।

* * * *

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत बियोगी॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस-निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं॥

प्रभु के सर्वगत होने का ध्यान करते करते भक्त अन्त में जाकर उस अवस्था को प्राप्त करता है जिसमें वह अपने साथ साथ समस्त संसार को उस एक अपरिच्छिन्न सत्ता में लीन होता हुआ देखने लगता है, और दृश्य भेदों का उसके ऊपर उतना जोर नहीं रह जाता। तर्क या युक्ति ऐसी अवस्था की सूचना भर दे सकती है—"वाक्य-ज्ञान" भर करा सकती है—अनुभव नहीं करा सकती। भक्ति अनुभव करा सकती है। संसार में परोपकार और आत्मत्याग के जो उज्ज्वल दृष्टान्त कहीं-कहीं दिखाई पड़ा करते हैं, वे इसी अनुभूति-मार्ग में कुछ-न-कुछ अग्रसर होने के हैं। यह अनुभूति-मार्ग या भक्ति-मार्ग बहुत दूर तक तो लोक-कल्याण की व्यवस्था करता दिखाई पड़ता है, पर और आगे चल कर यह निस्संग साधक को सब भेदों से परे ले जाता है।

कुछ थोड़े से पदों में दार्शनिक सिद्धान्तों की भी चर्चा मिलती है, जैसे—

केशव कहि न जाइ, का कहिए।

* * * *

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे॥

* * * *

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥ (१११)

इसमें मायावाद आदि सब दार्शनिक मतों को अपूर्ण कहकर केवल उनके द्वारा आत्मानुभूति असंभव कही गई है। सच्ची भक्ति से ही क्रमशः वह अवस्था प्राप्त हो सकती है, जिससे जीव का कल्याण होता है। जहाँ तक समझ में आता है गोस्वामी जी का मतलब यह नहीं जान पड़ता कि ये सब मत बिल्कुल असत्य हैं। कहने का तात्पर्य यह समझ पड़ता है कि ये सब पूर्ण सत्य नहीं हैं—अंशतः सत्य हैं। इनमें से किसी एक को पूर्ण सत्य मान कर दूसरे मतों की उपेक्षा करने से सच्ची तत्वदृष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। गोस्वामी जी ने यथावसर भिन्न भिन्न मतों से वैराग्य की पुष्टि के लिए सहारा लिया है—जैसे इस पद में सत्कार्यवाद और अद्वैतवाद का मिश्रण-सा दिखाई पड़ता है—

जौ निज मन परिहरै विकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा?

* * * *

विटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए॥ (१२४)

इसी प्रकार संसार की असारता के सम्बन्ध में वे कहते हैं—

मै तोहिं अब जान्यों, संसार!
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए बिचार। (१८८)

पर इस "कछू नाहिंन" को मायावाद का सा "नहीं" न समझना चाहिए।

सारांश यह कि गोस्वामीजी की यह विनय-पत्रिका भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी हुई है। हिन्दी साहित्य में यह एक अनमोल रत्न है। यद्यपि इसके कुछ पद जन-साधारण के बीच प्रचलित हैं पर शुद्ध पाठ और टीका टिप्पणी न होने के कारण इधर बहुत दिनों तक समग्र ग्रंथ के पाठ का आनन्द अधिकतर लोग नहीं उठा सकते थे। श्री बैजनाथ कुरमी आदि की पुराने ढंग की टीकाएँ थीं, पर वे सब के काम की न थीं। थोड़े दिन हुए पण्डित रामेश्वर भट्ट जी ने आज कल की चलती भाषा में एक टीका की। पर अवधी भाषा से पूर्ण परिचित न होने के कारण कई स्थलों पर वे भ्रम से न बच सके। यद्यपि कवितावली और गीतावली के समान 'विनय' की भाषा भी व्रज ही रक्खी गई है, पर अवधी की छाप उसमें जगह जगह मौजूद है, क्योंकि वह गोस्वामीजी की मातृभाषा थी। ऐसे स्थलों पर प्रायः अर्थ में भूलें हुई हैं, जैसे—

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू की बेद भाखैं—
'भलो ह्वैहै तेरो', ताते आनँद लहत हौं॥ ( ७६ )

इस पद में 'रोटी लूगा' का अर्थ 'अन्न वस्त्र' स्पष्ट है, पर श्रीयुत् भट्ट जी ने अर्थ किया है "रोटी लूँगा"। पूरबी शब्द 'लूगा' का अर्थ न जानने पर भी यदि भट्ट जी ने 'लेना' क्रिया के 'लूँगा' रूप पर ही विचार कर लिया होता—तो इस प्रकार का अर्थ करने के श्रम से बच जाते। 'लेना' क्रिया का 'लूँगा' रूप न व्रजभाषा में ही होता है, न अवधी में।

श्रीयुत् वियोगी हरि जी ने यह एक दूसरी विस्तृत और विशद टीका प्रस्तुत की है। जिस श्रम के साथ उन्होंने इस कार्य्य को ऐसे सुचारु रूप से सम्पन्न किया है—उसके लिए वे समस्त हिन्दी-पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं। भावार्थ अत्यन्त सुगम और सुबोध रीति से लिखे गए हैं। पद के भीतर आए हुए प्रसंगों की कुछ अधिक चर्चा टिप्पणियों में की गई है। और टीकाकारों से मतभेद के कारण भी इन्हीं टिप्पणियों में दिए गए हैं। सब से बड़ी विशेषता है स्थान-स्थान पर और और कवियों की मिलती-जुलती उक्तियों का सन्निवेश, जिनके द्वारा पाठक भाव तक पूर्ण रूप से पहुँचने के अतिरिक्त साहित्य-क्षेत्र में और इधर-उधर देख-भाल करने की उत्कण्ठा भी प्राप्त कर सकते हैं। कुछ टीकाकारों के चमत्कारों का भी थोड़ा बहुत नमूना टिप्पणी के रूप में कहीं कहीं मिल जाता है, जैसे १३० वें पद में 'राम'-शब्द के छः बार आने के तीन कारण। वास्तव में ऐसी ही टीकाओं की आवश्यकता है जिनमें न तो मूल विषय से वादरायण सम्बन्ध मात्र रखने वाला अनावश्यक विस्तार ही हो, और न वचन की इतनी दरिद्रता ही कि पाठक बेचारे मुँह ताकते ही रह जायँ।

इस टीका में भी दो एक जगह जो त्रुटियाँ रह गई हैं—वे, आशा है, अगले संस्करण में सुधार दी जायँगी। टीका वास्तव में जैसी होनी चाहिए—वैसी ही हुई है।

काशी,
५-१-१९२४ ई०

रामचन्द्र शुक्ल

श्रीहरिः

# वक्तव्य

कवि-कुल-चूड़ामणि गोसाईं तुलसीदासका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, पंडित-मूर्ख, राजा-रङ्क सभी उनके शुभ नामसे परिचित हैं। क्यों न हो—जिन्होंने चिरपिपासाकुल संसार-सन्तप्त पथिकोंके लिए सुशीतल सुधा-स्रोतस्वती पुण्यसलिला राम-भक्ति-मंदाकिनीकी धवल धारा बहा दी है, जिन्होंने भक्त-भ्रमरोंके लिए अपनी कृति-वाटिकामें भाव-कंज-कलिकाओंसे अनुराग-मकरंद प्रस्रावित किया है, जिन्होंने साहित्य-सेवियोंके सम्मुख भगवती भारतीकी अप्रतिम प्रतिमा प्रत्यक्ष करा दी है, भला, उनका प्रातःस्मरणीय पुनीत नाम किस अभागे अरसिकके हृदय-पटलपर अंकित न होगा! जिनका रामचरितमानस भारतीय समाजके मनोमंदिरका इष्टदेव हो रहा है, जिनकी अभूतपूर्व रचना समस्त संसारमें समादरणीय स्थान पाती जा रही है, उन रससिद्ध कवीश्वर लोक-ललाम गोस्वामी तुलसीदासके नामसे परिचित न होना महान् आश्चर्यका विषय है! हमें तो उनका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। कहीं दीपक-द्वारा भगवान्भास्करका दर्शन किया जाता है?

गोसाईंजीके रामचरितमानसकी लोकप्रियताके संबन्धमें कुछ कहना व्यर्थ है। श्रद्धेय विद्वान् डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सनके शब्दोंमें रामायणका महत्त्व सुनिए—

"भारतवर्षके इतिहासमें तुलसीदासजीके महत्त्वके सम्बन्धमें 'इदमित्थं' नहीं कहा जा सकता। रामायणके गुणोंको, साहित्यिक दृष्टिसे,

एक ओर रखकर यह बात अवश्य उल्लेख्य है, कि यह ग्रन्थ यहाँकी समस्त जातियोंने अपनाया है।" ‡

यह सम्मति एक अन्य-भाषा-भाषी विदेशी सज्जनकी है। प्रायः सभ्य-संसारकी प्रत्येक भाषाके विद्वान्ने रामायणके प्रचाराधिक्यपर ऐसी ही राय दी है। गोसाईंजीकी समस्त रचनाओंमें रामचरितमानसका ही आशातीत प्रचार हुआ है। मानव-समाज इसी ग्रन्थरत्नसे अधिकतर प्रभावान्वित दिखायी देता है। विद्या-वयोवृद्ध श्रीयुत् बाबू शिवनंदन-सहायजी लिखते हैं—

"लाखों जन इसे अपना जीवन-सर्वस्व समझते हैं, करोड़ो इसीका आश्रय ग्रहणकर कतिपय कुत्सित कर्मोंसे बचते हैं। कितने इसके पाठसे विरक्त साधु बन जाते हैं, एवं कितने पण्डित और ज्ञानी कहलाने लगते हैं। समाजनीति, व्यवहारनीति, राजनीति इत्यादि सब नीतियोंका शास्त्र कहलानेका यह ग्रन्थ अधिकारी है।"

रामायणकी महत्ता और लोकप्रियताके सम्बन्धमें करोड़ों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं। रामायणका नाम लेते ही गोसाईं तुलसीदास और गोसाईं तुलसीदासका स्मरण करते ही रामायण हठात् आँखोंके सामने आ जाता है। तुलसीदास और रामायणका अन्योन्याश्रय चिरंतन सम्बन्ध हो गया है। किन्तु गोसाईं तुलसीदासके सम्बन्धका वस्तुतः रामचरितमानसमें ही अन्त नहीं हो जाता। निःसन्देह हमें उनके मानसमें उनकी पवित्र भव्य मूर्तिका दर्शन होता है, किन्तु उनकी भक्ति-विभोर आत्मा किसी अन्य ही स्थलमें अधिष्ठित है; अवश्य ही वे रामचरित-मानसमें, उपदेशकके रूपमें, दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु 'गुरु-गोविन्द'-

‡ The importance of Tulsi Das in the History of India can not be overrated. Putting the literary merits of his Ramayan out of question, the facts of its universal acceptance by all classes is surely worthy of note.

रूपमें उनका दर्शन उनकी किसी और ही कृतिमें मिलता है। यद्यपि वह कृति उतनी लोकप्रिय नहीं है, पर भक्तप्रिय अवश्य है। वह कृति ज्ञानियोंकी सिद्धांत मंजूषा है, पण्डितोंकी पाण्डित्य-निकष है, योगियोंकी समाधिस्थली है एवं प्रेमियों और भक्तोंकी मानसतरंगिणी है। उसकी आराधना लाखमें एकसे बनी है। उस कृतिसे क्या तात्पर्य है ? सुनिए, वह अनुपम कृति

## विनय-पत्रिका

है। गोसाईंजीने यह पत्रिका, कराल कलियुगके द्वारा सताये जाने पर, त्रिलोकेश्वर महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजीके राज-दरबार में भेजी थी। उस समय आप समस्त मानवजातिके प्रतिनिधि बने थे। पत्रिका कुछ ऐसी प्रभावोत्पादिनी लिखी गई है, कि उसे पढ़कर कैसा ही कठोर हृदय क्यों न हो, एक बार तो पिघल ही जायगा। जीवका दैन्य असामर्थ्य, लघुत्व और स्वामीका पुरुषार्थ, सामर्थ्य और महत्त्व विलक्षण दिव्य उद्गारोंमें अभिव्यक्त किया गया है। अगाध पाण्डित्य, अतर्क्य अर्थ-गाम्भीर्य्य, अनुपम उक्ति-चमत्कार, ललित शब्द-सौष्ठव और अनन्त अनुराग-माधुर्य इस ग्रन्थ-रत्न में देखते ही बनता है। गोसाईंजीकी निर्मल आत्मा इसी शुभ्र दर्पणमें दिखाई देती है। इस रत्नके जौहरी संसारमें इने-गिने ही मिलेंगे। कतिपय सज्जन तो इसके शब्दसागरमें ही डूबनेके भयसे दूर भाग जाते हैं और कुछ अर्थ-गाम्भीर्यमें चक्कर लगानेका साहस नहीं करते।* इसमें समाजनीति और राजनीति का भी बाहुल्य दृष्टिगत न होनेके कारण विद्वानोंकी सीमासे यह ग्रन्थ पृथक्-सा हो गया है, पर यह बात नहीं है, कि इसमें सामाजिक और नैतिक प्रश्नोंका नितान्त अभाव ही हो। इसमें कई पद ऐसे मिलेंगे, कि जिनका अनुशीलन करनेसे तत्कालीन भारतीय परिस्थितिका चित्र खचित

---

* विनयपत्रिका कविके स्तुत्य ग्रन्थोंमें से एक है: पर भाषाकी क्लिष्टताके कारण बहुतसे पढ़नेवाले इसको पढ़नेका साहस नहीं करते।—डा० सर जी० ए० ग्रियर्सन।

हो जायगा। भाषाकी क्लिष्टता एवं भावोंकी गम्भीरता इसमें निस्सन्देह है, पर साथ ही सरलता और सरसताका भी अभाव नहीं है। इसके लोकप्रिय न होनेका सर्वप्रधान प्रत्यक्ष कारण तो यही है, कि इसमें वह चर्चा की गई है, वह रस बहाया गया है, कि जिसके अधिकारी स्वभावतः ही संसारमें सदासे उँगलियोंपर गिने जाने लायक होते आये हैं। इसमें वह झलक है, जिसे देखनेको लाखमें कहीं एक आँख मिलेगी।

तत्त्वतः विनय-पत्रिकाके पढ़नेवाले विरले ही मिलेंगे। अस्तु, इस अलौकिक ग्रन्थका संक्षिप्त परिचय देनेको हमारा मन लालायित हो रहा है, यद्यपि यह वैसा ही प्रयास है, जैसे कोई बौना मनुष्य नक्षत्रोंके तोड़नेका दुस्साहस करता हो।

## प्रयोजन

प्रत्येक ग्रन्थके निर्माणका कुछ-न-कुछ प्रयोजन होता है। न्यायतः इस ग्रन्थका भी प्रयोजन होना चाहिए। ग्रन्थके नामसे तो यही जान पड़ता है कि ग्रन्थकारने अपना दुःख निवेदन करनेके लिए श्रीरामचन्द्र-जीको यह निज-बीती पत्रिका लिखी है। सामने न पहुँच सकनेके कारण यह चिट्ठी दरबारमें पेश कराई होगी। दुःख कौन देता था ? श्रीमान् कलिदेव। जब कलिके मारे गोसाईंजीका नाकों दम आगया, तब उन्हें महाराज रामचन्द्रजीके दरबारमें यह पत्रिका भेजनी पड़ी। इस सम्बन्ध की एक कथा भी प्रसिद्ध है, वह इस प्रकार है। एक दिन एक हत्यारा, जिसे गोहत्या लगी थी, पुकारता फिरता था कि 'रामके नाम पर कोई मेरे हाथका भोजन खाकर मुझे हत्यासे छुड़ा दे'। गोसाईंजीके कानमें यह आवाज़ पड़ी। उन्होंने राम-नामके नाते उसे बुलाया और बड़े प्रेम से उसे अपने साथ खिलाया। काशीके ब्राह्मणोंने यह सुनकर बड़ा हौहल्ला मचाया। गोसाईंजीसे पूछने लगे, कि तुमने इसके साथ क्यों खाया, और यह कैसे जाना कि यह हत्यासे मुक्त हो गया ? गोसाईंजीने सीधा-

सच्चा जवाब दे दिया, कि रामनाम का प्रभाव ही ऐसा है। रामनाम लेनेवालेको हत्या लग ही नहीं सकती। विद्याभिमानी पंडित-समाज भला यह बात क्यों मानने लगा ? उन्होंने कहा, कि हम यह नहीं जानते। यदि इस हत्यारे के हाथ से विश्वनाथजी का नंदी खा ले, तो हम मानें, कि यह हत्या से मुक्त हो गया। ऐसा ही किया गया और सबके देखते-देखते, राम-नाम के पुण्य-प्रभाव से, पत्थर के नंदी ने उसके हाथ से खा लिया। अब पंडितों की आँखें खुलीं। राम-नाम का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर सब लोग भगवद्भजन करने लगे। इस पर कलि बहुत चिढ़ा। प्रत्यक्ष रूप से गोसाईंजी को डाँटने लगा। बहुत दुखी होनेपर उन्होंने केशरी-किशोर हनुमान्जी के आगे अपना सारा दुःख रोया। हनुमान्जी ने कहा, कि यों हम कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि इस समय उसीका राज्य है। पर हाँ, यदि तुम श्रीरघुनाथजी की सेवा में एक चिट्ठी लिख दो तो हम उसे उनकी सेवा में उपस्थित करके क्रूरकर्मा कलिको दंड दिला सकते हैं। इसी पर गोसाईंजी ने, कहते हैं, यह विनय-पत्रिका लिखी। हम यह नहीं कह सकते, कि इस कथा में कहाँ तक तथ्य है, पर यह निस्संदेह सिद्ध हो जाता है, कि कलियुग के अत्याचारों से तंग आकर ही यह पत्रिका लिखी गई थी।

## क्रम

कोप-काव्य होते हुए भी विनय-पत्रिका का क्रम बड़ा ही सुंदर है। किसी-किसी के मन में यह ग्रंथ गोसाईंजी के फुटकर पदों का संग्रहमात्र है, पर हमें यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। यह हो सकता है, कि कुछ पद, जो इसमें ऐसे मिलते हैं, समय-समय पर बनाये गये हों, किंतु इसकी रचना यथाक्रम ही हुई है। राजा-महाराजाके पास कोई बाला-बाला अर्जी नहीं भेजता। पहले दरबार के मुसाहबोंको मिलाना पड़ता है, तब कहीं पैठ होती है। इस बात को ध्यान में रखकर गोसाईंजी ने पहले देवी-देवताओं को मनाया है, तब कहीं हुजूर में अर्जी पेश की है।

सिद्धगणेश श्रीगणेशजी की वंदना से किया गया है। फिर भगवान् भास्कर की वंदना की गई है। अनेक जन्म-संचित अविद्या-अंधकार के दूर करने के लिए मरीचिमाली की स्तुति युक्ति-युक्त ही है। फिर पार्वतीवल्लभ जगद्गुरु शिव का गुण-गान किया गया है। यहीं से कल्याण का प्रशस्त पथ दृष्टिगोचर होता है। कलि को डराने-धमकाने के लिए भीषणमूर्ति भैरव का भी ध्यान किया गया है। तदनंतर पार्वती, गंगा, यमुना, काशी और चित्रकूट का यशोगान किया गया है। चित्रकूट का वर्णन बड़ा ही विशद और हृदयग्राही हुआ है। 'अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु' में कवि की उत्कण्ठा प्रतिक्षण बढ़ती दिखाई देती है। अब यहाँ से हनुमान्‌जीकी वंदना आरम्भ होती है। यह गोसाईंजी के ख़ास वकील हैं। इनके आगे अपनी सारी व्यथा-कथा खोलकर रख दी है। इनके साथ आप बहुत ही हिलेमिले जान पड़ते हैं। 'ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले'' पद में खूब ढिठाई की गई है। इसके बाद लक्ष्मण और फिर भरत और शत्रुघ्न से विनय की है। यहाँतक दरबार के सभी मुसाहब साध लिये गये हैं। अब किसी की ओर से कोई शंका नहीं है। श्रीरघुनाथजी के सामने अपने सम्बन्ध की चर्चा छेड़ने के लिए गोसाईंजीने श्रीजनक-नन्दिनीजी को क्या ही युक्ति बताई है! कहते हैं—

'कबहुँक अंब, अवसर पाई।
मेरियौ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाई॥'

'कछु करुन-कथा चलाई' से मानों गोसाईंजी महाकवि भवभूतिके स्वरमें स्वर मिलाकर करुणरसका प्राधान्य स्वीकार कर रहे हैं। ४२ पद पर्यन्त स्तुतिगान करके कविने ४३वें पदमें संक्षिप्त रामचरितका वर्णन किया है। ४५वे पदमें पुनः रामचन्द्रकी वंदना, ४८वेमें श्रीकृष्ण-वंदना, ५२वेंमें दशावतार-कथा तथा ६१, ६२, ६३ पदोंमें श्रीविंदुमाधवकी वंदना की गई है। इस वन्दना-समुच्चयके बाद विनय-पत्रिकाका वास्तविक रूप देखनेमें आता है। कुछ पाठक तो आदिके इन क्लिष्ट पदोंसे ही दूर भाग

जाते हैं, विनयके रसास्वादनसे प्रायः विमुखही रहते हैं। जीव परमेश्वरके सम्मुख अपना दैन्य, दुःख-निवेदन, असामर्थ्य आदि किस-किस ढंगसे उपस्थित कर सकता है, इसे गोसाईंजीने यत्र-तत्र अनेक रीतियोंसे दिखाया है। सुप्रसिद्ध टीकाकार भक्तप्रवर वैजनाथजीने विनयकी सात भूमिकाएँ मानी हैं, जिनके अन्तर्गत प्रायः विनय-सम्बन्धी सभी पद आ जाते हैं। उदाहरण-सहित उनके ये नाम हैं—

दीनता—केहि बिधि देउँ नाथहिं खोरि ?
मानमर्षता—काहे तें हरि, मोहि बिसार्यो ?
भयदर्शना—राम कहत चलु, राम कहत—
भर्त्सना—ऐसी मूढ़ता या मन की।
आश्वासन—ऐसे राम दीन-हितकारी।
मनोराज्य—कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो।
विचारण—केसव, कहि न जाइ का कहिए।

किसी पदमें स्वामीका प्रभुत्व, तो किसीमें सौहार्द वा किसीमें औदार्य्य एवं शील प्रदर्शित किया गया है। किसी पदमें जीवका असामर्थ्य, किसीमें आत्मग्लानि वा किसीमें मनोराज्य दिखाया गया है। किसी पदमें अपनी रामकहानी सुनाई गई है, तो किसीमं अत्याचार-पीड़ित मानव-समाजका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार २७९-पदतक पत्रिका लिखी गई है। पत्रिका पूरी हो चुकी। अब पेश कौन करे ? फिर हनुमान्, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरतसे प्रार्थना की। सेवक होनेके कारण अगुवा बननेका किसी को साहस न हुआ। एक दूसरेके मुँहकी ओर देखने लगा। पर सबमें लक्ष्मण अधिक ढीठ थे। उनपर रामचन्द्रजीका अपरिमित वात्सल्य-स्नेह था। सो उन्होंने पत्रिका पेश की। यहीं ग्रन्थ समाप्त होता है। अन्तिम पद यह है:—

'मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥

सकल सभा सुनि लै उठी जानि रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब की साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ-हाथ सही है ॥

## दिग्दर्शन

यह तो हम लिख ही चुके हैं कि यह ग्रन्थ एक पत्रिकाके रूपमें है। गोसाईंजी भेजनेवाले है और श्रीरामचन्द्रजी पानेवाले। एक जीव, त्रिताप-संतप्त जीव, परमात्माके समीप पत्रिका द्वारा अपना दुःख निवेदन कर रहा है। वह परमात्माको स्वामी, महाराजाधिराज, सर्वशक्तिमान् और पिताके रूपमें देखता है। मुख्यतः इस ग्रन्थमें पत्रिका भेजनेवाले और पानेवालेका ही वर्णन मिलेगा। मुसाहिबो और दरबारियोंकी खुशामद कर चुकनेके बाद चिट्ठीका मजमून यों शुरू होता है—

"राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम-नाम नवनेह—मेह को मन, हठि होहि पपीहा ॥"

अभी, स्वामीसे कुछ भी नही कहा। अपनी कलुषित जीभको ही सिखापन दिया जा रहा है। अप्रत्यक्ष रूपसे यह भी एक निवेदन ही है। राम-नाम-स्मरणसे क्यो श्रीगणेश किया गया ? क्योंकि सर्वप्रधान साधन यही है—

'सब साधन-फल कूप सरित सर, सागर सलिल निरासा।
राम-नाम-रति स्वाति-सुधा-सुभ-सीकर प्रेमपियासा ॥'

पपीहाकी प्रेमानन्यता और दृढ़ता धारणकर "राम-नाम नवनेह-मेह" के लिए 'पीउ पीउ' इस प्रकार पुकार।

राम-नाम स्मरण पर कई पद लिख डाले, पृष्ठ-के-पृष्ठ रँग डाले, तथापि तृप्ति न हुई। इस रसका चसका ही कुछ निराला समझ पड़ा। अंतमें यही निश्चित हुआ, कि—

'तुलसी तिलोक, तिहूँ काल तोसे दीन को।
राम-नाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥'

प्रत्यक्ष ही न देख लो—

'पतित-पावन रामनाम-सो न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी—सो ऊसरो ॥'

गोसाईंजी मनमें सोचने लगे, कि चिट्ठी तो लिख रहा हूँ, कलिकी शिकायत भी कर रहा हूँ, पर तनिक अपनी ओर भी तो देख लूँ । यह मेरा जड़ जीव कबसे सो रहा है । इसे कुछ खबर भी नहीं, कि क्या-से-क्या हो गया ! पहले इसे जगा लेना चाहिए और फिर ठीक-ठीक पूछ-ताछ करके स्वामीसे निवेदन करना चाहिए—

'जागु जागु जीव जड ? जोहै जग-जामिनि ।
देह गेह नेह जानि जैसे घन-दामिनी ॥'

इस पदमें तथा आगेके कई अन्य पदोंमें 'मायावाद' का आभास मिलता है । शांकर मायावादमें एवं गोसाईंजीके मायावादमें क्या अंतर है, इसे हम आगे लिखेंगे । पर हाँ, यदि यह जीव भगवत्परायण नहीं है, और उसे यह जगत् 'हरिशून्य' दिखाई देता है, तो निस्सन्देह वह 'घनदामिनी' और 'जेवरीको साँप' है । अब, जीव जागे कैसे ? उसे स्वतः प्रबोध तो होनेका नहीं, उसमें पुरुषार्थ ही क्या है ? इसलिए—

'जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव,
जागि त्यागि मूढ़ताऽनुराग श्रीहरे ।'

श्रीजानकीवल्लभजीकी कृपा इस प्रसुप्त जीवको सचेत कर सकती है । उनकी उस कृपापर पूर्ण प्रतीति होनी चाहिए । कृपालु प्रभु अवश्य कृपा करेंगे । पत्रिका-लेखकको भगवत्कृपापर पूर्ण विश्वास है । उसे यह अनुभव हो गया है, कि—

'तुलसिदास प्रभु कृपालु निरखि जीव जन बिहालु,
भंजो भवजाल परम मंगलाचरे ।'

गोसाईंजीने सोचा, कि अब अवसर आ गया है, अपना तुच्छ परिचय दे देना चाहिए । लगे सुनाने—

'राम को गुलाम, नाम रामबोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।

× × × × × ×

लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं॥'

रामबोला नाम है। रामका गुलाम हूँ। दो-एक बार राम-राम कह लेना मेरा काम है। इस पर लोग नीच कहें, तो कोई चिन्ता नहीं। मुझे जाति-पाँतिसे कोई मतलब नहीं। किसीके साथ नातेदारी तो जोड़नी नहीं। न ऊधोका देना, न माधोका लेना!

इस आत्म परिचयमें क्या ही निर्द्वन्द्व अवस्था है! इतनेसे छोटे मजमूनके अंदर सारी शाहंशाही भरी है। अस्तु, परिचय दे दिया। अब विनय सुनाते हैं। कई पदोंमें स्वामीकी सर्वशक्तिमत्ता और सामर्थ्य एवं उदारताका गुणगान करके आप सच्चे हृदयसे कहते हैं—

'तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंजहारी॥

× × × × × ×

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात सखा गुरु तू, सब बिधि हितु मेरो॥'

चाहते क्या हैं सो कहिए। कुछ नहीं, केवल—

"ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु, चरन-सरन पावै।"

अथवा—

'रामचन्द्र चन्द्र तू, चकोर मोहि कीजै।'

सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें तो, वास्तवमें कुछ भी नहीं माँगा, पर आपने, गोसाईंजी महाराज! वह वस्तु माँग ली, जिसे पाकर फिर कोई वस्तु माँगनेको शेष नहीं रह जाती। 'चरण-शरण' मिलनेही वाली थी, कि इतनेमें मन-मातंगका फिर एक ज़ोरका धक्का लगा। बना-बनाया काम मिट्टीमें मिल गया। अब क्या मुँह लेकर कुछ माँगा जाय! कहते हैं,

अरे मन, तुझे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ेगा। मानव शरीर व्यर्थ ही न खो दे। भगवान् की ओर तनिक देख तो। अरे दुष्ट! सुन, जैसे कंगाल दिन-रात अपने धनकी ही देख-भालमें लगा रहता है, उसी भाँति तू भी अपने स्वामी श्रीरामजीकी सेवा किया कर। देख, भगवच्चरणारविन्दोंसे विमुख होकर किसीने सुख नहीं पाया। अभी सबेरा ही है, चेत जा, अब भी चेत जा—

'तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि होहु राम कर चेरो।'

तुझे शान्ति अच्छी नहीं लगती। तूने कभी विश्राम माना ही नहीं। आत्मानन्द भूलकर दिन-रात माया मोहके चक्कर लगाया करता है। तू सुखप्राप्तिके साधन तो करता है, पर हाथ कुछ नहीं लगता—

"निज हित नाथ पिता गुरु हरि सो हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥"

इस मनकी ऐसी कुछ मूढ़ता है, कि श्रीरामभक्तिरूपी गंगाको त्यागकर ओसकी बूँदोंकी आशा करता फिरता है! यह बड़ा हठी है। वशमें तो आता ही नहीं—

"हौं हार्‌यो करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥"

पर, मेरी ओर भला प्रेरक प्रभु क्यों देखने लगे! मैं बड़ा ही मंद हूँ। हाय! मैंने कैसा अनर्थ किया!

महामोह-सरिता अपार महँ, सन्तत फिरत बह्यो।
श्रीहरि-चरनकमल-नौका तजि फिरि-फिरि फेन गह्यो॥

जो हुआ सो हुआ। जीवका स्वभाव ही ऐसा है। पतितपावन प्रभु इसकी सारी कलुष-कालिमा क्षणमात्रमें धो डालेंगे। यह मुझे अब भी निश्चय है। गजेन्द्र, प्रह्लाद, जटायु, अहल्या, अजामेल आदि अनेक घोर पापियोंका जिन्होंने उद्धार कर दिया, वह दीनबन्धु दीनदयालु मेरी भी जीवन-नौका भव-सरितासे पार कर देंगे। विश्वास तो मुझे सोलह आने है, पर विलम्ब क्यों हो रहा है?

'काहे ते हरि मोहि बिसारो ?
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ?'

यदि तुम अवगुणोंपर विचार करोगे, तो हो चुका ! पर ऐसा तुम करोगे नहीं। क्योंकि यदि तुम अपने सेवकोंके दोषोंको ही मनमें लाते, तो बड़े-बड़े धर्मध्वजोंको छोड़कर ब्रजके गवाँर ग्वालोंके यहाँ क्यों रहने जाते ? शबरीके जूठे बेर क्यों खाते ? विदुरका साग क्यों आरोगते ? तुम्हारे सम्बन्धमें तो यही प्रसिद्ध है, कि—

'निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति।'

प्रमाण भी मिलता है—

'जाकी माया-बस बिरञ्चि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥'

तुम न तो कुलीन देखते हो, न पण्डित। ज्ञानी-ध्यानी भी तुम्हारे प्यारे नहीं हैं। तुम्हें कोई प्यारे हैं तो बस ग़रीब। तुम्हारा नाम ही ग़रीबनिवाज है। शबरी, विभीषण, निषाद और सुदामा कहाँके बड़े गुणाढ्य या धनाढ्य थे ?

इतना कहते-कहते गोसाईंजीका गला भर आया। प्रेमाश्रु बहने लगे। स्वामीके शील-स्वभावकी ओर आपका प्रेमोन्मत्त मन चला गया। पश्चात्ताप, लज्जा, विश्वास और मंगलाशामें डुबकियाँ लगाने लगे। बोले—

'सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलकि नैनजल, सो नर खेहर खाउ॥

× × ×

खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ॥

× × ×

निज करुना करतूति भक्त पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम-पद पइहैं प्रेम पसाउ॥'

यदि यह चंचल मन केवल रामके गुणग्राम ही समझ ले, तो हृदयमें अवश्यमेव अनुरागका प्रवाह बहने लगे। और, प्रेमप्रसादसे सहज ही भगवच्चरणारबिन्दोंकी प्राप्ति हो जाय। यह कैसे कहें कि स्वामीने इस जीवको भुला दिया है। ऐसा कहना तो कृतघ्नताका भागी बनना है। हे हरे! तुमने तो मुझपर दया ही की है। देवताओंको भी दुर्लभ मानवशरीर मुझे कृपा कर दे दिया। यह क्या थोड़ी कृपा है? फिर भी मुझे कुछ और चाहिए। कृपा कर वह और दे दो। वह क्या, सुनो—

"बिषय वारि मनमीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी पद-अंकुस, परमप्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥"

बलिहारी! क्या ही कौतुक है! कैसी अनूठी युक्ति है! मनमीनको फँसाना और हिंसासे दूर रहना क्या अच्छी सूझ है! जब यह कौतुक पूरा हो जायगा, तब मैं क्या करूँगा, सो सुनो—

'जानकी-जीवन की बलि जैहौं।
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥'

अबतक जो हुआ सो हुआ, अब सचेत हो जाऊँगा। मुझे रामनाम-रूपी चिंतामणि प्राप्त हो गया है, उसे अब किसी तरह हृदयरूपी हाथसे न गिरने दूँगा।

'स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहिं कसैहौं।'

यह अनन्य प्रतिज्ञा आपने खूब पाली। आप समझ गये थे, कि बिना इस अनन्य भावनाके जीवन निःसार और नीरस है। आपको वैदिक यज्ञ रुचते ही न थे। वे सब साधन फोकट जान पड़ते थे। सब साधनोंके मूल साधन भगवत्प्रेमका रहस्य आप भलीभाँति अवगत कर चुके थे। आपके लिए यज्ञका रूप यह था—

"प्रेम बारि तरपन भलो, घृत सहज सनेहु।
ससय समिध अगिन छमा ममता बलि देहु॥"

कैसा उच्च आदर्श है! इस यज्ञपर करोड़ों अश्वमेध बलि किये जा सकते हैं। इतना ऊँचा विचार, इतनी ऊँची त्यागमयी भावना, उसी महात्माके हृदयमें अंकुरित हो सकती है, जो निम्नलिखित पद गानेका अद्वितीय अधिकारी हो—

'केसव, कहि न जाइ का कहिए!
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिए॥
सून भीति पर चित्र रंग नहिं, तनुबिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरे भीति दुख, पाइय इहि तन हेरे॥
रवि-कर-नीर बसै अति दारुन, मकररूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥'

इस पदकी टीका-टिप्पणी करनी हम अज्ञोंकी अल्पमतिके परे हैं। इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि इस पदका सिद्धान्त अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सभी वादोंसे परे है। अस्तु, इस 'विचारणा' में मस्त रामरँगीले गोसाईंजी 'आत्मबोध' के अर्थ यही निश्चय करते हैं, कि बिना भगवत्प्रकाशके उसकी प्राप्ति असंभव ही है—

'तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु ससय टरै न टारी।'

अथवा—

'तुलसिदास प्रभु मोह सृङ्खला छूटिहि तुम्हरे छोरे।'

पर, वही प्रश्न फिर सामने आ जाता है। स्वामीकी कृपा हो कैसे! यह जानता हूँ, कि यह संसार अनर्थरूप है। देखता हूँ, सुनता हूँ, फिर भी अंधा ही बना हूँ। दिखाने के लिए धर्म-कर्म भी करता हूँ, पर भीतर कपट-ही-कपट भरा है। कथनी और करनीमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है—

'रहनि आन बिधि कहिय आन हरिपद-सुख पाइय कैसे!'

कपटके आधिक्यसे 'भ्रम' का साम्राज्य दिनदूना विस्तृत होता जाता है। समस्त संसार भ्रममय भासता है। इस भ्रमाधिक्यके कारण आत्म बोध हो तो कैसे! भ्रमके मिटानेका तो आजतक एक भी उपाय नहीं बन पड़ा। वही किया जिससे यह रोग और भी बढ़े। फिर क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अपना रोना किसके आगे रोऊँ?

"मै केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ प्रभु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहि बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध रिपु मारा॥

× × × ×

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥
चिंता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥"

काम निकाल लेनेका कैसा निराला ढंग है! विपत्ति सुना देनेके बाद आत्म-ग्लानि ने फिर आ दबाया। सोचने लगे, मैने समझ लिया, कि रघुनाथजीके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है, क्योंकि सपनेमें भी मेरे मनमें वैराग्यका उदय नहीं हुआ। बिना वैराग्य आये अनुराग कहाँ? क्योंकि—

"जे रघुबीर-चरन-अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग-सम त्यागे॥"

किया क्या जाय? वह निर्लज्ज मन विषयोंकी ओरसे ऊबता ही नहीं! इसे बार-बार कल्याण-मार्गका अवलंबन कराया, पर यह उस पर कभी न चला। सदा कुमार्गका ही पथिक बना रहा। अरे मन! अब भी सचेत हो जा। विचार कर, तूने मनुष्य-शरीर पाया है। और फिर कहाँ, इस भारतवर्षमें, जहाँ पासही पुण्य-सलिला भागीरथी हैं। सत्संग भी अच्छा मिल गया है। पर, अरे कायर! तेरी कुबुद्धि-रूपी कल्पना विषैले फल फला चाहती है! सावधान हो जा। करुणासिंधु भगवान्‌की शरणमें अब भी चला जा—

'जपि नाम करहि प्रनाम कहि, गुन-ग्राम रामहि धरि हिये।
बिचरहिं अवनि अवनीस चरन-सरोज मन मधुकर किये॥'

यदि यह अवस्था प्राप्त हो जाय, तो सब बनही न जाय ! सो ऐसा सौभाग्य कहाँ ? पर निराश क्यों होऊँ ! पतित-पावन प्रभु अवश्य अंगीकृत करेंगे, यह मेरी दृढ़ धारणा है। प्रभो ! क्या कभी इधर देखोगे ! नाथ !

'कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे ॥

× × × × ×

सीतल सुखद छाँह जेहि कर की, मेटति पाप ताप माया।
निसिबासर तेहि करसरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥'

इस पदके आगे गोसाईंजीका ध्यान समस्त मानव-समाजपर जाता है। वह अपनाही भला चाहनेवाले ज्ञानियों या भक्तोंमें न थे। उन्हें अत्याचार-पीड़ित जनताका सदा स्मरण रहता था। जगत्-प्रतिनिधिके रूपमें भगवान्के आगे कहने लगे—

'दीनदयालु, दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप-तई है।
देव, दुवार पुकारत आरत, सब की सब सुख-हानि भई है ॥'

किस प्रकार जनता इस दुर्दशाको पहुँची, कैसे उनका उद्धार हो सकेगा आदि समस्याओंपर इस पदमें खूब विचार किया गया है। अंत में आपको 'मंगलाशा' का उदय जान पड़ा। श्रीरामजीने कृपा-दृष्टि कर समस्त मानव-समाजका उद्धार कर दिया।

जन-समाजके पतनका मुख्य कारण, आपकी रायमें, यही जान पड़ा, कि 'नास्तिकता' के साम्राज्यसेही यह दुर्दशा हुई है। वास्तवमें, वे अभागे मनुष्य संसारमें नरकरूप होकर जी रहे हैं, जो जन्म-मरणसे मुक्त कर देनेवाले भगवान्के अशरण-शरण चरणोंसे विमुख हो गये हैं। वे लोग—

'सूकर स्वान सृगाल सरिस जन,
जनमत जगत जननि-दुख लागी।'

वे जितनी भी यातना भोगें उतनी थोड़ी ही हैं। पर जो सहस्रों पाप करके भी श्रीहरि-शरण ग्रहण करते हैं, उनके लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

अब गोसाईंजीको फिर संकोच और आत्मग्लानि आ दबाती है। विनय सुनानेका स्वामीके सामने साहसही नहीं होता। लज्जाके मारे गड़े जाते हैं। पाखंडो और मिथ्याचारोंकी प्रत्यक्ष मूर्तियाँ सामने खड़ी हो जाती हैं। आँखोंके आगे अँधेरा छा जाता है। फिर भी अपनी सारी करनी निःसंकोच हो सुना देते हैं। और, अन्तमें यही कहते हैं कि—

'हारि पर्‌यो करि जतन बहुत बिधि, ताते कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब, हृदय करहु तुम डेरो॥'

हृदयमे भगवान् कैसे डेरा करेंगे? वहाँ तो चोरोंका निवास है। राम-नामके प्रबल प्रतापसे चोर-डाकू क्षणमात्रमें चंपत हो जायँगे। हृदय-मंदिर निर्मल हो जायगा। विलम्ब 'डेरा करने' भरका है। यह भी विश्वास है, कि 'दिन-हितकारी' स्वामी अवश्य हृदयमें वास करेंगे। अब कठिनता है तो केवल एक ही। वह यह, कि—

'रघुपति-भगति करब कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई॥'

तो क्या अभीतक भगवद्भक्तिकी प्राप्ति नहीं हुई? तनिक भी नहीं। यदि कहीं श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम ही लग जाता, तो रातदिन तीनों प्रकारके दुःख क्यों सहने पड़ते? जो कहीं श्रीराम-रस मीठा लगा होता, तो नव रस एवं छः रस नीरस और फीके पड़ जाते। पर ऐसा नहीं हुआ। क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा?

''कबहुँक हौं इहि रहनि रहौगो?
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपातें संत-सुभाव गहौंगो?
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर मन क्रम-बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, परगुन, औगुन न कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो॥''

कैसा सार्थक विमल वैराग्य है! कर्मयोगियोंके कामकी कैसी अमूल्य वस्तु है! 'देह-जनित चिंता' से छूटकर 'परहित-निरत' होना देखते ही बनता है। 'जगन्मिथ्या' पुकारनेवाले अकर्मण्य पुरुषोंको इस पदसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस पदको गीतामें कथित निष्काम कर्म-योगका खुलासा समझना चाहिए। इस कर्मयोग और वैराग्यके साथ ही सरस भगवद्भक्तिका उपदेश सोनेमें सुगंधका काम कर रहा है। जगत्से नाता ही जोड़ना है तो रामके नातेसे ही जोड़ना उचित होगा, क्योंकि—

'नाते नेह रामके मनियत पूज्य सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥'

बिना इस राम-नातेके सारे नाते फिजूल हैं। यश, उच्च वंश, सत्कर्म, ऐश्वर्य, शील और लावण्य, बिना भगवद्भक्तिके, ऐसे हैं जैसे बिना नमककी सागभाजी!

जीवनकी सार्थकता समझकर गोसाईंजीने अटल निश्चय कर लिया कि "सर्वधर्मान्परित्यज्य" अनन्य भावसे प्रभुकी शरणमें जाना ही जीव के लिए श्रेयस्कर है। प्रभुको छोड़कर उन्हें अन्यत्र ठौर-ठिकाना ही कहाँ है? अस्तु, निश्शंक हो आप स्वामीके सम्मुख जानेको तैयार हुए। विनय करनेका ढंग सोचने लगे। कुछ समझमें न आया, बोले—

'कौन जतन बिनती करिये?
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये॥'

पर ऐसा कईबार हो चुका। आशा-निराशाकी यह लड़ाई कुछ नई नहीं है। सन्मार्गपर जाना हँसी-खेल नहीं है। कभी अपने कर्मोंपर सोचने-से हृदय बैठ जाता है, तो कभी स्वामीके शील-स्वभावपर ध्यान जानेसे ढाढ़स बँध जाता है गोसाईंजी इस पहेलीको खूब समझते थे। निराशा के ऊँचे पहाड़ उनके सामने आते अवश्य थे, पर वे भावानन्यता-रूपी टाँकीसे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। अस्तु, बिनती तो करनी ही होगी। बिना रोये माँ भी बालकको दूध नहीं पिलाती। और फिर माँ-बापके आगे शर्म ही क्या?

गोसाइँजीने पहले मनको ही रास्तेपर लाना ठीक समझा। बार-बार समझानेपर भी उसकी सहज टेव न गई। कृपालु कोशलेश-सरीखे स्वामीसे उसने लगन न लगायी! आश्चर्य है!

अरे मन! समय निकल जानेपर तेरे हाथमें एक पछतावा ही रह जायगा। सहस्रबाहु और रावण जैसे—प्रतापी राजे भी काल बलीसे अछूते नहीं बचे, फिर तेरी गिनती ही किसमें है? विषय-वासना छोड़ दे और भगवान्‌के चरणोंमें चित्त लगाः—

'अब नाथहिं अनुरागु जागु जड, त्यागु दुरासा जीते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घीतें॥'

यह शरीर पानीका बुलबुला है। मिटते देर न लगेगी। खाना, पीना, सोना कौन नहीं जानता? पर इसी-दिन-चर्यामें नर-देहकी सार्थकता नहीं है—

'काज कहा नर-तनु धरि सार्‌यो?
पर-उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न बिचार्‌यो।'

सारांश, मनसा, वाचा, कर्मणा हरिभजन और परोपकार किया कर, इसीमें तेरा कल्याण है। भजने-योग्य एक श्रीरघुनाथजी ही हैं। उनके समान सेव्य ठाकुर तुझे त्रिलोक और त्रिकालमें भी न मिलेगा। उनके चरणारविन्दोंकी झलक पानेको विरहाकुल हो जा। प्रेमार्द्र होकर तनिक इस पदका गान तो कर—

'कबहिं देखाइहौ हरि चरन।
समन सकल कलेस कलिमल, सकल-मंगल-करन॥
× × × × ×
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन।
दरस-आस पियास तुलसीदास चाहत मरन॥'

इस विरहासक्तिमें अपनेको लीन कर दे। इस उत्कण्ठामें आपेको भुला दे।

किस पदके सम्बन्धमें क्या लिखा जाय कुछ समझमें ही नहीं आता। बुद्धि चक्कर खाने लगती है। जब प्रेमाधीरता, अनन्यता और अनुरक्तिकी ओर चित्त जाता है, तो अवाक् रह जाना पड़ता है। दस-बीस टूटे-फूटे शब्दोंमें इतने ऊँचे सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन कैसे किया जा सकता है! जो हो, इतना विश्वास तो अवश्य है, कि समय व्यर्थ नहीं जा रहा है। अस्तु।

अन्ततोगत्वा गोसाईंजी श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिमें अपने अनन्य भावको अनेक रीतियोंसे दृढ़ कर रहे हैं। दूसरे की ओर आपका चित्त जाता ही नहीं—

'करम उपासन ज्ञान वेद-मत सो सब भाँति खरो।
मोहिं तो सावन के अन्धहिं ज्यों सूझत रंग हरो॥'

कहते हैं, जो मैं यह कहूँ, कि मैं रामजीको छोड़कर किसी औरका हूँ तो मेरी यह जीभ गल जाय। मुझे भला अङ्गीकार करेगा ही कौन? अकारण हितू संसारमें कहाँ मिलेगा? मुझ निठल्लेसे किसका काम निकलेगा? यदि कहो, तुझे चाहिए क्या? अर्थ, धर्म, काम, मोक्षके लिए इतनी उछल-कूद कर रहा है क्या? नहीं, मुझे यह कुछ न चाहिए। फिर क्या? सुनोः—

'खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहों।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परम पदहुँ दुख दहिहौं॥'

बलिहारी! क्या खूब माँगा! यह इच्छा अनन्य भक्त ही करते हैं। वे खग, मृग, तरु सब कुछ होनेको तैयार हैं, किन्तु भगवत्-सम्बन्धसे।

अनेक दुर्घट घाटियाँ लाँघते हुए गोसाईंजी अपने कृपालु प्रभुसे सिद्धान्त रूपेण निवेदन करने लगे, कि अब मुझे अधिक न भटकाओ। अन्तमें जब अंगीकार करना पड़ेगाही, तो अभीसे क्यों नहीं अपना लेते? मैंने भलीभाँति संसार छान डाला है। जितने मालिक मिले, वे

थोड़ी-सी बातमें खुश हो जाते हैं और थोड़ेमें ही नाराज़। मेरा कहीं भी निबाह नहीं हुआ, मुझे जो कहीं कोई स्वामी मिल जाता, तो मैं तुम्हें इतना कष्ट न देता। पर क्या करूँ, लाचार हूँ। मैं तुम्हें रिझा तो सकता नहीं। मुझमें रिझाने-लायक गुण ही क्या हैं। हाँ, एक निरुपमा निर्लज्जता निस्सन्देह है—

'खीझिबे लायक करतब कोटि-कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई॥'

क्षमा करना—मैं तुम्हारे साथ ढिठाई कर रहा हूँ। काम तो मैंने खुद बिगाड़ा है और दोष मढ़ता हूँ तुम्हारे माथे! मेरे समान मूर्ख और अभागा दूसरा कहीं मिलनेका नहीं। अरे, जिससे प्रीति जोड़नेको योगीजन भी उपाय करते हैं, उससे जैसे-तैसे जो प्रीति जुड़ गई थी, उसे भी मैं तोड़ बैठा हूँ! मैं बड़ा नीच और कृतघ्न हूँ। इसलिए—

'रखिये नीके सुधारि नीच को डारिये मारि,
दुहुँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची, रेख बारबार खाँची,
ढील किये नाम-महिमा की नाव बोरिहौं॥'

यदि कहो, कि जा, हमने तुझे अपना लिया, तो मैं यों माननेवाला नहीं। अंगीकृत सेवकके लक्षण ही कुछ और होते हैं। नाथ! उसकी दशा ही विलक्षण हो जाती है—

'तुम अपनायो, तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाउ विषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहूँ बिधि चातक ज्यों एक टेक ते नहिं टरिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि-मरिहै।
हानि लाभ दुख-सुख सबै समचित हित अनहित कलि कुचाल परिहरिहै॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै नीर नैननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनँद उमँगि उर भरिहै॥'

सो यह दशा अभी कहाँ प्राप्त हुई ? मुझे भूल-भूलैयामें न डालो। मेरे नाथ ! मैं जैसा भी हूँ, हूँ तो आखिर तुम्हारा किंकर। मुझे छोड़ो मत। हे शरणागत-पाल ! अपने विरदकी लाज रख लो। मेरी ओरसे आँख न फेरो। तुम्हारे त्याग देने पर मैं कहींका न रहूँगा। मेरा भला तुम्हारे ही हाथसे होगा। जैसे-तैसे अंगीकार करही लो। अब संसारका दारुण दुःख सहा नहीं जाता—

"तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील, अब जीवन-अवधि अति नेरे।'

शरणकी भिक्षा माँगते-माँगते गोसाईंजी 'पत्रिका' लिखना समाप्त करते हैं। अब लिखनेको रहा ही क्या ? अस्तु। चि ी—लिफाफेमें बन्द किये बिना ही—भेज दी गई। खुली चि ी दरबारमें पहुँची। मुसाहिब पहलेसे ही सधे-सधाये थे। लक्ष्मणजीने सेवामें पेश कर दी। श्रीरघुनाथजीने पत्रिका पढ़कर तुलसीदासके संबंधमें पूछा, कि क्या यह सब बात ठीक है ? एक स्वरसे सभी बोल उठे, कि हाँ हाँ, हमलोग उसकी रीति-पद्धति खूब जानते हैं। दुष्ट कलिने निस्संदेह उसे असह्य यातना दी है। फिर भी उसने आपके प्रति अपनी भावानन्यता नहीं छोड़ी। यह सुनकर भगवान् मुसकराये और बोले—ठीक है, मुझे भी उसकी खबर है—

'बिहँसि राम कह्यो, सत्य है, सुधि मै हूँ लही है।'

बस, फिर क्या, काम बन गया—

"मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ-हाथ सही है।"

## सिद्धान्त

विनयपत्रिका भक्तिकाण्डका एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है, अनुराग महोदधिका एक दिव्य रत्न है। भक्तोंके सरस हृदयका तो यह ग्रन्थ जीवन-सर्वस्व है। भक्ति-पथकी सांगोपांग पद्धति इसमें दिखाई गई है। इस प्रेमरत्न-मंजूषाके भीतर सुरसिक जौहरी कैसे-कैसे विलक्षण रत्न पा सकता है यह कहनेकी बात नहीं, अनुभव करनेकी है। अब हम यहाँ,

संक्षेपमें, दिखाना चाहते हैं, कि इस ग्रन्थमें किस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। जब समग्र ग्रन्थ ही भक्ति-रस-परिलुप्त है। तब यह शेष नहीं रह जाता, कि इसमें कौन-सा सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। प्रत्यक्षरूपसे भक्ति-सिद्धान्त ही सर्वत्र प्रतिपन्न मिलेगा। किन्तु किसी-किसी सज्जनके मनमें यह प्रश्न उठा है, और प्रायः स्वभावतः ही उठता है कि गोसाईं तुलसीदासजी किस सिद्धान्तके प्रतिपोषक थे। किसीके मतसे वे विशिष्टाद्वैतवादी और किसीकी सम्मतिसे अद्वैतवादी सिद्ध किये गये हैं। यह विषय दार्शनिक है। अतः सहजही सुलझनेका नहीं। फिर भी हम अपनी तुच्छ मतिके अनुसार इस उलझनेको सुलझानेकी यथा-साध्य चेष्टा करेंगे।

पहले हम इसपर विचार करेंगे, कि गोसाईंजीका किस सम्प्रदायसे संबंध था। हम तो यही मानते हैं और हमारे माननेका कारण है कि वे श्रीरामानन्दी सम्प्रदायके श्रीवैष्णव थे। किसी-किसी विद्वान्ने उन्हें "स्मार्त वैष्णव" लिखा है और इसका कारण यह बतलाया है, कि जिस दिन 'रामचरितमानस' के लिखनेका श्रीगणेश किया गया उस दिन स्मार्त लोगोंकी रामनवमी थी, वैष्णवोंकी नहीं। यह दलील कुछ बहुत ऊँची नहीं कही जा सकती। प्रायः स्मार्तों और वैष्णवो दोनोंको ही रामनवमी, एकादशी आदि तिथियोंमें कभी-कभी भ्रम हो जाया करता है। संभव है, यह बात गोसाईंजीके संबंधमें हुई हो। रहा स्मार्त वैष्णवत्व, सो स्मार्त वैष्णव शब्द तो कुछ प्रचलित भी नहीं है। स्मृतियों-के माननेवाले विष्णु-भक्तोंको "भागवत" कहते हैं, न कि स्मार्त वैष्णव। सो गोसाईंजी भागवत अथवा स्मार्त वैष्णव नहीं थे, वरन् सच्चे श्रीवैष्णव थे।

यह तो इतिहास-प्रसिद्ध है, कि श्रीरामानुजाचार्यने शांकरवादका खण्डनकर भक्तिप्रधान श्रीसंप्रदायकी स्थापना की थी। आचारी वैष्णवों में कुछ संकीर्णता देखकर श्रीरामानन्दस्वामीने एक पृथक् ही अपना संप्रदाय चला दिया। इन्होंने श्रीरामनाम और राम-भक्तिको ही प्राधान्य

दिया। जाति-पाँतिका विचार एकदम तोड़ दिया। जुलाहे, चमार और कसाई भी इनके चेले हो गये। भक्ति-भागीरथी सुविस्तीर्ण-क्षेत्रमें होकर बहने लगी। नभोमंडल श्रीरामनामकी मधुर ध्वनिसे गूँज उठा। इसी संप्रदायमें स्वामी अग्रदासजी हुए, जिनकी आज्ञासे भक्ताग्रगण्य नाभाजीने भक्तमालकी रचना की। गोसाईं तुलसीदासजी भी इसी श्रीसंप्रदायके अनन्य वैष्णव थे। श्रीमच्छंकराचार्य का मायावाद उत्तरीय भारतमें ऐसा व्याप्त हो गया था, कि श्रीरामानुजाचार्य आदि उद्भट आचार्यों के होते हुए भी उसका समूल नाश नहीं हुआ। जगत्का मिथ्यात्व तो जनसाधारणने खूबही अपनाया। इधरके हमारे वैष्णवोंमें भी, किसी-न-किसी रूपमें 'जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त बना ही रहा। कबीरदासजीमे तो इसकी अत्यधिक मात्रा विद्यमान थी। गोसाईंजी भी इससे कैसे अछूते रह सकते थे? तात्पर्य यह कि, उन्होंने भी मायावादका अपनी रचनाओंमें यत्र-तत्र समावेश किया है। अब प्रश्न यह है, कि क्या वे मायावादको उसी रूपमें देखते थे जिस रूपमें कि शंकर-मतानुयायी? और क्या वे उनकी ही भाँति जीव-ब्रह्मैक्यको भी स्वीकार करते थे? इसमें हमें संदेह है। निःसंदेह उन्होंने कहीं-कहीं मायावादियों की तरह जगत्को असत्य माना है। उसे मृगजल, रज्जु-सर्प, रजत-सीप आदि कहकर भ्रमरूप बताया है। किन्तु उनके प्रयोजनमें अन्तर है। 'हरिशून्य जगत्' को ही उन्होंने इन सब विशेषणोंसे विभूषित किया है, 'हरिमय जगत्' को नहीं। विषयोपभोगमें लिप्त जीवको विरक्त बनानेके लिए संसारके मिथ्यात्वका निर्देश किया गया है, विषयोपरत एवं भगवदनुरक्त महाभागको नहीं। जो जीव स्वार्थको ही संसार समझते हैं, उनके लिए अवश्य ही गोसाईंजी-द्वारा 'जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है, किन्तु जो परार्थ एवं परमार्थमें जगत्की सत्ता स्वीकार करते हैं, उन निष्काम अनासक्त कर्मयोगियोंके लिए आपने संसारको 'जगत् सचाईसार' कहकर पुकारा है। गोसाईंजीका मायावाद हमें नैतिक जान पड़ता है, दार्शनिक नहीं। फिर जीव-ब्रह्मैक्यवादका तो हमें कहीं पता भी नहीं चलता। संभव है, उन्हें रूपांतरमें अद्वैतवाद प्रति-

पादित महावाक्योंमें विश्वास रहा हो, पर सिद्धान्तरूपसे तो उन्होंने विशिष्टाद्वैतवादको ही स्वीकार किया है। देखिए—

'ईस्वर-अस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
जो माया-बस भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाँई॥'

× × × × ×

'माया-बस्य जीव अभिमानी। ईस-बस्य माया गुन-खानी॥
परबस जीव, स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥'

(रामचरित मानस)

'हौ जड़ जीव ईस रघुराया। तुम मायापति, हौं बस माया॥'

'ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हित मेरो॥'

एक नहीं, अनेक उदाहरण इस भेदवाद पर दिये जा सकते हैं। पूर्वपक्षके रूपमें भले ही एकाध स्थल पर उन्होंने 'सोऽहमस्मि' पर दस पाँच पंक्तियाँ लिखी हों, पर उत्तर पक्षमें जीवब्रह्मैक्य पर उन्होंने एक भी शब्द नहीं लिखा। विनय-पत्रिका का कोई भी पद ले लीजिए। उसमें आपको सिवाय भेद-वादके कहीं भी 'अभेदत्व' देखनेका न मिलेगा। अद्वैतवादियोंकी भाँति उन्होंने कभी 'मोक्ष' की इच्छा नहीं की। उनकी हार्दिक लालसा तो सदा यही रहती थी, कि—

'तुलसिदास जाचक रुचि जानि दानि दीजै।
रामचंद्र चद्र तू चकोर मोहि कीजै॥'

× × × ×

'खेलिबेको खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहु सुख पैहौं, या बिनु परमपदहु दुख दहिहौं॥'

यदि सिद्धान्त-रूपसे वे जगत्को असत्य मानते होते तो 'खग, मृग, तरु' बननेकी कामना क्यों करते? पर हाँ, वे 'सिया-राम-मय' जगत्को ही सत्य मानते थे। इस नातेसे उन्हें नरक भी सत्य, सारमय और आनन्दप्रद

प्रतीत होता था। और, हरिशून्य मोक्ष भी असत्य, असार और दुःखमय देख पड़ता था। इसी प्रकार श्रीरामजानकीकी भक्तिके आगे ज्ञान, ध्यान और कर्मकांड-प्रतिपादित यज्ञोंको वे तुच्छ समझते थे। रामनामकी महत्ता और सर्वप्रधानतापर तो उनके प्रत्येक ग्रन्थमें अनेक पद्य मिलते हैं। उन्होंने अद्वैतवादियोंकी तरह भक्ति और सगुण उपासनाको केवल साधन ही नहीं माना, वरन्, साध्य भी माना है। वे परमहंस-अवस्थामें भी रामनाम-स्मरण और रामभक्तिको स्वीकार करते हैं। निर्गुण और अलख ब्रह्म उन्हें कुछ जँचता ही नहीं। देखिए, एक 'अलख-अलख' पुकारनेवाले साधुसे वह क्या कहते हैं—

'हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि ? रामनाम जपु नीच॥'

विनयपत्रिका में तो कई स्थलोंपर नीरस ज्ञान और कर्मको सरस प्रेम-परा भक्तिके आगे नीचा दिखाया है। एक बात विशेष ध्यान देनेकी है। जहाँ गोसाईंजीने, संसारको असत्य मानकर भ्रमका प्राबल्य दिखाया है, वहाँ ज्ञान और स्वयंसिद्ध पुरुषार्थका स्तवन नहीं किया गया है। वहाँ तो भ्रम-निराकरणके अर्थ सर्वत्र यही बात दोहरायी गई है, कि—

'तुलसिदास प्रभु मोह-सृंखला छूटिहि तुम्हरे छोरे।'
'तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम यह भरोस मन माही।'
'बिन तव कृपा दयालु दास हितु मोह न छूटै माया।' इत्यादि।

ऐसा क्यों कहा गया है ? क्योंकि "तुम मायापति, हौ बस माया।" अद्वैतवादियोंकी तरह उन्होंने केवल ज्ञान और योगपर कहीं भी जोर नहीं दिया। उन्होंने तो 'सावनके अन्धे' की तरह एक स्वरसे सदा सगुण उपासनाको ही प्रधानता दी है। ऐसे भक्त-शिरोमणि गोसाईं-तुलसीदासजीकी रचनाओंमें जीव-ब्रह्मैक्य-विषयक सिद्धान्तोंके खोजने-का प्रयास करना व्यर्थ सा है। हमारे सहृदयवर मित्र पण्डित राम-चन्द्रजी शुक्लने इस सम्बन्धमें जो लिखा है, उसे हम यहाँ अविकल

उद्धृत करते हैं—'अन्तमे, इस सम्बन्धमे इतना कह देना आवश्यक है, कि तुलसीदासजी भक्तिमार्गी थे, अतः उनकी वाणीमे भक्तिके गूढ रहस्यों को ढूँढना ही अधिक फलदायक होगा, ज्ञानमार्गके सिद्धान्तोको ढूँढ़ना नही।

[ तुलसी ग्रन्थावली, भाग ३, पृष्ठ १४६ ]

वास्तवमें बात बिल्कुल सच है। जो भक्ति सरोवरमें निमग्न रहना ही 'परमानन्द' समझते हैं, उन्हें जीव-ब्रह्मैक्यकी मरुभूमिमें लाकर बिठा देना कहाँ तक युक्तियुक्त होगा, समझमें नहीं आता। जो "जे मुनि ते पुनि आपुहिं आपुको ईस कहावत सिद्ध सयाने।" आदि वाक्य कहकर अद्वैतवादकी ओरसे असन्तोष प्रगट कर रहे हैं, उन्हें हठात् 'सोऽहंवादी, सिद्ध करना कहाँका न्याय है? जिनकी अपने स्वामीसे केवल यह याचना है, कि—

"राम, कबहुँ प्रिय लागिहौ; जैसे नीर मीन को ?"
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यो फनि को, हित ज्यों धन लोभलीन को ?

उन्हें 'जीवो ब्रह्मैबनापरः' माननेवालोंकी पंक्ति में ला घसीटना कहाँका पांण्डित्य है? जो ब्रह्म साक्षात्कार हो जानेपर भी, सिद्धावस्थामें भी, यह कामना करते हैं' कि—

"प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनन्द उमँगि उर भरिहै।"

उन्हें 'तत्त्वमसि' आदि वेदान्त-वाक्योंके रटनेवाले ज्ञानियोंकी कोटिमें लेना कहाँतक उचित है? विचार-स्वातंत्र्यके बलपर जिसे जो समझ पड़े सो कहे, पर हम तो उन्हें परमभक्त अनन्य वैष्णव ही कहेंगे। जिन्होंने विनय-पत्रिका और रामचरितमानस में भगवदैश्वर्य तथा गीतावली में भगवन्माधुर्यको पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है, उन गोसाईं तुलसीदास जीको हम अपनी क्षुद्रबुद्धिके अनुसार अनन्य रसिक वैष्णव ही कहेंगे। किसी-किसीके मतसे वे अनन्य वैष्णव इस कारणसे नहीं माने जा सकते, कि उन्होने अन्य देवी देवताओंका भी यशोगान किया है। उन्हो ने

सूरदासजीकी नाईं "हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो" न लिखकर "गाइय गनपति जगबन्दन" से मंगलाचरण किया है। अनन्यताका विशुद्ध अर्थ यदि समझमें आ जाय, तो यह प्रश्न ही न उठे। अनन्यभक्त अपने इष्ट-देवको सर्वत्र देखता है। पतिव्रता कुल-ललनाकी तरह उसे अपना एक आराध्य प्रियतम ही जहाँ-तहाँ दृष्टिमें आता है। वह गणेश, शिव, देवी आदिको भी अपने प्रियतमके ही भिन्न-भिन्न रूपमें देखता है। इन देवी देवताओंसे यदि वह कुछ माँगता है तो केवल यही, कि मुझे मेरे आराध्य प्रियतमके चरणोंमें अनन्य भक्ति दो। जैसे कुलकामिनी अपने सास, ससुर, देवर आदिकी सेवा केवल इसलिए करती है, कि वे सब उसकी पतिभक्तिके साधक हों, उसी प्रकार सच्चा अनन्य भक्त अपने इष्टदेवमें प्रेमपराभक्ति प्राप्त करनेके अर्थ ही अन्य देवी-देवताओंका स्तवन किया करता है। वह लोक-मर्यादाका उल्लंघन करना पसन्द नहीं करता। वह लोक-मर्यादाका पालन इसी अर्थसे करता है, कि जिससे जगन्नियन्ता परमात्मा उसकी भक्तिको स्वीकार कर उसपर और भी अधिक प्रसन्न हो। उसकी सर्वदेव-वन्दना इसी अर्थकी द्योतक है, कि—

'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'

गोसाईंजी चाहे किसी भी देवताकी स्तुति करें, पर अन्तमें माँगते तो यही हैं न, कि—

'माँगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।'
'देहु कामरिपु! रामचरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान।'
'देहि मां! मोहि पन प्रेम यह नेम निज राम घनस्याम तुलसी पपीहा।'

इत्यादि।

यह अनन्यता नहीं तो क्या है? निम्नलिखित पंक्तियोंमें उनकी अनन्यता और भी पुष्ट हो जाती है—

'हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जेहि दई।
सोई जानकीपति मधुर मूरति मोदमयि मंगलमई॥'

निःसन्देह उन्होंने सभी देवी-देवताओंकी वन्दना की है, पर सर्व-प्रधानता श्रीरघुनाथजीको ही दी है। यही तो उपासनाकाण्डका निगूढ़ रहस्य है, भक्तिवादका उत्कृष्ट सिद्धान्त है।

गोसाईंजीकी दृष्टिमें भक्तिके सच्चे अधिकारी विरले ही होते हैं। कहनेमें तो भक्ति सुगम है, किन्तु करनेमें महान् दुर्गम है। यद्यपि उन्होंने एक स्थानपर यह लिखा है, कि—

'रघुपति-भक्ति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भयहारी ॥'

पर वह स्वाभाविक सुलभ नहीं है। सुलभ हो सकती है। वैसे तो—

'रघुपति भक्ति करत कठिनाई।
कहत सुगम, करनी अपार, जाने सो जेहि बनि आई ॥'

भक्तिके सुलभ होनेके दो मार्ग दिखाये गये हैं—सत्संग और भग-वत्-शरण। भगवत्-शरण प्राप्त करनेके लिए विनय-पत्रिका में पचासों पद मिलते हैं। इन पदोंकी आलोचना लेखनी या वाणी द्वारा संभव नहीं। इन पदोंके पढ़ते समय इस बातका स्मरण ही नहीं रहता, कि मायावाद या ब्रह्मवाद किसे कहते हैं। अद्वैत या विशिष्टाद्वैत किस वस्तुका नाम है। वहाँ तो हमें एक अपार और अथाह प्रेमसागर दिखाई देता है, जिसमें भावुकताकी उत्तुङ्ग तरंगें उठती और गिरती हैं। संशय या संदेह का तो कहीं पता भी नहीं चलता। जहाँ देखो तहाँ यही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है, कि—

'भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो ॥
करम उपासन ग्यान वेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अन्धहि ज्यो सूझत रंग हरो ॥'

कैसा ध्रुव सिद्धान्त है! कैसी अनन्य भावना है! क्या अब भी किसीको कुछ सन्देह है? हमारी समझमें तो प्रेम-साम्राज्यमें सन्देहके लिए कहीं स्थान ही नहीं है। यहाँ मिथ्या और सत्यके समझने-समझाने-

के लिए अवकाश ही किसे है ! भक्तिवादियोंका 'आत्मबोध' इन सभी झगड़ोंसे अलग रहता है । एक स्थलपर लिखा है—

'कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥'

लीजिए, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत सभी भ्रमरूप हैं ! अब हम गोसाईंजीको किस सिद्धान्तका अनुयायी मानें ? बस, एकमात्र अनन्य प्रेम भक्ति-भावना और विधि-निषेधसे परे अनुरागरस-संप्रदायका अनुयायी । ऐसे परमभक्तका कथन सब सिद्धान्तोंका सारस्वरूप है । मत-मतान्तरकी कल्पनाओंमें, और पहुँचे हुए भक्तके अनुभव-सिद्ध कथनमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर होता है । गोसाईंजी परमभक्त थे । जो कुछ उन्होंने कहा है, वह सब उनका अनुभव-सिद्ध कथन है, अतः अवश्य माननीय है । फिर विनय-पत्रिका तो उनके सिद्धान्तोंकी सारस्वरूपा है । हमें तो इसमें समस्त शास्त्रों, उपनिषदों और सिद्धान्तोंका निचोड़ मिलता है । यदि हमें इस मंजूषामेंसे दिव्य सिद्धान्त-रत्नोंको खोज निकालना है, तो हमें यह काम विद्याभिमानी दार्शनिकके रूपमें नहीं, वरन् एक विनीत जिज्ञासुके रूपमें करना होगा, और तभी हम उसमें सफलता पा सकेंगे। कतिपय सिद्धान्त-रत्न, जो किसी विनीत जिज्ञासुके हाथ लग सकते हैं, यही होंगे—

१—राम-नाम नवनेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा ।
२—राम-चरन-अनुराग-नीर-बिनु अतिमल नास न पावै ।
३—मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।
४—रघुपति-भक्ति सन्तसङ्गति बिनु को भव-त्रास नसावै ?
५—तुलसिदास रघुबीर-बाँह-बल सदा निडर काहू न डरै ।
६—ते नर नररूप जीवत जग भव-भजन-पद-विमुख अभागी ।
७—राम-प्रेम-बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनुबारि ।
८—गरैगी जीह जो कहौ और को हौ ।
९—राम, कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को ?

धन्य हैं वे महाभाग, जिनके हृदयपर सदा इन दिव्य रत्नोंके हार पड़े रहते हैं! जिन्होंने इन सिद्धान्त-रत्नोंको अपना कण्ठाभरण बना लिया, वास्तवमें, उन्हींका जीवन सार्थक है। उनके लोक और परलोक दोनों ही सफल हैं।

हमने विनय-पत्रिका में वर्णित सिद्धान्तोंका अत्यन्त सूक्ष्म परिचय कराया है। इससे अधिक हम करही क्या सकते थे? विनय-पत्रिका के सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें कुछ लिखना हम-जैसे अल्पज्ञोंका काम नहीं है। स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टजीने लिखा है कि 'कहनेको तो यह भाषा है, पर कहीं-कहीं इसका भाव इतना कठिन है कि बड़े-बड़े वेदान्तियोंकी बुद्धि चकरा जाती है।' वास्तवमें, है भी यही बात। विनय पत्रिका के सिद्धान्तोंका समझ लेना हँसी खेल नहीं है। हमारा यह प्रयास नितान्त बाल-प्रयास ही समझिए।

## काव्य-चमत्कार

भक्त-श्रेष्ठ गोसाईं तुलसीदासजी एक प्रकृति-सिद्ध महाकवि थे। उनके ग्रन्थ इस बातके साक्षी हैं, कि वे साहित्य के कितने भारी पंडित थे। साहित्य-निर्माताओं और काव्याचार्यों ने साहित्य-शास्त्रके जितने कुछ लक्षण लिखे हैं, वे सभी उनके ग्रन्थोंमें विद्यमान हैं। ध्वनि, रस, अलंकार, भावव्यंजना सभी उनके प्रकांड पांडित्यका परिचय दे रहे हैं। रामचरितमानस तो साहित्यिक गुणोंका आगार ही है। विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली, बरवै रामायण प्रभृति ग्रन्थ भी इन काव्य-गुणोंसे रहित नहीं हैं। यहाँ हमें विनय-पत्रिका के काव्य-चमत्कारपर दस-पाँच पंक्तियाँ लिखनी हैं। काव्यका उत्कृष्ट चमत्कार इस ग्रन्थमें निस्सन्देह पाया जाता है, पर हमारी दृष्टि तो उसमें प्रतिपादित भक्ति-सिद्धान्तकी ही ओर प्रधानतया जाती है। हालहीमें बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग-द्वारा प्रकाशित विनय-पत्रिका हमने देखी है। इसके टीकाकार श्रीयुत पंडित महावीरप्रसादजी

मालवीय 'वीर कवि' हैं। उन्होंने रामचरितमानस की भी टीका इसी प्रेससे प्रकाशित करायी है। उन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि और अलंकारपर भी अच्छा प्रकाश डाला है। विनय-पत्रिका के प्रत्येक पदमें अलंकारोंका नाम-निर्देश करके उन्होंने अप्रत्यक्षरूपसे, उसे एक काव्यग्रन्थ माना है। हमारा विचार ऐसा नहीं हैं, हमारी धारणा तो यह है कि विनय-पत्रिका में भक्ति-सिद्धान्तोंका प्रतिपादन प्रधानतः और काव्य-चमत्कारका चित्रण गौणतः किया गया है। विनय-पत्रिका केशवदासकी रामचन्द्रिका नहीं है। हमारे कहनेका यह मतलब नहीं है, कि उसमें आलंकारिक गुणोंका अभाव है, पर उनका समावेश गौणरूपसे किया गया जान पड़ता है। मुख्य निरूपण तो भक्तिका ही पाया जाता है। साहित्यिक छटाका पूर्ण विकास देखना है तो आप रामचरितमानस, गीतावली और कवितावली देखिए।

यहाँ, हम विनय-पत्रिकाके अलंकारिक गुणोंकी ओर ध्यान न देकर केवल उक्ति-वैचित्र्यपर ही कुछ लिखेंगे। उक्ति-वैचित्र्य और अर्थ-गौरव का कैसा जीता-जागता वर्णन इस ग्रन्थमें मिलता है, यह देखते ही बनता है। ये गुण बिरले ही कविकी रचनामें मिलते हैं। केवल चटकीले शब्दों-की झिलमिलाहट और कृत्रिम अलंकारो की सजावट तो बहुतेरे कवियों-की कवितामें देखनेको मिलेगी, पर सच्चा स्वभाव-चित्रण, हृद्गत भावोंका विलक्षण रीतिसे व्यंजन और प्रसाद, ओज एवं रसोंका यथेष्ट समावेश प्रकृति-भावुक महाकवियोंकी कृतिमें ही दृष्टिगोचर होगा। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यंग्य आदिको छोड़कर हमारा ध्यान उक्ति वैचित्र्य और अर्थ-गौरवपर ही बारबार जा रहा है। प्रस्तुत प्रसंगमें हम इसी संबंधके दो-चार सुन्दर उदाहरण उपस्थित करते हैं। एक पदमें गोसाईंजी लिखते हैं—

"इहै जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो, न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम ?"

भावार्थ—यही सब सोच-विचारकर तुलसी आपका सेवक हुआ है। अब यह बतलाइए, कि आप इसे अलग गिनेंगे या जहाँ गरीब-गुलामोंका नाम आया है, वहाँ गिनेंगे ? यहाँ 'अलग' शब्दसे क्या

तात्पर्य है ? जब 'सेवकत्व' ही स्वीकार कर लिया और यह भी विश्वास हो गया, कि भगवान् हमें अंगीकार भी कर लेंगे, तब 'अलग' गिनना कहाँ रहा ? 'अलग' शब्दसे गोसाईंजीका कदाचित् यह भाव रहा होगा, कि कहीं मैं बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी और ऊँचे भक्तोंकी श्रेणीमें न बिठा दिया जाऊँ, तो बड़ी आफ़त हो। साधारणतया देखनेसे तो इसी श्रेणीमें बैठना आदरसूचक है, पर भगवान्का सान्निध्य चाहनेवाले एकान्त भक्तके लिए यह महान् मान कुछ अधिक मूल्य नहीं रखता। इन्द्र, कुबेर, ध्रुव आदि अलग बैठे-बैठे राजसी भोग भोगा करते हैं, पर उन्हें वह आनन्द कहाँ, जो गरीब निषाद, शबरी, हनुमान् और जटायुको है ? यों तो इतना ही कह देना काफ़ी था, कि 'यह जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो'—पर इतने से संतोष न होता। साफ़-साफ़ तय कर लेना ठीक होता है। कहीं 'अलग' की गणनामें न आजाऊँ, बड़प्पनकी पाग सरपर न बाँध दी जाय, इसी ख़्यालसे आपने स्पष्ट कह देना ठीक समझा। फिर भी शिष्टाचारके विरुद्ध योंही नहीं कह दिया, कि मैं तुम्हारा सेवक हो गया हूँ, मुझे अपने सेवकोंके अमुक विभागमें रख लो। 'कितनी शिष्टता, मिन्नत और गहराईके साथ निवेदन किया गया है—

'न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम !'

× × ×

गोसाईंजी महाराजको यह आशा थी, कि कभी-न-कभी तो स्वामी अवश्य ही सुधि लेंगे। इसी बल-भरोसेपर आप बरसों चुपचाप बैठे रहे। पर क्रूरकर्मा कलिके मारे नाको दम था, धीरज न रहा। अधीर हो कहने लगे।

'जद्यपि नाथ ! उचित न होत अस प्रभुसों करौं ढिठाई।<br>तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हार निठुराई॥'

साधारणतः तो इन पंक्तियोंमें कोई विशेष ध्यान देनेकी बात नहीं हैं, पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर यहाँ भी अर्थ-गांभीर्यकी सुंदर झलक दिखाई देती है।

हे नाथ ! आपके साथ ढिठाई करनी ठीक नहीं है, धर्मशास्त्रके प्रतिकूल है। पर करूँ क्या ? आर्त्त हूँ, जड़ हूँ, ढिठाई भी करनी पड़ेगी। कहाँतक चुप रहूँ ? आप कहेंगे, आखिर तू कहना क्या चाहता है, कैसी ढिठाई करेगा ? तो सुनिए, क्षमा कीजिएगा, क्योंकि मुझे भला-बुरा कहनेका विचार नहीं है। मुझे और कुछ नहीं कहना है, मैं केवल यही कहूँगा, कि 'आप निठुर हैं।' निठुर तो हैं आप, पर दुःख होता है मुझे। मैं अपने स्वामीको बिल्कुल निर्दोष देखना चाहता हूँ। मुझे लोकमें आपकी निठुराई सुनकर बड़ा दुःख होता है। अपना दुःख दूर करनेके लिए ही मैंने इतनी ढिठाई की है। क्याही विचित्र उक्ति है ! कहनेका कैसा निराला ढंग है ! ढिठाई और निठुराई में कैसी स्वाभाविक मिठास है ! इस ज़रासे इशारेमें गोसाईंजीने ग़ज़बका ज़ोर भर दिया है। यों भी तो कहा जा सकता था, कि आप बड़े निठुर हैं, निठुराई छोड़कर मुझे निहाल कर दीजिए। पर इसमें वह मज़ा कहाँ है, जो "तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हार निठुराई" में है। साधारण कथनमें और महाकविकी सूक्तिमें यही तो अन्तर है।

× × × ×

गोसाईंजी जब संसाररूपी सर्पके मारे बहुत भयभीत हुए, तब ज़ोर-ज़ोरसे अपने निठुर स्वामीको पुकारने लगे। उस समय उनके मुखसे भगवान्का क्या नाम निकला, उसे सुनिए—

'तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन 'उरग-रिपु-गामी।'

'उरगरिपु' गरुड़का नाम है, जिसका अर्थ सर्पोंका शत्रु है। हे गरुड़-गामी नाथ ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यहाँ भगवान्का किसी और नामसे स्मरण नहीं किया गया है। 'उरगरिपु-गामी' नाम लेनेसे क्या तात्पर्य है ? कदाचित् माधुर्य-भावकी रक्षा करनेके लिए आपने भगवान्के अन्य नामोंका स्मरण नहीं किया। आप अपने प्रभु रघुनाथजीको कष्ट नहीं देना चाहते। भव-व्यालको भक्षण कर जानेके लिए आप

'गरुड़-गामी' को बुलाते हैं। यदि गरुड़गामी विष्णुभगवान् न भी आ सकें, तो अपना वाहन ही भेज दें, वही इस सर्पका स्वाहा कर जायगा। जहाँ सूईसे काम निकाला जा सकता है, वहाँ तलवारका उपयोग क्यों किया जाय ? अतः 'उरग-रिपुगामी' को पुकारना ही ठीक होगा।

× × ×

जब गोसाईंजी प्रभु-कृपाकी प्रतीक्षा करते-करते हैरान हो गये, तब खिसिया कर भगवान्से कहने लगे, कि सुनो, अब मैं तुम्हारी सब पोल खोले देता हूँ—

'हौ अबलों करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते॥'

भावार्थ, अबतक तो मैं तुम्हारे करतबकी ओर टक लगाये देख रहा था, पर तुमने इधर आँख भी न उठाई ? बस, अब तुलसीदास तुम्हारे नामका एक पुतला बाँधेगा, क्योंकि उससे अब यह उपहास सहा नहीं जाता। यहाँ "पुतला बाँधना" और "उपहास" विशेष द्रष्टव्य शब्द हैं। जब नटोंको खेल दिखा चुकनेके बाद कुछ मिलता नहीं, तब वे कपड़ेका एक पुतला बनाकर बाँसपर लटकाये हुए कहते फिरते हैं, कि 'देखो यह सूम है।' उस पुतले पर धूल भी डालते हैं। सूम इस स्वाँगसे लज्जित होकर उनको कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं। "इसी प्रकार" गोसाईंजी कहते हैं, "मैं भी एक पुतला बनाकर लिये-लिये फिरूँगा। जब लोग पूछेंगे, कि यह क्या है, तो मैं कह दूँगा, कि यह सूम-शिरोमणि अयोध्याधिप महाराज रामचंद्रजी हैं। इससे भी तुम्हारी आँख क्या नीची न पड़ेगी ? पड़ेगी, और मारे शर्मके मुझे अपनातेही बनेगा। इसी तरह मुझसे यह परिहास सहन नहीं होता कि लोग तालियाँ पीट-पीटकर यह कहते फिरते हैं, कि देखो, यह तुलसीदास कैसा पाखंडी है ! बनने चला रामदास ! जो यह रामदासही होता, तो क्यों इस तरह मारा मारा फिरता ? यह मेरा उपहास नहीं, तुम्हारा है। मैं अपना परिहास सहन

कर लूँगा, पर तुम्हारा नहीं। सौ बातकी बात यह है कि मुझे अब शीघ्र ही अपनी शरणमें लो।" इन दो पंक्तियोंमें कितना अधिक चमत्कार भरा है! उक्तिवैचित्र्य और भाव-गांभीर्य देखते ही बनता है। क्या ये पंक्तियाँ अमर साहित्यकी सामग्री नहीं हैं?

× × × × × ×

देखिए, निम्नलिखित पंक्ति कितनी विलक्षण है—

"हौं सनाथ ह्वै हौं सही, तुमहुँ अनाथपति जो लघुतहि न भितैहौ* ।"

मैं सचमुच ही सनाथ हो जाऊँगा, और जो तुम मेरी लघुतासे न डरोगे, तो तुम भी 'अनाथपति'की पदवीसे विभूषित हो जाओगे। साधारण अर्थ इस पंक्तिका यही है। यह समझमें नहीं आया, कि 'लघुतासे डरना' कैसे संभव हो सकता है। भला, कोई लघुतासे डरता हुआ देखा गया है? कैसी विरोध-भरी बात है! नहीं, विरोध नहीं हैं, बात सीधी-सादी है। अमीर लोग प्रायः ग़रीबोंसे डरते रहते हैं। वे उनका सामना नहीं कर सकते, बात करना तो दूर है। उन्हें यही डर लगा रहता है, कि यदि हम छोटे लोगोंके पास खड़े होंगे तो हमारे बड़प्पनमें धब्बा लग जायगा। हमारी बराबरीके लोग हमें क्या कहेंगे? इससे वे छोटे लोगोंसे किनाराही काटते रहते हैं। गोसाईंजी कहते हैं, कि यदि तुम मेरी छोटाईसे न डरो, तो दो काम बन जायँ। मैं तो हो जाऊँ 'सनाथ' और तुम 'अनाथ-पति'! कहो, मंजूर है?

× × × × × ×

एक सुंदर पंक्ति और देख लीजिए—

'विनय-पत्रिका दीन की बाप! आपही बाँचो।'

भला, इसमें कौनसी गूढ़ोक्ति है? 'आपही बाँचो' में कुछ-न-कुछ चमत्कार तो अवश्य है। प्रायः राज-दरबारोंमें धाँधली हुआ करती है।

---

* इस पंक्ति पर सहृदयवर पंडित रामचंद्रजी शुक्लने भी 'तुलसीग्रन्थावली' (भाग ३, पृष्ठ २३३) में अपनी विवेचनापूर्ण टिप्पणी लिखी है।

संभव है, यह पत्रिका किसी मंत्रीके हाथमें पड़ जाय, और वह उसमें अपनी तरफसे कुछ-का-कुछ लिख दे, या पढ़ते समय कोई अंशही छोड़ जाय, या कहीं बढ़ाकर पढ़ दे, इसलिए 'आपही बाँचो', पिताजी, कृपाकर स्वयं पढ़िएगा। पढ़कर उस पर 'सही' कर दीजिएगा और फिर पंचोंसे पूछ लीजिएगा।

'हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पुछिअहि पाँचो।'

मैं यह नहीं कहता हूँ, कि आप दरबारके खिलाफ कोई कार्रवाई करें। पर आप पंचोंसे, मुसाहिबोंसे बेखटके पूछ सकते है, राय ले सकते हैं। पर 'सही' उनसे बिना पूछे ही कर दीजिएगा, भले ही इतनी सी बात क़ायदे के खिलाफ हो। यहाँ 'बाप' पद द्रष्टव्य है। गोसाईंजी 'यहाँ' पंचोंसे बिना पूछे ही स्वामीसे 'सही' लिखवालेना चाहते हैं, और स्वयं पढ़नेको भी कह रहे हैं। इसलिए यहाँ 'प्रभु, महाराज, देव' आदि संबोधन प्रयुक्त नहीं किये गये हैं, बाप शब्द लिखकर आप साधारण रीतिसे बात कर रहे हैं। बापसे कोई संकोच नहीं किया जाता है। सही कराने तक तो 'पिता पुत्र' का संबंध खूब सार्थक है। इसके आगे 'राजा-प्रजा' या 'स्वामी-सेवक' का संबंध आ जाता है, और यहीं "बहुरि पूछिअहि पाँचो" लिखा गया है। देखिए, कैसा अर्थ-गांभिर्य है! स्थान-संकीर्णता-वश हम अधिक उदाहरण नहीं दे सकते। काव्य सुधा-सागरमेंसे यहाँ हमने केवल दो-चारही बूँदोंका पाठकोंको पान कराया है। इससे तृप्ति होनेकी नहीं। साहित्य-रस-पिपासुओं को समस्त सागरका अवगाहन करना चाहिए। जो केवल इसके साहित्यक गुणोंपर ही मुग्ध होकर हो इसका अवगाहन करेगा, उसे भी अनेक दिव्यरत्न अनायास प्राप्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं।

विनय-पत्रिका में अलंकारों, भावों और रसोंका भी अभाव नहीं है। जिन्हें केवल काव्यके ही गुण ढूँढ़ने हैं, वे इन्हें प्रचुरतासे पा सकते है। व्याजस्तुति देखनी है तो 'बावरो रावरो नाह भवानी'[1] इत्यादि पद पढ़िए।

---

१-पद ५।

रूपकका आनंद लूटना है तो 'देखो देखो बन बन्यो आज उमाकंत'[१] 'सब सोच विमोचन चित्रकूट'[२]। आदि पदोंका अनुशीलन कीजिए। उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंकी छटा देखनी है तो 'जानकीनाथ रघुनाथ रागादि तम-तरनि तारुन्य तनु तेजधामं'[३] 'सकल सुखकंद आनंद-वन पुन्यकृत विन्दु-माधव द्वन्द्व विपतिहारी'[४] 'इहै परमफल परम बड़ाई'[५] प्रभृति पदोंका पारायण कीजिए। रूपकका सौन्दर्य आपको २२,५८ और ५६ पदमें मिलेगा। यों तो प्रत्येक पदमें कोई-न-कोई अलंकार दिखाई देगा। हाँ, यमक और श्लेषके उपासकोंके मनोविनोद की सामग्री इस ग्रन्थमे न मिलेगी। और, हमारी सम्मतिमे ये अलंकार कविताके सौन्दर्यके लिए आवश्यक भी नहीं हैं। प्रकृति-सुन्दरी कविता कामिनीके लिए नक़ली आभूषणोंकी ज़रूरत ही क्या है? इस दिव्य काव्य-रत्नके पारखी होनेके अधिकारी वे सज्जन नहीं हो सकते जो केवल शृङ्गाररसके विभाव, अनुभाव और संचारीपरही लट्टू रहा करते हैं।

## भाषा

यह तो एक प्रकारसे सिद्ध ही है, कि भाषापर गोसाईंजीका पूरा अधिकार था। वे भाषाके पीछे-पीछे नहीं चलते थे, वरन् भाषा उनका अनुसरण किया करती थी। शब्द-शास्त्रके पंडित रामचरितमानस और विनय-पत्रिका में उनकी भाषा-विज्ञताका पता पा सकते हैं! उन्होंने जन-साधारण और विज्ञ-समाज दोनोंके ही उपयुक्त भाषा लिखी है। व्यर्थके शब्द ठूँसना तो वे जानते ही न थे। मुहावरोंका मेल, स्वाभाविक अनुप्रासोंकी छटा, वाक्य-विन्यास-पटुता, उक्ति-सौन्दर्य, ओज, प्रसाद और सुसंघटित शैली यह सब बातें उनकी भाषामें स्वभावतया ही पाई जाती हैं। उन्होने अवधी, बुंदेलखंडी, संस्कृत और ब्रजभाषाका ऐसा सुंदर संमिश्रण किया है, कि देखतेही बनता है। विनय-पत्रिका की भाषा सजीव-

---

१-पद १४; २-पद २३; ३-पद ५१; ४-पद ६१; ५-पद ६२।

भाषाकी एक उत्कृष्ट धारा कही जा सकती है। आदिके कतिपय पदोंकी भाषा निस्सन्देह क्लिष्ट है, पर उसकी क्लिष्टता केशव-जैसे कवियोंकी कृत्रिम क्लिष्टताकी भाँति दुर्बोध नहीं है। इन पदोंमें ओजके बाहुल्यके साथ-ही-साथ प्रसादका भी प्राचुर्य देखनेको मिलता है। कहीं-कहीं पर तो कादम्बरीके पढ़नेका स्मरण आजाता है। प्रत्येक शब्द सार्थक रखा गया है। भावके अनुकूल ही वहाँ भाषाका विकास पाया जाता है। वैसे तो समस्त विनय-पत्रिका पढ़नेसे ही भाषाकी उत्कृष्टता एवं मधुरताका अनुभव हागा, पर दस-पाँच उदाहरणोंसे भी यत्किंचित् रसास्वादन आपको मिल जायगा। देखिए—

( १ ) ''भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग॥
कर नवल बकुल पल्लव रसाल। श्रीफल कुच कंचुकि लताजाल॥

( २ ) जयति लसदंजनादितिज कपि-केसरी-कस्यप-प्रभव जगदार्त्ति हर्त्ता।
लोक लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर, हँस हनुमान कल्यान-कर्त्ता।

( ३ ) तेरे देखत सिंहके सिसु मेढ़क लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुन गन कीले॥

( ४ ) तेन तप्तं हुत दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्म-जालं।
येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं॥

( ५ ) कुलिस कुंद कुडमल दामिनि दुति दशनन देखि लजाई।
नासा नैन कपोल ललित स्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई॥
कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर, तिलक कहौं समुझाई।
अलप तडित जुग रेख इंदु महँ, रहि तजि चंचलताई॥

( ६ ) पायो नाम चारु चिंतामनि उर कर ते न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित-कंचनहिं कसैहौं॥

( ७ ) चंदन चंद्रबदनि भूषन पट ज्यौं यह पाँवर परस्यो।
त्यौं रघुपति-पद-पदुम-परसको तन पातकी न तरस्यो॥

( ८ ) जेहि कर-कमल कठोर संभु धनु भंजि जनक संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यौं परम प्रीति केवट भेट्यो॥

( ९ ) दीनबंधु ! दीनता दरिद्र दाह दोष दुख दारुन दुसह दर द॰पहरन ।
(१०) गल कबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरिता-सी ।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघट घटा-सी ।''

भाषाका क्या ही सुन्दर धारा-प्रवाह है ! प्रसाद और माधुर्य तो पद पदमें झलक रहा है । क्या मजाल कि कहीं तनिक भी शैथिल्य आ जाय । किस भावको किस भाषामें अंकित करना चाहिए, इसे गोसाईं जी भलीभाँति जानते थे । वे ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्तोंको भी, कबीरदास-जीकी तरह, जनसाधारणकी भाषामें लिख सकते थे । निम्नलिखित पद देखिए—

''राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिंत भव-बेगार महँ परिहौ, छूटत अति कठिनाई रे ।।
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकौन खटोला रे ।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मद मोल बिनु डोला रे ।।
विषम कहार मार मदमाते चलहि न पाऊँ बटोरा रे ।
मंद विलद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ।।
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं-ठाउँ बझाऊ रे ।
जस-जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ।।
मारग अगम सग नहिं सबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ।।''

वेदान्तके इतने उच्च सिद्धान्तको बोलचालकी ग्रामीण भाषामें अंकित कर देना गोसाईंजी-सरीखे प्रकृतिसिद्ध महाकवियोंका ही काम है ।

मुहावरोंका तो स्थान-स्थानपर ऐसा सुंदर समावेश किया गया है, कि देखते ही बनता है । सारांश यह, कि गोसाईंजीकी भाषामें उनकी छाप लगी है । उसे हम 'तुलसीदासी' भाषा कह सकते हैं । प्रत्येक शब्द सजीव, ज़ोरदार और प्रभावोत्पादक है शैली विलक्षण, मधुर और हृदयग्राहिणी है ।

विनय-पत्रिका में प्रान्तीय शब्दों और मुहावरोंके अतिरिक्त अरबी-

फ़ारसीके भी अनेक शब्द मिलते हैं, जैसे—"ग़रीब, सर्दी, तकिया, लायक़, गुलाम, फ़हम, मुक़ाम, ग़नी, दिवान, साहिब, सई, ख़ास, इयार, निशान, निवाज़, दिरमानी, दाद, पील, गुल, शतरञ्ज, वसीला, शरम, कूच, बाजीगर, जहान, हाल, ख़लल, मनशा, मिसकीन, बुलंद, जार" आदि। इन शब्दोंके आ जानेसे भाषा विकृत नहीं हुई है, प्रत्युत उसमें और भी अधिक खूबसूरती आगई है, क्योंकि ये शब्द देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप ही प्रयुक्त किये गये हैं। जो अपनी रचनामें देश, काल, परिस्थितिका विचार नहीं रखता, वह कवि कहलानेका दावा नहीं कर सकता। गोसाईंजीको जहाँ जिस भाषाके शब्दोंकी आवश्यकता जान पड़ी, वहाँ उनको रखा। कतर-छाँट भी की, तो अपनी छाप लगाकर। मतलब यह, कि उन्होंने भाषापर अपना पूर्ण अधिकार सिद्ध कर दिखाया।

## संगीत

'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायति तत्र तिष्ठामि नारद !'

भगवान् नारदसे कहते हैं, कि 'जहाँ मेरे भक्त प्रेमपूर्वक मेरा कीर्तन करते हैं, वहीं मैं निवास करता हूँ।' संगीतका अमोघ प्रभाव किसीसे छिपा नहीं है। मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी गान-कलापर मंत्रमुग्धवत् हो जाते हैं। जिन्हें काला अक्षर भैंस बराबर था, जो योग किसे कहते हैं यह भी नहीं जानते थे, वे भी प्रेमोन्मत्त होकर भगवद्गुण गाथा गाते हुए संसार-सागरसे अनायास पार हो गये। 'सूर सगुन-लीलापद गावै' ऐसी प्रतिज्ञा कर सूरसागर महाकाव्यके रचयिता सूरदासजीने भगवत्सान्निध्य प्राप्त किया। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने तो 'श्रीहरिकीर्तन' को ही कलिमें सर्वमोक्ष-साधनोंमें प्राधान्य दिया है। इसमें सन्देह नहीं, कि संगीत-कला भगवद्विभूतियोंमें अत्युच्च स्थान पाने योग्य है। यही कारण

है, कि हमारे यहाँ बड़े-बड़े महात्माओं और कवियोने लाखो पद बना-बनाकर संगीत-स्रोतके प्रवाहमें यथेष्ट योग दिया है। महात्मा तुलसीदास-कृत विनय-पत्रिका भी संगीत सौन्दर्यका एक उत्कृष्ट आदर्श है। यदि इसे वे ऐसे छन्दोंमें रचते, जो संगीत-संगत नहीं है, तो वे अपने हृदयके इतने मनोरम और सच्चे भाव कदाचित् व्यञ्जित न कर सकते, और जनसाधारणमें उन पद्योंका इतना प्रचुर प्रचार भी न होता। क्योंकि पंडित-मंडली चाहे न भी अपनावे, पर साधारण जनता गानेकी चीजें बड़े चावसे तुरंत कंठस्थ कर लेती है। आज भी हम प्रायः देहातोंमें सूरदास और तुलसीदासके भजन गाते हुए लोगोंको देखते हैं! कबीरदासके भजनोका तो सर्वत्र साम्राज्य ही है। यही बात मीराबाईके भजनोंकी भी है। तात्पर्य यह, कि भजनोका प्रचार अन्य छन्दोकी अपेक्षा अधिक होता है। रामचरितमानस का भी इसी गानेकी बदौलत जनसाधारणमें इतना अधिक प्रचार हुआ है।

विनय-पत्रिका में जितने पद हैं, वे सभी गाने योग्य हैं। वे पद ऊँचे रागोमे गाये जाते हैं। कौन पद किस राग-रागिनीमें गाया जा सकता है, इसका भी पूरा विचार रक्खा गया है। स्वर-ताल समझानेवाले सज्जन ही विनय-पत्रिका के पदोंकी खूबी समझ सकते हैं। इन पदोकी रचनासे भलीभाँति पता चलता है, कि गोसाईंजी संगीत-कलाके कितने भारी पंडित थे। जो स्वयं सफल गायक होता है, वही संगीत-संगत छन्दोंकी रचना करनेमें कृतकार्य हो सकता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर यह भी पता चलता है, कि जिस रागके उपयुक्त जो पद रचा गया है, उसका भाव भी उसी रागके अनुरूप है। कहीं-कहींपर इन पदोमें 'यतिभंग'-दोष मिलता है, पर गाते समय यह दोष तनिक भी नहीं खटकता। हम तो यह भी कहेंगे, कि यदि 'यतिभंग'-दोष दूर करनेकी चेष्टा की जायगी तो साहित्यिक सौन्दर्यके साथ ही संगीत-सौन्दर्य भी नष्ट हो जायगा। अच्छा हो, यदि इन पदोंका पिंगलशास्त्रवेत्ता पारखी संगीतकलाका भी

पूर्ण मर्मज्ञ हो। हमने प्रायः प्राचीन महात्माओंकी बानियोंमें पिंगल-विशारदोंको दोष निकालते देखा है। यदि ये सज्जन संगीतके पंडित हों, तो उन्हें उन बानियोंमें एक भी छन्द-दोष दिखाई न दे। क्योंकि उनकी रचना केवल पिंगलके नियमोंपर ही नहीं, किन्तु 'स्वर-ताल' के अनुरूप हुई है।

धन्य है उन परम भाग्यवानोंको, जो विनयपत्रिका—जैसे दिव्य ग्रन्थोंका गान करते हुए हरि-कीर्तन किया करते है! सत्यही कहा है—

'हरि-पद-प्रीति न होय, बिन हरि-गुन गाये-सुन।
भव ते छुटत न कोय, बिना प्रीति हरि पद भये॥'

## टीका-टिप्पणी

विनय-पत्रिका पर कई उत्तमोत्तम टीकाएँ मिलती हैं। पाँच-छः टीकाएँ तो हमने स्वयं देखी हैं। बाबा रामचरणदासजी, भक्तवर बैजनाथजी, महात्मा हरिहरप्रसादजी प्रभृति महात्माओंकी टीकाएँ बड़ी ही भाव-पूर्ण और प्रामाणिक हैं। इन टीकाओंकी भाषा बैसवाड़ी और ब्रजभाषा मिश्रित है। वर्त्तमानकालमें इनके समझनेवाले बहुत थोड़े लोग मिलेंगे। स्वर्गीय पंडित रामेश्वरभट्टजीकी सरला टीका आजकलके लिए अधिक उपयुक्तप्रमाणित हुई है। भट्टजीका परिश्रम सराहनीय है। श्रीयुत् पण्डित सूर्यदीनजी शुक्लकी भी टीका देखने योग्य है। साहित्य-मर्मज्ञ लाला भगवानदीन जीकी पादटिप्पणियाँ भी मार्केकी हुई हैं*। फिर भी विनय-पत्रिका की ओर टीकाकारोंका अभी उतना ध्यान नहीं गया, जितना कि रामचरितमानस की ओर। इसका कारण कुछ तो ग्रन्थकी क्लिष्टता हो सकती है, और कुछ प्रचाराधिक्यका अभाव। किन्तु हमे यह देखकर बड़ा आनन्द हो रहा है, कि ऐसे-ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थोंका अब धीरे-धीरे प्रचार बढ़ता जा रहा है। वेलवेडियर प्रेससे पण्डित महावीरप्रसादजी मालवीय-

---

* इधर हालमे श्रीयुतलालाजीकी एक सुन्दर सटीक विनय-पत्रिका प्रकाशित हुई है।

लिखित एक सुन्दर टीका प्रकाशित हुई है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी ओर से एक शुद्ध मूल संस्करण प्रकाशित हुआ है। यह तुलसी-साहित्य के लिए मंगलाशाके उदयकी सूचना नहीं तो क्या है?

उपर्युक्त टीकाओंमे कोई-न-कोई बात समालोच्य अवश्य मिलेगी। किसीपर साम्प्रदायिक पक्षपातकी मोहर लगी है, तो किसीमें अर्थ—भ्रान्ति खटकती है। किसीमें केवल अलंकारोंकी ही छटा दिखायी पड़ती है। किसी-न-किसी अंशमें अर्थभ्रान्तिका हो जाना तो सम्भव ही है। सम्पूर्णतः निर्दोष टीका न तो अभीतक बनी है और न बन सकेगी, क्योंकि ग्रन्थकारका-सा हृदय पाना हमें तो असम्भव दिखायी देता है। नितान्त निर्दोष टीका तो वही लिख सकेगा, जिसका हृदय ग्रन्थकारके हृदयके समान निर्मल और भावुक होगा। सो असम्भव है। अस्तु! यहाँ हम टीकाकारोंकी दो-चार बातोंका, संक्षेपमें, उल्लेख करना चाहते हैं। भक्तवर बैजनाथजीकी टीका हमें सर्वश्रेष्ठ टीका जँची है। उसे देखनेसे उनके अगाध पांडित्यका पता चलता है। उनकी भावुकता भी उसमें खूब है। यह सब होनेपर भी कहीं-कहीं पर उन्होंने सांप्रदायिक पक्षपात किया है, जो कदाचित् टीकाकारके लिए उचित नहीं है। २१४ वें पदकी टीका लिखते हुए आपने पदमें प्रतिपादित श्रीकृष्ण-भावको गौण मानकर श्रीराम-भावको ही प्रधानता प्रदान की है। इस प्रसङ्गमे आपको खींच-तान भी खूब करनी पड़ी है। पदके देखनेसे स्पष्ट हो जाता है, कि गोसाईंजीका इस पदको बनाते समय ऐसा भाव कदापि न रहा होगा। हम यह नहीं कहते, कि बैजनाथजीने ऐसा अर्थ संकीर्णबुद्धि-वश किया है, या वे राम-कृष्णमें कोई वास्तविक भेद मानते थे। पर हाँ, वे अनन्य रामभक्त थे। प्रेमावेशमें, सम्भव है, उनसे ऐसा हो गया हो। किन्तु टीकाकारके लिए ऐसी बातें कुछ खटकती-सी हैं। इसी भाँति और भी दो-एक स्थलोंपर अर्थकी खींचा तानी दिखायी पड़ती है। स्वर्गीय पण्डित रामेश्वर भट्टजीने भी बैजनाथजीका अनुसरण करते हुए कहीं-कहींपर कुछ खींच-तान की है। पण्डित महावीरप्रसादजी मालवीयने जो

टीका लिखी है, उसमें अलंकार-ही-अलंकार भर दिये गये हैं! अच्छा होता, यदि मालवीयजी अलंकारोंके चक्करमें न पड़कर सैद्धान्तिक टिप्पणियाँ लिखते, अर्थगांभीर्य दिखाते और भावोंका यथेष्ट चित्रण करते। अलंकारों और काव्यचमत्कारोंपर ही यदि प्रकाश डालना उपयुक्त होता, तो लाला भगवानदीन-सरीखे काव्य-मर्मज्ञ अबतक यह काम कर चुके होते। पर वे यह समझते हैं, कि विनय-पत्रिका पर टीका-टिप्पणी लिखते समय किस उद्देश्यकी पूर्ति करनी आवश्यक है। यदि हम बिहारी-सतसई में दार्शनिक रहस्य और कबीरबीजक में विभाव और संचारीभाव दिखानेकी चेष्टा करें, तो यह बुद्धिमत्ताका काम न कहा जायगा। इसलिए हमें यह काम बहुत ही सोच-विचारकर करना चाहिये। इन सब बातोंके लिखनेका यह तात्पर्य नहीं है, कि मेरी टीका और टीकाओंसे श्रेष्ठ है और उसमें कोई दोष नहीं है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है, कि सबसे अधिक दोषयुक्त मेरी ही टीका है। मेरी टीकाकी कई भ्रान्तियाँ तो स्पष्ट हैं जिन्हें मैं निःसंकोच स्वीकार करता हूँ, और कई ऐसी भी भूलें होंगी; जिन्हें मैं देख नहीं सकता। पर भूल भूल ही है, चाहे जिसकी टीका हो, और उसका संशोधन हो जाना ही अच्छा है।

## पाठान्तर

प्राचीन साहित्यके पठन-पाठनके शैथिल्यसे ग्रन्थोंके विशुद्ध संस्करण प्रायः मिलते ही नहीं। सूर-सागर जैसे ग्रन्थरत्नका पूर्ण और शुद्ध संस्करण दुर्भाग्यवश अप्राप्य-सा हो गया है। देशके दुर्भाग्य से इस कामकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं जाता। हम लोग अपने प्राचीन साहित्यका नाश अपनी आँखोंके सामने चुपचाप देख रहे हैं। जो ग्रन्थ मिलते भी हैं उनका यथेष्ट प्रकाशन नहीं होता। प्रकाशक भी इधरसे निरपेक्ष-से हो रहे हैं, उनका ध्यान अनुवादित उपन्यासों और नाटकोंकी ही ओर लगा है। वे पैसेको ही प्रकाशन-सर्वस्व मान बैठे हैं, भले ही

प्राचीन साहित्यकी हत्या हो। किसी ग्रन्थके यथेष्ट सम्पादनके सम्बन्धमें यदि परिश्रम किया गया है, तो केवल रामचरितमानस के। धन्यवाद है काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाको, कि जिसका ध्यान शुद्ध प्रकाशनकी ओर तो लगा हुआ है।

रामचरितमानस के जितने संस्करण हुए, उन सभीमें पाठान्तर है। किसी संस्करणपर क्षेपकोका सिक्का जमा है, तो किसीपर प्रेसके प्रेतोकी अपार कृपा हो गई है। फिर भी अन्य संस्करणोकी अपेक्षा दो-एक संस्करण अधिक महत्त्वके माने जा सकते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थके शुद्ध संस्करण निकालनेकी ओर लोगोंका बहुत कम ध्यान गया है। फिर भी श्रीयुत लाला भगवानदीनजी-द्वारा संपादित सटिप्पण सस्करण और काशी-नागरी-प्रचारिणीजी-सभा-द्वारा प्रकाशित मूल संस्करण ( संक्षिप्त-टिप्पणी सहित ) हमें अधिक शुद्ध समझ पड़े हैं। श्री बैजनाथजी और भट्टजीके संस्करणोमे बड़ा मतभेद है। किसी प्रतिमे 'जेहि' है तो किसीमें 'जिहि' और किसीमे 'जेइ' या 'ज्यहि'। इसी प्रकार 'मारेउ' 'मार्यो' आदि शब्दोमें भेद मिलेगा। इन छोटे-मोटे पाठ-भेदोके अतिरिक्त कहीं-कहींपर 'शब्दों' और 'चरणो' तकमे अन्तर मिलता है। बैजनाथजीकी प्रतिमें एक पूरा पद* ही अधिक मिलता है। इसी प्रकार 'जाके प्रिय न राम बैदेही' पदमें किसी-किसी प्रतिमे दो चरण अधिक मिलते हैं।† 'राम-रामु' 'लोग-लोगु' का होना तो एक साधारण बात है। 'स' के स्थानपर 'श', 'न' के स्थानपर 'ण' और 'ज' के स्थानपर 'य' तो कई प्रतियोंमें मिलेगा।

---

* जयति श्री जानकी भानु-कुल-भानुकी प्रानप्रिय वल्लभे, तरनिभूपे।— इत्यादि पद ४१ का नोट देखो।

† तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाही।
रघुपति-बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराही॥

इस पवित्र पापके भागी कुछ-कुछ प्रेसवाले भी हैं। अस्तु। हमें अधिक शुद्ध संस्करण काशी-नागरीप्रचारणी सभा-द्वारा प्रकाशित ही समझ पड़ा है। यदि उस संस्करणमें, पाद-टिप्पणियोंके रूपमें, अन्य प्रतियोंका पाठान्तर दे दिया जाता, तो और भी अच्छा होता। ऐसा करनेसे अन्य प्रतियोंके पाठकी तुलना और मीमांसा हो जाती। सभाका संस्करण भी श्रीमान् प्रेसकी महती कृपासे अछूता नहीं बचा। एक पदका तो एक चरण ही छूट गया है!

प्रस्तुत संस्करणमे इन्ही दो प्रतियोसे अधिक सहायता ली गई है। कहीं-कहींपर मैंने बैजनाथी प्रतिका पाठ ठीक समझा है, इसलिए वही रहने दिया है। मैंने 'ज्ञ' 'क्ष' और 'य' के स्थानपर क्रमशः 'ग्य' 'च्छ' और 'ज' का प्रयोग किया है। जहाँ अधिक मतभेद जान पड़ा, वहाँ पाद-टिप्पणीमें 'पाठान्तर' लिख दिया है। इस संस्करणका पाठ कहाँ-तक शुद्ध है, इसे मैं विचारशील पाठकोंपर ही छोड़ता हूँ। प्रेससम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ तो इसमें भी जहाँ-तहाँ मिलेंगी।

## प्रस्तुत टीका

पाठक कहेंगे, कि एक-से-एक उत्तम टीकाके होते हुए इस वियोगी हरि को क्या पड़ी थी, जों एक और टीका लिख डाली। बात तो सच है, पर मेरे पास इस प्रश्नका एक विनम्र उत्तर भी है। विनय-पत्रिका पर मेरा बचपनसे ही प्रेम है। विनय-पत्रिका ने मुझे घोर नास्तिक भावोंसे बचाया है। मुझे इस ग्रन्थ-रत्नके पढ़नेका सदासे ही चाव रहा है। कभी-कभी यह भी इच्छा होती थी, कि इसपर कुछ लिखूँ, पर अल्पज्ञता-वश लेखनी उठानेका साहस न पड़ता था। प्रतिक्षण बढ़ती हुई इच्छा कैसे दब सकती थी? दबना तो दूर रहा, वह और भी प्रबल होती गई। इधर मेरे स्नेह-भाजन मुकुन्ददासजीने मुझसे यह काम करनेको कहा। एक पर एक ग्यारह। मैंने लिखना शुरू कर दिया और भगवत्कृपासे

मेरा बालविनोद पूरा भी हो गया। अन्य उत्तमोत्तम टीकाओंके होते हुए भी मैंने यह टीका क्यों लिखी, इसका उत्तर नीचे लिखे दोहेमें मिल सकता है—

'जदपि कह्यौ बहुविधि कबिन, बरनि अनेक प्रकार।
तदपि सदा नित-नित नवल, कृष्ण-चरित्र उदार।।' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यह ग्रन्थ भक्ति-रसका अथाह सागर है। इसमेंसे अनेक रसिकोंने सुधा-पान किया है, अनेक कर रहे हैं और अनेक अभी करेंगे। फिर मैं ही क्यों इस पुण्याधिकारसे वंचित रह जाऊँ ? इसका यह अर्थ नहीं है, कि मैं भक्ति-रसिक बननेका दावा करता हूँ। पर हाँ, यह बात अवश्य है, कि श्रीराम-रसिकोंका कैंकर्य स्वीकार करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। और इसी नातेसे इस रस-रत्नाकरके समीप पहुँचनेका साहस किया है। क्या भक्तिरस-रसिक मुझे मेरी इस अनधिकार चेष्टाके लिये क्षमा न करेंगे !

मेरे गोलोकवासी पूज्यपाद गुरुदेवने विनय-पत्रिका के पढ़नेका मुझे उपदेश दिया था। उन्होंने कई पदोंका जो अनुभवगम्य अर्थ बतलाया था, वह आज भी इस मलिन हृदय पर कुछ-न-कुछ अंकित है। विज्ञ पाठकगण ! यदि आपको इस टीकामें कहीं कोई सुन्दर अर्थ दिखायी दे, तो वह मेरे गुरुदेवका समझिएगा, मेरा नहीं। और जहाँ कहीं अयथार्थ अथवा उपहासास्पद बात आ जाय, उसे मेरी मान लीजिएगा। सच पूछा जाय, तो सिवा भूलोंके मैंने किया ही क्या है ? दो-चार टीकाएँ और कुछ अन्य कवियोंकी पुस्तकें सामने रखकर टीका लिखने-का दुःसाहस किया है। इधर-उधरका मसाला जुटाकर एक स्थानपर रखा है, सो भी अनाड़ीपन से। मैंने तो ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिससे 'टीकाकार' होनेका दावा कर सकूँ। फिर भी मैं निर्लज्ज होकर आपके आगे यह टीका उपस्थित कर रहा हूँ। आशा है, आप मेरी निर्लज्जता परही प्रसन्न होकर मुझे प्रसन्नतापूर्वक क्षमाप्रदान कर देंगे।

मैंने इस टीकामें, प्रायः प्रत्येक पदमें कुछ टिप्पणियाँ लिखी हैं। यदि कहीं कुछ विशेष अर्थ जान पड़ा, तो टिप्पणीके रूपमें लिख दिया है। पाठकोंके मनोविनोदार्थ किसी विशेष प्रसंगपर अन्यान्य सुकवियोंके सुंदर पद्य भी तुलनात्मक रूपमें उद्धृत कर दिये हैं। मैं यह नहीं जानता, कि मैं अपने इस प्रयासमें कहाँतक सफल हुआ हूँ। रही टीका, सो, जैसा मैं कह चुका हूँ, बिलकुल ही साधारण है। शब्दोंका जैसा कुछ सीधा-सादा अर्थ समझ पड़ा है, वैसा टूटी-फूटी भाषामें लिख दिया है। येही सब इस टीकाकी विशेषताएँ हैं। न मैं साहित्यका ही पंडित हूँ और न दार्शनिक सिद्धान्तोंका ही जानकार। न भगवद्भक्तिका लेश ही हृदयमें है। ऐसा नाचीज़ आदमी विनय-पत्रिका पर कैसी टीका लिखेगा, इसे कहनेकी ज़रूरत नहीं। इतनी प्रसन्नता मुझे अवश्य है, कि रसिक-जन इस महान् ग्रन्थको पढ़ते समय मेरी टीकापर भी दृष्टिपात करेंगे। उनकी दिव्य दृष्टि पड़ते ही मेरा परिश्रम सफल हो जायगा। अग्निमें सामर्थ्य है, कि वह सुवर्णकी कालिमाको भी निर्मल कर देता है। मेघ सब वृक्षों पर समान दृष्टिसे ही बरसता है।

मेरी सम्मतिमें गोसाईंजीका प्रत्येक पद वेदका मन्त्र है। कोई-कोई पद तो मुझे वैदिक ऋचासे भी ऊँचा समझ पड़ा है। मेरा कुछ ऐसा ही विश्वास है। लोग कहेंगे, कि यह कैसा मूर्ख है जो भाषाके पदोंको वैदिक ऋचाओंसे ऊँचा मानता है। मैं किसीके कहनेकी परवा नहीं करता। मेरा विश्वास ही ऐसा है। बस, हो चुका।

"अपने-अपने कर थपैं, लिखि पूजैं तिय भीत।<br>सकल फलै मन कामना, 'तुलसी' प्रेम प्रतीत॥"

इस टीकाका नाम मैंने 'हरि-तोषिणी' रखा है। क्या इससे हरि भगवान्‌को संतोष होगा? आशा तो ऐसी ही है, आगे राम जानें। मैंने यह सुना है, कि देवताके आगे फूलोंके साथ पत्ते भी पहुँच जाते हैं, मालाके साथ धागा भी सेवामें चला जाता है। बड़ेके पैरमें सबका पैर

समाता है, इसी लोकोक्तिपर विश्वास करके मैंने यह आशा की है कि कदाचित् भगवान्‌को तुलसीकी विनय-पत्रिका पढ़ते समय, इस टीकासे भी यत्किंचित् संतोप हो। क्या करूँ, मुझे इससे सुन्दर दूसरा नाम समझ ही नहीं पड़ा।

टीकाके सम्बन्धमें मेरा इतना ही वक्तव्य है। कोई अधिक मूल्यकी वस्तु होती, तो उसपर कुछ लिखा भी जाता। भला, ऐसी साधारण टीकापर इससे अधिक मैं लिख ही क्या सकता हूँ?

## उपसंहार

संक्षेपमें, विनय-पत्रिका का दिग्दर्शन हो चुका। अब अन्तमें, मेरी यही विनीत प्रार्थना है, कि भगवद्भक्तों और साहित्य-रसिकोंको इस उत्कृष्ट ग्रन्थका अनुशीलन अवश्य ही करना चाहिए। भक्तोंको तो चाहिए, कि वे इसे अपना कंठाभरण बना लें। इसके कुछ पद तो ऐसे हैं कि जिन्हें हिन्दू ही नहीं, वरन् प्रत्येक जाति और मजहबके लोग श्रद्धा के साथ पढ़ सकते हैं। पाश्चात्य देशोंमें बाइबिलमें डेविडके भजन अद्वितीय समझे जाते हैं, पर यदि वहाँ के लोग विनय-पत्रिका पढ़ें और उसके पदोंका भावार्थ समझें तो डेविडके भजन भी उन्हें विस्मृत-से हो जायँ। विद्वद्वर डाक्टर ग्रियर्सनने तो ईसाइयोंको विनय पत्रिका के १४२ और १४३ वें पदके पढ़नेकी सलाह दी है। वास्तवमें, यह ग्रन्थ ऐसा ही है। इसकी रचना मनुष्यमात्रके कल्याणार्थ हुई है। जीव जो कुछ अपने सम्बन्धमें कृपालु परम पिता परमात्माके प्रति निवेदन कर सकता है, वह सभी इसमें विद्यमान् है। यह ग्रन्थ मनोवैज्ञानिकोंके भी कामका है। इसके प्रायः प्रत्येक पदमें मानसिक विश्लेषणके चारु चित्र अंकित मिलते हैं। इस ग्रन्थके पढ़नेसे कैसा ही पापी क्यों न हो, अवश्य ही वह सच्चरित्र और भगवद्भक्त हो सकता है, यह हमारा दावा है। गोसाईं तुलसीदासजीकी वाणी साधारण कविता नहीं है; वरन् उच्चादर्शों, अनुभवगम्य सिद्धान्तों और भक्ति-भावोंकी अलौकिक रत्न-मंजूषा है। भागवत-भूषण स्व० अम्बिकादत्त व्यासने क्या अच्छा कहा है—

'डगर-डगर अरू नगर-नगर माहिं,
कहनि पसारी रामचरित-अवलि की।
कहै कबि अबादत्त, रामही की लीलन सों,
भरि दीनी भीर सबै चहलि-पहलि की॥
सूद्रन तें ब्राम्हन लौं, मूरख तें पंडित लौं,
रसना डुलाई सबै जै-जै बलि-बलि की।
यम को भगाय पापपुंज को नसाय आज,
तुलसी गुसाईं नाक काटि लीनी कलि की॥'

इसी वाणीपर सुरसिक रसरंगमणिजी भी एक अनूठा कवित्त लिख गये हैं देखिए—

'यम की अनी की मुख लावनी मसी की मानों,
कन्या भानुजी की मोद मथुरापुरी की है।
कीरति हरी की मुख नैन तें बही की 'रसरंग',
तारनी की धार सरजू सरी की है॥
काटनी कसी की विषै आस फाँसरी की मुख्य,
म्यान में बसी की चोखी पुत्रिका असी की है।
सारद ससी की सम हरै ताप जाको प्रेम,
भक्ति सिय-पी की दानी बानी तुलसी की है॥'

इस दिव्यवाणीपर सैकड़ों कवियोंने अनेक सूक्तियाँ लिखी हैं। स्थल-संकीर्णता-वश अधिक पद्य उद्धृत नहीं किये जा सकते। फिर भी तुलसी-गुण-गानसे जी नहीं मानता। इस पुनीत कविता सरोवर में अवगाहन करनेकी बहुत-कुछ इच्छा होती है। पर सुअवसर कहाँ, सौभाग्य कहाँ,—सुपात्रता कहाँ? इस अवसरपर मुझे सुहृद्वर कृष्णविहारी मिश्रका यह कवित्त बार-बार याद आ रहा है—

'देव-बानी वैभव कौ मिलै जो सहारो कछू, सूर के प्रकास को तुरत अपनाऊँ मैं।
मंजुल बिमल रामचरित के मानस में उमँगि-उमँगि चिरकाल लौं नहाऊँ मैं॥
नेह-रँग-मगे लैकैं विनय की पाती करि नैनन के सो हैं राखि सुख सरसाऊँ मैं।
तनमय ह्वैकैं आचरन करौं उनहीं के, दास तुलसी के गुन तब कहि पाऊँ मैं॥'

प्रयाग,
मार्गशीर्ष शुक्ल ५, संवत् १९८०

श्रीहरिदासानुदास
वियोगी हरि

# दूसरे संस्करण पर वक्तव्य

मैं अपनेको भाग्यवान् समझता हूँ, कि आज मैं श्रीहरि-तोषिणी टीकाके दूसरे संस्करणपर ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। भगवद्भक्तों और साहित्य-रसिकोंने मेरी तुच्छ टीकाको प्रेमपूर्वक अपनाया, यह मेरे परिश्रमकी सफलताका चिह्न है। मैं सचमुच अपनेको कृत्यकृत्य मानता हूँ।

इस संस्करणमें मैंने केवल भाषाका ही संशोधन किया है। दो-चार स्थलोंपर भावार्थमें यत्किंचित् परिवर्तन किया है। मेरी टीका-गत जिन भ्रान्तियोंकी ओर मेरे कुछ सहृदय मित्रोंने कृपाकर जो संकेत किये थे, उनके अनुसार इस संस्करणमे मैंने संशोधन कर दिये हैं। मैं अपने उन मित्रोंका हृदयसे कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तकके प्रचारमें इसके प्रकाशक मेरे स्नेह-भाजन मुकुंददासजी ने जो परिश्रम किया है उसके लिए उन्हें मै धन्यवाद देता हूँ।

मोहन-निवास,<br>
पन्ना,<br>
आश्विन शुक्ल ७, संवत् १९८६

श्रीहरिदासानुदास<br>
वियोगी हरि

श्रीहरि-तोषिणी टीका-समलंकृता

# विनय-पत्रिका

[ पूर्वार्द्ध ]

# मंगलाचरण

बन्दौ रघुपति-पद-पदुम मुनि-मन-मानस-हंस ।
दुरलभ ब्रह्मानन्द हू जिन चरनन कौ अंस ।।

❀ ❀ ❀

जय मिथिलेस-लली-चरन मंगलकरन अनूप ।
रामभक्त-उर-आभरन मुक्ति-सार रस-रूप ।।

❀ ❀ ❀

विनयपत्रिका-कार त्यौं रामचरित-रस-रास ।
बन्दौं कवि-कुल-तिलक श्रीरसनिधि तुलसीदास ।।

❀ ❀ ❀

श्रीगुरु जुगलप्रिया-चरन बारबार उर लाय ।
टीका श्रीहरि-तोषिणी लिखौ राम-गुन गाय ।।

❀ ❀ ❀

या पाती पै नाथ ! जब करौ कृपा की कोर ।
मेरी हू सुधि लीजियौ दसरथराज-किसोर ।।

—❀—

नमः श्रीजानकी-वल्लभाय

# विनय-पत्रिका

## श्री ग णे श - स्तु ति

### राग-बिलावल

( १ )

गाइये गनपति जगबन्दन । संकर-सुवन-भवानी-नन्दन ॥१॥
सिद्धि-सदन, गजबदन, विनायक । कृपा-सिंधु, सुन्दर सब लायक ॥२॥
मोदक-प्रिय मुद-मंगल-दाता । विद्या-वारिधि, बुद्धि विधाता ॥३॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहि रामसिय मानस मोरे ॥४॥

**शब्दार्थ**—नन्दन=आनन्दवर्द्धन, प्रसन्न करनेवाले । सिद्धि=योगशास्त्रानुसार एक अलौकिक शक्ति, जिसे प्राप्त कर मनुष्य विलक्षण-से-विलक्षण कार्य सम्पन्न कर सकता है । सिद्धिके आठ भेद हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व । मानस=मनरूपी मानसरोवर, मानसिक स्थान ।

**भावार्थ**—समस्त संसारसे वन्दनीय, शिवके गणोंके स्वामी श्रीगणेशजी का गुणगान करो । वह कल्याण-कारी शिव और पार्वतीके पुत्र हैं, वह सदा अपने माता-पिताको प्रसन्न रखते हैं ॥१॥ बड़ी-बड़ी सिद्धियोंके तो वह स्थान ही हैं, अर्थात् वह बात-की-बातमें सिद्धियाँ दे डालते हैं । उनका मुख हाथीके जैसा है । वह सारे विघ्नों वा अनिष्टोंके स्वामी है, उनकी कृपासे कोई विघ्न-बाधा नहीं सताती, वह कृपाके समुद्र, नित्य लावण्यमय तथा सर्वगुण-संपन्न हैं ॥२॥ उन्हें लड्डू बड़ा प्यारा है । वह आनन्द और कल्याणको देनेवाले हैं । विद्याके तो सागर ही हैं । बुद्धिको चाहे जैसा बना सकते है ॥३॥ ऐसे महामङ्गलरूप श्रीगणेशजीसे मैं, तुलसीदास, हाथ जोड़कर केवल यही वर माँगता हूँ, कि श्रीसीतारामजी सदा मेरे मनोमन्दिरमें निवास किया करें ॥४॥

**भावार्थ**—हे दीनोंपर दया करनेवाले सूर्यनारायण ! मुनि, मनुष्य, देव और दैत्य सभी आपकी सेवा करते हैं ॥ १ ॥ आप पाला और अन्धकाररूपी हाथियों के मारने के लिए साक्षात् सिंह हैं । आप किरणोंकी माला धारण किये रहते हैं । दोष, दुःख, पाप और रोग-समूहको आप अग्निके समान भस्मसात् कर डालते हैं ॥२॥ आप चकवा-चकवी पक्षियोंको, उनकी निशाजन्य विरह-व्यथा दूरकर, प्रसन्न करनेवाले हैं । कमलको प्रफुल्लित करनेवाले तथा समस्त ब्रह्माण्डको प्रकाशित करनेवाले हैं । तेज, पराक्रम, रूप और रसकी तो आप राशि ही हैं ॥३॥ आप चढ़ते तो दिव्य रथपर हैं, किन्तु सारथी आपका लूला-लँगड़ा है । हे स्वामी ! आप विष्णु, शिव और ब्रह्मा—इन तीन देवताओंके रूपमें—भासित होते हैं ॥ ४ ॥ आपका यश वेदों और पुराणोंमें प्रख्यात है । तुलसी आपसे केवल श्रीराम-भक्ति माँगता है ॥५॥

**टिप्पणी**—(१) चकवा-चकवी रातको एक दूसरेसे अलग हो जाते हैं और सबेरा होते ही फिर मिल जाते हैं । इनके संयोगके कारण सूर्य ही हैं ।

(२) इस पदमें सूर्यदेवको 'रस-राशि' कहा है । ठीक ही है, यदि वह अपनी किरणोंसे जलाकर्षण न करें, तो वर्षा कहाँ से हो, और फिर फल एवं अन्न इत्यादि कैसे उत्पन्न हों ! इस 'रस-राशि' विशेषणसे ग्रन्थकारका वैज्ञानिक ज्ञान प्रकट होता है ।

(३) भगवान् भास्करने लूले-लँगड़े सारथीको पृथक् नहीं किया, उसे बराबर अपने दिव्य रथपर रखते हैं । दीन दयालुताका यह काफ़ी सुबूत है ।

(४) सूर्य प्रातःकाल ब्रह्म-रूप, मध्याह्नकाल शिव-रूप तथा सायंकाल विष्णुरूप माने जाते हैं । भविष्यपुराणमें लिखा है—

"उदये ब्रह्मरूपस्तु, मध्याह्ने तु महेश्वरः ।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥"

## शिव-स्तुति

### ( ३ )

को जाँचिए संभुतजि आन ।
दीनदयालु भक्त-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान ॥१॥
कालकूट-ज्वर-जरत सुरासुर, निज पन लागि कीन्ह विष-पान ।
दारुन दनुज जगत-दुखदायक, मारेउ त्रिपुर एकही बान ॥२॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत स्रुति सकल पुरान ।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान ॥३॥

सेवत सुलभ उदार कल्पतरु, पारवती-पति परम सुजान।
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

**शब्दार्थ**—आरति=दुःख। कालकूट=हालाहल विष, जो समुद्रमथनके समय १४ रत्नोंके साथ निकला था। गति=मुक्ति। सदाशिव=सदैव कल्याण-कारी। कामरिपु=कामदेवको जलानेवाले शिवजी।

**भावार्थ**—शिवजीको छोड़ और किससे माँगना चाहिए? दीनोंपर दया करनेवाले भक्तोंके दुःख हरनेवाले, सर्व प्रकारसे समर्थ और साक्षात् भगवान् आप ही तो है ॥१॥ जब हालाहल विषकी प्रचण्ड ज्वालासे देवता और दैत्य सभी जलने बलने लगे, तब अपनी दीनदयालुताका प्रण रखनेके लिए आप उस विषको देखते-देखते पान कर गये। इसी प्रकार महाघोर दनुका पुत्र त्रिपुर जब संसारको दुःख देने लगा,तब उसे आपने एक ही बाणसे मार गिराया ॥२॥ जिस मुक्तिको सत, वेद और पुराण बड़े बड़े मुनियोंको भी दुष्प्राप्य बताते है, उसे आप समताकी दृष्टिसे, अपनी काशीपुरीमें, मरनेपर अनायास सभीको दे देते हैं ॥३॥ सेवा करनेसे आप सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं। हे पार्वतीवल्लभ! हे परमज्ञानी! आप कल्प-वृक्षके समान उदार है। हे कामको भस्म करनेवाले! हे कृपानिधान! कृपाकर तुलसीदासको श्रीरामजीके चरणोंमें अनन्य भक्ति दे दीजिए ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—(१) भगवान् उसे कहते हैं जिसमें ये षड्गुण विद्यमान हों—ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष।

(२) जब देवताओं और दैत्योंने अमृत निकालनेके लिए समुद्रको मथा, तब उसमेंसे सबसे पहले विष निकला। विषकी ज्वालासे सब जलने लगे। सिवा शिवजीके और किसका सामर्थ्य था जो उसे पान कर जाय? सबने उन्हींसे ऐसा करनेकी प्रार्थना की। भक्तवत्सल भगवान् शंकर कालकूट विष पी गये।

(३) दनुका पुत्र त्रिपुर बड़ा ही अत्याचारी दैत्य था। जब उसके मारे तीनों लोकोंका नाकों दम हो गया, तब प्रार्थना करनेपर शंकरजीने उसे एक ही बाणसे मार गिराया। तभीसे आपका नाम त्रिपुरारि हो गया।

(४) शिवजी, कहते हैं, काशीपुरीमें जीवमात्रको रामतारक महामन्त्रका गुरु-रूप हो उपदेश देते हैं। इसी प्रभावसे वहाँके निवासी जीव मोक्षके अधिकारी माने जाते हैं। अध्यात्मरामायणमें शिवजीने स्वयं कहा है—

"अहो ! भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम ॥"

**इसी लोभके मारे महाकवि सेनापतिने भी कहा है—**

"पढ़ी और विद्या गई छूटि न अविद्या, जान्यौं, अच्छरु न एक घोख्योकैयो जनमनु है।
ताते कीजै गुरु जाइ जगत–गुरूको, जाते ग्यान पाइ जीव होतु चिदानंदघनु है॥
मिटत है काम क्रोध, ऐसो उपजतु बोध, 'सेनापति', कीनो सोध कह्यौ निगमनु है।
बारानसी जाई मनिकरनी अन्हाई मेरो, संकर तें राम राम पढ़िबे को मनु है ॥"

**(४) इस पदमें शंकरजीकी दीनदयालुता, भक्तवत्सलता, सामर्थ्य, भगवद्विभूति, परमोदारता और कृपालुताका भलीभाँति पुष्टीकरण किया गया है।**

### राग-धनाश्री

### ( ४ )

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं ।
दीनदयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं ॥ १ ॥
मारि कै मार थप्यौ जग में, जाकी प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबौ, कह्यौ क्यों परत मो पाहीं ॥ २ ॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं ।
वेद-विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं ॥ ३ ॥
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं ।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—दिबोई=देना ही । सोहाहीं=अच्छे लगते हैं । मार=कामदेव । ठाकुर=स्वामी । पुरारि=पुर दैत्यके शत्रु शिवजी ।

**भावार्थ**—शिवजीके समान कहीं कोई दानी नहीं है । वह दीनोंपर दया करते हैं, उन्हें एक देना ही अच्छा लगता है । भिखमंगे ही उन्हें सदा सुहाते हैं ॥१॥ योद्धाओंमें अग्रगण्य कामदेवको भस्म कर, उसकी स्त्री रतिका विरह-विलाप देखकर, जिन शिवजीने फिर उसे संसारमे (अनंग नामसे) रहने दिया—उस स्वामीका प्रसन्न होकर कृपा करना मुझसे कैसे कहा जा सकता है ॥२॥ बड़े-बड़े ऋषिमुनि अनेक प्रकारका योगाभ्यास कर विष्णु भगवान्‌से जिस मोक्षके

माँगनेमें संकोच करते हैं, वह परमगति त्रिपुरसंहारक शिवजीकी पुरी (काशी) में कीट-पतङ्ग तक पा जाते हैं ! यह वेदोंमें भी प्रकट है ॥३॥ ऐसे ऐश्वर्यवान् परमदानी पार्वती-वल्लभ शिवको छोड़कर जो लोग इधर-उधर माँगनेके लिए दौड़ते हैं, उन मूर्ख भिखमंगोंका पेट कहीं भी भलीभाँति नहीं भरता, सदा दाने-दानेको मोहताज रहते हैं ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) यह परमप्रसिद्ध बात है कि, काशीपुरीमें मरनेसे मुक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है। प्रमाण भी है—

'काश्यांतु मरणान्मुक्तिः'।

(२) करोड़ों योग-साधन करनेपर भी मुनि मुक्ति माँगनेमें संकोच क्यों करते हैं ? इसलिए कि कहीं अनेकजन्मार्जित पापसंचयवश अनधिकारी होनेके कारण कोरा जवाब न मिल जाय। क्योंकि भगवत्स्वरूपका यथेष्ट ज्ञान हो जाना अत्यन्त कठिन है। गीतामें लिखा है—

"मनुष्याना सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वतः॥"

( ५ )

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन, देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥ १॥
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥ २॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥ ३॥
दुखी दीनता दुखियन के दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥ ४॥
प्रेम-प्रसंसा - बिनय - ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बरबानी।
तुलसी मुदित महेस मनहि मन, जगत-मातु मुसुकानी॥ ५॥

**शब्दार्थ**—बावरो=पागल। नाह=नाथ, पति। सिहानी=ललचाती हैं। नाक=स्वर्ग; इन्द्र। सँवारत=सेवा करता है। नकबानी आयो=नाकों दम आ गया। व्यंग=सीधे अर्थ को छोड़कर कुछ-का-कुछ भाव दरसाना। जगत-मातु=जगजननी पार्वती।

प्रसङ्ग—शिवजीकी असीम उदारता देखकर ब्रह्मा सोचने लगे, यदि सदा ऐसी ही फ़िजूलखर्ची बनी रही, तो एक दिन मेरे खजाने का दिवाला ही निकल जायगा। तो क्या करना चाहिये? शंकरके सामने जाकर उन्हें समझाना-बुझाना व्यर्थ है। हो न हो, श्रीमती पार्वतीके कानमें यह बात डाल देनी चाहिए। वही शिवके अपव्ययको रोक सकेंगी। यह निश्चय कर जगत्पिता ब्रह्मा कैलास पर्वतपर जाकर हाथ जोड़ पार्वतीजीसे बोले :—

**भावार्थ**—हे भवानी! आपके पति पागल हो गये हैं। जब देखो तब वह दान देते ही रहते हैं वह ऐसोंको भी दे देते हैं जिन्होंने कभी, किसी जन्ममे, किसीको एक कौड़ी भी नहीं दी। ऐसा करनेसे वेदकी मर्यादा टूटती जा रही है, क्योंकि वेदानुसार वही दान पानेका अधिकारी हो सकता है, जिसने कभी किसीको कुछ दिया हो ॥१॥ आप तो बड़ी चतुर हो, तनिक अपने घरकी बात तो देखो! वह यह कि आपके पतिने देते-देते सारी गिरस्ती ही लुटा डाली है, घरमें आज भूँजी भाँग भी नहीं रही। शिवकी दी हुई संपत्ति देख-देखकर लक्ष्मी और सरस्वती भी मन-ही-मन आपकी प्रशंसा करती हैं कि, धन्य है पार्वतीको, जिन्हें ऐसा उदारपति मिला, उनकी यह प्रशंसा चाहे हँसी-मजाक डाह-भरी ही हो, कौन जाने! ॥२॥ जिनकी भालस्थलीपर मैंने सुखका नाम भी नहीं लिखा था, वे आज शिवजीके अनुग्रहसे इतनी अधिक संख्यामें स्वर्गमें आ रहे हैं कि उनके लिए वहाँ स्थान सजाते-सजाते मेरा नाकमें दम आ गया है। उनकी इतनी संख्या बढ़ती जाती है कि स्वर्गमें मुझे नित्य उनके लिए नये नये स्थनोंका नूतन प्रबन्ध करना पड़ रहा है। इसीसे नाकों दम हो रहा है॥३॥ दुखियोंके दुःख और दीनता भी दुखी हो रही है। याचकता व्याकुल हो तड़प रही है; क्योंकि अब इन बेचारों को कहीं रहनेके लिए ठौर-ठिकाना तक नहीं रहा! यह खजानेका अधिकार किसी दूसरेके सिपुर्द कर दीजिये, मुझे न चाहिए। मै भीख माँगकर खा लूँगा, पर आपके यहाँका अधिकारी न बनूँगा ॥ ४ ॥ प्रेम, प्रशंसा और व्यंग्य-भरी ब्रह्माकी सुन्दर स्तुति सुनकर महादेवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और जगज्जननी पार्वतीजी भी मुसकराने लगीं ॥५॥

**टिप्पणी**—(१) इस पदमें 'व्याज-स्तुति' अलंकार है। जहाँ सीधे अर्थ-को छोड़कर हेर-फेरके साथ दूसरा भाव प्रकट किया जाता है; वहाँ 'व्याज'

अथवा 'व्यंग्य' होता है। इसके दो भेद हैं—(१) व्याज-स्तुति और (२) व्याजनिन्दा। जहाँ निंदा करके स्तुति प्रकट की जाय, वहाँ व्याजस्तुति और जहाँ स्तुति करके निन्दाका भाव प्रकट किया जाय, वहाँ व्याज-निन्दा अलंकार होता है। व्यंग्यका लक्षण यह है—

'सूधो अर्थ जु वचनको, तिहि तजि औरहि बैन।
समुझि परै, तिहि कहत है, शक्ति व्यञ्जना ऐन॥' —भिखारीदास

(३) 'ब्रह्माकी बरबानी' मे 'बर' शब्द बड़े महत्त्वका है। इससे ब्रह्माकी विलक्षण चातुरी, हास्य, श्रवण-रोचकता, प्रेमस्फूर्ति और गूढ़ भावना प्रकट होती है।

## राग-रामकली

( ६ )

जाचिये गिरिजापति, कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी॥१॥
औढर-दानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे॥२॥
सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर सेवकाई॥३॥
गये सरन आरत के लीन्हे। निरखि निहाल निमिप महँ कीन्हे॥४॥
तुलसिदास जाचक जस गावै। बिमल भगति रघुपति की पावै॥५॥

**शब्दार्थ**—अनिमादिक=अणिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियाँ। औढर-दानि=उस दानके देनेवाले जिसे और कोई न दे सके; बिना सोचे समझे ही दे डालनेवाले। द्रवत=दयार्द्र हो जाते हैं। सुगति=मोक्ष।

**भावार्थ**—पार्वती-बल्लभ शंकरजीसे ही माँगना चाहिए—जिनका निवासस्थान काशी है, और अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं॥१॥ शिवजी औढरदानी हैं, थोड़ीही-सी सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। दीनोंको हाथ जोड़े हुए खड़ा नहीं देख सकते, उनपर तुरन्त कृपा कर देते हैं॥२॥ शंकरजीकी सेवासे सुख-संपत्ति, सुबुद्धि, मोक्ष आदि अनेक पदार्थ सुलभ हो जाते हैं॥३॥ उन्होने शरणमें गये हुए जीवोको अपना लिया और उनको पल भर में निहाल कर दिया है॥४॥ भिखारी तुलसीदास भी इसी आशासे उनका यश गाता है, कि उसे श्रीरघुनाथजीकी निर्मल भक्ति प्राप्त हो॥५॥

( ७ )

कस न दीन पर द्रवहु उमावर। दारुन बिपति हरन, करुनाकर॥१॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बार कस भयहु कृपिनतर॥२॥

कवनि भगति कीन्ही गुनिनिधि द्विज । ह्वै प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज ॥३॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं । तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥४॥
देहु काम-रिपु, राम-चरन रति । तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति॥५॥

**शब्दार्थ**—उमावर=पार्वतीके पति । पद निज=कैवल्यपद । भेदमति= भेदबुद्धि; 'मै और हूँ, तू और है' ऐसी विषमताभरी बुद्धि ।

**भावार्थ**—हे पार्वती रमण ! आप मुझ दीनपर क्यों कृपा नहीं करते ? आप तो घोर विपत्तियोके दूर करनेवाले और कृपाके स्थान हैं ॥१॥ वेद-पुराण तो सदा यही कहते हैं कि शिवजी बड़े उदार हैं, वह उदारता मेरे लिए कहाँ गयी ! आप मेरे ही लिए ऐसे कंजूस क्यो हो गये ? ॥२॥ गुणनिधि नामके ब्राह्मणने आपकी ऐसी कौन-सी भक्ति की थी, जिसे आपने प्रसन्न होकर कैवल्यपद प्रदान कर दिया? ॥३॥ बड़े-बड़े मुनि जिस मोक्षगतिको अगम्य मानते हैं, वह आपके पुर (काशी) मे कीट-पतंगो तकको प्राप्त हो जाती है ॥४॥ हे मदन-मर्दन ! तुलसीदासको श्रीराम जीके चरणोमे अटल भक्ति दीजिए और उसका अविद्यात्मक भेद-ज्ञान हर लीजिए ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—( १ ) गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण महान् चोर था । एक दिन वह एक शिवालयका घंटा चुराने गया । घंटा बहुत ऊँचा बँधा था । जब वहाँ तक वह न पहुँच सका, तब शिवमूर्ति के ऊपर चढ़कर उसे खोलने लगा । शिवजी प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उससे बोले—"जो वर माँगना हो, माँग । हम तुझपर प्रसन्न हैं । तूने आज हमपर अपना सर्वस्व चढ़ा दिया है ।" शिवजीकी कृपासे वह कैलास लोक चला गया और वहाँ कैवल्यपदका अधिकारी हुआ ।**

**( २ ) भेद-बुद्धिसे यहाँ जीव-वैषम्यसे तात्पर्य है, जीव-ब्रह्मसे नहीं । क्योंकि गोसाईंजी ब्रह्मात्मैक्य के मानने वाले नहीं थे—**

मैं अरु मोर तोर तैं माया—राम-चरित-मानस

**(३) काम-रिपु शब्द बहुत ही सार्थक है । जब तक काम-लिप्सा रहेगी, तब तक राम-भक्ति कैसे हो सकती है ?**

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
एक संग निबसत नहीं, 'तुलसी' छाया घाम ॥

इसीलिए गोसाईंजी पहले कामवासनाएँ दूर करने की प्रार्थना करते हैं, पीछे रामभक्ति माँगते हैं।

( ८ )

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनि के, जिन जिन कर जोरे ॥१॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत थोरे।
दियो जगत जहँलगि सबै, सुख, गज, रथ घोरे ॥२॥
गाँव बसत बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे।
अधि-भौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥३॥
बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दल रूँध्यो चहैं, सठ साखि सिहोरे ॥४॥

**शब्दार्थ**—भोरे=भोले, सीधे। पात=पत्ते, बेलपत्र। आखत=अक्षत, चावल। घोरे=घोड़े। बामदेव=शिव। निहोरे=माँगे। अधिभौतिक=आधिभौतिक, शारीरिक। सिहोरे=थूहड़, एक काँटेदार वृक्ष।

**भावार्थ**—हे शिवजी, आप महादेव हैं, बड़े भारी दानी हैं और साथ ही भोलेभाले भी। जिन-जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोड़े, उन सबोंके आपने दुःख दूर किये ॥१॥ आपकी सेवा और स्मरण थोड़े ही में हो जाता है। दो बेल पत्र और चार चावल काफ़ी हैं। इतनेके बदले आप हाथी, रथ और घोड़े और जहाँतक संसारमें सुखसामग्री मानी जाती है, सब दे डालते हैं ॥२॥ हे बामदेव! मैं आपके गाँवमें रहता हूँ, किन्तु आजतक आपसे कोई निहोरा नहीं किया, कुछ माँगा नहीं। परन्तु अब आधिभौतिक बाधाओंने मुझे घेर लिया है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो आपके दास हैं, मुझे सताने लगे हैं ॥३॥ जल्दीसे इन निर्दय कठोर-कुर्मियोंको बुलाकर रोक लिजिए, डाँट-डपट बतला दीजिए, क्योंकि ये दुष्ट तुलसी-दलको कुचलकर उसके स्थानपर थूहड़की डालियाँ लगाना चाहते हैं, तुलसीदासके हृदयसे आपकी भक्ति दूर कर उसके स्थान मे काम-वासनाएँ आरोपित कर रहे हैं ॥४॥

**टिप्पणी**—यहाँ 'तुलसी' पद श्लिष्ट है। इससे 'तुलसी वृक्ष' और 'तुलसीदास' दोनों का ही बोध होता है।

( ९ )

सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया ।
करुनामय, उदार कीरति, बलि जाउँ, हरहु निज माया ॥१॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई ।
बिनु तव कृपा रामपद-पंकज, सपनेहुँ भगति न होई ॥२॥
ऋषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर अपर जीव जगमाहीं ।
तुव-पद-विमुख न पार पाव कोउ, कलप कोटि चलि जाहीं ॥३॥
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव त्रिपुरारी ।
मोह-निहार दिवाकर संकर, सरन सोक-भयहारी ॥४॥
गिरिजा-मन-मानस-मराल कासीस, मसान-निवासी ।
तुलसिदास हरि-चरनकमल-वर, देहु भक्ति अविनासी ॥५॥

**शब्दार्थ**—उदार कीरति=जिनका यश ब्रह्माण्ड-व्यापी है । मयन=मदन, कामदेव । ऋषय=ऋषि । दनुज=दनुके पुत्र दैत्य । चलि जाहीं=बीत जाँय । दूषन-रिपु-सेवक = दूषण दैत्यके शत्रु श्रीरामचन्द्रजी, तिनके सेवक । निहार= हिम, पाला । मसान=श्मशान, मरघट ।

**भावार्थ**-हे कल्याणमूर्ति शिवजी! प्रसन्न होकर दया करो । आप करुणाकी साक्षात् मूर्ति हैं, आपका यश सर्वव्यापी है । मैं आपकी बलैया लेता हूं, कृपाकर अपनी माया समेट लो ॥१॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं; आप सर्व-संपन्न कहे जाते हैं; कामदेव को आप भस्म कर चुके हैं । भला, आपकी असीम महिमा कोई जान सकता है ! बिना आपकी कृपाके श्रीरामचन्द्रजीके कमलस्वरुपी चरणोंमें, स्वप्नमें भी, भक्ति नहीं हो सकती ॥२॥ ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दैत्य, देवता और जितने विश्वमें प्राणी हैं,वे सब करोड़ों कल्पतक भी, बिना आपके चरणार-विन्द सेये, संसार-सागरका पार नहीं पा सकते ॥३॥ आपने सर्पोंके भूषण धारण कर रखे हैं ! दूषण दैत्यके विनाशक श्रीरामचन्द्रजी के आप अनन्य सेवक हैं । हे देवाधिदेव ! आपने बातकी-बातमे त्रिपुरासुर का बध कर डाला था । हे शकर ! आप अज्ञान-रुपी पालाके लिए साक्षात् सूर्य हैं । आप शरणमें आये हुए जीवोंका शोक और भय दूर कर देते हैं ॥४॥ हे काशीपते ! हे श्मशानवासी ! आप पार्वती के मनरूपी मानसरोवरमें बिहार करनेवाले राजहंस है । तुलसीदासको

श्रीहरिके चरणारविन्दों में नित्य एकरस भक्तिका वरदान दीजिए ।।५।।

**टिप्पणी**—(१) इस पदके आदिमें 'शिव' शब्द दोहराया गया है। पहले 'शिव' का अर्थ कल्याणकारी है, जो शिवका विशेषण माना जा सकता है। अथवा, माया-जन्य आत्यंतिक दुखःके कारण गोसाईंजी ने दो बार शिवजीका नाम लिया है।

(२) बिना शिवजीकी कृपाके राम-भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है—इस सिद्धान्तका 'रामचरितमानस' में गोसाईंजीने, इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

"औरो एक गुपुत मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
सकर-भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ।।"

(३) "दूषण-रिपु-सेवक" के दो अर्थ हो सकते हैं। दूषणारि रामचन्द्रजी के सेवक शिवजी, अथवा शिवजीके सेवक दूषणारि रामचन्द्रजी। राम और शिव परस्पर परमभक्त माने गये है—

"शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोरतु हृदयं शिवः"।

यों भी, भागवतजनोंमें शिव सर्वप्रधान माने गये हैं—

"वैष्णवानामहं शभुः"—श्रीमद्भागवत

(४) जैसे पाला सबको जड़ बना देता है, उसी प्रकार अज्ञान, भक्तिको हटाकर, जीव में जड़ता भर देता है।

(५) 'भक्ति'के साथ अविनाशी पद परमसार्थक है। सब अनित्य है, एक भक्ति ही नित्य है। भक्ति अथवा भक्तका कल्पांतमें भी नाश नहीं होता।

"कौन्तेय, प्रतिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति"।

## राग धनाश्री

( १० )

मोह-तम तरनि, हर रुद्र संकर सरन, हरन मम सोक, लोकाभिरामं।
बाल-ससिभाल, सुबिसाललोचन-कमल, काम-सतकोटि-लावन्यधामं ।।१।।
कम्बु-कुन्देन्दु-कर्पूर-विग्रह रुचिर, तरुन-रवि-कोटि तनु-तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग अर्धांग सैलात्मजा, ब्याल-नृकपाल-माला विराजै ।।२।।
मौलि संकुल जटा-मुकुट, बिद्युतछटा, तटिनि-वर-वारि हरि-चरन-पूतं।
स्रवन कुंडल, गरल कंठ, करुनाकन्द, सच्चिदानंद वन्देऽवधूतं ।।३।।

-सूल-सायक-पिनाकासि-कर सत्रु-बन, दहन इव धूमध्वज, वृषभ-जानं ।
व्याघ्र-गज-चर्म-परिधान,विज्ञान-घन,सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं।।४।।
तांडवित-नृत्यपर, डमरु डिंडिम प्रवर, असुभ इव भाति कल्यानरासी ।
महाकल्पान्त ब्रह्माण्ड-मंडल-दवन, भवन कैलास आसीन कासी ।।५।।
तज्ञ सरवज्ञ, जज्ञेस, अच्युत, विभो, विस्व भवदंस-संभव पुरारी ।
ब्रह्मेन्द्र,चन्द्रार्क वरुनाग्नि,वसु,मरुत, जम अरचिभवदंघ्रिसर्वाधिकारी।।६।।
अकल, निरुपाधि, निरगुन, निरंजन-ब्रह्म, कर्म-पथमेकमज निर्विकारं ।
अखिल विग्रह, उग्ररूप सिवभूपसुर, सर्वगत, सर्व, सर्वोपकारं ।।७।।
ज्ञान, वैराग्य, धन-धर्म-कैवल्य-सुख, सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं ।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार-पथ, भ्रमत भव विमुख तुव पाद-मूलं ।।८।।
नष्टमति, दुष्ट अति,कष्ट-रत,खेद-गत, दासतुलसी संभु सरन आया ।
देहि कामारि ! श्रीरामपद-पंकजे भक्ति अनवरत गत भेद माया ।।९।।

**पदच्छेद**—लोक+अभिरामं । कुंद+इन्दु । सर्व+अंग । अर्ध+अंग । सैल+आत्मजा । सत्+चित्+आनन्द । वन्दे+अवधूतं । पिनाक+असि । कल्प+अन्त । तत्+ज्ञ । जज्ञ (यज्ञ)+ईश । भवत्+अंश । ब्रह्मा+इंद्र । चंद्र+अर्क । वरुन+अग्नि । भवत्+अंघ्रि । निः+उपाधि । निः+गुण (सत्त्व, रज और तम)। निः+अंजन। पथम्+एकम्+अज। सर्व+उपकारं ।

**शब्दार्थ**—बालशशि=द्वैजका चन्द्रमा । तरुन रवि=मध्याह्नकालीन सूर्य । विग्रह=मूर्ति, रूप । सैलात्मजा=पार्वती । नृ=नर । मौलि=शिर । तटिनि-वर=नदियोंमे श्रेष्ठ गंगा । पूतं=पवित्र किया हुआ । अवधूतं=परम पवित्र, तुर्यावस्थित परमहंस-स्वरूप । पिनाक=धनुष । जान=यान, सवारी । भाति=भासित होते हैं । आसीन=विराजमान । तज्ञ=ब्रह्म-स्वरूप जाननेवाले । जज्ञेस यज्ञ अर्थात् कर्मके स्वामी । अर्क=सूर्य । अंघ्रि=चरण । कैवल्य=मोक्ष । अन-वरत=निरंतर, नित्य, एकरस ।

**भावार्थ**—हे शंकर, आप अज्ञानांधकार दूर करनेके लिए साक्षात् सूर्य हैं । हे रुद्र, हे कल्याणरूप, हे शरण्य, आप मेरा शोक हरनेवाले हैं । आप सारे संसारको प्रसन्न करते हैं । आपके ललाट पर बाल चंद्र विराजमान् हैं, आपके बड़े-बड़े नेत्र

कमलके समान हैं और सौ करोड़ कामदेव के समान सौन्दर्यके स्थान हैं ॥१॥ आपका सुन्दर शरीर कम्बु (शंख), कुन्द, चन्द्र और कर्पूरके समान हैं, और उसका तेज करोड़ों सूर्यके समान जगमगा रहा है। आपने सारे शरीरमें भस्म लगा रखी है; आधे अंगमें पार्वती शोभित हो रही हैं और साँपों और नर-कपालोंकी माला अलग ही निराली छटा दिखा रही है ॥२॥ मस्तकपर जटा-जुटों का मुकुट धारण किया है, उसपर बिजलीके समान चमकती हुई विष्णु भगवान के चरणसे पवित्री भूता गंगाका जल और भी शोभा दे रहा है। कानोंमें कुंडल पहने हैं, और गले में हालाहलविष झलक रहा है। ऐसे करुणाके स्थान और तुर्यावस्थित परमहंस-स्वरूप शिवकी मैं बन्दना करता हूँ ॥३॥ आपके हाथोंमें शूल, बाण, धनुष और तलवार है। शत्रु-रूपी वनके जलानेको आप अग्नि-रूप हैं। बैलपर आप सवार रहते हैं। बाघ और हाथीका चमड़ा आपका वस्त्र है। आप तत्त्वज्ञानके मेघ हैं, महान् ज्ञानी हैं। सिद्ध, देव, मुनि, मनुष्य आदि से आप सेवनीय हैं ॥४॥ ताण्डव नृत्य करते हुए आप सुन्दर डमरुको 'डिमडिम-डिमडिम' बजाते है। आप भासित तो होते हैं अशुभ (अशिव) के समान, किंतु हैं श्रेयकी मूर्ति, साक्षात् शिव। महाप्रलयके समय आप समस्त ब्रह्माण्डको भस्म कर डालते हैं। कैलासमे तो आपका भवन है और काशीपुरीमे आप आसन लगाये विराजमान हैं ॥५॥ हे विभो! आप तत्त्ववेत्ता, सर्वज्ञ तथा यज्ञों अर्थात् कर्मोंके अधिष्ठाता हैं। हे पुरारि, यह संसार आपके अंश से उत्पन्न हुआ है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सुर्य वरुण, अग्नि वसु, मरुत और यम आपके चरणों की सेवा करके सर्वाधिकारी बने हैं ॥६॥ आप कला-रहित, उपाधि-रहित, त्रिगुणसे परे, अविनाशी परब्रह्म हैं। आप कर्म मार्ग में एक ही हैं। आप अजन्मा और निर्विकार हैं। सारा ब्रह्माड आपही का रूप है, आपका स्वरूप महान् भयानक है; आप देवताओं के स्वामी हैं, सर्वान्तर्यामी, सर्वस्वरूप और सबका उपकार करनेवाले हैं ॥७॥ हे शिवजी, जिसपर आप कृपा कर देते हैं, उसे ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म और मोक्षका आनन्द और सुन्दर सौभाग्य, ये सब अनायास मिल जाते हैं। इतना सब होनेपर भी मुर्ख मनुष्य आपके चरणोंका आधार छोड़ संसारके प्रवृत्ति-मार्गपर चलते हुए इधर-उधर भटकते फिरते हैं! किमाश्चर्यमतः परम्! ॥८॥ हे शंभो! मैं तुलसीदास, भ्रष्ट बुद्धि वाला, महान् दुष्ट, अत्यन्त दुखी और खिन्न आपकी शरण मे आया हूँ

हे मदनमर्दन ! आप श्रीरामजीके चरण कमलों में मुझे ऐसी अनपायिनी भक्ति दीजिए, जिसके प्रभावसे मायात्मक भेद-बुद्धिका सर्वथा नाश हो जाय ॥६॥

टिप्पणी—( १ ) शिवजी का शरीर शंखके समान पवित्र, सच्छिकरण और आह्लादकारी है, कुंद-पुष्पके समान कोमल है, चन्द्रमाके समान शीतल और कर्पूरके समान सुगन्धित है। इसीसे कंबु, कुंद, इंदु और कर्पूर की उपमा दी गई है।

( २ ) 'हरिचरण पूतं'—जब विष्णुभगवान् ने वामनरूप धारणकर राजा बलिसे तीन पैर पृथ्वीका दान माँगा था, और अपना शरीर ब्रह्माण्डव्यापी बनाया था, उस समय ब्रह्मा ने उनके चरण धोकर उस जलको अपने कमण्डलु में ले लिया था। वही जल गंगाका आदि मूल है।

( ३ ) 'गरल कण्ठ'—शिवजीने समुद्र से निकला हुआ विष कंठमें ही धारण कर लिया था। यह इसलिए कि हृदय में श्रीरामचन्द्रजीका वास है, वहाँ तक इस विषम विषकी ज्वाला न पहुँचनी चाहिए। इससे बढ़कर माधुर्यभाव की रक्षा और क्या होगी ?

( ४ ) 'डमरु डिमडिम'—कहते हैं, जब शिवजीने तांडव-नृत्य के अवसर पर डमरू बजाई थी, तब उसमें से व्याकरण के 'अइउण' आदि सूत्रों का प्राकट्य हुआ था। इसीसे इन सूत्रों को 'माहेश्वर सूत्र' कहते हैं।

( ५ ) अकल—चंद्रमा के समान शिवजीमें क्षय और वृद्धि नहीं हैं, इसी से उनको कला-रहित कहा है।

## भैरवरूप शिव-स्तुति

### ( ११ )

भीषनाकार भैरव भयंकर भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति विपति हरता।
मोह-मूषक-मार्जार, संसार-भय-हरन, तारन-तरन अभय करता ॥१॥
अतुल बल,बिपुल बिस्तार,बिग्रहगौर,अमल अति धवल धरनीधराभं।
सिरसि संकुलित-कल-जूट-पिंगलजटा, पटलसतकोटि विद्यु्च्छटाभं ॥२॥
भ्राज बिबुधापगा आप पावन परम मौलि-मालेव सोभा विचित्रं।
ललित लल्लाट पर राज रजनीस-कल, कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं॥३॥
इन्दु-पावक-भानु-नयन, मदन-मयन, ज्ञान गुन-अयन विज्ञान रूपं।
रवन गिरजा भवन भूधराधिप सदा, स्रवन कुंडल बदन-छबि अनूपं ॥४॥
चर्म्म-असि-सूल-धर,डमरू-सर-चाप-कर,जान वृषभेस करुना-निधानं।
जरत सुर-असुर नरलोक सोकाकुलं,मृदुल चितअजित कृत गरलपानं ॥५॥

भस्म तनु भूषनं, व्याघ्र चर्माम्बरं, उरग-नर-मौलि उर मालधारी।
डाकिनी साकिनी खेचरं भूचरं जंत्र-मंत्र-भंजन प्रबल कल्मषारी ॥६॥
काल अतिकाल कलिकाल व्यालाद‡खग त्रिपुर-मर्दनभीम-कर्मभारी।
सकल लोकांत-कल्पांत-सूलाग्र कृत, दिग्गजाव्यक्त-गुन नृत्यकारी ॥७॥
पाप-संताप-घनघोर-संसृति दीन, भ्रमत जग-जोनि नहीं कोपि त्राता।
पाहि भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र, बंधु गुरु, जनक जननी विधाता ॥८॥
यस्य गुन-गन गनति विमल मति सारदा, निगम नारद-प्रमुख ब्रह्मचारी।
सेस सर्वेस आसीन आनंदबन, दासतुलसी प्रनत त्रासहारी ॥९॥

**पदच्छेद**—भीषण + आकार। प्रथम + अधिपति। धरनीधर + आभ। विद्युत् + छटा + आभं। विबुध + आपगा। माला + इव। रजनी + ईश। भूधर + अधिप। वृषभ + ईस। शोक + आकुलं। चर्म + अम्बरं। कल्मष + अरि। व्याल + आद। सूल + अग्र। दिग्गज + अव्यक्त। कः + अपि। सर्व + ईश।

**शब्दार्थ**—प्रमथ=शिवके गण। धरनीधर=शेषनाग। आभं=आभा, कान्ति। पटल=पंक्ति। विबुधापगा=देवनदी गंगा। लल्लाट=ललाट, मस्तक। कल=सुंदर। धनद=कुबेर। रवन = रमण करनेवाले। मयन = कामदेव। चर्म=ढाल। उरग=साँप। खेचर=आकाशमार्गगामी। आद=भक्षण कर जानेवाला। अव्यक्त = अप्रकट, अगोचर। संसृति=संसार। कोपि=कोई भी। यस्य=जिसका। प्रमुख=प्रभृति। आसीन=विराजमान्।

**भावार्थ**—हे भीषणमूर्ति भैरव! आप सहज ही भयंकर हैं। भूत-प्रेत और गणोके आप स्वामी हैं, और विपत्तियोके विनाशक हैं। आप अज्ञान रूपी चूहेको लपक लेनेवाले बिलाव हैं, संसारके जन्म-मरण-रूपी भयको दूर करनेवाले, दूसरों को तारनेवाले, स्वयं मुक्तरूप तथा अभय प्रदान करनेवाले हैं॥१॥ आपका बल असीम है। आपका बड़ा भारी गौरवर्ण शरीर, जो निर्मल और उज्ज्वल है, शेषनागकी कान्तिके समान है। सिरपर सुन्दर पीले रंगका जटाजूट बँध रहा है, जिसकी आभा सौ करोड़ बिजलियों की पंक्तिके समान है ॥ २ ॥ मस्तक पर मालाके समान विलक्षण छटावाली, परमपवित्र जलवती सुरसरि गंगा

‡ पाठान्तर 'आदि'। शुद्ध पाठ 'आद' ही हो सकता है।

विराज रही हैं। जिनकी सुन्दर भालस्थली पर निशानाथ चन्द्रमाकी कला शोभित हो रही है, ऐसे कुबेरके मित्र शिवजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य आपके नेत्र हैं, आप कामदेवको भस्म कर चुके हैं, ज्ञान विज्ञान-रूप तथा सर्वगुण-संपन्न हैं। पार्वतीजीके साथ आप विहार करते हैं, और हिमालय आपका भवन है। आप कानोंमें कुण्डल धारण किये हैं, और मुखका लावण्य तो अनुपम ही है ॥४॥ ढाल, तलवार, शूल, डमरू, बाण और धनुष हाथोंमें लिये हैं, और बैलपर सवार हैं। आप करुणा के स्थान हैं। विषकी अजेय ज्वालासे देव दैत्य और मृत्युलोक जलता हुआ देखकर दयार्द्र होकर आप उसे पी गये थे ॥५॥ भस्म ही आपके शरीरका भूषण है, बाघका चमड़ा वस्त्र है। आपने साँपों और नरमुण्डोंकी माला हृदयपर धारण कर ली है। डाकिनी, शाकिनी, खेचर, भूचर तथा यन्त्र-मन्त्रका आप नाश कर देते हैं। बड़े-बड़े पातकोंको भी आप भस्म कर डालते हैं ॥६॥ आप कालके भी महाकाल हैं, कलिकाल-रूपी साँपको भक्षण कर जानेवाले गरुड़ हैं, त्रिपुरासुरको चूर-चूर करनेवाले तथा बड़े-बड़े भयंकर असाध्य कार्य पूरे करनेवाले है। समस्त लोक-विनाशक महाप्रलयके समय त्रिशूलकी नोक पर दिग्गजोंको छेदकर अव्यक्त रूप धारण किये आप तांडव नृत्य किया करते हैं ॥ ७ ॥ मैं, पापों और संतापोंसे पूर्ण, इस भयावह संसारमे दुःखी होकर चौरासी लक्ष योनियोंमे भटकता फिरता हूँ, कोई भी बचानेवाला नहीं है। हे भैरवनाथ! हे रामरूपी रूद्र! रक्षा कीजिये, क्योंकि आपही मेरे भाई, गुरु, पिता, माता और विधाता है ॥८॥ जिनकी गुणावलीका शुद्ध बुद्धिवाली सरस्वती, वेद, नारद प्रभृति ब्रह्मचारी और शेष वर्णन करते हैं, ऐसे सर्वेश्वर, आनन्दवन (काशी) में विराजमान्, शरणागतके दुःख दूर करनेवाले शिवजी को मैं, तुलसीदास, प्रणाम करता हूँ ॥९॥

**टिप्पणी—(१) भैरव शिवजीके ही रूप माने गये हैं। यह काशीपुरी के क्षेत्रपाल या कोतवाल कहे जाते हैं।**

**(२) 'मोह-मूषक-मार्जार'—जैसे चूहा वस्त्रादि कुतर डालता है और अनाज खा जाता है, उसी प्रकार मोह, अर्थात् अज्ञान, ज्ञान-विज्ञान और भक्तिरूपी वस्त्रोंका नाश कर देता है। जब शिवरूपी मार्जार उसे भक्षण करनेको मिलें, तभी साधन सिद्ध हो सकते हैं।**

(३) 'धरनीधराभं'-धरणीधरके दो अर्थ हैं—(१) शेषनाग और (२) पर्वत (हिमालय) दोनोंके ही रंग श्वेत माने गये हैं। 'धरनीधर' का 'पर्वत' अर्थ मान लेने पर यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन-सा पर्वत, हिमालय अथवा अन्य कोई। शेषनाग मानना ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

(४) 'भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र'—भैरव रूपसे भव भय हर लीजिए और रामरूपसे मुझे अपनी शरण दीजिये। इस वाक्यमें ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों का ही अद्भुत संमिश्रण हुआ है।

( १२ )

संकरं संप्रदं सज्जनानंददं, सैल-कन्या-वरं परम रम्यं।
काम-मद-मोचनं तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ॥१॥
कंबु कुन्देन्दु-कपूर-गौरं सिवं, सुन्दरं सच्चिदानन्द कंदं।
सिद्ध सनकादि-योगीन्द्र-वृन्दारका,बिष्णु-बिधि-बन्द्य चरनारबिंद॥२॥
ब्रह्म-कुल-बल्लभं, सुलभमतिदुर्लभं, बिकट बेषं, बिभुं, वेदपारं।
नौमि करुनाकरं गरल गंगाधरं, निर्मलं, निर्गुन, निर्बिकारं ॥३॥
लोकनाथं, सोकसूल निर्मूलिनं सूलिनं, मोह-तम-भूरि भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं हरं, कठिन कलिकाल कानन कृसानुं ॥४॥
तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घटसंभवं, सर्वगं सर्वसौभाग्यमूलं।
प्रचुर भव-भंजनं, प्रनत जन रंजनं, दासतुलसी सरन सानुकूलं ॥५॥

**पदच्छेद**—सज्जन+आनन्ददं। कुंद+इन्दु। सत्+चित+आनन्द। सनक+आदि। योगी+इन्द्र। सुलभम्+अति दुर्लभम्। कला+अतीतम्+अजरम्। तज्ञम्+अ+ज्ञान। स+अनुकूलं।

**शब्दार्थ**—संप्रदं=कल्याण देनेवाले। तामरस=कमल। कंद=मेघ। वृन्दारक=देवता। वन्द्य=वन्दना करने योग्य। नौमि=नमस्कार करता हूँ। निर्मूलिनम्=जड़से उखाड़ डालनेवालेको। कलातीत=कला-रहित। कृसानु=आग। तज्ञ=तत्त्ववेत्ता। पाथोधि=समुद्र। घटसंभव=अगस्त्य।

**भावार्थ**—कल्याणकारी,कल्याणदाता,सज्जनोंको आनन्द देनेवाले,पार्वतीके पति, अपूर्व सुन्दर, कामदेवके गर्वको खर्व करनेवाले, कमल-जैसे नेत्रवाले और केवल भक्तिसे प्राप्त होनेवाले शिवका मैं भजन करता हूँ॥१॥ उनका शरीर कंबु,

कुंद, चन्द्र और कर्पूरके समान सचिक्कण, कोमल, श्वेत, शीतल और सुगन्धित है। वे मंगलमय, लावण्यमूर्त्ति और आनन्द-कन्द परब्रह्मस्वरूप हैं। उनके चरण-कमलोंकी वन्दना सिद्ध, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बड़े-बड़े योगी, देवता, विष्णु और ब्रह्मा किया करते हैं ॥ २ ॥ उन्हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंका कुल प्यारा है, वे सज्जनोंको सुलभ और दुर्जनोको दुर्लभ है। उनका रूप बड़ाही विकराल है। वे सर्वशक्तिसंपन्न और वेदोके ज्ञानसे परे हैं। ऐसे करुणामय, विष और गंगाको धारण करनेवाले, निर्मल, त्रिगुणातीत और विकाररहित शिवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ वे लोकोंके रक्षक, शोकों और विघ्न-बाधा-रूपी कंटकोंको जड़से उखाड़ कर फेंक देनेवाले, त्रिशूल धारण करनेवाले और प्रगाढ़ अज्ञानांधकारको सूर्यके समान नाश कर देनेवाले है। वे कालके भी काल, सदा एकरस, वृद्धावस्था-रहित, संसार-हर्त्ता और घोर कलिकालरूपी वन-को जला देनेवाले साक्षात् अग्नि हैं ॥ ४ ॥ तत्त्ववेत्ता, अज्ञानरूपी समुद्रको पी जानेवाले अगस्त्य-रूप, सर्वान्तर्यामी, सब प्रकारके सुखोके आदिस्थान, अपार संसारके जन्म-मरण-रूपी दुःखोके नाश-कर्त्ता, शरणागतोको प्रसन्न करनेवाले परमकृपालु शिवजीकी शरण तुलसीदास है ॥५॥

**टिप्पणी—'पाथोधि-घट-संभवं—लिखा है कि समुद्रके तट पर एक टिट-हरी अण्डे रख दिया करती और समुद्र अपनी लहरोंसे उन्हें बहा ले जाता। निःसन्तान होनेसे टिटहरी सदा दुःखी रहती थी। एक दिन उसने महर्षि अगस्त्य से अपना दुःख रोया। अगस्त्यने,उसे सान्त्वना देकर, समुद्रका आच-मन कर लिया। एक बूँद भी जल सागर में न रहा। पीछे देवताओंके विनय करने पर महर्षिने मूत्रद्वारा सारा जल बाहर निकाल दिया। कहते हैं, तभीसे समुद्रका जल खारा हो गया है।**

### राग वसन्त

( १२ )

सेवहु सिव-चरन-सरोज-रेनु। कल्यान-अखिल-प्रद कामधेनु ॥१॥
कर्पूर गौर, करुना-उदार। संसार-सार, भुजगेन्द्र हार ॥२॥
सुख-जन्मभूमि, महिमा अपार। निर्गुन, गुननायक, निराकार ॥३॥
त्रय नयन, मयन-मर्दन महेस। अहँकार-निहार उदित दिनेस ॥४॥

वर बाल-निसाकर मौलि भ्राज । त्रैलोक-सोकहर, प्रमथराज ॥५॥
जिन्हकहँ बिधि सुगति न लिखीभाल। तिन्हकी गति कासीपति कृपाल ॥६॥
उपकारी कोऽपर हर समान । सुर-असुर जरत कृत गरल-पान ॥७॥
बहु कल्प उपायन करि अनेक । बिनु संभु कृपा नहिं भव-विवेक ॥८॥
विज्ञान-भवन, गिरिसुता-रवन । कह तुलसिदास मम त्रास-समन॥९॥

**पदच्छेद**—कः+अपर ।

**शब्दार्थ**—अखिल=सर्व । मयन=कामदेव । निहार=पाला । उद्दित=उदय-कालीन । बाल=द्वैजका । प्रमथ=गण । सुगति=मोक्ष । कोऽपर=कौन दूसरा । रवन=रमण करनेवाले ।

**भावार्थ**—सर्व कल्याणकी देनेवाली कामधेनुके समान, शिवजीके चरण-कमलोंकी रजका सेवन करो ॥१॥ शिवजी कर्पूरके समान गौराग हैं, करुणाके दाता है, असार संसारके सार हैं और सर्पराज वासुकिनागका हार धारण करने-वाले है ॥ २ ॥ वे सुखोंके आदिस्थान हैं, उनकी महिमाका कोई पार नहीं है, मायात्मक गुणों (सत्त्व, रज और तम) से परे, सर्व दिव्य गुणसंयुक्त और अस्ति-भाति आदि षड्विकारोंसे रहित हैं ॥३॥ तीन नेत्रवाले, कामदेवको ध्वंस करने वाले, देवाधिदेव शंकर, अहंकाररूपी पालेके लिए, उदय-कालीन सूर्य हैं ॥४॥ उनके मस्तक पर द्वैजका चन्द्रमा विराजमान है । वे तीनों लोकोंके दुःख दूर करनेवाले और गणों के स्वामी हैं ॥५॥ ब्रह्माने जिनके माथे पर मोक्षका नाम तक नहीं लिखा, उन्हें भी काशीनाथ कृपालु शिव मुक्ति दे देते हैं ॥ ६ ॥ जिन्होंने, देवों और दैत्योंको जलता हुआ देख, बिष-पान कर लिया, ऐसे शंकर-के समान संसारमें और कौन उपकारी है ? ॥ ७ ॥ अनन्त कल्पों तक नाना प्रकारके साधन क्यों न करो, किन्तु बिना शिवजीकी कृपाके इस मायात्मक संसारका सदसत् ज्ञान होना असम्भव है ॥८॥ तुलसीदास कहते हैं, विज्ञानरूप, पार्वतीवल्लभ शिवजी मेरे भयको नाश करनेवाले हैं ॥९॥

**टिप्पणी—'भव-विवेक'—'ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और संसार असत्य—यही सत् ज्ञान है और इसका विपरीत असत् ज्ञान । हेर-फेरके ज्ञानको ही 'अविद्या' कहते हैं । सदसत् ज्ञानको विद्या या विवेक कहते हैं । यह विवेक-लाभ बिना परमात्माकी कृपाके असंभव है ।**

( १४ )

देखो देखो, बन बन्यो आज उमाकंत। मानों देखन तुमहिं आई रितु बसंत ।१।
जनु तनुदुति चंपक कुसुम-माल। बर बसन नील नूतन तमाल ॥२॥
कल कदलि-जंघ, पद कमल लाल। सूचत कटि-केसरी, गति-मराल ॥३॥
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग। नूपुर किंकिनि कलरव बिहंग ॥४॥
कर नवल बकुल, पल्लव रसाल। श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल ॥५॥
आनन सरोज, कच मधुप गुञ्ज। लोचन बिसाल नव नील कंज ॥६॥
पिक बचन चरित बर बरहि कीर। सित सुमन हास, लीला समीर ॥७॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रच पंचबान ॥८॥
करि कृपा हरिय भ्रम फंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥९॥

**शब्दार्थ**—उमाकंत=पार्वती-पति। चंपक=चम्पाका फूल। सूचत=स्मरण दिलाते है। केसरी=सिंह। बकुल=मौलसिरी। श्रीफल=बेल। बरहि=मोर। कीर=तोता। पंचबान=कामदेव। सुखराशि=आनन्दघन।

**भावार्थ**—हे शिवजी, देखिए, आज आप वन बने है। आपके अर्द्धाङ्गमें जो पार्वती विराज रही हैं, वे मानो वसन्तरूपमे आपको देखने आई है ॥ १ ॥ उनके शरीरकी काति मानों चम्पाके फूलोंकी माला है और सुन्दर नीले वस्त्र नवीन तमाल-पत्र हैं ॥ २ ॥ सुन्दर जंघाएँ केलेके वृक्ष और पैर लाल-लाल कमल हैं। कमर सिंहकी तथा चाल हंसकी सूचना दे रही है, अर्थात् पतली कमर सिंहकी कमरके समान और गति हंसकी गतिके समान है ॥३॥ अलंकार मानों नाना प्रकारके फूल हैं। पायजेब और करधनी का शब्द मानो पक्षियोका मधुर चहचहाना है ॥ ४ ॥ हाथ मौलसिरी है और आमकी कोंपले कोमल हथेलियाँ। स्तन बेलके फल और चोली लताओंका जाल है ॥५॥ मुख मानो कमल है और बाल गुँजारते हुए भौरे। बड़े-बड़े नेत्र मानों नवीन नीले कमलकी पखड़ियाँ हैं ॥ ६ ॥ मधुर बोल मानो कोयल और चरित्र सुन्दर मोर और तोते हैं। हास्य सफेद फूल है और लीला त्रिविध समीर ॥ ७ ॥ तुलसीदास कहते हैं, हे परम-चतुर शिवजी ! सुनिए, यह कामदेव मेरे हृदयमें बसकर बड़ा छल-छन्द करता है ॥ ८ ॥ कृपा कर इस मायावीका मोहजाल काट दीजिए, जिससे आनन्दघन श्रीरामजी निष्कंटक मेरे हृदयमे निवास करें ॥९॥

टिप्पणी—( १ ) इस पदमें अर्द्धनारी नटेश्वर अर्थात् शिव-पार्वतीका वर्णन वन और वसंतके रूपकमें किया गया है। शिवजीका वर्णन तो पहले ही गोसाईंजी कर चुके हैं, पार्वतीजीका नहीं किया था। जगज्जननि पार्वतीका नख-शिख-वर्णन, स्पष्टरूपमें, अनुचित प्रतीत होने पर, गोसाईंजीको यह अनूठा रूपक सूझा होगा। कुमार-सम्भव प्रणेता महाकवि कालिदासने मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है, पर भक्तश्रेष्ठ गोसाईंजीने मर्यादाभावका भलीभाँति निर्वाह किया है।

( २ ) 'सितसुमन-हास'—साहित्यकारों ने नवरसके जहाँ भिन्न-भिन्न रंग माने हैं, वहाँ हास्यका रंग श्वेत लिखा है। इसीसे इसकी उपमा श्वेत-पुष्पोंसे दी गई है।

(३) इस समग्र पदमें उत्प्रेक्षालंकार है। इसका लक्षण इस प्रकार है-

"कीजै जहँ सभावना, वस्तु हेतु फल माह।
उत्प्रेक्षा तासों कहत, जे सुकविन के नाह॥" (पद्माभरण)

वस्तु, हेतु और फलमें जहाँ संभावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। स्पष्ट शब्दोंमें—जहाँ उपमानका भेद होने पर भी, कुछ कल्पित आरोप कर लिया जाय, वहाँ उत्प्रेक्षालंकार माना जाता है।

## देवी-स्तुति

### राग मारू

### ( १५ )

दुसह दोष-दुख दलनि, करु देवि दाया।
बिस्व-मूलाऽसि, जनसानुकूलासि, कर सूलधारिनि महामूलमाया॥१॥
तड़ित गर्भाङ्ग सर्वाङ्ग सुन्दर लसत, दिव्य पट भव्य भूषन बिराजैं।
बालमृग मंजु खंजन बिलोचनि, चन्द्रबदनि लखि कोटि रति मार लाजैं॥२॥
रूप-सुख-सील-सीमाऽसि, भीमाऽसि रामाऽसि वामाऽसि वर बुद्धिबानी।
छमुख-हेरम्ब-अंबासि, जगदम्बिके, संभु-जायासि जै जै भवानी॥३॥
चंड-भुजदंड-खंडनि, बिहंडनि महिष, मुंड-मद भंग-कर अंग तोरे।
सुंभ निःसुंभ कुम्भीस रन केसरिनि, क्रोध-बारिधि अरि-बृन्द बोरे॥४॥
निगम आगम-अगम गुर्वि तव गुन कथन, उर्विधर करत जेहि सहज जीहा।
देहि मा, मोहि पन प्रेम यह नेम निज, राम घनस्याम तुलसी पपीहा॥५॥

**पदच्छेद**—मूला + असि। सानुकूला + असि। सीमा + असि। भीमा + असि। रामा + असि। वामा + असि। अम्बा + असि। जगत् + अम्बिके। जाया + असि।

**शब्दार्थ**—मूला=जड। असि=हो। महा मूलमाया=पराप्रकृति। छमुख =षड़ानन, स्वामी कार्तिकेय, जिन्होंने तारक राक्षसका वध किया था। भीमा= भयंकरी। रामा=सुन्दरी, रमणीया। जाया=स्त्री। केसरिनि=सिंहिनी। गुर्वि= बड़ा भारी। उर्विधर=पृथ्वी धारण करनेवाले शेष नाग। जीहा=जीभ।

**भावार्थ**—हे देवि ! तुम दुःसह दोष और दुःखोंको दमन करनेवाली हो, मुझ पर कृपा करो। तुम इस संसारकी आदिस्थान हो, भक्तोपर कृपा करनेवाली हो, दुष्टोके संहार करनेके लिए हाथ में त्रिशूल धारण किये रहती हो, और मायाको उत्पन्न करनेवाली पराप्रकृति हो ।। १ ।। तुम्हारे सुन्दर शरीरके प्रत्येक अङ्गमें बिजली सी कौंध रही है, दिव्य ( जो कभी न जीर्ण हो, न मैला हो ) वस्त्र धारण किये हो और सुन्दर आभूषण शोभायमान हो रहे हैं। तुम्हारे नेत्र मृगशावक और खजनके नेत्रोंके समान हैं, और मुख चन्द्रमा-जैसा। तुम्हे देख-कर करोड़ों काम और रति लज्जित होते हैं ।। २ ।। तुम सौन्दर्य, आनन्द और शीलकी मर्यादा हो, और दुष्टोंके लिए भीषणरूप-धारिणी हो। तुम्हीं लक्ष्मी और तुम्हीं पार्वती हो। अधिक क्या, सरस्वती भी तुम्हीं हो। तुम षडानन और गणेशकी माता हो, जगज्जननी हो, शिवजीकी गृहिणी हो; हे भवानी, तुम्हारी जय हो, जय हो ।। ३ ।। चंड दैत्यके भुजदंडोंके टुकड़े-टुकड़े करनेवाली और महिषासुरको मारनेवाली हो। मुण्ड राक्षस के गर्व को खर्व कर तुम्हींने उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग भङ्ग किये हैं। शुंभ और निःशुंभ दैत्यरूपी गजराजोंके लिए तुम रण-सिंहिनी हो। तुमने अपने क्रोध-रूपी समुद्रमें शत्रुओ के झुण्ड के-झुण्ड डुबो दिये है ।। ४ ।। वेद-शास्त्र और हजारों जीभवाले शेष तुम्हारा गुण-गान करते हैं, किन्तु उसका पार पा जाना उनके लिए बड़ा कठिन है। हे माता ! तुलसीदासको एक वर दे दो और वह यह कि मेरा प्रण, प्रेम और नेम श्री-रामचन्द्रजीमें वैसा ही हो—जैसा कि पपीहेका श्यामघन में होता है ।। ५ ।।

**टिप्पणी—( १ ) चंड, मुण्ड, महिषासुर, शुम्भ और निःशुंभ—ये सब बड़े पराक्रमी और घोरकर्मा दैत्य थे। महिषासुर तो शिवजीका ही अंशावतार माना जाता है। भगवती चंडीने इन सबका वध किया था। इनकी विस्तृत कथा देवी-भागवत नामके पुराणमें लिखी है।**

**( २ ) 'राम घनस्याम तुलसी पपीहा'—पपीहा कूप, सरोवर, नदी या**

समुद्रका जल नहीं पीता, केवल स्वाती नक्षत्र में बरसे हुए जलको पीता है। उसी प्रकार तुलसीदासजी घनश्याम रामको छोड़कर और किसी देवी-देवता को नहीं भजना चाहते। यदि यह कहा जाय, कि जो ऐसा ही है, तो फिर गणेश, सूर्य, शिव और देवीकी स्तुति क्यों की, तो इसका समाधान यों हो जायगा कि इन सब देवी—देवताओंका गुण-गान लक्ष्य मानकर नहीं किया। रामरूपी स्वाती-जलके अर्थ ही इन्हें साधन मानकर इनका गुण-गान किया है। अनन्यता और दृढ़ता तो एक रामचन्द्रजी में ही है।

### राग रामकली

( १६ )

जय-जय जगजननि देवि,सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,
भक्ति-मुक्ति-दायिनि, भय-हरनि, कालिका।
मंगल-मुद-सिद्धि-सदनि पर्वसर्वरीस बदनि,
ताप-तिमिर तरुन-तरनि-किरनमालिका ॥१॥
वर्म-चर्म कर कृपान, सूलसेल धनुषबान,
धरनि, दलनि दानव-दल, रन-करालिका।
पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत,
भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका ॥२॥
जय महेस-भामिनी, अनेक रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनी, हिमसैल-बालिका।
रघुपति-पद-परमप्रेम, तुलसी यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनत-पालिका ॥३॥

**पदच्छेद**—सर्वरी + ईस। मृग + अलि।

**भावार्थ**—हे जगन्माता! हे देवि! तुम्हारी जय हो, जय हो। देवता, मनुष्य, मुनि और राक्षस सभी तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम भोग्यैश्वर्य और मोक्ष दोनोंकी ही देनेवाली हो। हे कालिके! तुम अपने भक्तोंका भय दूर करनेवाली हो। कल्याण, सुख और अष्टसिद्धियोंकी तुम परमस्थान हो, तुम्हारा मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर है। तुम दुःख-रूपी अंधकार नष्ट करने के लिए मध्याह्न-कालीन प्रचंड सूर्य-किरणों की माला हो ॥ १ ॥ तुम

शरीरपर कवच धारण किये हो, और हाथोंमें तलवार, त्रिशुल, सॉंग और धनुषबाण लिये हो । हे रण-करालिके! तुम दैत्यों की सेनाका संहार करनेवाली हो । पूतना, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, भूत, ग्रह और बेतालरूपी पक्षी और मृग-समूहके फँसानेके लिए तुम जाल रूप हो ।।२।। हे शिवे ! तुम्हारी जय हो ! तुम्हारे अनेकों नाम और अनेकों रूप हैं । तुम समस्त ब्रह्माण्डकी अधिष्ठात्री और हिमाचलकी कन्या हो। हे भक्तोंकी रक्षा करनेवाली! मै, तुलसीदास, श्रीरघुनाथजीके चरणोमे अटल प्रेम और अचल नेम चाहता हूँ, कृपाकर मुझे यह दे दो और मेरी रक्षा करो ।।३।।

## गंगा स्तुति

### राग रामकली

### ( १७ )

जै जै भगीरथ-नन्दिनि, मुनि-चय-चकोर-चन्दिनि,
नर-नाग-बिंबुध-बन्दिनि, जय जन्हु-बालिका ।
विष्णु-पद-सरोजजासि, ईस-सीस पर बिभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ।।१।।
बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रयताप-हारि,
भवँर वर बिभंगतर तरंग-मालिका ।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवलधार,
भंजन भव-भार, भक्ति-कल्पथालिका ।।२।।
निज तटवासी बिहंग, जल-थल-चर पसु पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर,
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ।।३।।

**पदच्छेद**—सरोजजा+असि । त्रिपथगा+असि । पूजा+उपहार ।

**शब्दार्थ**—नन्दिनि=दुलारी, पुत्री । चय=झुंड । विबुध=देवता । पद सरोजजासि=चरण कमलोंसे उत्पन्न हुई हो । विभाति=शोभायमान हो रही हो । त्रिपथगासि=पाताल, भूलोक और स्वर्गलोकके मार्गोंसे जानेवाली हो । छालिका=

=धोनेवाली । विभंगतर=अति चंचल । थालिका=थाल्हा, थामला । जटिल=जटाजूट रखाये हुए ।

**भावार्थ**–हे भगीरथ-दुलारी ! तुम्हारी जय हो, जय हो । मुनियो के समूहरूपी चकोरों के लिए तुम चंद्रिका-रूप हो । मनुष्य, नाग और देवता तुम्हारी वंदना करते हैं । हे जान्हवी ! तुम्हारी जय हो । तुम विष्णु भगवान्‌के चरणकमलोंसे उत्पन्न हुई हो, शिवजीके मस्तक पर विराजती हो; स्वर्ग, भू और पाताल इन तीन मार्गों पर तीन धाराओंसे होकर जाती हो । तुम पुण्योंकी राशि तथा पापोंको धो देनेवाली हो।।१।। तुम अगाध और स्वच्छ जलको धारण किये हो। वह जल शीतल और दैहिक, दैविक तथा भौतिक इन तीनों तापोंका हरनेवाला है । तुम सुंदर भँवर तथा अत्यंत चंचल लहरोंकी माला धारण किये रहती हो । नगर निवासियोने अनेक सामग्रियोंसे तुम्हारा जो षोड़शोपचार पूजन किया है उससे चन्द्रमाके समान तुम्हारी धवल धारा अधिक शोभाको प्राप्त हो रही है । तुम्हारी धारा संसारके जन्म-मरण-रूपी भारको नाश करनेवाली तथा भक्तिरूपी कल्प वृक्षके लिए थाल्हा-रूप है ।।२।। तुम्हारे तीरपर पक्षी, जलचर, थलचर, पशु, कीड़े-मकोड़े, जटाधारी तपस्वी या जो भी रहते हैं, सबको तुम समदृष्टिसे पालती-पोसती हो । हे अज्ञानरूपी महिषासुरको संहार करनेके लिए कालिकारूपिणी गंगे, मुझ तुलसीदासको केवल ऐसी बुद्धि दे दो कि जिससे मैं श्रीरघुनाथजीका नाम स्मरण करता हुआ तुम्हारे तटपर विचरता फिरूँ ।।३।।

**टिप्पणी**—( १ ) **'भगीरथ-नन्दिनी'—सूर्यवंशी महाराज सगरके साठ हजार पुत्र थे । उन्होंने अज्ञानवश योगेश्वर कपिलदेव पर यह दोषारोपण कर दिया कि उन्होंने हमारे पिताजीका अश्वमेधका घोड़ा चुरा लिया है, यद्यपि चुराया था मायावी इन्द्रने । इसपर कपिलदेवने उन सबको योगज्वाला द्वारा भस्म कर दिया । उन लोगोंके उद्धारके लिए उनके पौत्र महाराज भगीरथ कठोर तप करके शिवजीसे गंगाको भूलोकपर उतार लाये । इसीसे गंगाको 'भगीरथी' कहते हैं ।**

**(२) 'जन्हु बालिका'—जब महाराज भगीरथ गंगाको अपने रथके पीछे-पीछे ला रहे थे, उस समय रास्तेमें ध्यानावस्थित जह्नु ऋषि आसन लगाये बैठे हुए थे । गंगाने ज्योंही उनके आश्रममें प्रवेश किया, वह उन्हें चुल्लूमें भर कर पी गये । पश्चात् भगीरथके बहुत विनय करने पर ऋषिने गंगाको जंघासे निकाल दिया । तभीसे गंगाका नाम जान्हवी पड़ गया है ।**

( ३ )'विष्णु-पद-सरोजजासि'—पद १० की दूसरी टिप्पणी देखिए ।

( ४ ) 'भयताप-हारि'—मनको शुद्ध करनेवाला, रोगोंका नाश करनेवाला और जीव-जन्तुके भयको दूर करनेवाला गंगाका जल है; कहा भी है—

"शरीरञ्च नवच्छिद्रं, व्याधिग्रस्तं कलेवरम् ।
औषधं जाह्नवीतोयं, वैद्यो नारायणो हरिः ॥"

( १८ )

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।
विष्णु-पदकंज मकरंद इव अम्बुबर बहसि,दुख दहसि अघवृंद-विद्राविनी १
मिलित जलपात्र-अजजुक्त-हरिचरनरज,विरजबरबारित्रिपुरारिसिरधामिनी।
जन्हु कन्या धन्य, पुन्यकृत सगर-सुत, भूधरद्रोनि-विद्दरनि बहुनामिनी २
जच्छ गंधर्व मुनि किन्नरोरग दनुज,मनुज मज्जहिं सुकृतपुञ्ज जुत-कामिनी ।
स्वर्ग-सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे, मोह-मद-मदन-पाथोज-हिम जामिनी ३
हरित गंभीर वानीर दुहुँ तीर वर,मध्य धारा बिसद,बिस्व अभिरामिनी ।
नील परजंक कृत सयन सर्पेस जनु,सहस सीसावली स्रोत सुर स्वामिनी ४
अमित महिमा,अमितरूप,भूपावली-मुकुटमनि-बन्द्य*त्रैलोक-पथगामिनी।
देहि रघुबीर-पद-प्रीति निरभर मातु,दासतुलसी त्रासहरनि भवभामिनी ५

**पदच्छेद**—जगत् + अखिल । किन्नर + उरग । पाथः + ज । सीस + अवली । सर्प + ईस । भूप + अवली ।

**शब्दार्थ**—अखिल पावनी=सबको पवीत्र करनेवाली । बहसि=धारण करती हो । पुन्यकृत=पवित्र कर दिये । द्रोणि=गुफा या कन्दरा । विद्दरनि=तोड़नेवाली । उरग=सर्प । पाथोज=कमल । वानीर=बेंत । परजङ्क=पर्यंक, पलंग । निरभर=संपूर्ण । भव-भामिनि=शिवप्रिया ।

**भावार्थ**—हे गंगे ! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम समस्त संसारको पवित्र करनेवाली हो । तुम विष्णु भगवान्के चरणारविन्दके परागके समान सुन्दर जल धारण करनेवाली,दुःखोंको भस्म करनेवाली और पाप-समूहको नाश करनेवाली हो ॥१॥ भगवच्चरणरेणु-सहित तुम्हारा जल ब्रह्माके कमण्डलुमे भरा

* 'वंदिते' भी पाठान्तर है ।

रहता है। तुम्हारा निर्मल ( अथवा विरक्ति उत्पन्न करनेवाला ) जल शिवजीके मस्तकपर रहा करता है। हे जाह्नवी ! तुम धन्य हो ! तुमने सगर महाराजके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार किया है। तुमने अपने प्रबल वेगसे पहाड़ोंकी कद-राएँ तोड़ताड़ डाली है। तुम्हारे अनेक नाम हैं ॥२॥ जो यक्ष, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं, वे अनन्त पुण्योंके भागी और सफल-मनोरथ हो जाते है। तुम स्वर्गकी निसेनी और ज्ञान-विज्ञान-की देनेवाली हो। तुम अज्ञान, अहंकार और कामरूपी कमलोंके मुरझा देनेके लिए शिशिर ऋतुकी रात्रि हो ॥३॥ तुम्हारे दोनो सुन्दर तटोंपर हरे और घने बेंतके वृक्ष लगे हैं, बीचमें संसारको प्रसन्न करनेवाली विशाल और स्वच्छ जल धारा बह रही है। यह दृश्य देखकर यह भाव उठता है, कि मानों नीले पलंग-पर सहस्र फनवाले शेषनाग सो रहे हैं। तुम्हारे सहस्रों सोते शेषकी फनावलीकी समता करते हैं ॥४॥ तुम्हारी महिमा असीम है, रूप अनुपम है। राजाओंकी मुकुटमणियोसे, हे त्रिपथगे ! तुम सदा वन्दनीय हो। हे शिवप्रिये ! हे भव-भयहारिणी ! तुलसीदासको श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमे पूर्ण प्रेम दो ॥५॥

**टिप्पणी-(१) 'विष्णु-पद-कंज-मकरंद'—पद १० की दूसरी टिप्पणी देखिए।**

**(२) 'विरजवरवारि'—(१) निर्मल जल (२) वह जल, जिसके पान करनेसे रजोगुण नष्ट हो जाय और सतोगुणका उदय हो।**

**(३) 'जन्हु-कन्या'—पद १७ की दूसरी टिप्पणी देखिए।**

**(४) 'पुन्यकृत सगर सुत'—पद १७ की पहली टिप्पणी देखिए।**

**(५) 'नील परजंक कृत सयन सर्पेस जनु'—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसका लक्षण १४ पद की तीसरी टिप्पणीमें देखिए।**

( १९ )

हरनि पाप त्रिबिध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद मनोरथ फरित ॥१॥
सोहत ससि धौल धार सुधा सलिल भरित।
बिमलतर तरंग लसत रघुबर के से चरित ॥२॥
तो बिनु जगदम्ब गंग, कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपारसिंधु तुलसी किमि तरित ॥३॥

**शब्दार्थ**—बिलसत=शोभायमान होती है। कल्पबेलि=कल्पवृक्षकी बेलि, सारी मनस्कामनाएँ पूरी करनेवाली। फरित=फली हुई। करित=करता, यह अवध प्रान्तीय प्रयोग है। तरित=यह भी अवध-प्रान्तीय प्रयोग है।

**भावार्थ**—हे गंगे! नाम-स्मरण करते ही तुम पापों और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) दुःखोंको दूर कर देती हो। आनन्द और मनस्कामरूपी फलोंसे फली हुई कल्प-लताके समान तुम पृथ्वीपर सुशोभित हो रही हो ॥१॥ अमृतोपम जलसे भरी हुई तुम्हारी धवल धारा चन्द्रमाके समान दिखाई देती है; उसमें अति स्वच्छ लहरें, शुभ्र रामचरित्रकी नाईं, शोभायमान हो रही हैं ॥२॥ हे जगज्जननि गंगे! यदि यहाँ तुम न होती, तो न जाने यह कलियुग क्या-क्या अनर्थ न कर डालता? और जो होता सो होता, पर यह तुलसीदास इस अपार संसार-सागरको कैसे पार कर पाता ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'हरनि पाप'—गंगाके स्मरण करते ही पाप छूमन्तर हो जाता है, सामने ठहर ही नहीं सकता—इसपर कविवर पद्माकर का यह क्या ही ओजपूर्ण कवित्त है—**

"जैसे तैं न मोकों कहूँ नेकहू डरात हुतो, तैसे अब तोसों हौंहू नेकहू न डरिहौं।
कहै पदुमाकर, प्रचंड जो परैगो, तौ उमंड करि तोसों भुजदंड ठोकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीचहीते, कीच बीच नीच तो कुटुम्बहिं कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार, तोहिं, गंगा की कछार में पछारि छारि करिहौं॥"
(गङ्गा-लहरी)

( २० )

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि, नभ-पताल-धरनि।
सुर-नर-नाग-मुनि-सिद्ध-सुजन-मंगल करनि ॥१॥
देखत दुख-दोष-दुरति-दाह-दारिद-दरनि।
सगर-सुवन-साँसति-समनि, जलनिधि-जल-भरनि ॥२॥
महिमाकी अवधि करसि बहु बिधि-हरि-हरनि।
तुलसी करु बानि बिमल, बिमल बारि बरनि ॥३॥

**शब्दार्थ**—दुरित=पाप। दरनि=नाश करनेवाली। साँसति=कष्ट।

**भावार्थ**—हे गंगे! तुम शिवजीके शिरपर विराजती हो; आकाश, पाताल और पृथ्वी—इन तीनों मार्गोंसे बहती हुई शोभायमान होती हो। देव, मनुष्य, नाग, मुनि, सिद्ध और संतोंका तुम सदा कल्याण करती हो ॥१॥ दुःखों (धन,

जन, प्रिय आदिका वियोग), दोषो ( गो-ब्राह्मणहिंसा आदि ), साधारण पापों, कष्टों और दारिद्रयको देखते ही नष्ट कर देती हो। तुमने महाराज सगरके साठ सहस्र पुत्रोंको यम यातनासे मुक्त किया है। जलनिधि समुद्रमें भी तुम सदा जल भरा करती हो, उसे भी अपना याचक बना रखा है ॥२॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी तुम्हींने अत्यन्त महिमा बढ़ाई है, ये तुम्हारी ही बदौलत ऐसे नामीधामी हुए है। हे गंगे ! जैसा निर्मल तुम्हारा जल है, वैसी ही निर्मल तुलसीदासकी वाणी भी कर दो, जिससे वह श्री रघुनाथजीके पवित्र चरित्र गा सके ॥३॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'सगर सुवन-साँसति-समनि'—१७ पद की पहली टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'विधि-हरि-हरनि'—ब्रह्माके कमंडलुमें रहनेसे, विष्णुके चरणोंसे निकलनेसे, और शिवके मस्तकपर विराजनेसे इन तीनों देवताओंका महत्त्व पराकाष्ठाको पहुँचा दिया है। ब्रह्मा और विष्णु तो पहलेसे कुछ-कुछ विख्यात भी थे पर श्मशानवासी शंकरकी कौन पूछता, यदि उनके मस्तकपर गंगाने कृपा न की होती ? कहा है।

''लोचन असम अङ्ग भसम चिता की लाइ,तीनों लोकनायक सो कैसेकैं ठहरतो।
कहै पदमाकर, बिलोकि इमि ढंग जाके, बेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो ॥
बाँधे जटाजूट बैठि परबत-कूट माहिं, महाकालकूट कहौ कैसेकै ठहरतो।
पीवै नित भंगै,रहै प्रेतनके संगै,ऐसे पूछतो को नंगै जा न नंगै सीस धरतो ॥''
( गङ्गा-लहरी )

## यमुना-स्तुति

### राग बिलावल

### ( २१ )

जमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों-त्यों सुकृत-सुभट कलि-भूपहिं, निदरि लगे बहि काढ़न ॥१॥
ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यो जमगन-मुख मलीन है आढ़न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघमेघ लागे डाढ़न ॥२॥

**पदच्छेद**—जगत् + अघ। अन् + अघ।

**शब्दार्थ**—सुकृत-सुभट=पुण्य-रूपी बड़े-बड़े योद्धा। आढ़=आड़,अवलम्ब। जवास=जवासा,जो वर्षामे जलकर सूख जाता है। डाढ़न लागे=जलाने लगे।

**भावार्थ**—यमुनाजी वर्षा ऋतु में ज्यो-ज्यो बढ़ने लगीं, त्यों-त्यों सत्य, दया, अहिंसा आदि पुण्य पनप-पनपकर, योद्धाओंकी नाई, सुकृतियोंके हृदयसे कलिरूपी राजाको तिरस्कृत कर निकाल बाहर करने लगे ।। १ ।। वर्षाकालमें बाढ़के कारण ज्यों-ज्यों यमुनाजीका जल मैला होने लगा त्यो-त्यों यमदूतोंके मुखपर स्याही फिरने लगी, बेचारे उदास हो गये, कि अब हम किसे बाँधकर यमलोक ले जायँगे, सब-के-सब यमुना-स्नानकर स्वर्ग जा रहे हैं। उन्हे अब कहीं कोई आसरा न रहा। तुलसीदास कहते हैं, पुण्यरूपी मेघ संसारके पापरूपी जवासेको जलाकर भस्म करने लगे, अर्थात् यमुनाके बढ़ते ही पुण्योंकी वृद्धि और पापोंका क्षय हो गया ।। १ ।।

**टिप्पणी—( १ )'जमगन-मुख मलीन' इस प्रसंगपर कविवर ग्वालने क्या ही उत्तम कवित्त कहा है—**

"ख्याल जमुनाके लखि नाके भये चित्रगुप्त,
बैन करुना के बोलि मेरी मति ख्वै गई।
कौन गहै कर में कलम, कौन काम करै,
रोस की दवाइत सो रोसनाई ध्वै गई ।।
ग्वाल कवि, काहे तें न कान दै जमेस, सुनो,
नोकरी चुकाय कहाँ तेरी आँखि स्वै गई ।
लेखा भयो ड्योढ़ो,रोजनामा को सरेखा भयो,
खाता भयो खतम, फरद रद ह्वै गई ।।"

(जमुना-लहरी)

## काशी-स्तुति

### राग भैरव

### ( २२ )

सेइय सहित सनेह देहभरि, कामधेनु कलि कासी ।
समनि सोक संताप पाप रुज, सकल सुमंगल-रासी ।। १ ।।
मरजादा चहुँओर चरन बर, सेवत सुरपुर बासी ।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ।। २ ।।
अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी ।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु, लूम लसति सरितासी ।। ३ ।।

दंडपानि भैरव विषान, मलरुचि खलगन भयदा सी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी ॥ ४ ॥
मनिकर्निका बदन-ससि-सुन्दर, सुरसरि सुख सुखमा सी।
स्वारथ-परमारथ-परिपूरन, पंचकोसि महिमा सी ॥ ५ ॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा सी।
सिद्धि, सची, सारद पूजहिं, मन जुगवत रहित रमा सी ॥ ६ ॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी।
ब्रह्म जीव सम रामनाम जुग, आखर बिस्व-बिकासी ॥ ७ ॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच उदासी ॥ ८ ॥
कहत पुरान रची केशव निज कर-करतूति कला सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी ॥ ९ ॥

**पदच्छेद**—सरिता + असी।

**शब्दार्थ**—अन्तरअयन=अन्तर्गृही, मध्यस्थल। गलकंबल=गायके गलेमें लटकती हुई खाल। बरुना=एक नदी। विभाति=शोभित होती है। लूम=पूँछ। विषान=सींग। लोलदिनेस=लोलार्ककुण्ड। त्रिलोचन=काशीमें एक तीर्थका नाम। लालति=प्यार करती है। सची=इन्द्राणी। माधव=विन्दु-माधव भगवान्। गव्य=पञ्चगव्य; गोबर, गोमूत्र, दूध, दही और घृत का संमिश्रण, जिसे पान करने से पापोंका प्रायश्चित्त किया जाता है। आखर=अक्षर। चारितु=चारा, घास। प्रपंच=संसार। सुपासी=सुखी।

**भावार्थ**—इस कलियुग में काशीरूपी कामधेनुकी सेवा प्रेम-सहित मरण-पर्यन्त करनी चाहिए। यह धेनु दुःख, क्लेश, पाप और रोगका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारके कल्याणोंकी राशि है॥१॥ चारो ओर जो मर्यादा अर्थात् सीमा खिंची हुई है, वही इस कामधेनुके चारों चरण है। स्वर्गके देवगण तक इसके चरणों की सेवा करते हैं। यहाँ जितने तीर्थस्थान हैं, वे सब इसके अंग-प्रत्यंग हैं; और नाशरहित अनन्त शिवलिंग इसके रोम हैं॥२॥ अन्तर्गृही (काशीका मध्य भाग) इस कामधेनुके निवासकी सुंदर शाला है। अर्थ, धर्म, काम,

मोक्ष—ये चारों फल इसके चारों थन हैं। वैदिक धर्ममें निष्ठा रखनेवाले प्राणी इसके बछड़े हैं, वे ही इसका दूध पी सकते हैं। वरुणा नदी, गलकंबल-जैसी, शोभा बढ़ा रही है और असी नामकी नदी पूँछ बनकर अपनी निराली ही छटा दिखा रही है ॥२॥ हाथमे दण्ड लिये भैरवनाथ इसके सींग हैं, पापकर्मा दुष्ट जनोंको यह सदा अपने सींगोंसे डरवाती रहती है। लोलार्क ( कुंड ) और त्रिलोचन (एक तीर्थ) इसके दोनो नेत्र है और कर्णघण्टा नामका स्थान इसके गलेमे बँधा हुआ घंटा है ॥४॥ मणिकर्णिका तीर्थ ही चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, और गंगाजी के निरन्तर प्रवाहसे जो सुख उत्पन्न हो रहा है वही इसकी शोभा है। सासारिक और पारलौकिक सुखोंसे परिपूर्ण जो पञ्चकोसी परिक्रमा है, वही इसकी महिमा है ॥५॥ करुणासिन्धु विश्वनाथ शंकर इस गाय के पालने-पोसनेवाले हैं, और पार्वती इसको सदा प्यार करती रहती हैं। अष्ट सिद्धियाँ, सरस्वती और इन्द्राणी इसका पूजन करती हैं, और लक्ष्मी सरीखी गृहदेवियाँ इसका रुख देखती रहती हैं, कदेखें, क्या आज्ञा मिलती है ॥ ६ ॥ "नमः शिवाय" ऐसा जो पचाक्षरी मंत्र है, वही इसके पंचप्राण ( प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान) है। भगवान् विन्दुमाधव ही आनन्द हैं। पचनद तीर्थ पंचगव्य के समान मनःशुद्धि करनेवाला है। यहाँ संसार को विकसित करनेवाले रामनामके 'रकार' और 'मकार' यह दोनों अक्षर इसकी चिच्छक्ति है ॥७॥ यहाँ जितने प्राणी मरते हैं, उन सबका सुकर्म-कुकर्मरूपी घास, यह गाय चरा करती है। संसारसे विरक्त महापुरुष इसका मोक्ष-रूपी परम पावन पय पिया करते हैं। ॥८॥ पुराणों में लिखा हैं, कि भगवान् विन्दुमाधवने शिल्पशास्त्रकी संपूर्ण कला लगाकर अपने हाथोसे इसकी रचना की है। हे तुलसीदास, यदि तू सुखी होना चाहता हैं, तो काशीमें रहकर निरन्तर श्रीराम नाम जपा कर ॥९॥

**टिप्पणी— (१) 'मरजादा चहुँ ओर'—पूर्व-पश्चिम दो योजन और उत्तर- दक्षिण आधा योजन, अर्थात् वरुणा और असी नाम की नदियों के बीच की सीमा।**

"द्वियोजनं तु पूर्वं स्यात् योजनार्द्धं तदन्यथा।
वरुणा च नदी चासीत्तयोर्मध्ये वाराणसी ॥" (अग्निपुराण)

**(२) 'करनघंटा'—एक ब्राह्मण शिवजीका अनन्यभक्त था। वह शिवके अतिरिक्त किसी देवताका नाम तक नहीं सुनता था। जो कोई उसके आगे विष्णु आदिका नाम ले दे, तो वह कोसों दूर भाग जाता। उसने अपने**

कानोंमें घंटे बांध लिये थे, जिससे विष्णु आदिका नाम न सुनाई पड़े। जहाँ वह रहता था, उस स्थानको आज भी 'कर्णघंटा' के नाम से लोग पुकारते हैं।

(३) 'पंचाक्षरी— शिव भक्तोंका यह परम मंत्र है। 'रुद्रयामल' में इस मंत्र के प्रत्येक अक्षर का माहात्म्य इस प्रकार लिखा है:—

"नकारे धनसंपत्तिर्बहुलाभो भविष्यति।
आरोग्यं सफल कार्यं भवेत्तत्र न संशयः ।।१।।
मकारे निधनं नाशमापदश्च पदे-पदे।
न भोगो लभते तस्य तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।।२।।
शकारे कार्यसिद्धिश्च सफलं च दिने-दिने।
अर्थलाभं भवेन्नित्यं सर्वलाभं भविष्यति ।।३।।
वकारे धननाश च तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।
अकारे विजयं सौख्यं सर्वलाभं भविष्यति ।।३।।
यकारे चार्थलाभश्च धन–धान्य- समन्वितः।
सौभाग्यं च भवेत्तस्य शुभं भवति सर्वदा" ।।५।।

इसी पंचाक्षरी मंत्रपर किसी कविने क्या ही सुन्दर छप्पय रचा है-

प्रणव बीज मनु अज अनादि परमान परमपर,
नीलकंठ निरुपम नकार निरगुन निरीहतर।
महादेव मनुमय मकार श्रुति-सार ब्रह्मवर,
शिव शकार साकार सनातन नमो नमो हर।
बेदान्त वेद सुविचारमय वामदेव विज्ञानमय,
जय जय यकार यज्ञाधिपति, अबिनासी कासीस जय ।।

(४) इस पदमें रूपक अलंकार है।

"उपमेयरु उपमान को, इक करि कहत जु रूप।
सो रूपक द्वै भाँति को, मिलि अभेद तद्रुप ।।' (पद्माभरण)

## चित्रकूट-स्तुति

### राग-वसन्त

( २३ )

सब सोच-विमोचन चित्रकूट। कलिहरन, करन कल्यान बूट ।।१।।

सुचि अवनि सुहावनि आलबाल । कानन बिचित्र, बारी बिसाल ॥२॥
मन्दाकिनि- मालिनि सदा सींच । वर वारि,विषम नर नारि नीच ॥३॥
साखा सुसृंग, भूरुह सुपात । निरझर मधुवर, मृदुमलय बात ॥४॥
सुक,पिक, मधुकर,मुनिवर बिहारु । साधन प्रसून, फल चारि चारु ॥५॥
भव-घोरघाम-हर सुखद छाहँ । थप्यो थिर प्रभाव जानकी-नाह ॥६॥
साधक-सुपथिक बड़े भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥७॥
रस एक, रहित-गुन-करम-काल । सिय राम लखन पालक कृपाल ॥८॥
तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥९॥

**शब्दार्थ**—बूट=हरा वृक्ष । आलबाल=थाल्हा । बारी=खेतो या वृक्षोके चारों तरफ लगाये हुए कॉटेदार पेड, जिनसे पशु आदि से उनकी रक्षा होती रहती है । यह शब्द बुन्देलखंडी है । भूरुह=पेड़ । बात=हवा । नाह=नाथ, स्वामी ।

**भावार्थ**-चित्रकूट सब प्रकार की चिंताओ वा दुःखोसे छुड़ानेवाला है,वह कलियुगका नाश करनेवाला और कल्याणकारी हरा वृक्ष है ॥१॥ पवित्र भूमि उस वृक्ष के लिए सुन्दर थाल्हा है और विचित्र वन, उसे रूँधनेके लिए, बड़ी भारी बारी है ॥२॥ उसे मंदाकिनी रूपी मालिन सदा अपने उत्तम जलसे इस भाँति सींचती रहती है, जैसे दुष्ट स्वभाववाले स्त्री-पुरुष और नीच चाडाल आदि । तात्पर्य यह कि, मंदाकिनीमें बडे-बड़े पापी और नीच जन स्नान करते हैं, पर उनके दुष्कर्मोका प्रभाव वृक्ष पर कुछ नहीं पड़ता, वह ज्यों का-त्यो हरा भरा रहता है ॥३॥ यहाँ के सुन्दर शिखर ही इसकी शाखाएँ और वृक्ष सुन्दर पत्ते हैं । यहाँ जो झरना झरता है, वही मानो इसका मकरन्द है और मलय-मिश्रित त्रिविध समीर इसकी कोमलता और सुगंधकी सूचना देती है ॥४॥ श्रेष्ठ मुनि, जो यहाँ बिहार करते हैं, इस वृक्षमें रमनेवाले तोते, कोयल और भौरे हैं। उनके नाना प्रकार के साधन इसके फूल, और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये ही सुन्दर फल हैं ॥५॥ इस वृक्ष की छाया कठिन संसार के आवागमन-रूपी धूपका नाशकर सुखा देती है । इसके प्रभावको जानकी-बल्लभ श्रीरघुनाथजीने और भी स्थिर कर दिया है ॥६॥ साधक रूपी सुन्दर बटोही बड़े सौभाग्यसे तृप्त होकर अनेक प्रकारके मनोवाच्छित सुख इस वृक्ष के नीचे प्राप्त करते है ॥७॥ यह सदा अखंड, एकरस तथा अविद्याजन्य सत्व, रज और तमोगुण एवम्

कालकर्मसे रहित है। जो इसका निरन्तर आश्रय लेता है, उसे माया, काल और कर्म व्यापते नहीं है। कृपालु सीता, राम और लक्ष्मण जिसके रक्षक हैं, भला उसका ऐसा प्रभाव क्यो न हो ! ॥ ८ ॥ हे तुलसीदास ! यदि श्रीरघुनाथजीके चरणो में प्रेम चाहता है, तो वेखटके चित्रकूट पर्वतका नियमपूर्वक सेवन किया कर ॥९॥

**टिप्पणी—( १ ) 'साधन'—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोगके अनुसार कई प्रकार के साधन हैं। शम, दम, तितिक्षा, शांति, विरक्ति, विवेक आदि अथवा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान धारणा, समाधि आदि एवं नामस्मरण, श्रवण, कीर्तन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन आदि नाना प्रकारके मुक्ति-साधन है।**

**( २ ) 'थप्पो थिर प्रभाव जानकी-नाह'—चित्रकूटके माहात्म्यके संबंधमें श्रीरामचन्द्रजीने बृहद्रामायणमें स्वयं श्रीमुखसे कहा है—**

"गिरि श्रीचित्रकूटाख्यो, यत्र मंदाकिनी नदी।
तयोर्मध्ये सुविस्तीर्णं त्रिंशद्धनुषमायतः ॥
एतत् क्षेत्रं प्रियतमं न कस्मैचित्प्रकाशितम्।
तत्र त्व धनुषक्षेत्रे यज्ञं कुरु पितामह ॥"

## राग कान्हरा

( २४ )

अब चित, चेति चित्रकूटहि चलु।

कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु ॥१॥
भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहारथलु।
सैल-सृंग भवभंग-हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ दलु ॥२॥
जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, बिधि-हरि-हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम, बिगत-विषाद भये पारथ नलु ॥३॥
न करु बिलम्ब, बिचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगिले पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि, जो जपि भे, अजर अमर हर अचै हलाहलु ॥४॥
रामनाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भावतो मन को, सुख, साधन, अनयास महाफलु ॥५॥

कामद-मनि कामता-कलपतरु सो जुग जुग जागत जगती तलु।
तुलसी तोहि विसेषि बूझिये, एक प्रतीति प्रीति एकै बलु ॥६॥

**शब्दार्थ**—भवभंग=संसार के आवागमन से छुटकारा। पारथ=पार्थ, पृथा के पुत्र युधिष्ठिर आदि। नल=दमयंती के पति महाराज नल। अचै=पीकर। सकृत=एक बार। कामद=सब इच्छाएँ पूरी करनेवाला।

**भावार्थ**—हे चित्त! अब भी चेत जा और चित्रकूट को चल। कलियुग ने क्रोध कर कल्याणके मार्गोंका लोप कर दिया है और नित्य अज्ञान, अविद्या और पापोंकी वृद्धि हो रही है ॥१॥ श्रीरामजीके चरणोंमे चिह्नित वहाँकी भूमिका तथा उनकी विहार-स्थलीके वनका दर्शन कर। कपट, पाखण्ड और दंभकी सेनाके नाश करनेवाले पर्वतके शिखरोंका दर्शन करके सांसारिक चक्रसे तू निश्चयतः छुटकारा पा जायगा ॥२॥ जहाँपर सृष्टिकर्त्ता और विश्वभर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और शिवने प्रपंच और छल छोड़कर जन्म लिया और आश्रममें एकबार प्रवेश करते ही युधिष्ठिर आदि पाण्डवों तथा महाराज नलका सारा क्लेश दूर हो गया, ॥३॥ वहाँ जानेमे अब देर मत कर। अपनी सुन्दर बुद्धिसे भला विचार तो कर, कि जितने वर्ष बीत गये, वह तो अब आनेके नहीं, पर तेरी आयु के जितने पल शेष हैं, उन्हे गत वर्षोंके समान मान अर्थात् एक-एक पलको एक-एक वर्षकी नाईं बहुमूल्य समझ, मौतको सरपर नाचती हुई समझकर, संसारसे विरक्त हो, चित्रकूटका आश्रय ले। वहाँ जाकर उस रामतारकमंत्रको जप, जिसे जप कर शिवजी काल-कूट विष पीनेपर भी अजर-अमर हो गये ॥४॥ जो तू वहाँ निरन्तर रामनाम-स्मरण रूपी यज्ञ और पयस्विनीके पवित्र जलमें स्नान करता रहेगा तथा उसके जलका पान करता रहेगा, तो श्रीरामजी अवश्य तेरी मनस्कामना पूरी कर देंगे और इस सुगम साधनके बदले तुझे अनायास ही चारो फल देंगे ॥५॥ वहाँ जो कामतानाथ पर्वत है, वही स्वर्गीय चिंतामणि और कल्पवृक्ष है। वह युग-युग पृथ्वीपर जगमगाता रहा है। वैसे तो चित्रकूट सभीके लिए सुखदायक है, किन्तु हे तुलसीदास, तुझे विशेषतया उसके विश्वास, स्नेह और भरोसेपर निर्भर रहना चाहिए, इसीसे तेरी बनेगी ॥ ६ ॥

**टिप्पणी—(१) 'राम-पद-अङ्कित'—जिन चरणारविन्दोंकी रजके स्पर्श से पाषाणी अहल्या दिव्य देह प्राप्तकर स्वर्गको चली गयी, उनसे चिह्नित भूमि क्या जीवके पाप संतापको दूर न कर सकेगी? अवश्य।**

(२) 'जहँ जनमें'''छल'—चित्रकूटमें महर्षि अत्रि और उनकी परम-पतिव्रता साध्वी स्त्री अनुसूयाने पुत्र-कामनासे घोर तप किया। ब्रह्मा, विष्णु और शिवने उनको दर्शन दिये और वर माँगनेको कहा। अनुसूयाने यह वर माँगा कि मेरे गर्भसे तुम्हारे समान पुत्र जन्म ले। देवताओंको 'तथास्तु' कहना पड़ा। तीनों देवताओंने, अपना-अपना निर्दिष्ट कार्य छोड़कर अनुसूयाके गर्भसे जन्म लिया। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्ता-त्रेय और शिवके अंशसे दुर्वासाका जन्म हुआ।

(३) 'पारथ'—जब दुर्योधनने जुएमें पाडवोंका सर्वस्व हरण कर लिया और उनको नगरसे निकाल दिया, तब बेचारे भटकते-भटकते चित्रकूट में आये और वहाँ तप करके उसके प्रभावसे सुखी हुए। बृहद्रामायणमें लिखा है—

"चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे, श्रीरामपद-भूषिते।
तपश्चचार विधिवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः॥"

(४) 'नल'—जब राजा नलने अपना सारा राज्य जुएमे हार दिया तब उन्हें भी पाण्डवोंकी तरह दमयंतीके साथ वन-वन भटकना पड़ा। उनका भी दुःख इसी चित्रकूटमें दूर हुआ। बृहद्रामायणमें लिखा है—

"दमयंतीपतिर्वीरो राज्यं प्राप्य हताशुभः।
मंदाकिनी पुण्यतमा गंगा त्रैलोक्यविश्रुता।"

(५) 'हर अँचै अलाहल'—३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए—

(६) गोसाईं तुलसीदासजीको चित्रकूट विशेष प्रिय था। उन्होंने राम-चरितमानसमें चित्रकूट का जो वर्णन किया है वह देखते ही बनता है। उसकी दो-चार चौपाइयाँ उद्धृत किये बिना जी नहीं मानता। देखिए—

"सैल सुहावन कानन चारू। करि-केहरि मृग बिहँग बिहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि-तिया निजतप-बल आनी॥
सुरसरि-धारि नाम मंदाकिनी। जो सब पातक-पोतक-डाकिनी॥

* * * *

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष-कलि-साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चूक न घात मार मुठभेरी॥"

## हनुमत्-स्तुति

### राग धनाश्री

( २१ )

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत बिधु, बिबुध-कुल कैरवानन्दकारी ।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन-शोक-संतापहारी ।।१।।
जयति जय बालकपि केलि कौतुक उदित-चंडकर-मंडल-ग्रासकर्त्ता ।
राहु-रबि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन, सरन, भयहरन जय भुवन-भर्ता ।।२।।
जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि, रुद्र-अवतार संसार-पाता ।
बिप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आशिषाकार-वपु, बिमलगुनबुद्धि-बारिधिबिधाता ।।३।।
जयति सुग्रीव-सिच्छादि रच्छन-निपुन, बालि-बलसालि-बध-मुख्य हेतू ।
जलधि-लंघन, सिह सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर उत्पात केतू ।।४।।
जयति भूनन्दिनी-सोच-मोचन बिपिन-दलन घननादबस बिगतशंका ।
लूमलीला-अनल-ज्वालमाला-कुलित, होलिकाकरन लंकेस-लंका ।।५।।
जयति सौमित्रि-रघुनंदनानंदकर, रिच्छ-कपि-कटक-संघट-बिधायी ।
बद्ध बारिधि-सेतु अमर-मंगल हेतु, भानुकुल-केतु-रणविजयदायी ।।६।।
जयति जय बज्रतनु दसन नख मुख बिकट, चंड-भुजदंड तरु सैल पानी ।
समर-तैलिक-जंत्र तिल-तमीचर-निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी ।।७।।
जयति-दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालिनेमि-हंता ।
अघटघटना-सुघट-सुघट-बिघटन-बिकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता ।।८।।
जयति बिस्व-बिख्यात बानैत-बिरुदावली, बिदुष बरनत बेद बिमल बानी ।
दासतुलसी-त्रास-समन सीतारमन, संग सोभित राम राजधानी ।।९।।

**पदच्छेद**—कैरव + आनन्द । आशिष + आकार । माला + आकुलित । नंदन + आनदकर ।

**शब्दार्थ**—अंभोधि=समुद्र । कैरव=कुमोदिनी । चडकर=प्रचंड किरण वाले सूर्य । पवि=वज्र । खर्वीकरन=कम कर देनेवाले । पाता=रक्षक । बलसालि=महापराक्रमी । भूनन्दिनी=सीताजी । घननाद=मेघनाद । आकुलित =आर्त्त ।

तैलिक जंत्र=कोल्हू। तमीचर=राक्षस। पेरि डारे=पेल डाला। घटकरण=कुंभकर्ण। कदन=नाश। अघटघटना-सुघट=असंभव बातको संभवकर देनेवाले। सुघटबिघटन=संभवको असंभव करनेवाले। बानैत=बाना। विदुष=पंडित।

**भावार्थ**—हे हनुमानजी, तुम्हारी जय हो। तुम अंजनीके गर्भ-रूपी समुद्रसे चंद्ररूप उत्पन्न होकर देवकुलरूपी कुमुद पुष्पोको प्रफुल्लित करनेवाले हो। जिस प्रकार चंद्रोदय होनेसे कुमोदिनीके फूल खिल उठते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे दर्शन-मात्रसे देवतागण प्रसन्न हो गये। केशरीके सुंदर नेत्ररूपी चकोरोंको तुम आनन्द देनेवाले और समग्र लोकोंका शोक-संताप हरनेवाले हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो, जय हो। तुमने बचपनमे ही बालभावसे, उदयकालीन प्रचड सूर्यके मंडलको लाल खिलौना समझकर, निगल लिया था। उस समय तुमने राहु, सूर्य इन्द्र और उसके वज्रका मानमर्दन कर दिया था। हे शरणापन्नोंके दुःख हरनेवाले! हे विश्व के स्वामी! तुम्हारी जय हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम रणभूमिमे डटे रहनेवाले हो, तुमने सदा श्रीरामचन्द्रजीका हित किया है, तुम चिन्तामणि-रूप, (एकादश) रुद्र-रूप और संसार के रक्षक हो। तुम्हारा शरीर मानो ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोके अशीर्वचनकी मूर्ति है, अर्थात् इन सबके अशीर्वादसे तुम सदा मंगल-मूर्त्ति हो। तुम शुद्ध सात्विक गुणों और बुद्धि के समुद्र तथा विधाता हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो। तुमने सुग्रीवको उसके हितकी शिक्षा दी है, उसकी रक्षामें बड़ा कौशल दिखाया है। महावलबान् बालिके मरवानेके मुख्य कारण भी तुम्हीं हो। समुद्रके लाँघनेवाले, सिंहिका राक्षसीके मर्दन करनेमें सिंह रूप, तथा दानवोकी लंकापुरीमें उपद्रव मचानेको केतु रूप भी तुम्हीं हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो तुमने श्रीसीताजीकी चिन्ताएँ दूरकर दी थीं और अशोक-वन उजाड़नेपर निःशक हो मेघनादके पासमे अपने-आपको बँधवा लिया था। तुमने अपनी पूँछकी लीलासे अग्निकी ज्वालमाला से व्याकुल रावणकी लंकापुरीमें होली सी मचा दी थी ॥५॥ तुम्हारी जय हो। तुम राम और लक्ष्मणको आनन्द देनेवाले, रीछ और बंदरोकी सेनाको एकत्रित कर समुद्रका पुल बाँधनेवाले, देवताओंके लिए कल्याण-रूप तथा सूर्यकुल केतु श्रीरघुनाथजीको संग्राममे विजय लाभ करानेवाले हो ॥६॥ तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा शरीर, दाँत, नख और विकराल मुख वज्रके समान पुष्ट हैं। तुम्हारे भुजदंड बड़े ही प्रचंड हैं। वृक्षों और पर्वतोंको तुम हाथोसे उठनेवाले हो।

तुमने संग्राम-रूपी कोल्हूमें राक्षसोंके समूह और भारी-भारी योद्धा-रूपी तिलोंको डाल-डाल कर घानीकी नाई पेल डाला है ॥ ७ ॥ तुम्हारी जय हो। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादका नाश करानेके कारण तुम्ही हो, कालिनेमि राक्षसको भी तुम्हीने मारा है। तुम असंभवको संभव और सभवको असंभव कर दिखाने-वाले हो। तुम बड़े ही भयानक हो। पृथ्वी, पाताल और आकाश सभी स्थानोंमे तुम्हारी गति है ॥ ८ ॥ तुम्हारी जय हो। तुम जगत उजागर हो। वीरताका बाना सदा ही कसे रहते हो तुम्हारी गुणावली पंडित और वेद शुद्ध वाणीसे गाते है। तुम तुलसीदासके भवभयको नाश करनेवाले हो। अयोध्यामें श्रीसीतारमण रामचन्द्रके साथ, हे हनुमान्‌जी, आप निरन्तर शोभायमान रहते हो ॥ ९ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'उदित चण्ड-कर-मंडल'—वाल्मीकि-रामायण में लिखा है कि एक बार अमावसके दिन हनुमान् सूर्यको लाल फल जानकर उसे खानेके लिए दौड़ गये। देखते-देखते प्रचण्ड सूर्य को लपक लिया। उस दिन ग्रहण भी था। बेचारा राहु निराश हो इन्द्रके पास पहुँचा और बोला, आज मैं क्या खाऊँ ? मेरा आहार तो किसी दूसरेहीने उड़ा दिया। यह सुनकर इन्द्र दौड़ा आया। इन्द्र और राहु को देखकर हनुमान् उन्हें खानेको दौड़े। इतनेमें इन्द्रने उनकी ठोढ़ी पर ऐसे जोरसे वज्र मारा कि वह मूर्च्छित हो गये और वज्र भी टूट गया। तभीसे उनका नाम 'हनुमान्' पड़ा।**

**( २ ) 'रुद्रअवतार'—एकबार शिवजीने श्रीरघुनाथजीसे कहा, कि मैं आपकी दासभावसे सेवा करना चाहता हूँ, मुझे यह वर दीजिये। रघुनाथजीने शिवजी को यह वर दे दिया। कालान्तरमें हनुमान्‌के रूपमें शिवजीने रामचन्द्रजीकी दास्यभक्ति प्राप्त की। इसीसे हनुमान्‌जी एकादश रुद्र माने गये हैं।**

**( ३ ) 'सुग्रीव—सिच्छादि रच्छन—निपुन'—हनुमान्‌जीने सूर्यसे विद्याभ्यास किया था। दक्षिणा-रूपमें सूर्यने हनुमान्‌जीसे यह वर माँग लिया था कि तुम सदा हमारे पुत्र सुग्रीवकी रक्षा करना। जब तक सुग्रीव को राज्य नहीं मिला, तकतक बराबर यह उसकी रक्षा करते रहे।**

**( ४ ) 'सिंहिका-मद-मथन'—सिंहिका नामकी एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी। इसका यही काम था कि जो जीव-जन्तु आकाश या समुद्रके ऊपर हो जाता हो, उसकी परछाइँ पकड़ कर उसे खा जाय। यही चाल यह हनुमान्‌जीके साथ चली। पर बेचारीकी इनके आगे कुछ चल न सकी और मुफ्तमें उसे प्राणोंसे हाथ धोने पड़े।**

**( ५ ) 'कालनेमि—यह बड़ा मायावी था। जब लक्ष्मणजीको मेघनादकी**

शक्ति लगी थी और हनुमान्‌जी संजीवनी बूटी लेने जा रहे थे, तब रावणकी सलाहसे, इसने साधुका भेष धारण कर हनुमान्‌जीके साथ छल किया। किन्तु भेद खुल जाने पर हनुमान्‌जीने इसे पूँछमें लपेटकर यमधाम भेज दिया।

( ६ ) 'सीतारमन····राजधानी'—रामजीका राज्याभिषेक हो जानेपर सुग्रीवादि वानर अपने-अपने घर चले गये, पर हनुमान्‌जी सदा अयोध्यामें ही रहे।

( ७ ) 'जयति अंजनी-गर्भ······ संतापहारी'—में रूपक अलंकार है। इसका लक्षण २२ पदकी चौथी टिप्पणीमें देखिए।

( २६ )

जयति मर्कटाधीस मृगराज-विक्रम, महादेव मुद-मंगलालय कपाली।
मोहमद-कोह-कामादि-खल-संकुला, घोर संसार-निसि किरनमाली ॥१॥
जयति लसदञ्जनादितिज कपि-केसरी कस्यप-प्रभव जगदार्त्तिहर्त्ता।
लोक-लोकप-कोक कोकनद-सोकहर, हंस हनुमान कल्यानकर्त्ता ॥२॥
जयति सुबिसाल बिकराल-बिग्रह, बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी।
कुलिस नखं, दसनवर लसत, बालधि बृहद, बैरि-सस्त्रास्त्रधर कुधरधारी॥३॥
जयतिजानकी-सोच-संताप मोचन, रामलछमनानंद-बारिज-बिकासी।
कीस-कौतुक-केलि, लूम-लंका-दहन, दलन कानन, तरुन तेजरासी ॥४॥
जयति पाथोधि-पापान-जलजानकर, जातुधान-प्रचुर-हर्ष-हाता।
दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित-मर्मभित्, कर्म-परिपाक-दाता ॥५॥
जयति भुवनैकभूषन, बिभीषनबरद, बिहित कृत राम संग्राम साका।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि-सीता-सहित, भानुकुल-भानु-कीरति-पताका ॥६॥
जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमन-कूट-कृत्यादि-हंता।
साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ-जूथ-जंता ॥७॥
जयति बेदान्तबिद बिबिध-बिद्या-बिसद, बेद-बेदांगबिद ब्रह्मवादी।
ग्यान-बिग्यान-बैराग्य-भाजन बिभो, बिमल गुन गनति सुक नारदादी ॥८॥
जयति काल-गुन-कर्म-मायाकथन, निस्चलग्यान ब्रत, सत्यरत धर्मचारी।
सिद्ध-सुरबृन्द-जोगींद्र-सेवित सदा, दासतुलसी प्रनत-भय तमारी ॥९॥

**पदच्छेद**—मर्कट + अधि + ईस । मगल+आलय । लसत्+अंजना+अदिति + ज । जगत् + आर्ति । सस्त्र + अस्त्र । लछमन + आनंद । पाक + अरि । भुवन + एक । पुष्पक + आरूढ़ । मंत्र + अभिचार । कृत्या + आदि ।

**शब्दार्थ**—कपाली=कपाल धारण करनेवाले शिवजी । किरनमाली=सूर्य । अजनादिति=अंजनीरूपी अदिति । कोकनद=कमल । हस=सूर्य । बालधि=पूँछ । कुधर=पहाड़ । जातुधान=राक्षस । हाता=हंता, नाशक । पाकारिजित्=पाकदैत्यको मारनेवाले इन्द्र और तिन्हे जीतनेवाला मेघनाद । मर्मभित्=मर्मस्थानको तोड़नेवाला । परिपाक=फल । साका=यश । अभिचार=मारण, उच्चाटन आदि प्रयोग । कारमन=जत्रमंत्रद्वारा मार डालना । कृत्या=प्राणघातक देवी । साकिनि-डाकिनी=चुड़ैल, योगिनी । प्रथम=शैवगण । तमारी=सूर्य ।

**भावार्थ**—हे हनुमान्‌जी, तुम्हारी जय हो ! तुम बन्दरोंके राजा, सिंहके समान वीर, देवताओं मे श्रेष्ठ, आनंद और कल्याणके स्थान तथा कपाली शिवजी के अवतार हो । अज्ञान, अहंकार, क्रोध, काम आदि दुष्टोसे व्याप्त भयंकर संसार रूपी रात्रिके नाश करनेवाले तुम साक्षात् सूर्य हो ॥ १ ॥ तुम्हारा जन्म अजनीरूपी अदिति (देवताओंकी माता) और केशरीरूपी कश्यप प्रजापति से हुआ है । तुम संसार के कष्ट दूर करनेवाले हो । लोक और लोकपालरूपी चकवा तथा कमलोंका दुःख हरनेवाले, हे कल्याणमूर्ति हनुमान्, तुम सूर्य हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो । तुम्हारा शरीर बड़ा भारी और भयंकर है, प्रत्येक अंग वज्रका सार लेकर बनाया गया है । भारी-भारी भुजाएँ, वज्रके समान नख और सुन्दर दाँत शोभायमान हो रहे हैं । तुम्हारी पूँछ बड़ी लम्बी है, शत्रुओंके दमन करनेके लिए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये रहते हो । तुम पर्वतोको भी धारण किया करते हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो । तुम श्रीसीताजीके शोक संतापको हरनेवाले और राम-लक्ष्मणके आनंदरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले हो । वन्दर स्वभावसे लीला-पूर्वक ही, पूँछसे लंका जला देनेवाले, अशोकबनको उजाड़नेवाले, हे हनुमान्, तुम भभकते हुए तेजके पुंज हो, सूर्य हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो । तुम समुद्र पर पत्थर का पुल बाँधनेवाले, राक्षसोंके बड़े भारी आनन्दके नाश करनेवाले, दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनादके मर्मस्थानोको तोड़नेवाले तथा उनके कुकर्मोंके फलको देनेवाले हो ॥५॥

संसारशिरोमणे! तुम्हारी जय हो। तुम विभीषणको (राजभक्तिरूपी) वर देनेवाले और श्रीरामजीके साथ संग्राममें बड़े-बड़े यशपूर्ण कार्य करनेवाले हो। लक्ष्मण और सीता-सहित पुष्पक विमान पर विराजमान सूर्यवंशके सूर्य श्रीरामचन्द्रजीकी यश-रूपी पताकाके समान तुम सुशोभित हुए थे। ॥६॥ तुम्हारी जय हो। शत्रुओसे किये हुए यंत्रमंत्रमय अभिचार अर्थात्, मोहन-उच्चाटन आदि प्रयोगोंके तुम नाशक हो। तुम गुप्त मारण प्रयोगके एव प्राण-घातिनी कृत्या आदि देवियोंके नाश करनेवाले हो। तुम शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, बेताल, भूत, और प्रमथ आदि भयंकर जीवोंके यंता अर्थात् सारथी या शासक हो ॥७॥ तुम्हारी जय हो। तुम वेदान्तशास्त्रके ज्ञाता, नानाप्रकारकी विद्याओंमे विशारद, वेद और वेदाग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष) के जाननेवाले तथा ब्रह्मवादी अर्थात् ब्रह्म निरूपण करनेवाले हो। तुम ज्ञान, वैराग्य और आत्मज्ञानके सत्पात्र हो। शुकदेव और नारद आदि देवर्षि तुम्हारे ऐश्वर्य तथा गुणावलीको सदा गाया करते है ॥८॥ तुम्हारी जय हो। तुम काल, त्रिगुण (सत्व, रज और तम), कर्म (संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण) और अविद्याके नाश करनेवाले हो, अर्थात् तुम इनसे स्वयं मुक्त एवं दूसरोंको मुक्त करनेवाले हो। तुम सदा शान्त रहते हो। एक ज्ञान ही तुम्हारा व्रत है। सत्यमे रमते तथा धर्मपर चलते हो। सिद्ध और देव-समूह एव योगी तुम्हारी निरन्तर सेवा किया करते हैं। हे हनुमान्, तुलसीदास तुम्हें प्रणाम करता है, इसलिए कि तुम उसका भवभयरूपी अंधकार मेटनेके लिए सूर्यरूप हो ॥९॥

**टिप्पणी—(१) 'काल-गुन-कर्म-माया'—(१) काल—पल, विपल, घड़ी, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, अयन, संवत्सर, युग आदि। काल अव्यक्त माना गया है। महाप्रलय इसका एक रूप ही है। (२) गुण सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। न्यूनाधिक परिमाणमें यह गुण प्रत्येक जीव में रहा करता है। सत्प्रवृत्ति सत्वसे, भोग-विलासेच्छा रजसे और अज्ञान, निद्रा, क्रोध आदि तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। (३) कर्म—कर्म चार प्रकारके हैं—सकाम, निष्काम, प्रवृत्ति और निवृत्ति अथवा शुभ और अशुभ। विकर्म, कर्म और अकर्म ये भी इसके भेद है। फिर भी कर्मरहस्य महान् गहन है। (४) माया—आत्म में अनात्म तथा अनात्ममें आत्मका रोपण करनेवाली अविद्या। जहाँतक मनवाणीकी गति है, वह तक इसका साम्राज्य है। जैसे—**

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥"
(रामचरितमानस)

( २७ )

जयति मंगलागार संसारभारापहर बानराकार बिग्रह पुरारी ।
राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिष ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी ॥१॥
जयति मरुदञ्जनामोद-मंदिर नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बन्धो ।
जातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध सुर-सज्जनानंद-सिन्धो ॥ ॥
जयति रुद्राग्रनी, बिस्वविद्याग्रनी, बिस्वबिख्यातभट चक्रवर्ती ।
सामगाताग्रनी कामजेताग्रनी, रामहित रामभक्तानुवर्ती ॥३॥
जयति संग्रामजय रामसंदेसहर, कौसला-कुसल-कल्यानभाषी ।
राम-विरहार्क-संतप्त-भरतादि-नरनारि-सीतलकरन कल्पसाषी ॥४॥
जयति सिंहासनासीनसीतारमन निरखि निर्भरहरष नृत्यकारी ।
रास-संभ्राज सोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-बिहारी ॥५॥

**पदच्छेद**—मंगल + आगार । भार + अपहर । वानर + आकर । रोष + अनल । महत् + अञ्जना । दुःख + एक । जातुधान + उद्धत । काल + अग्नि । सज्जन + आनद । रुद्र + अग्रनी । विद्या + अग्रनी । गाता + अग्रनी । जेता + अग्रनी । भक्त + अनुवर्ती । विरह + अर्क । सिंहासन + आसीन ।

**शब्दार्थ**—मंगलागार=मंगल अर्थात् कल्याणके स्थान । पुरारी=पुर-राक्षसके शत्रु, शिवजी । ध्वांतचर = अन्धेरेमें चलने-फिरनेवाले, राक्षस । सलभ=पतिंगे ! नतग्रीव=गर्दन नीची किये, दीन । उद्धत=उद्दण्ड, गँवार । अग्रनी=श्रेष्ठ । सामगाता=सामवेदका गान करनेवाला । सदेसहर=सन्देशा ले जानेवाला, दूत । विरहार्क=वियोगरूपी सूर्य । निर्भर=पूर्ण ।

**भावार्थ**—हे हनुमान्जी, तुम्हारी जय हो । तुम कल्याणके स्थान संसार-का भार हरनेवाले, वानर-रूप और साक्षात् रुद्र-रूप हो । तुम श्रीरामचन्द्रजीकी क्रोध-रूपी अग्निकी ज्वाल-मालाके बहानेसे दैत्य-रूपी पतिंगोंको भस्म करनेवाले हो ॥१॥ तुम्हारी जय हो ! तुम पवनदेव और अञ्जनी माताके आनन्दके मदिर अर्थात् उन्हे आनन्द-प्रदान करनेवाले हो। नीची गर्दन किये हुए, दीन सुग्रीव-की विपत्तिमे तुम सच्चे सहायक हुए थे । तुमने राक्षसोंकी प्रचण्ड क्रोधरूपी प्रलय-कालाग्निका नाश किया था। और सिद्धों, देवताओं और सज्जनोंको अगाध समुद्र-

के समान आनन्द दिया था ॥२॥ तुम्हारी जय हो। तुम एकादश रुद्रोंमें और समस्त संसारके विद्वानोंमे श्रेष्ठ हो। संसारमे प्रख्यात और योद्धाओंके सम्राट हो। सामवेदके गायकोंमे तथा कामदेवके जीतनेवालोंमे अग्रगण्य हो। तुम श्रीरामचन्द्र जीके हितकारी और राम-भक्तोंके रक्षक हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो! तुम युद्धोंमे विजय-लाभ करनेवाले, श्रीरघुनाथजीका सदेसा (जानकीजीके पास) ले जानेवाले और अयोध्याका कुशल कहनेवाले हो। तुम रामचन्द्रजीके वियोगरूपी सूर्यसे जलते हुए भरत आदि स्त्री पुरुषोंको शीतल (प्रसन्न) करनेके लिये मूर्तिमान् कल्पवृक्ष हो ॥४॥ तुम्हारी जय हो। तुम राज्य-सिंहासनपर विराजमान् जानकी-वल्लभ रामचन्द्रजीका देख-देखकर पूर्ण आनन्दमे मत्त हो नाचनेवाले हो। जैसे, तुम महाराज रामचन्द्रजीके साथ शोभा-सहित विराजमान् हुए थे, उसी प्रकार तुलसीदासकी मानस-रूपी अयोध्यामे सदा विहार करते रहो ॥५॥

**टिप्पणी—(१)'मरुदञ्जना'—कहते हैं, हनुमान्‌जी पवनदेवके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे। केसरी वानरकी स्त्री अञ्जनी एक दिन शृंगार किये हुए खड़ी थी। इतनेमें पवनदेव निकले और वह उसके अनुपम रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गये। उन्हींके वीर्यसे अंजनीके गर्भसे हनुमान्‌जीका जन्म हुआ। इसीसे इनको 'पवन-कुमार' अथवा 'वातात्मज' कहते हैं।**

**(१) 'रुद्राग्रनी'—२५ पद की टिप्पणी देखिए।**

**(३) 'राम-संभ्राज ……बिहारी'—यहाँ तुलसीदासजी हनुमान्‌जीसे यह नहीं माँगते, कि केवल तुम्हीं मेरे हृदयमें निवास करो, किन्तु रामराज्याभिषेककी शोभा-सहित मेरे हृदयमें विहार करो, अर्थात् मुझे तुम्हारे ऐश्वर्यसे कोई प्रयोजन नहीं, मैं तो राम-माधुर्योपासक हूँ, मुझे वही छबि-छटा चाहिये।**

( २८ )

जयति बात-संजात, विख्यात विक्रम, बृहद्‌बाहु बल बिपुल बालधि बिसाला।
जातरूपाचलाकार बिग्रह लसत, लूम विद्युल्लता ज्वालमाला ॥१॥
जयति बालार्क वर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूटधारी।
बिकट भृकुटी, बज्र दसन नख, बैरि-मद-मत्त-कुंजर-पुञ्ज-कुंजरारी ॥२॥
जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहरन, धनञ्जय-रथ-त्राण-केतू।
भीष्म-द्रोण-करणादि-पालित कालदृक सुजोधन-चमू-निधन-हेतू ॥३॥

जयति गतराजदातार, हंतार-संसार-संकटदनुज-दर्पहारी ।
ईति-अतिभीति-गृह-प्रेत-चौरानल-व्याधिबाधा-समन घोर मारी ॥ ४ ॥
जयति निगमागम-व्याकरन-करनलिपि, काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो ।
सामगायक भक्त-काम-दायक, बामदेव, श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बन्धो ॥ ५ ॥
जयति घर्मांसु-संदग्ध-संपाति नवपच्छ-लोचन-दिव्य-देह-दाता ।
कालकलि-पापसंताप-संकुल सदा, प्रनत तुलसीदास तात-माता ॥ ६ ॥

**पदच्छेद**—जातरूप+अचल+आकार । विद्युत्+लता । बाल+अर्क । कुंजर+अरि । भीम+अर्जुन । करन+आदि । चौर+अनल । निगम+आगम । धर्म+अंसु ।

**शब्दार्थ**—वात-संजात=पवनसे उत्पन्न, हनुमान् । बालधि=पूँछ । जातरूपाचल=सुवर्णका पहाड़, सुमेरु । व्यालसूदन=गरुड़ । धनंजय=अर्जुन । ईति=खेतीकी विघ्न बाधाएँ, जो छः प्रकारकी होती हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टीड़ी, मूषक, तोते और राजाक्रमण । घोरमारी=महामारी नामकी बीमारी । निधन=नाश । धर्मांशु=प्रखर किरणवाले सूर्य । संकुल=व्याप्त ।

**भावार्थ**—हे पवन-पुत्र ! तुम्हारी जय हो । तुम्हारा पराक्रम परम प्रसिद्ध है, तुम्हारे भुजदण्ड विशाल हैं, बल असीम है, और पूँछ बड़ी लम्बी है । सुमेरु पर्वतकी तरह तुम्हारा शरीर सुशोभित हो रहा है और पूँछ बिजलीकी लताके समान अथवा अग्निके सदृश जगमगा रही है ॥१॥ जय हो ! तुम्हारा सुन्दर मुख उदय-कालीन सूर्यके समान है, नेत्र पीले रंगके हैं, और भूरे तथा कठोर जटाओंका मुकुट-सा तुम्हारे शिरपर बँध रहा है । तुम्हारी भौंहें टेढ़ी और दाँत वज्र-जैसे हैं । तुम अपने नखोंसे सिंहके समान शत्रु-रूपी मतवाले हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले हो ॥२॥ तुम्हारी जय हो । तुम भीम, अर्जुन और गरुड़के गर्वको खर्व करनेवाले, एवं अर्जुनके रथकी पताकापर बैठकर उसकी रक्षा करनेवाले हो । भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य्यसे रक्षित तथा कालदृष्टिके समान दुर्योधनकी प्रचण्ड सेनाके परास्त करनेके मुख्य कारण तुम्हीं हो ॥३॥ तुम्हारी जय हो । तुम सुग्रीवके गये हुए राज्यको फिरसे दिलानेवाले, संसारके दुःखोंको दूर करनेवाले और दैत्योंका मानमर्दन करनेवाले हो । ईति, महाभय, ग्रह, प्रेत, चोर, अग्निकांड, रोग, बाधाओं और महामारी आदिके भी संहारक तुम्हीं हो ॥४॥ वेद, शास्त्र और व्याकरणको लिपिबद्ध करनेवाले अथवा उनपर भाष्य रचनेवाले और काव्यके दशांगों एवं चौंसठ कलाओंके समुद्र तुम्हीं हो।

तुम सामवेदके गानेवाले, भक्तोंके मनोरथ पूरे करनेवाले और साक्षात् शिवरूप हो। प्रेम-वत्सल भगवान् रामचन्द्रजीके तुम हितू हो। तुम्हारी जय हो ॥५॥ सूर्यके तेजसे जले हुए सम्पाति नामके गीधको नये पंख, नेत्र और दिव्य शरीर देनेवाले भी तुम्ही हो। और, कलिकालके पापसन्तापोंसे पूर्ण इस शरणागत तुलसीदासके माता-पिता भी तुम्ही हो, तुम्हारी जय हो। जय हो ॥६॥

**टिप्पणी—( १ ) 'वात-संजात'—२७ पदकी पहली टिप्पणी देखिए।**

**(२) 'भीम'—भीम और हनुमान्के सम्बन्धकी, महाभारतमें, दो कथाएँ प्रसिद्ध हैं। ( १ ) वनवासके समय एक दिन भीमसेनको मार्गमें एक बड़ा भारी बन्दर आड़ा, लेटा हुआ, मिला। भीमसेनकी गर्जनासे बन्दरकी आँख खुल पड़ी। भीमसेनने उससे कहा —भाई! मार्गसे हट जाओ। बन्दरने जबाब दिया—मैं बूढ़ा हूँ, उठने-बैठनेमें कष्ट होता है, तुम्हीं मेरी पूँछ हटाकर क्यों नहीं चले जाते? भीमसेनने अपनी सारी शक्ति लगाकर पूँछ उठाई, पर वह टस से-मस न हुई। यह जाननेपर, कि यह बन्दर हनुमान् है, भीमसेनने उसे साष्टांग प्रणाम किया। ( २ ) एकबार भीमसेनने हनुमान्जीसे कहा—मुझे आप अपना वह रूप दिखाइए, जो राम-रावण-युद्धमें धारण किया था। हनुमान्जी बोले—मेरा वह रूप बड़ा ही विकराल है, तुम देखते ही डर जाओगे। जब भीमसेनने गर्ववश बहुत आग्रह किया, तब हनुमान्जी अपने उसम हान् प्रचण्ड रूपमें देखते-देखते प्रकट हो गये। भीमसेन की आँखें बन्द होगई, शरीर थरथर काँपने लगा। हाथ जोड़कर उनके चरणों पर गिर पड़े।**

**(२) 'अर्जुन'—महाभारतके युद्धमें जब अर्जुन कर्णके रथपर बाण चलाते, तब उनका रथ कोसों दूर जा पड़ता और कर्णके बाणसे अर्जुनका रथ ज़रा-सा खिसकता। यह देखकर अर्जुनको अपने बल पराक्रमपर बड़ा गर्व हुआ। अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण यह बात समझ गये। उन्होंने हनुमान्जीसे रथकी ध्वजा परसेहट जानेको कहा। हनुमान्जी हट गये। अब कर्णके बाणसे अर्जुनका रथ बड़ी दूर जा गिरा। अर्जुन घबराकर भगवान्से बोले—यह क्या हुआ? भगवान्ने कहा—तुम्हारी शक्ति ही कितनी है! यह पराक्रम तो हनुमान्का था। इस समय वह तुम्हारे रथकी ध्वजापर नहीं हैं। यदि मैं भी यहाँ से हट जाता, तो न जाने तुम्हारा रथ कहाँ गिरता! अर्जुन लज्जाके मारे पानी-पानी हो गये।**

**(३) 'व्यालसूदन'—एक बार विष्णु भगवान्ने गरुडको हनुमान्के बुलाने की आज्ञा दी। हनुमान्ने गरुड़से कह दिया—आप चलिए, मैं पीछेसे आ जा-**

ूँगा और आपसे पहले ही पहुँचूँगा। गरुड़को अपनी गतिका बड़ा गर्व था। ौड़ते हुए भगवान्‌के पास पहुँचे, तो देखते क्या हैं, कि हनुमान् वहाँ पहलेसे ही ैठे हैं। गरुड़का सारा घमण्ड मिट्टीमें मिल गया। यह कथा स्कन्दपुराणमें है।

(४) 'निगमागम······सिन्धो'—हनुमान्‌जीने सूर्य भगवान्‌से सारी वेद्याएँ पढी थीं। वेदों और शास्त्रोंपर भाष्य, पिंगलकी टीका, काव्योंपर टेप्पणियाँ तथा वेदांगोंपर भी कई ग्रन्थ उन्होंने लिखे थे। हनुमन्नाटक, हनुमत् ज्योतिष आदि कुछ ग्रन्थ आज भी मिलते हैं। कहते हैं, चित्रकाव्यके आदि अविष्कर्ता यही थे।

(५) 'सम्पाती'—यह गृद्धराज जटायुका छोटा भाई था। एकबार दोनों होड़ लगाकर सूर्यमण्डलके पास गये। जटायु बुद्धिमान् था, अतः जब वह सूर्यका तेज न सह सका, तब आधी दूरसे लौट आया, पर सम्पाति घमण्डके मारे सूर्यके अत्यन्त समीप पहुँच गया। पंख झुलस जानेके कारण धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। जब सुग्रीव की आज्ञासे बन्दर सीताजीके खोजने को गये, तब समुद्रपर सम्पातिने उन्हें सीताजीका पता बताया और हनुमान्‌जीकी कृपासे उसे नये पंख, नेत्र और दिव्य शरीर प्राप्त हो गया।

( २९ )

जयति निर्भरानन्द–सन्दोह कपिकेसरी, केसरी–सुवन भुवनैकभर्ता।
दिव्य-भूम्यंजना–मंजुलाकर–मणे, भक्त–संताप–चिन्तापहर्त्ता ॥१॥
जयति धर्मार्थ-कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि–वैभव–बिरागी।
बचन–मानस–कर्म–सत्य–धर्मव्रती, जानकीनाथ–चरनानुरागी ॥२॥
जयति बिहगेस-बलबुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मनमथ-मथन ऊर्ध्वरेता।
महानाटक-निपुन कोटि-कबिकुल-तिलक, गानगुन-गरब-गन्धर्व-जेता ॥३॥
जयति मन्दोदरी-केस-कर्षन विद्यमान दसकंठ भट–मुकुट मानी।
भूमिजा-दुःख–संजात–रोषांतकृत जातना जंतु कृत जातुधानी ॥४॥
जयति रामायन-स्रवन-संजात-रोमांच, लोचन सजल, शिथिल बानी।
रामपदपद्म-मकरंद–मधुकर पाहि दासतुलसी सरन सूलपानी ॥५॥

पदच्छेद—निर्भर+आनन्द। भुवन+एक। भूमि+अंजना। मंजुल+आकार। चिन्ता+अपहर्ता। धर्म+अर्थ। काम+अपवर्ग। वेग+अति। चरन+अनुरागी। रोष+अंतकृत।

शब्दार्थ—निर्भर=पूर्ण। सदोह=समूह। आकर=खानि। अपवर्ग=मोक्ष। विहगेश=गरुड। मनमथ=कामदेव। ऊर्ध्वरेता=योगद्वारा ऊपर चढाकर सुखा दिया है वीर्य जिसने, जितेन्द्रिय। जेता=विजयी। भूमिजा=सीताजी। सजात= उत्पन्न। सूलपानी=त्रिशूलधारी शिव।

भावार्थ—हे हनुमान्‌जी! तुम्हारी जय हो। तुम पूर्णानन्दके समूह, वानरोंमे साक्षात् सिंह, केशरीके पुत्र और ससारकेएकमात्र स्वामी हो। तुम अञ्जनी-रूपी दिव्य पृथ्वीकी रम्य खानिसे निस्सृत मणि हो और इसीसे तुम भक्तोंके संतापो और चिन्ताओंका सदा नाश किया करते हो ॥१॥ हे विभो! तुम्हारी जय हो; तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले और ब्रह्मलोकसे लेकर यावत् जो ऐश्वर्य और सुख है, उन्हे तिनके की तरह तुच्छ माननेवाले हो। तुम मन, वचन और कर्मसे सत्यव्रत पालनेवाले तथा श्री जानकी वल्लभ रामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंके परम भक्त हो॥२॥ जय हो! तुम गरुडके बल-वीर्य, वेग और गर्वके हरनेवाले और कामदेवके विनाशक आदि ब्रह्मचारी हो। तुम हनुमन्नाटक आदि बड़े-बड़े ग्रन्थोके रचयिता और उनके अभिनयमे कुशल, करोड़ों महाकवियोंके कुलमे शिरोमणि तथा सगीत-विद्यामे गधर्वोका सिर नीचा करनेवाले हो ॥३॥ जय हो। तुम महान् अभिमानी योद्धाओंमे शिरोमणि रावणके सामने उसकी स्त्री मदोदरीके बाल खींचनेवाले हो। तुमने श्रीजानकीजीके दुःखसे उत्पन्न क्रोधके वश हो राक्षसियोंको ऐसा क्लेश दिया, जैसा यमराज मर्त्यलोकके प्राणियोंको दिया करता है ॥४॥ हे भक्तशिरोमणे! तुम्हारी जय हो। श्रीरामचरित्र सुननेसे तुम्हारा शरीर पुलकित हो जाता है, आँखोंमे प्रेमाश्रु भर आते है, कंठ गद्गद् हो जाता है। तुम श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंका पराग-पान करनेवाले रसिक भ्रमर हो। हे त्रिशूलधारी रुद्ररूप हनुमान्‌जी! तुलसीदास तुम्हारी शरण है, भवभयसे उसकी रक्षा करो ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'विहगेस'—२८ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

(२) 'महानाटक'—हनुमान्‌जीने एक बड़ा भारी नाटक लिखकर, श्रीराम-चरित्र वर्णन किया था। उसका यथेष्ट अधिकारी न पाकर आपने उसे समुद्रसात् कर दिया। कहते हैं, उसका कहीं-कहींका अंश बच रहा, जिसका दामोदरमिश्रने पीछेसे संकलन करके वतमान हनुमन्नाटकका निर्माण किया।

(३) 'मंदोदरी-केस-कर्षण'-महावीर हनुमान्‌जीके विक्रम-चरित्रके वर्णनमें एक स्त्रीका "केश-कर्षण" प्रसंग कुछ खटकता-सा है। यद्यपि ग्रन्थकारने भक्तिके आवेशमें ही इसे लिखा है।

टिप्पणी—(१) 'डरत दिवाकर भोर को'—२५ पदकी टिप्पणी देखिए।
(२) 'रदमद कुलिस कठोर को'—२५ पदकी टिप्पणी देखिए।

राग बिलावल

( ३२ )

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहब कहूँ न राम से, तो से न उसीले ॥१॥
तेरे देखत सिंहके सिसु मेढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मन गुनगन कीले ॥२॥
हाँक सुनत दसकंधके भये बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भये अब गर्बगहीले ॥३॥
सेवक को परदा फटे तू समरथ सी ले।
अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही ले ॥४॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले।
तिहूँकाल तिनको भलो जे राम रँगीले ॥५॥

शब्दार्थ—उसीले=वसीला, सहायक, सही करनेवाला। कीले=निःशक्त कर दिये, बाँध दिये। बंधन=अंग-अंगके जोड। सी ले=टाँके लगा दे। साँसति=यातना, कष्ट।

भावार्थ—हे हठी, हे सत्याग्रही हनुमान्, तेरी ऐसी समझ तो न चाहिए, क्योंकि श्रीराम-सरीखे न तो कही कोई स्वामी है, और न तेरे समान सेवक। तात्पर्य यह कि, तुम दोनो ही—स्वामी और सेवक—परमदयालु, परमउदार और परमसमर्थ हो, किन्तु मेरी बार क्यो चुप साध बैठे हो। राजाधिराज रघुनाथजीके मौनव्रतपर मुझे इतना नही कहना है, जितना कि तेरी समझपर; क्योंकि तू बडा हठीला है, अपने भक्तोका कष्ट बरबस दूर किया करता है॥१॥ देख तो, तेरे देखते-देखते मुझ सिंह-शावकको कलियुग-रूपी मेढक निगले लेता है। जान पडता है, कराल कलिकालने कदाचित् तेरे मन और गुणोंको कील दिया है, तेरी उदारता, जनवत्सलता और सामर्थ्यपर अपनी मोहर लगा दी है॥२॥ तेरी हुंकार सुनते ही रावणके अंग-अंगके जोड ढीले पड गये थे, सो वह सामर्थ्य, वह पराक्रम आज कहाँ गया? या तो तेरे शरीरमे अब वह बल नहीं रहा, या तुझे कुछ घमंड

आ गया है ॥३॥ तेरे सेवक का पर्दा फट रहा है, कृपाकर उसमें टाँके लगा दे, क्योंकि तू तो बडा समर्थ है। भाव यह कि, मेरी लाज जा रही है, तुझ-सरीखे समर्थके आगे भी मेरी इज्जत-आबरू न बची, तो फिर हो चुका! पहले तो, यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो, तेरा यह स्वभाव था कि तू अपने सेवककी सुनता और मानता था, पर अब क्या हो गया? क्या प्रकृतिमें ही कुछ अंतर आ गया? ॥४॥ तुलसीदासकी यातना सुनकर उसे दूर कर दे, और तू ही यशका भागी बन जा, वैसे तो जो राम-रँगीले है, राम-भक्त है, उनका तीनों काल (भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्) बना बनाया है, कल्याण है। मेरी तो राम-कृपासे कभी-न-कभी बन ही जायगी, पर यदि अभी तूने मेरी सुन ली, तो मुझे भी बहती गंगामें हाथ धोनेका पुण्य मिल जायगा ॥५॥

टिप्पणी—(१) कहते हैं, एकबार तत्कालीन बादशाहने गोसाईं तुलसीदासजीको बुलाकर उनसे कहा कि, महात्माजी! कुछ करामात दिखाओ। तुम एक बड़े भारी पहुँचे हुए फ़क़ीर सुने जाते हो। इसपर उन्होंने उत्तर दिया, बाबा, मैं तो सिवा रामनामके और कोई करामात नहीं जानता। बादशाहने यह समझकर कि यह गुस्ताख़ी कर रहा हैं, इन्हें जेलमें बंदकर दिया। यह पद हनुमान्जीकी विनयमें वहीं पर बनाया गया है। 'तेरे देखत ···· लीलें', और 'सेवकको परदा फटे ··· सीलें' इन दो चरणोंसे यह प्रसंग सिद्ध होता है। किन्तु, हमारी रायमें, यह पद साधारणः कलियुगके मारे तंग होकर लिखा गया जान पड़ता है।

(२) 'मन गुनगन कीले'—मंत्रशास्त्रवेत्ता, मंत्रोके प्रभावसे, सिंह, सर्प और दूसरे हिंसक जीवोंके मुँह बंद कर देते हैं। ऐसा करनेसे वह काट नहीं सकते। इसीको 'कीलना' कहते हैं।

( ३३ )

समरथ सुअन समीरके रघुबीर पियारे।
मोपर कीबी तोहि जो करि लेहि भिया रे॥ १॥
तेरी महिमा तें चलैं चिंचिनी-चिया रे।
अँधियारो मेरी बार क्यों त्रिभुवन-उजियारे॥ २॥
केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपनो कर डारि दिया रे॥ ३॥

खाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे ॥ ४ ॥
जो तोसों होतौं फिरौं मेरो हेतु हिया रे।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि वचन इया रे ॥ ५ ॥
तोसो ग्यान-निधान को सर्वग्य बिया रे।
हौं समुझत साईं-द्रोह की गति छार छिया रे ॥ ६ ॥
तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे।
तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ? । ७ ॥

**शब्दार्थ**—भिया=भैया। चिचिनी-चिया=इमलीके बीज। खोंची=भीख। इया=यार, मित्र। बिया=दूसरा। तकिया=आश्रय।

**भावार्थ**—हे सर्वशक्तिमान् पवनकुमार, हे रामजीके प्यारे, इस सकटके समय जो कुछ तुझे मुझपर करना हो, सो भइया कर ले, बाकी न रख ॥१॥ सुना है कि, तेरे प्रतापसे इमलीके चिये भी सिक्कोंके स्थान पर चल जाते है ! फिर मेरे ही लिए, हे तीनो लोकमें प्रकाश फैलानेवाले, क्यों इतना अन्धेरा छा रखा है ? भाव, सबको तो शरणमें ले लिया' पर मुझे ही क्यों सामनेसे हटाते फिरते हो ?॥२॥ पहले कौन-सी अच्छी करनी समझकर मेरी गणना अपने दासोंमें की थी, मेरा सम्मान किया था, और अब किन पापो और अवगुणोंमे मुझे अलग फेंक दिया, अपनाकर भुला दिया ? ॥३॥ मेरी वृत्ति पूछते हो, तो मैंने सदा तुम्हारा नाम ले-लेकर भीख माँगी और खायी। तुम्हारी बलैया लेता हूँ। तुम्हारे ही बल-भरोसे मैं आजतक दुनियाँमें उजागर होकर जीवित रहा हूँ, नहीं तो अब तक मेरा नाम निशान भी न मिलता ॥४॥ जो मैं तुमसे मुख फेर लेता (यह समझकर कि जब तुम्हारी मुझपर प्रीति नहीं है, तो मैं भी तुमसे क्यों प्रेम करूँ) तो मेरा हृदय उसमें कारण होता, गवाही देता और आपसकेमित्रो जैसी भली बुरी बाते कह-कह-कर तुम्हारे आगे क्यों अपना मुँह दिखाता फिरता ॥ ५ ॥ तुम्हारे समान ज्ञानी और सर्वान्तर्यामी ससारमें दूसरा कौन है, तुम स्वय समझ सकते हो कि मेरा तुम्हारे साथ हृदयसे कैसा बर्ताव है, और इतना मैं भी जानता हूँ कि स्वामीके साथ द्रोह करने वाले की गति विष्ठाका नरक है ॥६॥ तुम्हारे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी तथा स्वामिनी श्रीसीताजी-सरीखी है, उनके दरबारमे सिवा तुम्हारे

तुलसीदासका और कौन बैठा है, उसे और किसका सहारा है, एक तुम्हीं अपने स्वामी-स्वामिनीके पास तक उसे पहुँचा सकते हो ॥७॥

( ३४ )

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी।
इन को बिलगु न मानिये, बोलहिं न बिचारी ॥ १ ॥
लोक-रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी।
अतिबरषे अनबरषे हूँ, देहिं दैवहिं गारी ॥ २ ॥
नाकहि आये नाथ सों, साँसति भय भारी।
कहि आयो, कीबी छमा, निज ओर निहारी ॥ ३ ॥
समे साँकरे सुमिरिये, समरथ हितकारी।
सो सब बिधि ऊबर* करै अपराध बिसारी ॥ ४ ॥
बिगरी सेवक की सदा, साहबहिं सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—बिलगु = बुरा। गारी =गाली। नाकहि आये=नाकों दम आ जाने पर। साँकरा=कष्ट। ऊबर=रक्षा। निरारी=न्यारी, निराली।

भावार्थ—अति पीड़ित, अति स्वार्थी, अति दीन और अति दुखी, इनके कहने का बुरा न मानना चाहिए, क्योंकि यह भले-बुरेका बिचार करके नहीं बोलते। जो मनमें आया, सो कह डालते है॥१॥ ससारमे यह बात प्रत्यक्ष में देखी जाती है और सुनते भी आ रहे है कि पानीके खूब बरसने पर और बिल्कुल न बरसने-पर बेचारे दैवको व्याकुल लोग गालियाँ सुनाते हैं; यदि उनकी गालियों का परमेश्वर खयाल करने लगे, तो हो चुका ॥२॥ जब कलिकी यातना और ससार के भारी भयसे मेरा नाको दम आ गया, तभी मैने तुमसे भला-बुरा कहा। अब कृपाकर, अपनी दीन-वत्सलताकी ओर देखकर मुझे क्षमा कर दो ॥३॥ कष्टके समय लोग समर्थ और हितूका ही स्मरण करते है, और वह भी, उनके सारे अपराध भुलाकर, उन्हें बचा लेता है ॥४॥ सेवकसे जो-जो भूले हो जाती हैं,

---

* पाठान्तर 'ऊपर'

स्वामी उन्हें ठीक कर लेता है। यह कुछ नई बात नहीं है, ऐसा सदासे होता चला आ रहा है; और फिर, तुलसीदास पर तो तुम्हारी निराली ही कृपा है, उसमें किसी भाँतिकी कोई बाधा ही नहीं ॥५॥

**टिप्पणी—( १ ) कहते हैं, जब बादशाहने गोसाईं तुलसीदासजीको कारागारमें बन्द कर दिया, तब लाखों बन्दरोंने बादशाहके महलोंमें उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। देखते-देखते बन्दरोंने सारा राजसी ठाटबाट ध्वस्त कर दिया। अब तो बादशाहकी आँखें खुलीं। गोसाईंजीके पैरोंपर गिर पड़ा और उपद्रव बन्द करानेकी प्रार्थना की। इसी प्रसंगपर गोसाईंजीने ३४ और ३५ पद रचे हैं। वैसे साधारण रीतिसे ये पद कलियुगपर ही घटते हैं।**

( ३५ )

कटु कहिये गाढ़े परे, सुन समुझि सुसाईं।
करहिं अनभलेउ*को भलो आपनी भलाई॥ १॥
समरथ सुभ† जो पाइये, वीर पीर पराई।
ताहि तकै सब ज्यों नदि, बारिधि न बुलाई॥ २॥
अपने अपने को भलो, चहै लोग लुगाई।
भावै जो जिहिं तिहिं भजे, सुभ असुभ सगाई॥ ३॥
बाँह बोल दै थापिये, जो निज बरिआई।
बिन सेवा सो पालिये, सेवक की नाईं॥ ४॥
चुक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ है, अति नीच निचाई॥ ५॥
बंदिछोर बिरुदावली, निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को, तेरियै निकाई॥ ६॥

**शब्दार्थ**—गाढ़े परे=कष्ट पड़ने पर। सगाई=नाता। बरिआई=जबरदस्ती। निकाई=भलाई।

**भावार्थ**—जब अपने ऊपर कोई कष्ट आ पड़ता है, तभी भला-बुरा कहा जाता है, और जहाँतक मुझे मालूम है अच्छे स्वामी अपनी भलाईसे उस बुरे सेवकका

---

* पाठान्तर 'अनभले'। † पाठान्तर 'सुभी'।

भी, समझ-बूझकर, भला कर देते है ।।१।। सर्वशक्तिमान्, अच्छे और पराक्रमी-स्वामी को पाकर कष्ट भाग जाते है, और उस स्वामीकीओर सब लोग यों टक लगाये देखा करते है, जैसे समुद्रके पास बिना बुलाये ही नदियाँ दौड-दौडकर आती है ।।२।। संसारमे स्त्री-पुरुष सब अपनी-अपनी भलाई चाहते है और जिसे जो अच्छा लगता है, उसीको वह भजता है। यह उपासना शुभ और अशुभके नातेसे देखी गई है। भाव यह कि, तू हनुमान्जीको ही क्यों भजता है, और देवी-देवताओंको क्यों नही भजता, तो इसका उत्तर यही है कि मेरी भलाई-बुराई एक उन्हीं पर निर्भर है, मुझे और से क्या मतलब ।।३।। जिसे तुमने हठसे अभय वचन देकर रख लिया है, उसे अपने सेवककी तरह पालो भी, चाहे वह तुम्हारी सेवा करे या न करे, सेवक तो हो ही चुका ।।४।। जितनी कुछ भूल और चंचलता है, वह सब मेरी ही हैं। तुम तो बड़े हो, और तुम्हारी बडाई भी इसीमे है कि मुझ-जैसे अपराधियोको क्षमा प्रदान करो। यह तो सर्वमान्य बात है कि आदर करनेसे नीच भी ढीठ हो जाता है और नीचता करने लगता है ।। ५ ।। वेद और शास्त्र ऐसा गाते है कि तुम बंधनोंसे छुडानेवाले हो। यदि तुमने अपनी स्वाभाविक भलाईपर ख्याल करके मेरा भला कर दिया, तो समझ लो, मेरी सब तरह से बन गयी, अन्यथा मै तो किसी भी योग्य नही हूँ ।। ६ ।।

**टिप्पणी—( १ ) ३२ पदकी पहली टिप्पणी 'बंदिछोर विरुदावली' से और भी स्पष्ट हो जाती है !**

### राग गौरी

( ३६ )

मंगल-मूरति मारुत-नन्दन। सकल अमंगल-मूल-निकन्दन ।।१।।
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी ।।२।।
मातु-पिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत संभु, सुक नारद ।।३।।
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद-नेह-निबाहू ।।४।।
बंदौं राम लखन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही ।।५।।

भावार्थ—हे पवनपुत्र हनुमान्जी, तुम कल्याण-स्वरूप हो। तुम सारे अनिष्टोंको जडसे उखाडनेवाले हो ।।१।। तुम पवनके पुत्र हो और साधुजनोंका हित

करनेवाले हो। अवधविहारी रामचन्द्रजी सदा तुम्हारे हृदयमें निवास किया करते हैं ॥२॥ अब मैं माता, पिता, गुरुदेव, गणेश, सरस्वती, पार्वती, शंकर, शुकदेव, नारद, ॥३॥ और सब देवी-देवताओंके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, और यह माँगता हूँ कि श्रीरघुनाथजीके प्रति मेरा प्रेम सदा एकसा बना रहे ॥४॥ श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीको मैं, सबसे पीछे, प्रणाम करता हूँ। तुलसीदासके परम-प्रेमी और सर्वस्व यही हैं ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'मारुत-नन्दन' के बाद 'पवन-तनय' शब्द आ जानेसे पुनरुक्ति भास रही है।

(२) 'मातु पिता···नेह निबाहू' में कवि ने सिंहावलोकन किया है।

(३) इस पद में, हनुमान्जीके अनन्तर अन्य देवी-देवता और फिर राम, लक्ष्मण तथा जानकीकी बन्दनामें शृङ्खला टूट जानेसे कुछ शैथिल्य-सा आ गया है!

## लक्ष्मण-स्तुति

### राग दण्डक

### (३७)

लाल लाड़िले लखन हित हौ जन के।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु अपने पन के ॥१॥
धरनी-धरनहार, भंजन-भुवनभार, अवतार साहसी सहसफन के।
सत्यसंध, सत्यब्रत, परमधरमरत, निरमल करम बचन अरु मन के ॥२॥
रूपके निधान, धनु-बान पानि, तून कटि, महाबीर बिदित, जितैया बड़े रनके।
सेवक-सुख-दायक, सबल, सब लायक, गायक जानकीनाथ-गुनगन के ॥३॥
भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम स्यामघन के।
बल्लभ उर्मिला के, सुलभ सनेहबस, धनी धन तुलसी-से निरधन के ॥४॥

शब्दार्थ—सहसफन=शेषनाग। तून=तरकस। भावते=प्यारे। वल्लभ=प्रिय, पति।

भावार्थ—हे प्यारे लखनलाल! तुम श्रीराम-भक्तोंके हित करनेवाले हो। स्मरण करते ही दुःख दूर कर देते हो। तुम सर्व प्रकारके कल्याण करनेवाले, अपनी प्रतिज्ञाको पालनेवाले तथा दासोंपर कृपा करनेवाले हो ॥१॥ पृथ्वीको

थामनेवाले, संसारका भार दूर करनेवाले, पराक्रमी शेषनागके तुम अवतार हो। अपनी प्रतिज्ञा एवं व्रतको सत्य करनेवाले, परमधर्मके प्रेमी और मन, वचन तथा कर्मसे अत्यन्त विशुद्ध हो ॥२॥ सौन्दर्यके तो स्थान ही हो। हाथोंमें धनुष और बाण लिये और कमरमें तरकस कसे हुए हो। तुम परमप्रसिद्ध वीर हो। तुमने बड़े-बड़े संग्रामोंमें विजय-लाभ किया है। तुम भक्तोंको सुख देनेवाले, पराक्रमी, सर्व कार्य करनेके योग्य और श्रीजानकी-वल्लभ रामचन्द्रजीकी गुणावलीके गानेवाले हो ॥३॥ तुम भरतके प्यारे, सुमित्रा और जानकीजीके दुलारे तथा राम-रूपी श्याममेघके चतुर चातक, महारानी उर्मिलाके पति, भक्तिवश सहज ही सुगम और तुलसी-सरीखे रंकको राम-भक्ति-रूपी धन देनेके लिए धनीके समान हो ॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'सब लायक'—राम-वनवासके समय राजनीतिके वक्तृत्वमें, पंचवटीमें श्रीरामचन्द्रजीसे तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्न पूछनेमें, योगियोंको भी दुर्लभ सेवा-धर्मके निर्वाहमें, मेघनादके साथ वीरता-प्रदर्शनमें, तथा जनवत्सलता आदिमें श्रीलक्ष्मणजीकी सर्वगुण योग्यता प्रकट होती है।**

**(२) 'भावते भरतके'—भरतका लक्ष्मणपर कितना अधिक प्रेम था, यह इन चौपाइयोंसे भली भाँति प्रकट हो जायगा—**

अहह धन्य लछमनु बडभागा। राम - पदारविंद - अनुरागी ॥
कपटी कुटिल नाथ मोहिं चीन्हा। ताते संग न मोहि प्रभु लीन्हा ॥
(रामचरितमानस)

**(३) इस पदमें कविने माधुर्य और ऐश्वर्यका बड़ाही सुन्दर संमिश्रण किया है।**

राग धनाश्री

(३८)

जयति लछमनानंत भगवंत भूधर, भुजगराज,
भुवनेस, भूभारहारी।
प्रलै-पावक-महाज्वालमाला-बमन,
समन - संताप, लीलावतारी ॥१॥
जयति दासरथि, समर-समरथ, सुमित्रा-सुवन,
सत्रुसूदन, रामभरत बंधो।

चारु चंपक बरन, बसन-भूपन-धरन
दिव्यतर, भव्य लावन्य-सिंधो ॥२॥
जयति गाधेय गौतम-जनक-सुख जनक,
बिस्व-कंटक-कुटिल-कोटि हंता।
बचन-चय-चातुरी परसुधर-गरबहर,
सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥३॥
जयति सीतेस-सेवासरस, विषयरस—
निरस, निरुपाधि धुरधर्मधारी।
बिपुलबलमूल सार्दूलबिक्रम जलदनाद—
मर्दन, महाबीर भारी ॥४॥
जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरन,
रामहित-करन बरबाहु-सेतू।
उर्म्मिला-रवन-कल्यान-मंगल-भवन,
दासतुलसी दोस-दवन हेतू ॥५॥

पदच्छेद—लछमन+अनंत। भुवन+ईस। लीला+अवतारी। रामभद्र+अनुगन्ता। सीता+ईस।

शब्दार्थ—वमन=उगलनेवाले। भव्य=कांतिमय, सुन्दर। गाधेय=गाधि-पुत्र विश्वामित्र। जनक=(१) विदेह महाराज जनक (२) उत्पन्न करनेवाले। हंता=नाश करनेवाले। चय=समूह। परसुधर=परशुराम। अनुगंता=पीछे-पीछे चलनेवाले, आज्ञाकारी। जलदनाद=मेघनाद। दमनहेतू=दमन करनेके कारण।

भावार्थ—लक्ष्मणजीकी जय हो, जो अपरिमित सर्वैश्वर्य-सम्पन्न पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग, अखिल ब्रह्माण्डके स्वामी, संसारका भार दूर करनेवाले, प्रलयकालकी अग्निकी भयंकर ज्वालाएँ उगलनेवाले, दुःखोंके विनाशक और अपनी लीलासे ही अवतार धारण करनेवाले हैं ॥१॥ दाशरथि लक्ष्मणजीकी जय हो-जो रणांगणमें शक्तिमान्, सुमित्रा महारानीके पुत्र, शत्रुओंके विनाशकर्त्ता, और श्रीराम तथा भरतके प्यारे भाई हैं। जिनके कान्तिमय शरीरका रंग चंपेके फूलके समान है, जो दिव्य वस्त्र और अलंकार धारण किये हैं, और सौन्दर्यके साक्षात् समुद्र हैं ॥२॥ विश्वामित्र, गौतम और मिथिलाधिपति

महाराज जनकको आनन्द उत्पन्न करनेवाले, ससारकेलिए करोड़ों कुटिल कॉटेके समान दुष्ट राक्षसोंको मारनेवाले, चतुराई-भरी बातोंसे ही परशुरामका गर्व खर्व कर देनेवाले और सदा श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे जानेवाले लक्ष्मणजीकी जय हो ॥३॥ श्रीजानकी-वल्लभ रामजीकी सेवामें अनुरक्त, सासारिक भोग-विलासोंसे विरक्त, निष्कटक भक्तिधर्मकी धुरी धारण करनेवाले, अनत शक्तिके आदिस्थान, पराक्रममें सिंहके समान, मेघनादको चूर-चूर करनेवाले महावीर लक्ष्मणकी जय हो ॥४॥ भयंकर रण-रूपी समुद्रको पार कर जानेवाले अर्थात् रणविजयी, श्रीरामजीके हितके अर्थ अपनी सुन्दर भुजाओंका पुल बनानेवाले अर्थात् अपने बाहुबलसे कठिन-से-कठिन कार्य सम्पादित करनेवाले, उर्मिला-वल्लभ, कल्याण और मंगलके स्थान तथा तुलसीदासके पाप नष्ट करनेमें मुख्य कारण ऐसे श्रीलक्ष्मणजीकी जय हो ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'गाधेय···जनक' —सुबाहु आदि राक्षसोंके मारनेसे विश्वामित्रको, श्रीरामजीसे सिफारिश कर अहल्याको शापमुक्त करवानेसे गौतमको, और रंगभूमिमें वीरोक्तिसे साहस देकर निराश जनकको आनंद प्रदान करनेवाले।

(२) 'वचन-चय-चातुरी'—परशुरामजीको व्यंगमय वचन सुनाकर गर्वरहित कर देना लक्ष्मणजीका ही काम था। यह प्रसंग हनुमन्नाटक और रामचरितमानस में बड़ी ही सुंदरतासे अंकित किया गया है।

(३) 'सीतेस-सेवा-सरस'—लक्ष्मणजी सीतारामजीकी सेवा किस अनन्यताके साथ करते थे, इसे गोसाईं तुलसीदासजीके ही मुखसे सुन लीजिए—

'सेवहिं लषन सीय-रघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ॥'

(४) 'विषय-रस-निरस'—लक्ष्मणजीने वनवासके समय बराबर १४ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य्य और जागरणका नियम निभाया था।

## भरत-स्तुति

### (३९)

जयति-भूमिजा-रवन-पदकंज-मकरंद-रस-
रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषन, भानुबंस-भूषन, भूमिपाल—
मनि, रामचन्द्रानुरागी ॥१॥

जयति बिबुधेस-धनदादि-दुर्लभ महा-
राज - संम्राज*सुख-प्रद - बिरागी ।
खड्ग—धाराव्रती-प्रथमरेखा प्रगट
सुद्धमति-जुवति-पति-प्रेमपागी ॥२॥
जयति निरुपाधि भक्तिभाव-जंत्रित हृदय,
बन्धु-हित चित्रकूटाद्रि-चारी ।
पादुका-नृप-सचिव पुहुमि-पालक परम
धरम-धुर-धीर, बरबीर भारी ॥३॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान
धनुबान-महिमा बखानी ।
बाहुबल-बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल,
गूढ़ गति जानकी-जानि जानी ॥४॥
जयति रन-अजिर गंधर्व-गन-गर्वहर,
फिर किये रामगुनगाथ-गाता ।
मांडवी-चित्तचातक नवाम्बुद-बरन,
सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥५॥

**पदच्छेद**—रामचद्र+अनुरागी । बिबुध+ईस । धनद+आदि । चित्रकूट+अद्रि । नव+अम्बुद ।

**शब्दार्थ**—बिबुधेस=इन्द्र । सम्राज=साम्राज्य । प्रथम रेखा=सर्व-शिरोमणि । जत्रित=अधीन । अद्रि=पर्वत । पुहुमि=पृथ्वी । परमिति=प्रमाण । अजिर=अंगण, ऑगन ! गाता=गायक । माडवी=भरतजीकी पत्नी ।

**भावार्थ**—बड़भागी भरतजीकी जय हो—जो श्रीजानकीवल्लभ रामचन्द्रजीके चरणारविन्दोका पराग पान करनेके लिए रसिक भ्रमर है, जो ससारमे श्रेष्ठ, सूर्यवंशावतश, और राजाओमे शिरोमणि श्रीरघुनाथजीके परम प्रेमी है ॥१॥ भरतजीकी जय हो—इन्द्र और कुबेर आदि लोकपालोको भी जो दुर्लभ हैं, ऐसे महाराज्य एव साम्राज्यके आनन्दको जिन्होने छोड दिया, जिनका सेवा-व्रत तलवारकी धारके समान महाकठिन है, ऐसे महात्माओमे भी जो सर्वश्रेष्ठ गिने

* पाठान्तर 'सम्भ्राज' ।

जाते हैं, और जिनकी निर्मल बुद्धि-रूपी स्त्री श्रीराम प्रेमरूपी पतिमें लौलीन है ॥२॥ जय हो भरतजीकी—जो निष्कंटक भक्तिभावके अधीन हो प्रिय भाई रामचंद्रजीको लौटा लानेके लिए चित्रकूटपर पैदल गये, जो रघुनाथजीकी चरण-पादुका-रूपी राजाके मंत्री बनकर पृथ्वीका पालन करते रहे और जो परमधर्मकी धुरीको धारण करनेवाले तथा बड़े-बड़े वीरोंमें श्रेष्ठ है ॥३॥ संजीवनी बूटी लानेके अवसरपर जब हनुमान्‌जीको कष्ट जान पड़ा, अर्थात् जब वह भरतजीके बाणसे व्यथित हो पृथ्वीपर गिर पड़े, तब उन्होंने इनके धनुषबाणकी बडी बडाई की, यही जिनकी प्रचंड भुजाओंका सबसे बडा प्रमाण है, जिनका पराक्रम अनुपम है, और जिनकी गूढ गति केवल सीतारमण-रामचन्द्रजी ही जानते है, ऐसे भरतजीकी जय हो ॥४॥ जिन्होंने रणभूमिमें गन्धर्वोंका गर्व खर्व कर दिया और फिर उन्हें श्रीराम-कथाका गानेवाला बनाया, उन भरतजीकी जय हो। महारानी मांडवीके मन-रूपी पपीहेके लिए जो नवीन मेघ-वर्ण है, ऐसे अभय-दान देनेवाले भरतजीकी शरण तुलसीदास है ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'राज संम्राज···विरागी'--रामचरितमानसमें यह वैराग्य और भी स्पष्ट कर दिया गया है—

'तेहि पुर भरत बसहि बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक—बागा ॥
रमा - विलास राम - अनुरागी। तजहि बमन-इव जन बडभागी ॥'

( २ ) 'सुद्ध मति···पागी'--इस पदसे पातिव्रत धर्म और अनन्यनिष्ठाका सिद्धान्त निष्पन्न होता है। इन अनन्योपासकोंके प्रति भगवान् श्रीकृष्णने कहा है--

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् ॥ ( श्रीमद्भगवद्गीता )

( ३ 'चित्रकूटाद्रिचारी'--भरतजीका चित्रकूट जाते समयका दृश्य गोसाईं तुलसीदासजीकी ही चौपाइयोंमें देखिए—

"अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच-सनेह-सिथिल सब गाता ॥
× × × × ×
भरत-दसा तेहि अवसर कैसी। जल-प्रवाह जल-अलिगति जैसी ॥
× × × ×

हरषहिं निरखि राम-पद-अंका । मानहुँ पारस पायेहु रंका ।
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन-सरिस सुख पावहिं ॥"

(४) 'पादुका नृप सचिव'—धन्य है !

"नित पूजत प्रभु-पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राज-काज बहु भाँति ॥" (रामचरितमानस)

(५) 'संजीवनी समय'—जब हनुमानूजी शक्ति-आहत लक्ष्मणजीके लिए संजीवनी बूटी लेकर लौट रहे थे, तब भरतजीने यह समझा, कि यह कोई मायावी राक्षस है और इसी अनुमान पर उन्हें एक बाण मार दिया। हनुमानूजी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े । पीछे, रामभक्त जानकर उन्हें हृदय से लगा लिया ।

(६) 'गूढ़-गति'—गूढ़ गति यह है—

'सगुन-छीर अवगुन-जल ताता । मिलइ रचइ परपच बिधाता ॥
भरत-हंस रबिबंस-तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन-दोष-विभागा ॥'

(रामचरितमानस)

(७) 'रन-अजिर गंधर्व गुन-गर्वहर'—भरतजीके ननिहाल केकय देशपर एकबार गंधर्वोंने आक्रमण किया । भरतजीने तुरन्त वहाँ जाकर उन्हें परास्त कर दिया ।

(८) गोसाईं तुलसीदासने रामचरितमानसमें भरतजीका जितना गुण-गान किया है, उतना श्रीरामचन्द्रजीका भी नहीं किया । वास्तवमें भरत, भरत ही थे । यदि किसीका चरित्र लांछन-रहित कहा जा सकता है, तो भरतजीका ही । अहा !

'जो न होत जग जनम भरत को । अचर सचर, चर अचर करत को ॥'

(रामचरितमानस)

## शत्रुघ्न स्तुति

### राग धनाश्री

(४०)

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन
सत्रुतम - तुहिनहर - किरनकेतू ।

देव-महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-
सिद्ध - मुनि - सकल - कल्यानहेतू ॥ १ ॥
जयति सर्वाङ्गसुन्दर सुमित्रा-सुवनं,
भुवन-विख्यात भरतानुगामी ।
वर्म-चर्मासि - धनु - बान-तूनीर - धर
शत्रु-संकट-समन यत्प्रनामी ॥ २ ॥
जयति लवनाम्बुनिधि-कुम्भसंभव महा-
दनुज-दुर्जन-दवन दुरितहारी ।
लछमनानुज भरत-राम-सीता-चरन-
रेनु-भूषित भाल-तिलकधारी ॥ ३ ॥
जयति स्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ
नमत नर्मद भक्तिमुक्तिदाता ।
दासतुलसी चरन-सरन सीदत विभो,
पाहि दीनार्त्त - संताप - हाता ॥ ४ ॥

**पदच्छेद**—सर्व + अंग । भरत+अनुगामी । चर्म+असि । लवन+अम्बु-निधि । लछमन + अनुज । दीन + आर्त्त ।

**शब्दार्थ**—करि=हाथी । तुहिन=पाला । किरनकेतु=सूर्य । महिदेव = ब्राह्मण । वर्म=कवच । चर्म=ढाल । तूनीर=तरकस । लवन=लवणासुर नाम-का एक राचस, जिसे मथुरामें शत्रुघ्नजीने मारा था । कुम्भसंभव=घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य ऋषि । दुरित=पाप । स्रुतिकीर्त्ति=शत्रुघ्नजीकी पत्नी । नर्मद =सुख देनेवाले । सीदत=कष्ट पा रहा है । पाहि=रचा करो । हाता=हरनेवाले।

**भावार्थ**—शत्रु-रूपी हाथियोंके नाश करनेको सिंहके समान शत्रुघ्नजीकी जय हो,जय हो—जो शत्रु-रूपी अंधकार और पालेको दूर करनेके लिए साचात् सूर्य हैं; और देव, ब्राह्मण, पृथ्वी, गाय, भक्त, सन्त, सिद्ध और मुनियोंके जो कल्याण कारण अर्थात् भला करनेवाले हैं ॥१॥ जिनका सर्वाङ्ग लावण्यमय है, जो सुमित्राके पुत्र हैं, जगत्-प्रसिद्ध भरतजीके आज्ञानुवर्ती हैं, जो कवच, ढाल, तलवार, धनुषबाण और तरकस धारण किये हैं, और जो शत्रुओंसे दिये हुए दुःखोंको नाश करनेवाले हैं,उन शत्रुघ्नजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥लवणा-

सुर-रूपी समुद्रको पान कर जानेवाले अगस्त्यके समान शत्रुघ्नजीकी जय हो। बड़े-बड़े दुष्ट राक्षसोंका संहार करनेवाले, पापोंके हर्त्ता, लक्ष्मणजीके छोटे भाई, और भरत, राम और सीताके चरणारविन्दोंकी रजका, मस्तक पर, सुन्दर तिलक धारण करनेवाले शत्रुघ्नजीकी जय हो।।३।। महारानी श्रुतिकीर्तिके प्राणवल्लभ, भगवद्विमुखोंको दुर्लभ तथा हरिभक्तोंको सुलभ, प्रणाम करते ही सुख, और भक्तोंको श्रीराम-भक्ति-प्रदान करनेवाले शत्रुघ्नकी जय हो। हे प्रभो! यह तुलसीदास तुम्हारे चरणोंकी शरणमे आकर भी क्लेश पा रहा है। हे दीन-दुखियोंके सन्ताप हरनेवाले! तुलसीदासकी रक्षा करो ।।४।।

**टिप्पणी—(१) 'लवन'—यह मथुराका राजा था। इसने अपने अत्याचारोंसे गो-ब्राह्मणोंको जब क्लेशित कर डाला, तब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे, शत्रुघ्नजीने जाकर इसे अपने अतुल पराक्रमसे मार डाला।**

**(२) कदाचित् गोसाईं तुलसीदासजीने अपने प्रबल शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्यके नाश करवानेके लिए शत्रुघ्नजीके अपरिमेय पराक्रमका वर्णन किया है!**

## श्रीसीता-स्तुति

### राग केदारा

( ४१ )

* कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ।। १ ।।

---

*** श्रीबैजनाथजी सम्पादित विनयपत्रिकाकी प्रतिमें यह पद अधिक मिलता है।**

जयति श्रीजानकी भानुकुल-भानु की,
प्रानप्रियवल्लभे, तरनिभूपे ।
राम आनन्द चैतन्यघन विग्रहा-सक्ति,
आल्हादिनी साररूपे ।।१।।
चित चरन चिन्तन जेहि धरत ही दूर हो,
काम भय कोह मद मोह माया।
रुद्र-बिधि-बिष्णु-सुर-सिद्ध-बन्दित पदं,
जयति सर्वेश्वरी रामजाया ।।२।।

दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ।। २ ।।
बूझि हैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ।। ३ ।।

---

कर्म जप जोग बिग्यान बैराग्य लहि,
मोच्छ हित जोगि जे प्रभु मनावै ।
जयति बैदेहि सब सक्ति-सिर-भूषने,
ते न तव दृष्टि बिनु कबहुँ पावैं ।। ३ ।।
कोटि ब्रह्मांड जगदीसको ईस जेहि,
निगम मुनि बुद्धि ते अगम गावैं ।
विदित यह गाथ अहदान कुलमाथ सो,
नाथ तव दान ते हाथ आवैं ।। ४ ।।
दिव्य सतवर्ष जप ध्यान जब सिव धर्यो
राम गुरुरूप मिलि पथ बताओ ।
चितै हित लीन लखि कृपा कीनी तबै,
देवि, अति दुर्लभहिं दरस पायो ।। ५ ।।
जयति श्रीस्वामिनी, सीय सुभनामिनी,
दामिनी कोटि निज देह दरसै ।
इन्दिरा आदि दै मत्त गजगामिनी,
देव-भामिनी सबै पाँय परसैं ।। ६ ।।
दुखित लखि भक्त बिनु दरस निज रूप तप,
यजन जप जतन ते सुलभ नाहीं ।
कृपा करि पूर्न नवकंजदल-लोचना,
प्रगट भई जनक-नृप-अजिर माहीं ।। ७ ।।
रमित तव बिपिन प्रिय प्रेम प्रगटन करन,
लंकपति ब्याज कछु खेल ठान्यो ।
गोपिका कृष्ण तव तुल्य बहु जतन करि,
तोहिं मिलि ईस आनन्द मान्यो ।। ८ ।।

जानकी जगजननि जन की किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ॥ ४॥

**शब्दार्थ**—अम्ब=माता। सुधि=स्मरण। द्याइबी = दिला दीजिएगा। चलाइ=छेड़कर। मलीन=मैला, उदास। अघाइ=पूरा। प्रभु-दासी-दास= रामजीकी दासी तुलसी, तिनका दास। (तुलसीदास)। बिगरिऔ = बिगड़ी बात भी।

**भावार्थ**—हे माता, कभी मौका मिले तो, मेरी भी श्रीरामचन्द्रजीको याद दिला देना। कोई करुणा की बात छेड़ देनेसे यह काम बन जायगा॥१॥ याद दिलाना हो तो, यो दिलाइएगा कि एक आपकी दासी (तुलसी) का दास, जो बड़ा ही दीन, सर्वसाधनोंसे रहित, दुर्बल, मैला-कुचैला और पूरा पापी है, आपका नाम ले-ले कर पेट भरता है॥२॥ यदि प्रभु पूछ बैठें कि वह कौन है, तो मेरा नाम लेकर दशा जता देना। मुझे विश्वास है कि कृपालु रामचन्द्रजी-के इतना सुन लेने मात्रसे ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जायगी॥ ३॥ हे जगज्जननि श्रीजानकीजी, यदि आपने वचनोंसे ही इस दासकी प्रभुके आगे कुछ सिफ़ारिश कर दी, तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाता गाता संसार-सागर सहज ही पार कर जायगा॥४॥

**टिप्पणी—(१) श्रीजानकीजी रघुनाथजीकी आह्लादिनी शक्ति हैं। उनके कह देनेमात्रसे ही जीव सच्चिदानन्द परमात्माका सामीप्य प्राप्त कर लेता है।**

**(२) 'करुन कथा'—करुण रस भगवान्‌का द्रव-स्वरूप है। किसी-किसी साहित्यकारके मतसे यह सब रसोंका मूल और प्रधान माना गया है—**

'रसेषु करुणो रसः।'

**मातामें वात्सल्य और करुणाका स्वाभाविक निवास होता है, इसीसे**

---

हीन तव सुमुख के संग रहि रंक सो,
विमुख जो देव नहिं नाह नेरो।
अधम उद्धरनि यह जानि गति सरन तव,
दासतुलसी भयो आय चेरो॥ ६॥

**यह पद और किसी प्रतिमें नहीं पाया जाता। इसकी रचना गोसाईंजीके पदोंसे बहुत कुछ भिन्न है। शिथिलता भी जहाँ-तहाँ देखनेमें आती है। अतः यह पद विनय-पत्रिकामें नहीं रखा जा सकता।**

कविने 'अम्ब', 'करुन' और 'वचन-सहाइ' का सार्थक समावेश किया, ऐसा जान पड़ता है।

( ४२ )

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी ॥१॥
सरल प्रकृति आपु जानिए करुना-निधान की।
निजगुन अरिकृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दानकी ॥२॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की ॥३॥

**शब्दार्थ**—पन=प्रण, प्रतिज्ञा। अनहितौ=बुराई। सुरति = स्मरण। बिसारनसील=भूलनेकी।

**भावार्थ**—हे जानकी माता, कभी अवसर पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना। देखिए, उनका दास कहाकर मैं उनका नाम लेता हूँ। मैं चातककी तरह उनका मिलन-रस-पान करनेकी प्रतिज्ञा किये बैठा हूँ। मुझे उनके प्रेम-जलके लिए बड़ी प्यास लग रही है ॥१॥ यह तो आप जानती ही हैं कि करुणानिधान रघुनाथजीकी प्रकृति बड़ी सरल है। उन्हे अपना गुण, शत्रुका किया हुआ अनिष्ट, सेवकके अपराध और दिये हुए दान कभी याद ही नहीं रहते ॥२॥ उनकी आदत भूल जानेकी है। जिसका कहीं भी सम्मान न होता हो उसे वह मान दिया करते हैं, पर यह भी भूल जाते हैं! यह सब कहनेका मतलब यह है कि, कहीं वे, यदि आपने याद न दिलायी तो, अपने स्वभावानुसार इस तुलसीदासको भी न भूल जायँ, कि जिसको मनसे, वचनसे और कर्मसे सिवा उनके, स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है ॥३॥

## श्रीराम-स्तुति

( ४३ )

जयति सच्चिद्व्यापकानन्द परब्रह्म बिग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
बिकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचबस, विमल गुन-गेह नर-देहधारी ॥१॥
जयति कोसलाधीस कल्यान कोसलसुता, कुसल कैवल्य-फल चारु चारी।

बेद-बोधित कर्म धर्म-धरनी-धेनु, बिप्र-सेवक-साधु मोदकारी ।।२।।
जयति रिषि-मख-पाल, समन सज्जन-साल, सापबस-मुनिबधू-पापहारी ।
भंजि भवचाप,दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ।।३।।
जयति धार्मिक-धुर धीर रघुबीर गुरु-मातु पितु-बंधु-बचनानुसारी ।
चित्रकूटाद्रि बिन्ध्याद्रि दंडकबिपिन, धन्यकृत, पुन्यकानन-बिहारी ।।४।।
जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा ।
दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निसिचरी;जनु बिडंबितकरी विस्वबाधा।।५।।
जयति खर-त्रिसिर-दूषन - चतुर्दस - सहस - सुभट - मारीच-संहारकर्त्ता ।
गृध्र-सबरी-भक्ति-बिबस करुनासिंधु,चरित निरुपाधि,त्रिविधार्तिहर्त्ता ।।६।।
जयति मदअंध कुकबंध बधि, बालि बलसालि बधि, करन सुग्रीव राजा ।
सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत, नमत पद रावनानुज निवाजा ।।७।।
जयति पाथोधि-कृत-सेतु कौतुक-हेतु काल-मन अगम लई ललकि लंका ।
सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन,लोक-लोकप किए रहित-संका ।।८।।
जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
दासतुलसी मुदित अवधबासी सकल, राम भे भूप, बैदेहि रानी ।।९।।

**पदच्छेद**—सत् + चित् । व्यापक + आनंद । लीला+अवतारी । कोसल + अधीश । भूप + अवली । बचन + अनुसारी । चित्रकूट + अद्रि । विन्ध्य + अद्रि । पाप+अरि । त्रिविध + आर्ति । रावन + अनुज । स + अनुज । पुष्पक + आरूढ़ ।

**शब्दार्थ**—विग्रह=मूर्ति । व्यक्त=प्रकट । कैवल्य=मोक्ष । मखपाल=यज्ञकी रक्षा करनेवाले । साल=कष्ट देनेवाले । नतमाथ=मस्तक झुका दिया है जिन्होंने; विनीत । अद्रि=पर्वत । खनि=खोद कर । गर्त्त=गड्ढा । गोपित=छिपा दिया। पाकारि सुत=इन्द्रका पुत्र जयन्त । त्रिविधार्त्ति=तीन प्रकारके दुःख; दैहिक, दैविक और भौतिक । संघट=समुदाय । निवाजे=निहाल कर दिये । पाथोधि= समुद्र । ललकि=उमंगके साथ ।

**भावार्थ**—श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो । जो शुद्ध सत्तास्वरूप, चैतन्य, व्यापक अर्थात् अन्तर्यामी, आनन्दस्वरूप ब्रह्म हैं, वही मूर्त्तिमान होकर नरलीला रचनेके लिए अव्यक्तसे व्यक्त अर्थात् साकार रूपमें प्रकट हुए हैं । जब ब्रह्मा-

प्रभृति देव और सिद्ध, दैत्योंके अत्याचारसे व्याकुल हो गये, तब उनके संकोचसे आपने विशुद्धगुण-विशिष्ट नर-शरीर धारण किया ॥ १ ॥ जय हो—जो कोशल नरेश महाराज दशरथ और कल्याणस्वरूपिणी महारानी कौशल्याके यहाँ मोक्षके सुन्दर चार फलोंके रूपमे प्रकट हुए, अर्थात् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य और सालोक्य इन चारों मुक्तियोके रूपमे उत्पन्न हुए। आपने वे वेदोक्त कर्म एव धर्म, पृथ्वी, गो, ब्राह्मण, भक्त और साधुजनोको आनन्द दिया ॥ २ ॥ जिन्होंने ब्रह्मर्षि विश्वामित्रके यज्ञक, राक्षसोंसे, रक्षा की, सन्तोंके सतानेवाले दुष्टोका दमन किया, पाषणमूर्ति अहिल्याके पापोको दूर कर दिया। शिवजीका धनुष तोडकर अभिमानी राजाओका गर्व खर्व कर दिया और विजयी परशुरामका उन्नत मस्तक नत कर दिया, उन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ३ ॥ गुरु, माता ( कैकयी ), पिता और भाईके वचन मानकर जिन रघुनाथजीने धर्मका भार धैर्यके साथ धारण किया, जिन्होने चित्रकूट तथा विन्ध्याचल और दण्डकवनको कृतकृत्य कर दिया, ऐसे पवित्र वनमे विहार करनेवाले श्रीरघुनाथजीकी जय हो ॥ ४ ॥ जिन्होने इद्रके काकरूप छली पुत्र जयन्तको उसकी करनीका यथेष्ट फल दिया, जिन्होने गड्ढा खोदकर उसमे विराध राक्षसको गाड़ दिया, देव-सुन्दरीका रूप धारण किये शूर्पणखाको, राक्षसी समझकर, जिन्होने कुरूप कर दिया, मानो ससार भरको कष्ट पहुँचानेवाले बाधास्वरूव रावणकी विडम्बनाका अपमान किया, उन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ५ ॥ खर, त्रिशिरा, दूषण, उनकी चौदह हजार सेना तथा मारीचको मारनेवाले, भक्तिके अधीन हो जटायु गृद्ध और शवरीका उद्धार करनेवाले, करुणा सागर, लाञ्छना-रहित चरित्रवाले और संसारिक तीनो तापोके हरनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी ॥ ६ ॥ जिन्होने मदाध दुष्ट कबन्धका वध किया, महाबलवान् बालिको मार डाला, सुग्रीवको राजा बनाया, बड़े-बड़े वीर बन्दरो और रीछोकी फौज इकट्ठाकर सुसज्जित की, और शरणागत विभीषणको निहाल कर दिया, उन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ७ ॥ केवल लीलाके ही लिए जिन्होने समुद्रपर पुल बना डाला, कालके मनको भी अगम, अजेय लकाको उमंगमें लपक लिया और रावणको उसके वंशसहित और सेनासहित रणमें नष्टकर तीनों लोकों एवं लोकपालोंको निर्भय कर दिया, ऐसे

श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ ८ ॥ जो लंका-विजय कर लक्ष्मण, जानकी और सुग्रीव आदि मंत्रियों समेत पुष्पक-विमानपर चढ़कर अपनी राजधानी अयोध्याको लौटे और जिन रामचन्द्रजीके राजा होने पर तथा सीताजीके रानी होनेपर समस्त अयोध्यावासी परम प्रसन्न हो गये, उन श्रीरघुनाथजीकी जय हो,जय हो।

**टिप्पणी**—(१) 'विमलगुन'— ऐश्वर्य, कृपा, न्याय, सौलभ्य, सौशील्य सौजन्य, क्षमा, कारुण्य, उदारता, श्री, ह्री, तेज, वीर्य आदि ईश्वरीय दिव्य-गुण। इन्हीं गुणोंसे संयुक्त होनेके कारण परमेश्वरका नाम 'सगुण ब्रह्म' पड़ा है। 'सगुण' में मायात्मक त्रिगुणका समावेश नहीं है।

(२) 'साप-बस मुनि-बधू'—अनिन्द्य सुन्दरी अहिल्या महर्षि गौतमकी स्त्री थी। उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर एक दिन इन्द्र, जब कि गौतम संध्या-बंदन करनेको बाहर गये थे, गौतमका रूप धारण कर अहिल्याके पास गया। उसने उससे रतिदान माँगा। कुसमय समझकर अहिल्याने पहले तो अस्वीकार किया, किन्तु पतिव्रता होनेके कारण कपट वेषधारी इन्द्रके साथ उसे संभोग करना पड़ा। इतनेमें गौतम आ गये। उन्होंने योगदृष्टिसे सब रहस्य जानकर, इन्द्रको यह शाप दिया कि, तेरे शरीरमें एक सहस्र भग हो जायँ और अहिल्याको यह शाप दिया कि, तू पत्थरकी मूर्त्ति हो जा। पीछे क्रोध शान्त होनेपर दोनोंके शापका प्रतीकार इस प्रकार कर दिया कि, श्रीरामजीके चरणोंके स्पर्शसे अहिल्याका उद्धार हो जायगा और जब रामचन्द्रजी शिवका धनुष तोड़ेंगे, तब इन्द्रके सहस्र भग सहस्र नेत्रोंमें परिणत हो जायँगे।

(३) 'पाकारि-सुत काक'—एकदिन चित्रकूटमें सीताजीके दिव्य सौन्दर्य पर इन्द्रका पुत्र जयंत मोहित हो गया। कौएका रूप धारण कर वह उनके स्तनोंमें चोंच मारने लगा। स्तनोंसे रुधिरकी धार बहती देख रघुनाथजीने उसपर एक सींकका बाण चलाया। बेचारा बाणके भयसे समस्त ब्रह्मांडमें भागता फिरा, पर कहीं भी त्राण न मिला। लाचार हो रामचन्द्रजीकी शरणमें आया। प्रभुने उसके प्राण तो न लिये, पर एक आँखका करके छोड़ दिया। गोसाईं तुलसीदासजीने अपने रामचरित-मानसमें, स्तनोंके स्थानपर चरणोंमें चोंचका मारना लिखा है जो भक्त-शिरोमणि गोसाईंजीके ही योग्य है।

(४) 'देखि लखि'—'देखना' और 'लखना' एकही अर्थके बोधक होते हैं, इससे यहाँ पुनरुक्ति दोषकी सभावना हो सकती है; किन्तु यहाँ पर ऐसा नहीं है। 'देख' का अर्थ तो देखना ही है, पर 'लखि' का अर्थ 'समझकर' जान

पड़ता है। देखना और विचारकर, ध्यान-पूर्वक समझकर होनेके कारण पुनरुक्ति दोष नहीं आ सकता।

(५) 'गीध'—जटायुसे तात्पर्य है। इसने सीताजीके छुड़ानेके लिए रावण से युद्ध कर प्राणत्याग किया था। रामचन्द्रजीने, अपने पिताके समान स्वयं इसका दाहसंस्कार किया था

( ४४ )

जयति राज-राजेन्द्र राजीवलोचन,
राम नाम, कलि-कामतरु, साम*साली।
अनय-अंभोधि कुंभज, निसाचर-निकर-
तिमिर-घनघोर-खर-किरनमाली॥ १॥
जयति मुनिदेव, नरदेव दसरत्थके,
देव-मुनि बन्द्य किय अवध-बासी।
लोकनायक-कोक-सोक-संकट-समन,
भानुकुल–कमल–कानन–बिकासी॥ २॥
जयति सिंगार-सर-तामरस-दामदुति-देह,
गुनगेह बिस्वोपकारी।
सकल-सौभाग्य-सौन्दर्य-सुखमारूप,
मनोभव — कोटि — गरबापहारी॥ ३॥
जयति सुभग सारंग सु-निखंग सायक,
सक्ति चारु चर्मासि वर वर्मधारी।
धर्म-धुर-धीर रघुबीर भुज-बल अतुल,
हेलया दलित भूभार भारी॥ ४॥
जयति कलधौत-मनि मुकुट, कुण्डल,
तिलक-झलक भलिभाल, बिधु-बदन सोभा।
दिव्य भूषन बसन, पीत उपबीत,
किय ध्यान कल्याण भाजन न को भा॥ ५॥
जयति भरत–सौमित्रि–सत्रुघ्न–सेवित,
सुमुख सचिव–सेवक–सुखद, सर्वदाता।

* पाठान्तर 'स्याम'।

अधम, आरत दीन पतित पातक-पीन,
सकृत नतमात्र कहि पाहि पाता ॥ ६ ॥
जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत,
पुन्यमय धन्य जय रामराजा ।
चरित सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित,
पिवत, मज्जत मुदित सत-समाजा ॥ ७ ॥
जयति वर्नास्रमाचार पर नारि-नर,
सत्य - सम - दम-दया - दान - सीला ।
बिगत दुख-दोष, संतोष सुख सर्वदा,
सुनत गावत राम-राजलीला ॥ ८ ॥
जयति बैराग्य-बिग्यान-वारांनिधे,
नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता ।
दासतुलसी चरन सरन संसय-हरन देहि,
अवलंब वैदेहि – भर्त्ता ॥ ९ ॥

**पदच्छेद**—राजा + इन्द्र । विस्व + उपकारी । गरब + अपहारी । चर्म + असि । बर्न + आस्रम + आचार ।

**शब्दार्थ**—राजीव=कमल । अनय=अन्याय । अंभोधि=समुद्र । खर=तीक्ष्ण । किरनमाली=सूर्य । कोक=चकवा । तामरस=कमल । दाम=माला । मनोभव=कामदेव । सारंग=धनुष । निखग=तरकस । चर्म=ढाल । वर्म=कवच । हेलया=लीलापूर्वक । कलधौत=सुवर्ण । पीन=मोटा, पुष्ट । सकृत=एकबार । वारानिधे=समुद्र । नर्म=आनन्द । भर्ता=पति ।

**भावार्थ**—राजराजेश्वरोंमे इंद्रके समान, कमलनेत्र, जिनका नाम 'राम' है, कलियुगमे कल्पवृक्षस्वरूप, साम्य धर्मानुवर्त्ती, अन्याय-रूपी समुद्रको सोख जाने वाले महर्षि अगस्त्यके समान, तथा दैत्य-समुदाय-रूपी प्रगाढ़ और भयंकर अंधकारके लिए प्रचंड सूर्यके समान श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥१॥ मुनि, देव और राजाओंके स्वामी दाशरथिने अवध-निवासियोंको ऐसा श्रेष्ठ और पूज्य बना दिया, कि उन्हे देवता और मुनि भी प्रणाम करने लगे । लोकपाल-रूपी चकवोंके शोक और संतापको नाश करनेवाले और सूर्यवंशरूपी कमल-वन प्रफुल्लित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥२॥ शृंगार-रूपी सरोवरमे कमलोंकी मालाके समान

जिनके शरीरकी शोभा हो रही है, जो समस्त दिव्यगुणोंके धाम,हैं, विश्वामित्रका हित करनेवाले है, समग्र सौभाग्य, लावण्य और शोभायुक्त रूपसे करोड़ों कामदेवोंका मान-भंजन करनेवाले है, उन श्रीकौशल-किशोरकी जय हो ।।३।। सुंदर धनुष, तरकस, बाण, शक्ति, ढाल, तलवार और श्रेष्ठ कवच धारण करनेवाले, धर्मकी धुरी (भार) उठानेमे धीर, रघुकुलमे वीर और अपने भुजदंडोंके प्रचंड प्रतापसे लीलापूर्वक ही पृथ्वीके भारी भार अर्थात् राक्षसोका नाश करनेवाले, श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ।।४।। मणि जटित सुवर्णका मुकुट मस्तकपर धारण किये, कानोमे कुण्डल पहिने, भालस्थलीपर तिलककी सुन्दर झलक सहित, चन्द्रमाके समान लावण्यमय मुखवाले, विचित्र अलकार और वस्त्र युक्त तथा पीला यज्ञोपवीत धारण किये हुए श्रीरघुनाथजीका ध्यान करके कौन कल्याणका भागी नही हुआ है ? भाव यह कि, इस ध्यानके प्रभावसे सभी परम श्रेयस्के अधिकारी हुए है ।। ५ ।। भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे सेवित, सुमुख-सुमत प्रभृति मन्त्रियों और भक्तोंको सर्वप्रकारका सुख देनेवाले, नीच, दुखी, दीन, पतित और बड़े बड़े पापियोको, केवल एकबार प्रणाम करने पर और इतना ही कहनेपर कि "रक्षा करो", संसार सागरसे तार देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ।।६।। जिनकी पवित्र कीर्ति-कौमुदी चौदहो लोकोंमे जगमगा रही है, जो धन्य है,ऐसे श्रीराजा रामजीकी जय हो । जिनकी कथारूपी जाह्नवी आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि रूपी हिमालय पर्वतसे निकली है और जिसे पानकर और जिसमे स्नानकर सन्त-समाज सदा प्रफुल्लित रहता है, उन श्रीरघुनाथजीकी जय हो ।।७।। वर्णाश्रम-विहित आचार पर चलनेवाले, शम, दम, दया और दान करनेवाले, दुखो और पापोंसे रहित, सदा संतोषी और सुखी स्त्री-पुरुष जिनके राज्यकी लीला गाते और सुनते है,उन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ।।८।। जो वैराग्य और ज्ञान-विज्ञानके समुद्र है,जो प्रणाम करनेवालोंको आनन्द प्रदान करते हैं,उनके पापो और संतापको हर लेते हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो । हे जानकी-वल्लभ ! हे संशयशमन ! यह सब सुन समझकर तुलसीदास आपकी शरणमे आया है, कृपाकर उसे अपने चरणोंका सहारा दीजिए ।।९।।

**टिप्पणी—(१) 'शृंगार'—भक्तवर बैजनाथजी कुरमीने शृंगारका यह लक्षण लिखा है—**

"बुधि-बिलास-जुत जहँ रहै, रति कौ पूरन अंग।
ताहि कहत सिंगार रस, केवल मदन-प्रसंग ॥"

(२) **'तामरस-दाम दुति'—शृंगार सरोवरमें प्रफुल्लित कमल, बैजनाथ-जीके अनुसार ये हैं—**

"दुति, लावण्य, सुरूप, सोइ सुन्दरता रमनीय।
कान्ति, मधुर, मृदुता बहुरि, सुकुमारता गनीय ॥"

(३) **'सकृत नतमात्र'—यहाँ वाल्मीकीय रामायणका यह श्लोक स्मरण आ जाता है—**

"सकृदेव प्रपन्नाय, 'तवास्मीति' च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रतं मम ॥"

**इसीसे मिलता-जुलता गीताका भी निम्नलिखित श्लोक है—**

"सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

(४) **'वरनाश्रम'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास यह चारों आश्रम हैं।**

(५) **'संशय'—अविद्यासे तात्पर्य है।**

## राग गौरी

( ४५ )

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय-दारुनं।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुनं ॥ १ ॥
कंदर्प-अगनित-अमित-छबि, नवनील नीरद सुन्दरं।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं ॥ २ ॥
भजु दीनबन्धु दिनेस दानव-दैत्य-बंस-निकंदनं * ।
रघुनंद आनँदकंद कोसलचंद दसरथ-नन्दनं ॥ ३ ॥
सिर मुकुट, कुण्डल तिलक चारु, उदारु अंग बिभूषनं।
आजानुभुज, सर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषनं ॥ ४ ॥

---

* पाठान्तर—तीसरे और चौथे चरणमें हेरफेर मिलता है। कहीं 'सिर मुकुट...खरदूषन' पहले है, तो कहीं 'भजु दीनबन्धु...नंदनं।'

इति वदति † तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मन-रंजनं ।
मम हृदय-कंज निवास करु, कामादि-खल-दल-गंजनं ॥ ५ ॥

**पदच्छेद**—कंज + अरुन । काम + आदि ।

**शब्दार्थ**—नीरद=मेघ । नौमि=नमस्कार करता हूँ । उदारु=सुन्दर । आजानु बाहु=घुटनोंतक लम्बी भुजाएँ । जित=इसका अर्थ 'जीता हुआ' ( परास्त ) नहीं, किन्तु विजेता अर्थात् जीतनेवाला है । वदति=कहता है, प्रार्थना करता है ।

**भावार्थ**—हे मन ! परम कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर । वह संसार-के दारुण भयको दूर करनेवाले हैं, जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त कर देनेवाले हैं। उनके नेत्र कमलके समान हैं, मुख, हाथ और चरण भी लाल कमलके सदृश हैं ॥ १ ॥ उनका सौन्दर्य अगणित कामदेवोंके समान है । शरीर नवीन नील मेघ-जैसा सुन्दर है; पीताम्बर ( शरीर-रूपी मेघके बीचमें ) बिजलीकी सुन्दर चमकके समान शोभित हो रहा है, ऐसे पुण्यश्लोक जानकीरमण श्रीरघुनाथजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ हे मन ! दीनोंके मित्र, सूर्यके समान प्रचण्ड तेजस्वी, दानवों और दैत्योंका कुल समूल नष्ट करनेवाले, आनंदकंद,कोशल-देशमे चन्द्रके समान देदीप्यमान, दशरथनन्दन रघुनाथजीका भजन कर॥३॥ जिनके मस्तकपर मुकुट,कानोंमें कुंडल, माथेपर सुंदर तिलक और अंग प्रत्यंगमे भव्य भूषण सुशोभित हो रहे हैं, जिनकी भुजाएँ घुटनोंतक हैं, जिन्होंने धनुष और बाण लिए हैं, जिन्होने रणभूमिमे खर और दूषण नामके राक्षसोंको जीत लिया है ॥४॥ जो शिव, शेष और मुनियोंके मनको प्रसन्न करनेवाले तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि प्रबल शत्रुओंके नाशक हैं, वह श्रीरघुनाथजी, तुलसी-दास कहते हैं, मेरे हृदय-कमलमे निवास करें ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'कंजमुख'—जिस कमलके साथ मुखकी उपमा दी गई है, उसे नीला कमल समझना चाहिये ।**

**(२) 'नवकंज लोचन'···'कंजारुणं'—इससे माधुर्य-भावकी अच्छी सूचना मिलती है ।**

**(३) 'कंद'—मेघ ।**

**(४) यह पद बहुत ही प्रसिद्ध है । श्रीरामानन्दी वैष्णवजन तो इसे आरतीके समय नित्य ही गाया करते हैं ।**

---

† पाठान्तर—'वंदति' ।

## राग-रामकली

( ४६ )

सदा राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु, राम जपु मूढ़ मन, बार बारं ।
सकल सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि सठ, मानि बिस्वास बद बेदसारं ॥१॥
कोसलेन्द्र नव-नीलकंजाभतनु, मदन-रिपु-कंजहृदि-चंचरीकं ।
जानकीरवन, सुखभवन, भुवनैक प्रभु, समर-भंजन, परम कारुनीकं ॥२॥
दनुज-बन-धूमधुज, पीन आजानुभुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं ।
अरुन कर चरन मुख, नैन राजीव, गुनऐन, बहुमैन-सोभा-निधानं ॥३॥
वासनावृन्द-कैरव-दिवाकर काम-क्रोध-मद-कंज - कानन - तुषारं ।
लोभ-अति-मत्त-नागेन्द्र-पंचाननं भक्तहित हरन संसार भारं ॥४॥
केसवं, क्लेसहं, केस-बंदित पदद्वन्द, मंदाकिनी-मूलभूतं ।
सर्वदानंद - संदोह मोहापहं घोर - संसार - पाथोधि पोतं ॥५॥
सोक संदेह-पाथोदपटलाविलं*पाप-पर्वत-कठिन कुलिसरूपं ।
संतजन-कामधुक-धेनु बिस्रामपद नाम कलि-कलुष-भंजन अनूपं ॥६॥
धर्म कल्पद्रुमाराम हरिधाम-पथि-संबलं मूलमिदमेव एकं ।
भक्ति-वैराग्य-विग्यान-सम-दान-दम नाम-आधीन साधन अनेकं ॥७॥
तेन तप्तं हुतं, दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं ॥८॥
सुपच खल भिल्ल जमनादि हरिलोकगत नामबल विपुल मति मलिनपरसी।
त्यागि सब आस-संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दासतुलसी।९।

**पदच्छेद**—कोसल+इन्द्र । कंज+आभ । भुवन+एक । क+ईस । सर्वदा +आनन्द । मोह+अपहं । पटल+आविलं । कल्पद्रुम+आराम । मूलम्+ इदम्+एव । दत्तम्+एव+अखिलं । नाम+अमृत । कृतम्+अनिशम् । अनवद्यम्+अवलोक्य । जमन ( यवन ) + आदि ।

**शब्दार्थ**—वद=बोल । कंजाभ=कमलके समान आभा वा काति । हृदि= हृदयमे । कारुनीक=करुणामय । धूमधुज=अग्नि । पीन=पुष्ट । कोदंड=

---

* पाठान्तर—'अनिल' ।

धनुष । चंड=प्रचंड, तेज । मैन=कामदेव । कैरव=कुमोदिनी । तुषार=पाला । नागेन्द्र=गजेन्द्र। पंचानन=सिंह । केश=क (ब्रह्मा) और ईश (शिव)। पाथोधि=समुद्र । पोत=जहाज । पाथोद=मेघ । पटल=समूह । आराम=उद्यान । संबल=कलेवा, राह खर्च । तप्तं=तप किया । हुतं=हवन किया । दत्तम्=दान दिया । पास=फंदा । निसित=पैनी ।

**भावार्थ**–हे मूर्ख मन ! सदा सर्वदा बारबार श्रीराम-नामका स्मरण किया कर । वह 'सर्व सौभाग्य और सुखोंकी खानि है' ऐसा जीमें समझकर और 'वेदों का सार है' ऐसा मानकर सदा राम राम कहा कर ।।१।। कोशलेश श्रीरामचन्द्र-जी नवीन नीले कमलकी कांतिके समान हैं। वह शिवजीके हृदय कमलमें रमने-वाले भ्रमर है । वह जानकी-वल्लभ, आनन्दघन, समस्त ब्रह्माडके एकमात्र स्वामी, सग्राममे (दुष्टोके) नाशकर्ता और महान् करुणामय हैं ।।२।। वह दैत्य-वन जलानेको अग्निके समान है । पुष्ट और घुटनोंतक लम्बे भुजदंडोंमे धनुष और प्रचंड बाण धारण किये हैं । उनके हाथ,चरण, मुख और नेत्र लालकमल के सदृश है । वह सर्वगुण-संपन्न तथा अनेक कामदेवोंके सौन्दर्यके भाडार हैं ।।३।। शुभाशुभ कामनाओंकी समूह जो कुमोदिनी है, उसे मुर्झा देनेके लिए वह सूर्यरूप है, अर्थात् वह सभी ऐहिक और पारलौकिक इच्छाओंका नाश कर देते हैं, और ऐसा होनेपर जीव आवागमनके चक्रसे छूटकर मुक्त हो जाता है । इसी प्रकार वह काम,क्रोध, अहकार प्रभृति कमलवनको सुखा देनेके लिए पाला है, लोभरूपी मदोन्मत्त गजेन्द्रके लिए सिंह तथा भक्तोके कल्याणार्थ संसारके भार-रूप राक्षसोंके दमन करनेवाले हैं।।४।। उनका नाम केशव है,वह क्लेशादि के नाशक हैं, ब्रह्मा और शिवसे उनके युगल चरणारविन्द वन्दित किये जाते हैं, जो गंगाजीके उद्गम-द्वार हैं, सदा आनन्दके समूह, अविद्याके विनाशक और भयंकर संसार-सागरसे पार जानेके लिए जहाज हैं ।। ५ ।। रघुनाथजी शोक और अविद्यारूपी मेघ-समूहको छिन्न-भिन्न करनेके लिए वायु-रूप और पाप-रूपी कठिन पहाड़को तोड़ने-फोड़नेके लिए वज्ररूप हैं । संतोंको कामधेनुके समान शान्ति देनेवाला तथा कलियुगमे किये गये पापोंका नाश करनेवाला उपमारहित उनका नाम है ।। ६ ।। यह नाम धर्म-रूपी कल्पवृक्षका उद्यान, साकेतधाम जानेवाले पथिकोके लिए मार्ग व्ययके

समान, और यही एक मूलाधार है। भक्ति, वैराग्य, ज्ञान-विज्ञान, शम, दम, दान प्रभृति अनेक मुक्तिके साधन इसी नामके अधीन हैं, बिना राम-रामके ये सब साधन सिद्ध ही नहीं हो सकते ॥७॥ कराल कलिकाल निकट आता हुआ देख जिसने दिनरात श्रीराम-नाम रूपी अमृतका पान किया, वास्तवमें, उसीने तपश्चर्या की, उसीने हवन किया, उसीने सर्वस्व दान दिया और उसीने सारा कर्मकांड विधिवत् सम्पादित किया, क्योंकि बिना भगवन्नाम स्मरण किये, ये सब साधन करने-न-करने के बराबर है ॥ ८ ॥ बड़े-बडे पापकर्मा चाडाल, दुष्ट, भील, यवन आदि केवल नामके ही प्रतापसे विष्णुलोक चले गये। इससे हे तुलसीदास ! तू तो अब सारी आशाएँ, और भय छोडकर ही संसार-रूपी जाल काट देनेके लिए पैनी तलवारके समान राम-नामका ही स्मरण किया कर ॥९॥

**टिप्पणी—(१) 'राम जपु, राम जपु' आदि—यहाँ 'राम जपु' पद पाँच बार आया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, ये पाँच विषय संसारमें आने के कारण हैं। एक-एकके नाश करनेके लिए, मनको 'राम जपु' पदसे चेतावनी दी गई, ऐसा जान पड़ता है।**

**(२) 'कामधुक-धेनु'—कलियुगमें राम-नामके प्रभावसे सभी प्रकारके सुख-साधन प्राप्त हो सकते हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है—**

"ध्यायन् कृते, यजन् यज्ञैस्त्रेताया, द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ श्रीहरि-कीर्त्तनात् ॥"

**अथवा—**

"कलियुग केवल नाम अधारा। जानि लेहि जो जाननिहारा।"

**पुनश्च—**

"हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा ॥"

**(३) 'जमन'—यवन। एक मुसल्मानने, कहते हैं, सूकरकेआघात से मरते समय 'हराम' शब्द कहा था। बिना जाने ही उसमें 'राम' शब्द आजानेसे उसकी मुक्ति हो गई !**

( ४७ )

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन।
हरन दुखद्वंद गोविंद आनंदघन ॥१॥

अचरचर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति वासना-धूप दीजै ।
दीप निजबोध गत कोह-मदमोह-तम-प्रौढ़ अभिमान-चितवृत्तिछीजै ॥२॥
भाव अतिसै बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम-संतोषकारी ।
प्रेम ताम्बूल, गतसूल संसय सकल, बिपुलभव-वासना-बीजहारी ॥३॥
असुभ-सुभकर्म घृतपूर्न दस वर्तिका, त्याग पावक सतोगुन प्रकासं ।
भक्ति-वैराग्य-बिग्यान-दीपावली, अर्पि नीराजनं जग-निवासं ॥४॥
बिमल हृदि-भवन कृत सांति-परजंक सुभ, सयन विस्राम श्रीराम राया ।
क्षमा-करुना प्रमुख तत्र परिचारिका जत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥५॥
यहै आरती-निरत सनकादि स्रुति सेषसिवदेवरिषि अखिल मुनितत्व-दरसी
करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, बदति इति अमलमति-दासतुलसी॥६॥

शब्दार्थ—निज बोध=आत्मज्ञान । कोह=क्रोध । छीजै=क्षीण हो जाती है । बर्तिका=बत्ती । नीराजन=आरती । राया=राजा । परजक=पर्य्यङ्क, पलग । तत्त्वदरसी=आत्मानुभवी ।

**भावार्थ**—हे मन ! रघुवंशके वीरवर श्रीरामचन्द्रजीकी आरती इस प्रकार कर । देख, वह राग द्वेष आदि दुःखोंके नाश-कर्ता, इन्द्रियोंके स्वामी और आनंद-रसकी वर्षा करनेवाले हैं ॥१॥ भगवान् जड़ और चैतन्य सबमें सदा रमते है, इस वासना ( इच्छा, सुगध ) की धूप दे, इस धूपके करनेसे तेरा सारा मायात्मक अज्ञान दूर होजायगा । धूपके बाद दीप दिखाना होता है, सो अपने आत्मज्ञानका दीपक जलाकर क्रोध, अहंकार और अज्ञानके अंधकारका नाश कर दे । आत्मबोधके दीपकके प्रकाशमें मनोवृत्तियाँ आप-ही-आप क्षीण हो जायँगी ॥ २ ॥ अब अत्यन्त निर्मल और श्रेष्ठ भावका नैवेद्य भगवान्‌के आगे निवेदित कर । यह भाव-रूपी नैवेद्य लक्ष्मीकान्त नारायणको परम सतोष देगा । फिर, शोक और सर्व अज्ञान एवं अपार संसारकी वासनाओंके बीजका नाश-कर्त्ता जो 'प्रेम' है, उसका ताम्बूल बनाकर अर्पण कर ॥३॥ इसके अनन्तर शुभ और अशुभ कर्मरूपी घीमें डूबी हुई दश ( पंच कर्मेन्द्रिय और पंच ज्ञानेन्द्रिय ) बत्तियोंको त्याग-रूपी आगसे जलाकर सतोगुण-रूपी प्रकाश कर । इस प्रकार भक्ति, वैराग्य और विज्ञानरूपी दीपावलीकी आरती जगन्निवास

प्रभुके आगे अर्पण कर ॥ ४ ॥ आरती कर चुकनेपर निर्मल हृदयरूपी भवनमें शान्ति-रूपी पलग बिछाकर उसपर महाराज रामचंद्रजीको शयन कराके उन्हें विश्राम सुख दे। इस शयनागारमें क्षमा, करुणा प्रभृति दासियोंको सेवा करनेके लिए नियत कर दे। देख, जहाँ भगवान् विश्राम करेंगे, वहाँ अविद्या रहेगी, सारी भेद बुद्धि जाती रहेगी ॥ ५ ॥ सनक, सनदन, सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव, शेष, शिव, नारद और समस्त तत्त्ववेत्ता पारदर्शी मुनि इस उपर्युक्त आरतीमें सदा सलग्न रहते है। निर्मल बुद्धिवाले परमज्ञानियोंका सेवक तुलसी कहता है कि, जो कोई भी इस आरतीको करता है, वह काम आदि पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥

टिप्पणी—(१) आरतीके छः अंग होते हैं—(१) धूप (२) दीप (३) नैवेद्य (४) ताम्बूल (५) आरती और (६) शयन।

(२) 'धूप'—साधारणतः देवदारु, गूगुल, कपूर, अगर, घृत, शर्करा आदिसे धूप तैयार की जाती है। यहाँ क्षमा, दया, मुदिता, करुणा, शान्ति, तितिक्षा, भक्ति आदि दिव्य द्रव्योंसे धूप प्रस्तुत की गई है।

(३) चित्तवृत्ति—चित्तकी सहस्रों वृत्तियाँ हैं। यही जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालती हैं। चित्तवृत्तियोंके निरोधको ही योगियोंने 'योग' का मुख्य लक्षण माना है। योग-सूत्रोंका प्रथम सूत्र इसका प्रमाण है—

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'

(४) 'असुभ···प्रकासं'—त्याग प्राप्त हो जानेपर दशो इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयको छोड़कर सतोगुणी वृत्ति धारणकर लेती हैं। त्यागसे वे 'अन्तर्मुखी' हो जाती हैं।

(५) 'यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया'—कामिनी, कांचन और परमेश्वर एक साथ नहीं रह सकते। रहीम कहते हैं—

'जिन नैननि प्रीतम बस्यौ, तहँ किमि और समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, पथिक आपु फिरि जाय ॥' —रहीम

तथा— 'रहै क्यों एक म्यान असि दोय।
जिन नैननिमें हरि-रस छायो, तहँ भावै किमि कोय ॥ इत्यादि'
—भारतेन्दु

(६) इस आरतीके करनेसे अविद्याका नाश हो जाता है, संशय दूर हो जाता है, और कर्मोंका अन्त हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'

( ७ ) इस पदमें रूपक अलंकार है ।

( ४८ )

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहन दुख दोष, निर्मूलिनी काम की ॥ १ ॥
सुभग सौरभ धूप दीपवर मालिका ।
उड़त अघ-बिहँग सुनि ताल करतालिका ॥ २ ॥
भक्त-हृदि-भवन, अग्यान-तम-हारिनी ।
बिमल बिग्यानमय तेज—बिस्तारिनी ॥ ३ ॥
मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिमजामिनी ।
मुक्ति की दूतिका देह-दुति दामिनी ॥ ४ ॥
प्रनत-जन-कुमद-बन-इन्दु-कर जालिका ।
तुलसी अभिमान-महिषेस बहु कालिका ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—आरती=( १ ) दुःख ( २ ) नीराजन । मालिका=माला, पंक्ति । जामिनी=रात्रि । प्रनत=शरणमें आये हुए । इन्दुकर=चन्द्रमाकी किरणें । महिषेस=महिष नामका एक दैत्य, जिसे कालीने मारा था ।

**भावार्थ**—श्रीरामचन्द्रजीकी आरती सब क्लेशोंको हर लेती है। दुःख और पापोंको जला देती है तथा काम अर्थात् इच्छाओंको जडसे उखाडकर फेक देती है ॥ १ ॥ वह सुन्दर सुगन्धयुक्त धूप और श्रेष्ठ दीपकोंकी माला है। इस आरतीके अवसरपर हाथोंसे जो ताली बजाई जाती है, उससे पाप-रूपी पक्षी उडकर भाग जाते है ॥२॥ वह भक्तोंके हृदय-रूपी भवनमें बसनेवाले अविद्या-रूपी अन्धकारको हरनेवाली और निर्मल ज्ञान-रूपी प्रकाश-फैलानेवाली है ॥ ३ ॥ वह अज्ञान, अहंकार, क्रोध और कलियुग रूपी कमलोंके नाश करनेके लिए जाड़ेकी रात है, मुक्ति-नायिकासे मिला देनेके लिए दूती है, और उसके शरीरकी दीप्ति बिजलीके सदृश है ॥ ४ ॥ वह शरणागत भक्त-रूपी कुमोदिनी-वनको प्रफुल्लित करनेके लिए चन्द्रमाकी किरणोंकी माला है, और तुलसीके अभिमान-रूपी महिषासुरको मारनेके लिए अनंत कालिकाओंका रूप है ॥ ५ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'आरती आरती'—यहाँ यमकालंकार है। जहाँ एक ही शब्द कई बार आवे, पर उसका अर्थ भिन्न-भिन्न हो, वहाँ यमकालंकार होता है। यहाँ पहली आरतीसे पीड़ा और दूसरीसे नीराजनका बोध होता है।

( २ ) 'अघ–बिहँग'—जीव-रूपी किसान, जो शुभकर्म-रूपी खेती करता है, उसे पापरूपी पत्ती चुग जाते हैं। इस प्रेमपरा आरतीके प्रतापसे पत्ती निकट नहीं आ सकते, उड़कर भाग जाते हैं।

( ३ ) मुक्तिकी दूतिका'—कर्मकांडियों और ज्ञानियोंको मुक्ति-रूपी नायिका एक प्रकारसे दुर्लभ ही है। किन्तु यह प्रेमपरा आरती, दूती बनकर, मुक्ति-रूपी नायिकासे सहज ही उन्हें मिला देती है।

( ४ ) 'महिषेस'—महिषासुर शिवजीके अंशसे उत्पन्न हुआ था। यह बड़ा ही प्रबल और प्रचण्ड दैत्य था। जब इसे कोई देवता न जीत सका, तब कालीने इसका संहार कर संसारमें शान्ति स्थापित की। इसकी सविस्तार कथा देवी-भागवतमें है।

## हरिशंकरी पद

### ( ४९ )

दनुज-बन-दहन, गुन-गहन, गोविन्द, नंदादि-आनंद-दाताऽविनासी।
संभु सिव रुद्र संकर, भयंकर भीम, घोर तेजायतन, क्रोध-रासी ॥१॥
अनंत भगवन्त जगदंत-अन्तक-त्रास-समन श्रीरमन भुवनाभिरामं।
भूधराधीस जगदीस ईसान विग्यानघन ग्यान-कल्यान-धामं ॥२॥
वामनाव्यक्त पावन परावर बिभो, प्रगट परमात्मा प्रकृति-स्वामी।
चन्द्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेस गामी ॥३॥
नील जलदाभतनु स्याम, बहु काम छबि, राम राजीवलोचन कृपाला।
कंबु-कर्पूर-बपुधवल निर्मल मौलि, जटासुर-तटिनि सित सुमन माला ॥४॥
बसन किंजल्कधर चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला।
मार-करिमत्त-मृगराज त्रैनैन हर, नौमि अपहरन-संसार-जाला ॥५॥
कृष्ण करुनाभवन, दवन कालीय खल, बिपुल कंसादि निर्बंसकारी।
त्रिपुर-मद-भंगकर मत्तगज-चर्मधर, अन्धकोरग-ग्रसन पन्नगारी ॥६॥

ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परमहित, ग्यान-गोतीत गुन-वृत्ति-हर्त्ता।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-बज्र, गौरीस, भव, दच्छ-मख-अखिल-बिध्वंसकर्त्ता॥७॥
भक्तिप्रिय भक्तजन कामधुक-धेनु हरि हरन दुर्घट-बिकट-बिपति-भारी।
सुखद नर्मद वरद, बिरज अनवद्यऽखिल* बिपिन-आनंद-बीथिन बिहारी॥८॥
रुचिर हरिसंकरी नाम मंत्रावली, द्वन्द्वदुख-हरनि आनंदखानी।
बिष्णु-सिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति तुलसीदास बिसद बानी॥९॥

पदच्छेद—नद+आदि। दाता+अविनासी। तेज+आयतन। जगत्+अंत। भुवन+अभिरामं। भूधर+अधीस। जगत्+ईस। वामन+अव्यक्त। पर+अधर। अन्+अघ। जलद+आभ। कंस+आदि। अंधक+उरग। पन्नग+अरी (अरि)। गौरी+ईस। अनवद्य+अखिल। मंत्र+अवली।

शब्दार्थ—तेजायतन=तेजके स्थान, परमतेजस्वी। जगदन्त=संसारके नाश-कर्त्ता। अन्तक=काल। अव्यक्त=अप्रकट। प्रकृति=माया। अनघ=पुण्यमय। अविछिन्न=पूर्ण, अखंड। राजीव=कमल। किंजल्क=कमल-केसर। सारंग=धनुष। दर=शंख। कौमोदकी=गदा। मार=कामदेव। नौमि= नमस्कार करता हूँ। दवन=दमन करनेवाले। उरग=साँप। पन्नगारि=गरुड। सिंधु-सुत=जलधर। नर्म=आनन्द। विरज=विरक्त। आनन्द-विपिन=काशी। वदति=प्रार्थना करता है।

प्रसंग—इस पदके एक पक्षमें विष्णु का और दूसरे पक्षमें शिवका स्तवन किया गया है। इससे गोसाईं तुलसीदासजीका 'हरि-हरैक्य' भाव पूर्णतः प्रकट होता है।

भावार्थ—

विष्णु-पक्ष—दैत्यरूपी वन जलानेवाले, गुणोंके वन अर्थात् सर्वगुण-विशिष्ट, इन्द्रियोंके नियन्ता, नंद उपनन्द आदि ब्रजगोपोंको आनन्द देनेवाले और जिनका कभी नाश न हो, ऐसे भगवान् विष्णु है।

शिव-पक्ष—भगवान् शंभु, शिव, रुद्र और शंकर आदि नामोंसे प्रख्यात है। वह बड़े ही भयंकर, महान् तेजस्वी और क्रोधके पुञ्ज है॥ १॥

विष्णु-पक्ष—समस्त ब्रह्माण्डोंको आनंद देनेवाले, लक्ष्मीकान्त विष्णु भगवान् का अन्त नहीं है। वह ससारके नाश करनेवाले कालके भयको भी दूर करनेवाले है।

* पाठान्तर 'अनवद्याखिला'।

शिव-पक्ष—जगन्नाथ ईशान भगवान् कैलाश पर्वतके स्वामी, ज्ञान-विज्ञानके स्थान तथा कल्याणके धाम है ॥ २ ॥

विष्णु-पक्ष—वामन-अवतार लेनेवाले, अप्रकट, पवित्र, जड-चैतन्य अथवा लोकपरलोकके स्वामी, प्रत्यक्ष परमात्मास्वरूप और माया-पति विष्णु भगवान् है।

शिव-पक्ष—भगवान् चन्द्रशेखर, हाथमे त्रिशूल धारण करनेवाले, त्रिलोकके सहारकर्ता, पुण्यश्लोक, अजन्मा, अनन्त, अखण्ड और ससारके कल्याणार्थ नन्दी नामके बैलपर चढ़नेवाले है ॥ ३ ॥

विष्णु-पक्ष—श्रीरामजीके श्याम शरीरकी कान्ति नीले मेघके समान है, शोभा अनेक कामदेव जैसी है, नेत्र कमलके सदृश है, और वह कृपाके स्थान ही है।

शिव-पक्ष—शिवजीका धवल शरीर शंख और कर्पूरके समान निर्मल है। मस्तकपर जटा-जूट बँधा है, जहाँ गगाजी शोभित हो रही है। और सफेद फूलोंकी माला धारण किये हैं ॥ ४ ॥

विष्णु-पक्ष—कमल केसरके समान पीताम्बर धारण किये, तथा शंख, चक्र, धनुष, पद्म और बडी भारी गदा लिये विष्णु भगवान् हैं।

शिव-पक्ष—कामदेव-रूपी हाथीके मारनेके लिए सिंहरूप, तीन नेत्रवाले, जगजन्जाल ( जन्म-मरण ) के नाशकर्त्ता शिवजीको मै नमस्कार करता हूँ ॥५॥

विष्णु-पक्ष—नन्दनन्दन श्रीकृष्ण करुणाके स्थान, कालिय नागके दमनकर्ता और कंस सरीखे अनेक दुष्टोंको निर्वन्श कर देनेवाले है।

शिव-पक्ष—त्रिपुर दैत्यका गर्व खर्व करनेवाले, मतवाले हाथीका चमड़ा पहननेवाले और अन्धक दैत्य-रूपी सर्पको भक्षण करनेके लिए गरुड़-रूप भगवान् शङ्कर है ॥ ६ ॥

विष्णु-पक्ष—विष्णु भगवान् ब्रह्म, सर्व-व्यापी, कला-रहित, सबसे परे परम-हितू, ज्ञान ( परिमित ) और इन्द्रियोंसे परे अर्थात् भिन्न और मायात्मक गुणो ( सत्त्व, रज और तम ) की वृत्तियोंसे छुड़ानेवाले है।

शिव-पक्ष—जलन्धरके गर्व रूपी पर्वतको तोड़नेके लिए गौरी-वल्लभ भगवान् शङ्कर वज्र-रुप है। वह दक्षप्रजापतिके सम्पूर्ण यज्ञके नाश करनेवाले है ॥७॥

विष्णु-पक्ष—विष्णु भगवान्को भक्ति ही प्यारी है, भक्तोके लिए तो आप कामधेनु ही है, अर्थात् उनसे सारे मनोरथ पूरे कर देते हैं, और उनकी बडी-बड़ी कठिन और भयङ्कर विपत्तियाँ दूर कर दे ते है।

शिव-पक्ष—आनन्दवन काशीकी वीथियों ( मार्गों ) मे विहार करनेवाले शिवजी, सुख, आनन्द और वर देनेवाले, विरक्त और विकार-रहित है ॥८॥

माहात्म्य—विष्णु और शिवके नाम-मात्रोंकी यह सुंदर पक्ति रागद्वेषादि दु:खोंकी हरनेवाली, आनन्दकी राशि और सदा विष्णुलोक तथा शिवलोक जानेके लिए सीढ़ीके समान है। यह बात तुलसीदास शुद्ध वाणीसे कहता है, इसमे तनिक भी सन्देह नही ॥ ६ ॥

टिप्पणी—(१) 'बामन'—दानवीर राजा बलिसे तीन पैर पृथ्वीके बदले त्रिलोक लेनके अर्थ विष्णु भगवान्ने वामन अवतार धारण किया था। उन्होंने पृथ्वीका साम्राज्य देवताओंको दिया, क्योंकि वे बेचारे बलिके आगे तेजहीन हो गये थे और इधर बलिको वामन भगवान्ने निर्द्वन्द्व करके अपना परमभक्त बना लिया। उसका दानाभिमान भी चूर-चूर हो गया। एक कार्यके करनेमें कई कार्य सध गये।

(२) 'पर अवर'—इसके कई अर्थ हो सकते हैं, जैसे 'परमार्थ और स्वार्थ', 'परलोक और लोक', 'चैतन्य और जड़', 'अव्यक्त और व्यक्त' आदि।

(३) 'प्रकृति—स्वामी'—यहाँ गीताका यह श्लोक स्मरण आ जाता है—

"दैवी ह्येपा गुणमयी मय माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते ॥"

और भी—

'पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चचला होय ?"

—रहीम

(४) 'सुरतटिनी······माला'—इसके दो अर्थ हो सकते हैं, एक तो यह कि, मस्तक पर गंगाजी और हृदयपर सफेद फूलोंकी माला हैं, और दूसरा यह कि, गंगाजी सफेद फूलोंकी मालाके समान शोभित हो रही हैं।

(५) 'कालिय'—यमुनामें कालिय नामका एक बड़ा ही भयंकर सर्प रहता था। श्रीकृष्णने उसे नाथकर अपने वशमें कर लिया और वह यमुना छोड़कर समुद्रमें चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवतमें है।

(६) अंधक—यह बड़ा ही उपद्रवी और बलवान् दैत्य था। इसे शिवजीने मारा था।

(७) 'सिंधु-सुत'—सिंधुसुतसे तात्पर्य जलन्धरसे है। यह बडा ही प्रतापी राजा था। इसने सारे देवताओको अपने वशमें कर लिया। शिवजी इसे मारनेको

उद्यत हुए, पर जीत न सके, क्योंकि इसकी स्त्री वृन्दा बड़ी पतिव्रता थी। बल-पूर्वक विष्णुने इसका सतीत्व नष्ट कर दिया और तब शिवजी जलंधरको मार सके। वृन्दाने इस छलके लिए विष्णुको यह शाप दिया, कि कालांतरमें मेरा पति रावण का अवतार लेकर तुम्हारी स्त्रीका हरण करेगा।

(८) 'दच्छ-मख'—शिवजीकी प्रथम स्त्री सती दक्षप्रजापतिकी कन्या थीं। एकबार दक्षने एक यज्ञ किया। कुछ वैमनस्य हो जानेके कारण उसने अपने जामातृ शिवको निमंत्रण न दिया। पितृ-स्नेह-वश, बिना बुलाये ही, सती यज्ञ देखनेको चली गयी। वहाँ सब देवताओंके बीचमे शिवका बलिभाग न देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और वह पिताको दुर्वचन कहती हुई योगाग्निमें जलकर भस्म हो गई। यह समाचार सुनकर शिवजीने वीरभद्रको भेजा और उन्होंने दक्षका सम्पूर्ण यज्ञ विध्वंस कर दिया। पीछे शिवजीने प्रसन्न होकर यज्ञका पुनरुद्धार किया। यह कथा शिवपुराणादिमें विस्तारपूर्वक वर्णित है।

(९) 'मंत्रावली'—शिव अथवा विष्णुके प्रत्येक नामके आदिमें प्रणव जोड़ देने और उस नाममें चतुर्थी विभक्ति लगा देनेसे मंत्र बन जाता है, जैसे "ॐ हरये नमः" "ॐ शिवाय नमः" आदि।

( ५० )

भानुकुल-कमल-रबि, कोटि-कदर्प-छबि, काल कलि-व्यालमिव बैनतेयं।
प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड-धर, तूनवर बिसिख बलमप्रमेयं॥१॥
अरुन राजीवदल-नैन-सुखमा-ऐन, स्याम-तन-कांति-वर-वारिदाभं।
तप्त-कांचन-वस्त्र सस्त्र-विद्या-निपुन, सिद्ध-सुर-सेव्य पाथोजनाभं॥२॥
अखिल-लावन्य-गृह बिस्व बिग्रह परम प्रौढ़ गुनगूढ़ महिमा उदारं।
दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग, स्वर्ग, अपवर्ग-पति भग्न संसार पादप-कुठारं॥३॥
सापबस-मुनिबधू-मुक्तकृत, बिप्रहित जग्य-रच्छन-दच्छ पच्छकर्त्ता।
जनकनृप-सदसि सिवचाप-भंजन, उग्र-भार्गवगर्व-गरिमापहर्त्ता॥४॥
गुरु-गिरा-गौरव अमर सुदुस्त्यज राज्य त्यक्त सहित सौमित्रि-भ्राता।
संग जनकात्मजा मनुजमनुसृत्य अज, दुष्ट-बध-निरत त्रैलोक्यत्राता॥५॥
दण्डकारन्य कृत पुन्य पावन चरन, हरन मारीच-मायाकुरंगं।
बालिबल-मत्तगजराज इव केसरी, सुहृद-सुग्रीव-दुखरासि-भंगं॥६॥
रिच्छ मरकट बिकट सुभट उद्भट समर, सैल संकास रिपु-त्रासकारी।

बद्ध पाथोधि सुर-निकर-मोचन, सकुल दलन दससीस-भुजबीस-भारी ॥७॥
दुष्ट-बिबुधारि-संघात- अपहरन महिभार, अवतार कारन अनूपं।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूप-रूप॥८॥
सेष-स्रुति-सारदा-संभु-नारद-सनक गनत गुन अँत नहिं तव चरित्रं।
सोई राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रास-निधि वहित्रं॥९॥

**पदच्छेद**—व्यालम्+इव। बलम्+अप्रमेयं। वारिद+आभ। गरिमा+अपहर्ता। जनक+आत्मजा। मनुजम्+अनुसृत्य। दण्डक+अरण्य। विबुध+अरि। काम+अरि।

**शब्दार्थ**—कदर्प=कामदेव। वैनतेय=गरुड। तून=तरकस। विसिख=बाण। अप्रमेय=अनुपम। वारिदाभं=मेघके समान। पाथोज=कमल। विग्रह=मूर्ति। अपवर्ग=मोक्ष। भार्गव=परशुराम। अनुसृत्य=अनुसरण करके। संकास=समान। सुमिरामि=स्मरामि, स्मरण करता हूँ। वहित्र=नाव, बाहर।

**भावार्थ**—सूर्यवंश-रूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिए जो सूर्यरूप है, जिनका सौन्दर्य करोडों कामदेवोंके समान है, जो कलिकाल-रूपी साँपके ग्रसनेको साक्षात् गरुड है, जो प्रबल भुजदंडोंमे प्रचंड धनुष और बाण धारण किये है, तरकस बाँधे है और जिनका बल अनुपम है ॥१॥ लाल-कमल-जैसे जिनके नेत्र है, सौन्दर्यके जो स्थानही है, जिनके श्याम शरीरकी कान्ति मेघके समान है, तपे हुए लाल सुवर्णके सदृश जो पीताम्बर पहिने है, शस्त्र-विद्यामें कुशल और सिद्धो और देवताओंसे जो सदा पूज्य है तथा जिनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है ॥२॥ जो समग्र सौन्दर्यके धाम हैं, संसार ही जिनकी मूर्ति है, अर्थात् जो विराट-स्वरूप हैं, बड़े ही चतुर, गुप्त गुणवाले और बड़ेही महत्त्वशाली है, जिन्हे कोई भी नही जीत सकता, जिनकी महिमाका पार कोई भी नही पा सकता, जो बडेही दुर्गम है, स्वर्ग और मोक्षके स्वामी और ससार ( जन्म मरण, अविद्या रूपी ) वृक्षको जडसे उखाड़नेके लिए कुठाररूप हैं ॥ ३ ॥ जिन्होने गौतम मुनिकी स्त्री अहिल्याको शापसे छुडा दिया, जो ब्रह्मर्षि विश्वामित्रकी यज्ञरक्षामे बडे कुशल और अपने भक्तोंका पक्ष लेनेवाले हैं, जिन्होने महाराज जनककी सभामे शिवजीका धनुष तोड डाला और महान् तेजस्वी परशुरामके गर्व और महत्त्वका नाश कर दिया ॥४॥ देवता भी जिसे बडी कठिनतासे भी नही छोड सकते ऐसे राज्यको जिन्होंने केवल पिताके वचनोंका महत्त्व रखनेके लिए ही तृणवत् छोड दिया, लक्ष्मण और जानकी को साथ लेकर, अजन्मा, पूर्ण पर-ब्रह्म होकर भी, मनुष्योंके

समान लीला करते हुए जो संसारकी रक्षाके लिए दुष्ट रावण आदि राक्षसोंके सहारमें संलग्न हो गये ।।५।। जिन्होने अपने चरणारविन्दोंसे दण्डकवनको पवित्र कर दिया, और मृगरूपी मारीचकी सारी माया हर ली, जो महान् बलवान् बालिरूपी मतवाले हाथीके लिए सिंहरूप है, और मित्र सुग्रीवके समस्त दुःखोके नाशकर्ता है ।।६।। भयंकर और बड़े भारी शूरवीर रीछ और बंदर साथ लेकर जिन्होंने पर्वताकार शत्रुओंको सग्राममें भयभीत कर दिया, समुद्रको बाँध लिया, देवताओंके समूहको (रावणके कारागारसे) मुक्त किया और दस सिर तथा भारी-भारी बीस भुजाओंवाले रावणको वंशसहित नष्ट कर दिया।।७।। देवताओंके शत्रुओंके दुष्ट समूह, जो पृथ्वी पर भारके समान थे, उनके मारनेके लिए अनुपम कारण विशिष्ट अवतार लेनेवाले, निर्मल निर्दोष, अद्वय, मायात्मक गुणोंसे रहित दिव्य गुण-सयुक्त, परब्रह्म और नराकार राजराजेश्वरका मै स्मरण करता हूँ ।।८।। शेष, वेद, सरस्वती, शिव, नारद सनकादिक जिनके गुण गाते है, किन्तु जिनके चरित्र-का पार नहीं पा सकते, वही शिवजीके प्यारे अयोध्याधीस श्रीरामचन्द्रजी इस तुलसीदासको त्रासरूपी समुद्रसे तार देनेके लिए सदा सर्वदा नौकारूप है ।।९।।

टिप्पणी—(१) 'साप-बस मुनि-बधू'—४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(२) 'भार्गव'—भृगुवंशी होनेके कारण परशुरामको भार्गव संज्ञा दी गई है।

(३) 'दंडकारन्य कृतपुन्य'—पहले दंडकवन शापित था। इसमें कोई भूलकर भी नहीं जाता था। पतित-पावन प्रभु रामचन्द्रजीने इसे परम पवित्र कर दिया।

( ५१ )

जानकीनाथ रघुनाथ रागादि-तम-तरनि तारुन्यतनु तेजधामं।<br>
सच्चिदानंद आनंदकंदाकरं विस्व-विश्राम रामाभिरामं ।।१।।<br>
नीलनव वारिधर सुभग-सुभकांतिकर पीतकौसेय-बरबसन-धारी।<br>
रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि, भानु-सत-सहस उद्योतकारी ।।२।।<br>
स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रूरुचिर अति, अरुन-अंभोज-लोचन विसालं।<br>
बक्र *अवलोक, त्रैलोक्य-सोकापहं मार-रिपु-हृदय-मानस-मरालं ।।३।।

---

* पाठान्तर "वक्त्र"।

नासिका चारु, सुकपोल, द्विज बज्रदुति, अधर बिंबोपमा, मधुरहासं ।
कंठ दर, चिबुक बर, बचन गंभीरतर, सत्य संकल्प, सुरत्रास-नासं ॥४॥
सुमन सुविचित्र नवतुलसिकादल-युतं मृदुल बनमाल उर-भ्राजमानं ।
भ्रमत आमोदबस मत्तमधुकर-निकर, मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं ॥५॥
सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं ।
बाम दिसि जनकजासीन सिंहासनं कनक-मृदुबल्लिवत*तरु तमालं ॥६॥
आजानुभुजदंड कोदंड-मंडित बाम बाहु, दच्छिन पानि बानमेकं।
अखिल मुनि-निकर सुर सिद्ध गंधर्व बर नमत नर नाग अवनिप अनेकं॥७॥
अनघ,† अविछिन्न सर्वग्य सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं ।
प्रनतजन खेद-विच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि-साकं ॥८॥
जुगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं चिन्ह कुलिसादि सोभातिभारी ।
हनुमंत हृदिविमल-कृत-परममंदिर सदा दासतुलसी सरन सोकहारी ॥९॥

**पदच्छेद**—राग+आदि । सत्+चित्त+आनद । कद+आकर । राम+अभिरामं । सोक+अपहं । बिम्ब+उपमा । जनकजा+आसीन । अन्+अघ । सर्व+ईस । सर्वतः+भद्र । दाता+अस्माकं । पद्मा+आलय सोभा+अति ।

**शब्दार्थ**—कंदाकर=मेघोंकी खानि वा राशि। पीत कौसेय=पीताम्बर, पीला रेशमी वस्त्र । हाटक=सुवर्ण । उद्योत=प्रकाश। वक्र=टेढ़ी, तिरछी । मार-रिपु=शिवजी । द्विज=दाँत । बज्र=हीरा । बिम्ब=बिम्बाफल, जो लाल रंगका होता है। दर=शंख । मुखर=शब्दायमान । कुर्वन्ति=करते है । केयूर=बाजूबंद । आसीन=विराजमान । बल्लि=लता । नमत=नमस्कार करते हैं । अवनिप=पृथ्वीके पालनेवाले, राजे । अविछिन्न=पूर्ण, अखंड । खलु=निश्चयपूर्वक । अस्माकं=हमारे । साकं=समेत । पद्मा=लक्ष्मी ।

**भावार्थ**—श्रीजानकी वल्लभ रघुनाथजी रागद्वेषादिरूपी अंधकारके नाश करनेके लिए सूर्यरूप, तरुण शरीरवाले, तेजके स्थान, सच्चिदानंद, आनंदके मेघोंकी खानि, संसारको शान्तिप्रदान करनेवाले और परम सुंदर हैं ॥१॥ नीले

---

* पाठान्तर "बल्लिमिव" । † पाठान्तर "अनवद्य" ।

नवीन मेघके समान उनके शरीरकी कान्ति है, सुंदर रेशमी पीताम्बर धारण किये है, और मस्तकपर रत्नोंसे जड़ा हुआ सुन्दर मुकुट शोभायमान हो रहा है, जो सैकड़ों सूर्यके समान प्रकाश करनेवाला है ।।२।। कानोंमें कुंडल पहिने, माथेपर केसरका तिलक लगाये, सुंदर भौंह तथा लाल कमलके समान बडे-बडे नेत्रवाले, तिरछी चितवनसे देखते हुए तीनों लोकोंका दुःख दूर करनेवाले एव शिवजीके हृदय-रूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाल हंस-रूप है ।।३।। उनकी नाक बडी ही सुंदर है, कपोल मनोहर हैं, दाँत हीरेकी तरह चमकते है, होठ लाल-लाल विम्बाफलके समान हैं, मुसक्यान मधुर है, कंठ शंखके समान है, ठोढी परम सुंदर और वाणी बडी ही गंभीर है । वह सत्यसंघ और देवताओंका भय दूर करनेवाले हैं ।।४।। उनके हृदयपर रंग-रंगके फूलो और तुलसीके नवीन पत्रोंकी कोमल वनमाला सुशोभित हो रही है । उस मालाकी सु 'धमें मतवाले भौंरोंका समूह, मधुर गुंजार करता हुआ, उड रहा है ।।५।। उनके हृदयपर श्रीवत्सका चिह्न है बाहुओंपर बाजूबन्द, हाथोमे कंकण और हृदयपर हार शोभायमान हो रहा है । कटि-भागमे करधनीका निराला ही शब्द हो रहा है । वाम भागकी ओर श्रीजानकीजी सिंहासनपर विराजी हैं, । ऐसा जान पडता है, मानों तमाल-वृक्षके समीप सुवर्णलता शोभित हो रही हो ।।६।। उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी है । बाए हाथमें धनुष और दाहिने हाथमे एक बाण लिए है, सम्पूर्ण मुनि मंडल, देव, सिद्ध, श्रेष्ठ गंधर्व, मनुष्य, नाग और अनेक राजे-महाराजे उनको प्रणाम करते हैं ।।७।। वह पुण्यश्लोक, अखंड, सर्वज्ञ, सबके स्वामी और निश्चयपूर्वक हम सेवकोंको कल्याण प्रदान करनेवाले हैं । ऐसे भक्तोंके कष्टके नाश करनेकी कलामे कुशल लक्ष्मण-सहित श्रीरामचंद्रजीको मै नमस्कार करता हूँ ।।८।। जिनके दोनो चरणकमल आनंदके धाम और कमलाके निवास-स्थान है. अर्थात् जिन चरणोंकी सदा ही लक्ष्मी सेवा किया करती है, बज्र आदि ४८ चिन्हौंमे जो महती शोभाको प्राप्त हो रहे हैं, और जिन्होंने भक्तवर हनुमान् जीके निर्मल हृदयको अपना उत्तम मंदिर बना रखा है, अर्थात् जो सदा हनुमानजीके हृदयमें बसते हैं, ऐसे शोकहर्त्ता श्रीरामचन्द्रजीकी चरणोंकी शरणमें यह तुलसीदास है ।।९।।

**टिप्पणी—(१) 'वनमाल'—कुंद, मदार, कमल, मालती और तुलसीकी, पैरोंतक लटकती हुई, मालाको वनमाला कहते हैं ।**

(२) 'कुलिसादि'--विष्णु भगवान्‌के दक्षिण चरणमें २४ और वाम चरणमें २४ चिह्न हैं। महारामायणमें प्रत्येक चिह्नके ध्यानका भिन्न-भिन्न फल लिखा है। कविवर लाला भगवानदीनजीने "श्रीरामचरणाङ्क माला" में इन सब चिह्नोंका बड़ा ही विशद वर्णन किया है।

( ५२ )

* कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित, अमित गुन बिपुल बिस्तार लीला।
गायन्ति तव चरित सुपवित्र स्रुतिसेष सुक, सम्भुसनकादिमुनिमननसीला १

* यह दशावतारी-पद 'गीतगोविन्द' काव्यकी निम्नलिखित अष्टपदीकी छाया पर रचा गया जान पड़ता है--

'प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्। विहित वहित्र चरित्रमखेदम्॥
केशव धृत मीन शरीर, जय जगदीश हरे ॥१॥
क्षिति रति विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्टे। धरणिधरण किणचक्र गरिष्ठे॥
केशव धृत कच्छप रूप, जय जगदीश हरे ॥२॥
वसति दशन-शिखरे धरणी तव लग्ना। शशिनि कलक कलेव निमग्ना॥
केशव धृत शूकर रूप, जय जगदीश हरे ॥३॥
तव कर कमलवरे नखमद्भुत शृंगम्। दलित हिरण्यकशिपु-तनु भृंगम्॥
केसव धृत नरहरि रूप, जय जगदीश हरे ॥४॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुत वामन। पदनख नीर जनित जन पावन॥
केशव धृत वामनरूप, जय जगदीश हरे ॥५॥
क्षत्रिय रुधिरमये जगदपगतपापम्। स्नपयसि पयसि शमित भवतापम्॥
केशव धृप भृगुपतिरूप, जय जगदीश हरे ॥६॥
वितरसि दिक्षु रणे दिग्पति कमनीयम्। दशमुख मौलि बलिं रमणीयम्॥
केशव धृत रघुपतिरूप, जय जगदीश हरे ॥७॥
वहसि वपुषि विशदे वसन जलदेभम्। हलहति भीति मिलित यमुनाभम्॥
केशव धृत हलधर रूप, जय जगदीश हरे ॥८॥
निन्दसि यज्ञविधेरहरह श्रुतिजातम्। सदय हृदय दर्शित पशु घातम्॥
केशव धृत बुद्ध शरीर, जय जगदीश हरे ॥९॥
म्लेच्छ निवह निधने कलयसि करवालम्। धूम्रकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृत कल्कि शरीर, जय जगदीश हरे ॥१०॥

वारिचर-वपुष धरि भक्त-निस्तार-पर, धरनि कृत नाव महिमातिगुर्वी ।
सकल जग्यांसमय उग्र विग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥२॥
कमठ अति बीकट-तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी ।
प्रगटकृत अमृत, गो, इन्दिरा, इन्दु, वृंदारकावृन्द आनन्दकारी ॥३॥
मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक दुष्ट, दनुज द्विजधर्म-मरजाद-हर्त्ता ।
अतुल मृगराज-बपु धरित, विद्दरित अरि, भक्त प्रह्लाद-अह्लाद-कर्त्ता ॥४॥
छलन बलि कपट बटुरूप बामन ब्रह्म, भुवन पर्जंत पद तीन करनं ।
चरन-नख-नीर त्रैलोक पावन परम, बिबुध-जननी-दुसह-सोक-हरनं ॥५॥
छत्रियाधीस-करि-निकर-वर केसरी, परसुधर बिप्र-ससि-जलदरूपं ।
बीस भुजदंड दससीस खंडन चंडबेग सायक नौमि राम-भूपं ॥६॥
भूमिभर-भार-हर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूपधर भक्तहेतू ।
वृष्णि-कुल कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी धूमकेतू ॥७॥
प्रबल पाखंड महि-मंडलाकुल देखि निंद्यकृत अखिल मख-कर्म-जालं ।
सुद्ध बोधैक घनग्यान गुनधाम अज बौध-अवतार बन्दे कृपालं ॥८॥
कालकलिजनित मलमलिन मन सर्वनर मोह-निसि-निबिड़जमनांधकारं ।
विष्णुजस पुत्र कलकी दिवाकर उदित दासतुलसी हरनबिपतिभारं ॥९॥

पदच्छेद—कोसल + अधीस । जगत् + ईश । जगत् + एक । महिमा + अति । जग्य ( यज्ञ ) + अस । दनुज + ईस । पृष्ठ + उपरि + मुर + अरि । छत्रिय + अधीस । राका + ईस । बंस + अटवी । मंडल + अकुल । बोध + एक । जमन ( यवन ) + अंधकारं ।

शब्दार्थ—गायंति=गाते हैं। वारिचर=मत्स्य। वपुषधर=शरीर धारण करनेवाले। निस्तार-पर=उद्धार करनेवाले। गुर्वी=बड़ी। क्रोड=पेट। उर्वी=पृथ्वी। कंडु = खुजलाहट। इंदिरा = लक्ष्मी। वृन्दारक = देवता। मृगराज=नृसिंह। बटु=ब्रह्मचारी। पर्जन्त=पर्य्यन्त, तक। विबुधजननी=देवताओंकी माता अदिति। ससि = शस्य, धान्य। नौमि = नमस्कार करता हूँ। राकेस =

---

श्री जयदेव कवेरिदमुदितमुदारम् । शृणु सुखदं भवसारम् ॥
केशव धृत दशविध रूपं, जय जगदीश हरे ॥११॥'

द्रमा। अटवी=वन। धूमकेतू=अग्नि। निबिड़=सघन, अत्यधिक। कलकी=कल्कि।

**भावार्थ**—हे कोसलेश, हे जगन्नायक, जगत्के एकमात्र हितकारी, आपने अपने अनेक गुणोंकी अपार लीला फैलाई है। आपके परमपावन चरित्रको चारो वेद, शेष, शुकदेव, शिव, सनकादिक और विचारशील ध्यानावस्थित मुनि गाते हैं ॥ १ ॥

**मत्स्य**—आपने मत्स्यरूप धारण कर अपने भक्तोंके उद्धारके अर्थ पृथ्वीकी नौका बनाई, नहीं तो महाप्रलयमें आपके भक्तोंका चिन्ह भी न मिलता। आपकी महिमा अपार है।

**बाराह**—आप सब प्रकारके यज्ञोंके अंशरुप हैं। आपने महान् भयंकर शरीर वाले हिरण्याक्ष दैत्यका मर्दन करके शूकर-रूपसे पृथ्वीका उद्धार किया, नहीं तो आज हिरण्याक्षसे हरी गई पृथ्वीका पता तक न चलता ॥ २ ॥

**कूर्म**—हे मुरारे! आपने अत्यन्त भयंकर कच्छपका रूप धारण कर (समुद्र-मंथनके अवसर पर) रसातलको जाते हुए मंदराचलको अपनी पीठ पर रख लिया। उस समय पर्वतके घूमनेसे आपको खुजलाहटका आनंद प्राप्त हुआ था। आपने समुद्रमेंसे अमृत कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमाको उत्पन्न किया। आपने यह सब करके देवताओंके समाजको आनन्द दिया ॥ ३ ॥

**नृसिंह**—आपने अनुपम नृसिंहका शरीर धारण कर प्रबल शत्रु हिरण्य-कशिपुको विदीर्ण किया, क्योंकि वह दुष्ट दैत्य मनुष्य, मुनि, सिद्ध, देव और नागोंको भयभीत किये रहता था। आपने उसका वध करके अपने भक्त प्रह्लादको आह्लादितकर दिया ॥ ४ ॥

**वामन**—आपने वामन ब्रह्मचारीका रूप धरकर राजा बलिको छल लिया। पहले उससे तीर पैर पृथ्वी माँगी, पर लेते समय तीनों लोकही तीन पैरसे नाप लिए! नापते समय आपके चरण-नखसे तीनों लोकोंको पवित्र करने वाला जल निकला, जो गंगाके नामसे प्रसिद्ध हुआ। आपने इन्द्रका राज्य उसे लौटाकर देवताओंकी माता अदितिको प्रसन्न कर दिया ॥ ५ ॥

**परशुराम**—आपने सहस्रबाहु आदि क्षत्रियराजारूपी हाथियोंके समूहको सिंहके समान विदीर्ण कर दिया। आपने ब्राह्मणरूपी धान्य हराभरा करनेके लिए मेघ बनकर परशुराम अवतार धारण किया।

राम—दश शिर और बीस भुजदंडवाले रावणको जिन्होंने अपने प्रचंड बाणोंसे चूर-चूर कर दिया, ऐसे श्रीराज-राजेश्वर रामचन्द्रजीको मै प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

कृष्ण—पृथ्वीका भारी भार हरनेके लिए आप, परमात्मा, परब्रह्म होकर भी भक्त-उद्धरणार्थ मनुष्य-रूप होकर प्रकट हुए। हे वृष्णि-वंशरूपी कुमोदिनीको प्रफुल्लित करनेवाले चंद्ररूप श्रीराधारमण! आप कंसादि दैत्यरूपी वन जलानेके लिए अग्नि-स्वरूप हैं ॥ ७ ॥

बुद्ध—बड़े-बड़े पाखंडों और दंभोसे संसारको व्याकुल देखकर आपने यज्ञादि कर्मकाण्डोंका अकाट्य खंडन कर उन्हें तिरस्कृत कर दिया। ऐसे निर्मल बोधस्व-रूप, ज्ञानघन सर्वगुण-सम्पन्न जन्म-रहित, कृपालु बुद्ध भगवान्‌की मैं वंदना करता हूँ ॥ ८ ॥

कल्कि—सारा मनुष्य-समाज इस कलिकाल-जन्य पापोसे मलिन हो रहा है। आप अविद्यारूपी रात्रिमें म्लेच्छरूपी सघन अंधकार नाश करनेके लिए सूर्योदयकी तरह विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ पुत्ररूपसे कल्कि-अवतार धारण करेंगे। हे नाथ! आप तुलसीदासका (जन्म-मरणरूपी) विपत्ति-भार दूर करे ॥ ९ ॥

टिप्पणी—(१) 'वारिचर..... गुर्वी'—यह महाप्रलय के अवसरका मत्स्य-आख्यान न केवल आर्योंके इतिहास में ही है, वरन् बाइबिल और कुरानमें भी रूपान्तरसे प्रसिद्ध है।

(२) 'जग्यांसमय'—यज्ञका अर्थ कर्म होता है। भगवान् सब कर्मोंके भोक्ता और साक्षी हैं। इसीसे आपका नाम यज्ञ पति है।

(३) 'कमठ .....मुरारी'—विष्णुके कच्छप अवतार धारण करनेके दो कारण है—एक तो यह कि जब दैत्योंसे देवता हार गये, तब विष्णु भगवान्‌ने यह सोचा कि समुद्रमेंसे अमृत निकालना चाहिए, जिसे पीकर रणभूमिमें राक्षसोंके हाथसे देवता न मरे और दूसरा यह कि, समुद्रमेंसे लक्ष्मी भी निकल आयें, क्योंकि दुर्वासा ऋषिके शापसे लक्ष्मी समुद्रमें चली गयी थीं और बिना उनके सारा संसार दुखी था।

(४) 'छलन...... वामन'—वामन भगवान् के इस छल-प्रसंग पर कविवर विहारीने क्या ही सुक्ति कही है—

'छूवै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दीखाइ ।
बलि-बाम (को ब्यौत सुनि, को बलि तुम्हैं पत्याइ ।'

( ५ ) 'भूमिभर-भारहर'—इस कथनकी पुष्टि गीता इस प्रकार कर रही है—

'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे ॥'

( ६ ) 'प्रगट परमात्मा ब्रह्म'—श्रीकृष्ण षोड़शकला सम्पन्न पूर्णब्रह्म है। यथा —

'एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' ।—(श्रीमद्भागवत)

( ७ ) 'बुद्ध-अवतार'—कुछ लोगोंके मतसे बौद्धमत नास्तिक मत है, किंतु ऐसा नहीं है। स्वयं बुद्ध भगवान् ने कहा है कि,'आत्मा ब्रह्मका अंश है','पूर्ण ब्रह्म परमात्मास्वरूप है' आदि । यहाँ पर गोसाईंजीने बुद्ध भगवान्का बड़े ही श्रद्धा-पूर्ण विशेषणोंके साथ स्मरण किया है । गोसाईंजीकी यह उदारता धन्य है !

( ५३ )

सकल-सौभाग्य-प्रद सर्वतोभद्र-निधि, सर्व, सर्वेस, सर्वाभिरामं ।
सर्व-हृदि-कंज-मकरंद-मधुकर रुचिर रूप, भूपालमनि नौमि रामं ॥१॥
सर्वसुख-धाम, गुनग्राम, विस्रामपद, नाम सर्वास्पद अति पुनीतं ।
निर्मलं, सान्त, सुबिसुद्ध, बोधायतन, क्रोध-मद-हरन, करुना-निकेतं ॥२॥
अजित, निरुपाधि, गोतीतमव्यक्त, बिभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं ।
प्राकृतं प्रगट परमातमा परमहित, प्रेरकानन्त बन्दे तुरीयं ॥३॥
भूधरं सुन्दरं श्रीवरं, मदन-मद-मथनं सौन्दर्य-सीमातिरम्यं ।
दुष्प्राप्य*,दुष्प्रेक्ष्य†,दुस्तर्क्य,दुष्पार‡,संसारहर सुलभ मृदु भावगम्यं ॥४॥
सत्यकृत, सत्यरत, सत्यव्रत, सर्वदा, पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी ।
धर्मवर्मनि ब्रह्मकर्म-बोधैक, बिप्रपूज्य ब्रह्मन्य जनप्रिय मुरारी ॥५॥
नित्य, निर्मम,नित्यमुक्त, निर्मान, हरि, ग्यानघन, सच्चिदानंद मूलं ।
सर्वरच्छक सर्वभच्छकाध्यच्छ, कूटस्थ, गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥६॥
सिद्ध साधक साध्य,वाच्य वाचकरूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा ।
परम कारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल दृश्य द्रष्टा ॥७॥

---

* पाठान्तर 'दुःप्राप्य' । † पाठान्तर 'दुःप्रेक्ष्य' । ‡ पाठान्तर 'दुःपार' ।

व्योम-व्यापक, विरज ब्रह्म बरदेस वैकुंठ, बामन बिमल ब्रह्मचारी।
सिद्ध-वृन्दारकावृन्द-वंदित सदा खंडि पाखंड-निर्मूलकारी ॥८॥
पूरनानंदसंदोह अपहरन संमोह-अग्यान-गुन-सन्निपातं।
बचन मन-कर्म गत सरन तुलसीदास त्रास-पाथोधि इव कुंभजातं ॥९॥

पदच्छेद—सर्व + ईस। सर्व + अभिरामं। सर्व + आस्पद। बोध + आयतन। गोतीतम् + अव्यक्त। विभुम् + एकम् + अनवद्यम् + अजम् + अद्वितीयं। प्रेरक + अनंत। सीमा + अति। बोध + एक। भच्छक + अध्यच्छ। गूढ़ + अर्चि। भक्त + अनुकूलं। जलद + आभ। वरद + ईस।

शब्दार्थ—सर्वतोभद्र = सब प्रकार के कल्याणरूप। शर्व=शिवजी। नौमि= नमस्कार करता हूँ। ग्राम=समूह। सर्वास्पद=सबके पात्र। बोधायतन = ज्ञान-के स्थान। अनवद्य = निर्दोष। तुरीय = निर्गुण ब्रह्म। दुःप्रेक्ष्य = जो कठिनाईसे देखा जाय। वर्म = कवच। निर्मम = मोह-ममता-रहित। कूटस्थ = विकार-रहित। साध्य = लक्ष्य। वाच्य = जिसका वर्णन किया जाय। जाप्य = जिसका जप किया जाय। वृन्दारक=देवता। सन्दोह = समूह। पाथोधि = समुद्र। कुम्भ-जात = अगस्त्य ऋषि।

भावार्थ—सब प्रकारके सौभाग्योंके देनेवाले, सब प्रकारसे कल्याणके भाण्डार, विराट् रूप, अखिलेश्वर, सबको आनन्द देनेवाले, शिवजीके हृदय-कमलका पराग पान करने के लिए भ्रमररूप, लावण्यमय रूपवान् तथा राजाओं में श्रेष्ठ श्रीराम-चन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ हे भगवन्, आप सब प्रकारके सुखोंके स्थान, गुणोंके पुंज, शान्तिके देनेवाले, बड़े ही पवित्र और सर्वस्व-दायक नाम-वाले, शुद्ध, शान्त, अत्यन्त विमल, परमज्ञानकेस्थान, क्रोध और अहंकारके विनाश-कर्त्ता तथा करुणा के धाम हैं ॥२॥ आपको कोई जीत नहीं सकता, आप उपाधि-रहित, इन्द्रिय-जन्य ज्ञानसे परे अप्रकट समर्थ, केवल, दूषण-रहित, अजन्मा और अद्वितीय हैं। ब्रह्म होने पर भी हित-कार्योंके लिए प्राकृत (नर-शरीर) रूप धारण करनेवाले, परम हितकारी, प्रेरणाकरनेवाले, अनन्त और निर्गुणरूप श्रीराम-चन्द्रजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥ आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, सुंदर, लक्ष्मी-कान्त, कामदेव के सौन्दर्य-जन्य अहकार को खर्व करनेवाले, लावण्यकी सीमा अर्थात् आपसे अधिक सुन्दर कोई भी नहीं है, और बड़े ही मनोहारी हैं। आप बड़ा-बड़ी

कठिनाइयोंसे मिलते है, कठिनतासे दर्शन देते हैं; तर्कना तो आपके पास पहुँच ही नहीं सकती, आपके ज्ञानके पारंगत होना महान् दुर्लभ है, आप संसारके हरनेवाले अर्थात् जीवको जन्म-मरणसे छुडानेवाले, भक्तोंको अनायास ही प्राप्त हो जाने वाले और प्रेम-माधुरीसे वशमे होनेवाले है ॥ ४ ॥ आप सत्यके उत्पादक, सत्यमें अनुरक्त, सत्यमन्त्र, सदाही पुष्ट अर्थात् दिव्य सामर्थ्यवान् , सन्तोषी और कष्टों के हरनेवाले है । धर्म ही आपका कवच है. आप परा और अपरा विद्याके ज्ञानमें अद्वितीय है, अर्थात् ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्डके रहस्योके एक ही जानकार हैं, ब्राह्मणोंके आराध्य, ब्राह्मणो और भक्तोंके वल्लभ और मुर दैत्यके शत्रु हैं ॥ ५॥ हे हरे ! आप अविनाशी, मोह-ममतासे निर्लिप्त, सदामुक्त, मान-रहित, ज्ञान-विग्रह, सच्चिदानन्द और जगत्के आदि कारण हैं । आप सबकी रक्षा करनेवाले, सबके लय करनेवाले, यमराजके स्वामी, निर्विकार, अत्यन्त तेजवाले और भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं ॥६॥ आप ही सिद्ध हैं और आपही साधक और साध्य हैं । आप ही वाच्य और वाचक हैं, आप ही मंत्र-जापक और जाप्य हैं । आप ही सृष्टि हैं और आप ही स्रष्टा हैं । आप कारण के भी कारण हैं । आपकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है । आपका शरीर मेघके समान है । आप सगुण और निर्गुण दोनो ही है । इसी प्रकार आप ही दृश्य हैं और आप ही द्रष्टा ॥ ७ ॥ आकाशभर में आप ही रम रहे हैं, रजोगुण आदि से निर्लेप हैं, ब्रह्मा आदि वर देनेवाले देवताओंके आप स्वामी है । आपका नाम वैकुंठ, वामन और विशुद्ध ब्रह्मचारी है । सिद्ध और देवताओंके समूह सदा आपकी वंदना किया करते है । आप पाखंड का खंडन कर उसे निर्मूल करनेवाले ( बुद्ध अवतार ) है ॥८॥ आप अखंड आनंद की राशि और अविद्या-जन्य तीनो गुणोंके त्रिदोषके नाश करनेवाले हैं । वचन,मन और कर्मसे जो यह तुलसीदास आपकी शरणमें आया है, उसके ( भव ) भयरूपी समुद्रके सोख लेनेके लिए आप साक्षात् अगस्त्य ऋषिके समान है ॥ ९ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'गोतीतम्'— मन और इन्द्रियोंकी जहाँतक पहुँच है, वहाँ तक माया-ही माया है, जैसे—

"गो गोचर जहँलगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥"

ब्रह्मतक, मन, वाणी और इन्द्रियोंकी गति ही नहीं—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—( श्रुतिः )

( २ ) 'मृदु भावगम्य'--इसका पुष्टीकरण गोसाईंजीने 'रामचरितमानस' 'में यों किया है--

'रामहि केवल प्रेम पियारा।'

तथा--

'प्रेम तें प्रगट होहि भगवाना।'

( ३ ) 'विप्र-पूज्य'--इसके दो अर्थ हो सकते हैं--( १ ) ब्राह्मणोंसे पूज्य, ब्राह्मण जिनकी पूजा करते हैं। ( २ ) ब्राह्मण जिन्हें पूज्य है, जो ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं।

( ४ ) "सिद्धसाधक द्रष्टा"--यहाँ अद्वैत वेदान्तके अनुसार ब्रह्मका निरूपण किया गया है। सृष्टि-स्रष्टा एवं दृश्य-द्रष्टाका ऐक्य अद्वैत सिद्धान्तके अंतर्गत अध्यासवादसे प्रमाणित होता है। गोसाईंजीने मायावादका यत्र-तत्र खूब ही वर्णन किया है, जैसा कि इस ग्रंथमें आगे पाया जायगा, पर जीव और ब्रह्मकी एकता उन्होंने कहीं भी नहीं दिखाई। शांकरवादकी तरह उनका सिद्धान्त केवल ज्ञानमय नहीं है, उसमें जो भक्तिका अखंड राज्य है, वह सोनेमें सुगंधका काम कर रहा है।

( ५४ )

बिस्व-विख्यात, बिस्वेस, बिस्वायतन बिस्वमरजाद, व्यालारिगामी।
ब्रह्म, बरदेश, बागीस, व्यापक, बिमल, बिपुल बलवान, निर्बानस्वामी॥१॥
प्रकृति, महतत्व, शब्दादि,गुन, देवता, व्योम, मरुदग्नि, अमलाम्बु, उर्वी।
बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्रान, चित्तातमा, काल, परमानु, चिच्छक्ति गुर्वी॥२॥
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि! व्यक्तमव्यक्त गतभेद, बिष्णो।
भुवन भवदंग कामारि-वन्दित पदद्वन्द्व मन्दाकिनी-जनक, जिष्णो॥३॥
आदिमध्यान्त, भगवंत! त्वं सर्वगतमीस, पश्यंति ये ब्रह्मवादी।
जथा पट-तन्तु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारुकरि, कनक-कटकांगदादी॥४॥
गूढ़, गम्भीर, गर्वघ्न, गूढ़ार्थवित्, गुप्त, गोतीत, गुरु, ग्यान-ग्याता।
ग्येय, ग्यानप्रिय, प्रचुर गरिमागार, घोर संसारकर पारदाता॥५॥
सत्यसंकल्प, अतिकल्प, कल्पान्तकृत, कल्पनातीत, अहि-तल्पवासी।
वनज-लोचन,वनज-नाभ,वनदाभ-बपु,वन वरध्वज-कोटि-लावन्यरासी॥६॥
सुकर, दुष्कर, दुराराध्य, दुर्व्यसनहर, दुर्ग, दुर्द्धर्ष, दुर्गार्त्तिहर्त्ता।
वेद गर्भार्भकादभ्र-गुनगर्व अर्वागपर-गर्व निर्वाप-कर्त्ता॥७॥

भक्त-अनुकूल, भवसूल-निर्मूलकर, तूलअघ नाम पावक-समानं।
तरल-तृष्णामयी-तरनि, धरनीधरन, सरन-भय हरन, करुनानिधानं ॥८॥
बहुल वृन्दारकावृन्द-वंदारु-पद-द्वन्द्व मन्दार-मालोरधारी।
पाहि मामीस सन्ताप-संकुल सदा दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥६॥

पदच्छेद—विस्व + ईस। विश्व + आयतन। व्याल + अरि। वरद + ईस। वाक् + ईस। मरूत् + अग्नि। अमल + अम्बु। चित्त + आत्मा। परम + अणु। चित् + शक्ति। सर्व + एव + अत्र। त्वत + रूप। व्यक्तम् + अव्यक्त। भवत् + अंग। काम + अरि। मध्य + अंत। सर्वगतम + ईस। कटक + अंगद + आदि। गूढ + अर्थ। गरिमा + आगार। कल्प + अंत। कल्पना + अतीन। वनद + आभ। दुः + कर। दुः + आराध्य। दुर्ग + आर्ति। वेदगर्भ + अर्भक + अदभ्र। अर्वाक् + अपर। माला + उर + धारी। माम् + ईस। रावन + अरि।

शब्दार्थ—आयतन=स्थान। व्यालारि=गरुड़। वागीस = वाणीके स्वामी। निर्वाण = मुक्ति। व्योम = आकाश। उर्वी = पृथ्वी। चिच्छक्ति = चैतन्यशक्ति, प्राणशक्ति। जनक = उत्पन्न करनेवाले, पिता। जिष्णु = सर्वविजेता। पश्यन्ति= देखते हैं। स्रग = माला। दारुकरि=लकड़ीका बना हुआ हाथी। कटक-अंगदादी =कडे, बाजू आदि। गरिमा = महिमा। तल्प =शैय्या। वनज = कमल। वनद =मेघ। वनचरध्वज = मीनकेतु, कामदेव। निर्वाप = नाश। वेदगर्भ = ब्रह्मा। अर्भक = बालक। अदभ्र = बहुत। वंदारु = वंदनीय। मंदार = पुष्प विशेष। पाहि=रक्षा करो। माम्=मुझे।

भावार्थ—हे नाथ! आप जगत्-उजागर, अखिल ब्रह्माण्ड-नायक विराटरूप, जगत्की मर्यादा और गरुड़पर सवार होकर जानेवाले है। आप ब्रह्म है। वर देने वाले देवताओंके भी आप स्वामी हैं। वाणीके अधिष्ठाता, सर्वव्यापक, निर्मल, महान् बलवान् और मुक्तिके स्वामीभी आप ही हैं ।१॥ महामाया, महत्तत्व, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सत्व, रज, तमोगुण, सर्वदेव, आकाश, वायु, अग्नि (तेज), निर्मल जल और पृथ्वी, बुद्धि, मन, दशोइन्द्रियाँ, पंचप्राण, चित्त, आत्मा, काल, परमाणु, महाचैतन्य शक्ति आदि जो कुछ प्रकट और अप्रकट है, वह सब, हे राजराजेश्वर, हे विष्णु भगवान्! आप ही का रूप है। आप अभेद रूपसे सबमें रम रहे हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड आपहीका अंग है। हे सर्वविजेता! आपके दोनो चरणोंकी

शिवजी वंदना करते हैं और वही चरण गंगाजीके उत्पादक हैं ।।२-३।। हे भगवन्, आपही आदि हैं आपही मध्य और आपही अन्त । जो ब्रह्मवादी ज्ञानीजन है, वे आपको, हे ईश, सर्वव्यापी देखते है । जैसे वस्त्रमें तंतु, घड़े में मिट्टी, साँपमें माला, लकडीके बने हुए हाथीमें लकड़ी और कड़े बाजू आदिमें सोना देखा जाता है, उसी प्रकार आप विश्वमें दिखाई देते हैं ।। ४ ।। आप गूढ़, गम्भीर, अहंकारके नाशक, गुप्त रहस्योंके जाननेवाले, गुप्तरूप, इन्द्रिय-जन्य ज्ञानसे परे, महान् ज्ञाता, ज्ञेय एव ज्ञान, ज्ञानवल्लभ, बड़ी महिमाके भाण्डार और इस भयंकर संसारसे तार देनेवाले है ।।५।। आपका सङ्कल्प सत्य है अर्थात् जो विचारते है उसे कर दिखाते हैं, महाकल्प और कल्पके प्रलयकारी है, मन—वाणीके विचारसे परे है और शेष शैय्या पर निवास करनेवाले हैं । आपके नेत्र कमलके समान है । आपकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है । शरीरकी कान्ति ( नीले ) मेघके समान है और करोडों कामदेवोंके सदृश आप सौन्दर्य्यकी राशि हैं ।।६।। भक्तोंको सुलभ, किन्तु दुष्टोंको आप दुर्लभ हैं । आपकी आराधना बड़ी कठिनता से पूरी होती है । दुर्गुणोंका आप नाश कर देते हैं । आप दुर्गम ( कठिनाईसे मिलनेवाले ) दुर्द्धर्ष और घोर दुःखोंके नाशक हैं । ब्रह्माके पुत्र सनकादिकको, जिसे अपनी परा और अपरा विद्याका गर्व था उसके खर्व करनेवाले भी आपही है ।।७।। आप भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, और सांसारिक (जन्म-मरण-जन्य) कष्टोंको जडसे उखाड़ देनेवाले है । आपका (राम) नाम पापरूपी रुईके जलानेके लिए अग्निरूप है । चंचल तृष्णा-रूपी अन्धकार नाश करनेके लिए आप सूर्यरूप हैं । आप पृथ्वीको (शेषरूपसे) धारण करनेवाले, शरणागतोंका भय दूर करनेवाले तथा करुणाके स्थान हैं ।।८।। आपके दोनो चरणोंकी वन्दना बहुतसे देवताओंके समूह करते हैं । आप मंदारकी माला हृदय पर धारण किये रहते हैं । हे रावणके शत्रु श्रीरघुनाथजी ! सदा सन्तापसे व्याकुल मैं, तुलसीदास, आपको प्रणाम करता हूँ । हे नाथ ! मेरी रक्षा कीजिए ।। ९ ।।

टिप्पणी—(१) 'प्रकृति'—महामाया; इसीके चक्रमें पड़कर सच्चिदानन्द-स्वरूप जीव आत्म दृष्टि भूल गया है ।

(२) 'चित्त'—'चित्त' छः अंशोंमें विभक्त है—योग, विराग, स्मरण, ज्ञान, विज्ञान और उच्चाटन । 'बुद्धि' भी छः अंशोंमें विभक्त है—जप, यज्ञ, तप, त्याग,

आचार और अध्ययन। 'मन' के भी छः अंश हैं—कर्म, अकर्म, विक्रम, नियम, संकल्प और विकल्प। 'अहंकार' के विभाग इस प्रकार किये गये हैं – मान, क्रोध, ईर्ष्या, पारुष्य, उपहिंसा और दृढ वैराग्य। इसी मन-बुद्धि-चित्त-अहंकारके समूहको 'अन्तःकरण चतुष्टय' कहते हैं।

( ३ ) 'प्रान'—प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, ये पंचप्राण है।

( ४ ) 'पट तन्तु......कटकांगदादी'—ये सब उदाहरण मायावादके अनुसार दिये गये हैं। ५३ पदकी चौथी टिप्पणी देखिये।

( ५ ) 'वेद गर्भ......कर्ता'–एक बार सनकादिकने अपने पिता ब्रह्माजीसे पराविद्या-सम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। जब ब्रह्माजी उन प्रश्नोका यथेष्ट उत्तर न दे सके, तब इन्हे बड़ा गर्व हुआ। ब्रह्माके स्मरण करते ही विष्णु भगवान् हंसके रूपमें वहाँ तुरन्त प्रकट हो गये। सनकादिकने हंससे पूछा— 'तू कौन है?' बस, इसी 'तू कौन हूँ' पर हंस भगवान्ने सारी पराविद्याका निचोड़ कह सुनाया। सनकादिकका अभिमान चूर-चूर हो गया। निम्बार्क संप्रदाय के आदि-आचार्य यही हंस भगवान् माने जाते हैं।

( ५५ )

संत-संतापहर बिस्व-बिस्रामकर राम कामारि-अभिरामकारी।  
सुद्धबोधायतन, सच्चिदानंदघन सज्जनानन्द-वर्द्धन खरारी ॥१॥  
सील-समता-भवन बिषमता-मति-समन राम रामारमन रावनारी।  
खड्गकर चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तून, सर-सक्ति-सारंगधारी ॥२॥  
सत्यसंधान निर्बानप्रद सर्वहित सर्वगुन-ग्यान-बिग्यानसाली।  
सघन-तम-घोर-संसार-भर-सर्वरी-नाम-दिवसेस-खर-किरनमाली ॥३॥  
तपन तीच्छन, तरुन तीव्र तापघ्न, तपरूप तनभूप, तम-पर तपस्वी।  
मान मद-मदन-मत्सर मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि मंदर मनस्वी ॥४॥  
बेद बिख्यात बरदेश, बामन, बिरज, बिमल, बागीस, बैकुण्ठस्वामी।  
काम-क्रोधादिमर्दन बिवर्द्धन-छिमा सांति-बिग्रह बिहँगराज-गामी ॥५॥  
परम पावन, पापपुंज-मुंजाटवी-अनलइव निमिष निर्मूलकर्ता।  
भुवन-भूषन, दूषनारि, भुवनेस, भूनाथ, स्रुतिमाथ, जय भुवनभर्ता ॥६॥  
अमल, अबिचल, अकल, सकल, संतप्त कलि-बिकलता-भंजनानंदरासी।  
उरगनायक-सयन तरुन-पंकज-नयन छीरसागर-अयन सर्बबासी ॥७॥

सिद्ध-कवि-कोविदानंद-दायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
यत्र संभूत अतिपूत जल सुरसरी दर्सनादेव अपहरति पापं ॥८॥
नित्य, निर्मुक्त, संयुक्तगुन, निर्गुनानंत, भगवंत नियामक*नियंता ।
विस्व पोषन-भरन विस्व-कारन-करन, सरन-तुलसीदास-त्रास हंता ।९॥

पदच्छेद—काम + अरि । बोध + आयतन । सत् + चित् + आनंद । सज्जन + आनंद । मुंज + अटवी । दूषन + अरि । भुवन + ईस । भंजन + आनंद । खर + अरि । रावन + अरि । दिवस + ईस । वरद + ईस । कोविद + आनंद । मंद + आत्म । दर्शनात् + एव । निर्गुन + अनंत ।

शब्दार्थ—खरारि = खर राक्षस के शत्रु । रमारमन = लक्ष्मी के पति । चर्म = ढाल । वर्म = कवच । सर्वरी = रात्रि । खर किरन = तीक्ष्ण किरण । तमपर = अविद्यासे परे । अंभोधि = समुद्र । विरज = विरक्त । वागीस = वाणीके स्वामी । विहगराज = गरूड़ । मत्सर = द्वेष । उरगनायक = शेषनाग । मंदात्म = पापी । दुराप = कठिनतासे प्राप्य । पूत = पवित्र ।

भावार्थ—हे श्रीरामजी, आप संतोंका संताप हरनेवाले, संसारमें शान्ति स्थापित करनेवाले तथा शिवजीको आनंद देनेवाले हैं । आप आत्मज्ञानके स्थान, सत्, चित् और आनंदकी राशि, संतोंका आनंद बढ़ानेवाले और खर दैत्यके शत्रु हैं ॥ १ ॥ हे रामजी, आप शील और समताके स्थान, वैषम्य बुद्धि ( भेदभाव ) के नाशक, लक्ष्मीके पति और रावणके शत्रु हैं । आप हाथमें तलवार, ढाल, बाण, धनुष और शक्ति लिये रहते हैं । कवच धारण किये हैं तथा कमरमें तरकस कसे हुए हैं ॥२॥ आप सत्य-संकल्प, मुक्तिदाता, सर्वहितकारी, सर्व दिव्यगुण-संपन्न और ज्ञान-विज्ञानसे पूर्ण हैं । आपका नाम प्रगाढ़ अंधकार-पूर्ण संसार-रूपी रात्रिका अंत करनेके लिए प्रचंड किरणोंवाला सूर्य है ॥३॥ आपका तेज बड़ा ही तीक्ष्ण है, संसारके नित्य नूतन और प्रचंड ताप-संतापोंके आप नाशकर्ता हैं । राजाका शरीर होनेपर भी आपका रूप तपोमय है । आप अविद्यासे परे और तपःशील हैं । मान, मद, काम, मत्सर, मनस्कामना और मोहरूपी समुद्रके मथनेको आप मंदाचल हैं और विचारशील हैं ॥ ४ ॥ वेदोंमें प्रसिद्ध, वर देनेवाले, देवताओंके स्वामी, वामन, विरक्त, निर्मल, वाणीके, अधिष्ठाता और वैकुंठनाथ हैं । आप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर के नाशक, क्षमाके बढ़ानेवाले,

* यहाँ एक मात्रा बढ़ती है ।

शान्ति-स्वरूप और गरुडपर आरूढ़ हो जानेवाले हैं ॥५॥ आप परम पवित्र और पापपुंज-रूपी मूंजके वनको पल भरमें भस्म करनेवाले अग्निरूप हैं। आप ब्रह्माण्ड-शिरोमणि, दूषण दैत्यके शत्रु, जगन्नाथ, पृथ्वी-पति, वेद के मस्तक और समस्त लोकोंके पालनेवाले हैं। आपकी जय हो ॥६॥ आप विकार रहित, एकरस, कला-रहित, कला-पूर्ण, कलियुगके तापसे तपे हुए जीवोंकी व्याकुलता हरनेवाले और आनंदघन हैं। आप शेषनागपर सोते हैं। आपके नेत्र कमलके समान हैं। क्षीर-समुद्रमें निवास करते हैं और घट-घटमें रमते हैं ॥ ७ ॥ सिद्धों, कवियों और विद्वानोंको सुख देनेवाले आपके दोनों चरण पापियोंको परमदुर्लभ हैं। आपके चरणोंकी पवित्रताके सम्बन्धमें कहना ही क्या है? जहाँसे परम पावन गंगाजीका आविर्भाव हुआ है और जिन गंगाजीके दर्शनमात्रसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं, फिर उनके जनक, आपके चरण, क्यों न पतित-पावन होंगे ॥८॥ आप अविद्या-से सदा मुक्त, दिव्यगुण विशिष्ट, मायात्मक गुणोंसे रहित, अनंत ऐश्वर्य आदि षड्गुण-संपन्न, नियमोंके विधायक और सबपर शासन करनेवाले हैं। आप संसार के पालने-पोसनेवाले, जगत्‌के आदिकारण ( कारणके भी कारण ) और शरणमें आये हुए तुलसीदासके भव-भयको हरनेवाले हैं ॥ ९ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'मान मद ̍ मंदर'—श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तोंके हृदयसे मान-मद-काम-क्रोधादि विषय निकालकर वहाँ आत्म-ज्ञानरूपी अमृत भर देते हैं।

( २ ) 'दर्सनादेव अपहरति पापं'—गंगाजी दर्शन-मात्रसे तो जीवके पाप हर लेती हैं, पर स्नान करनेसे क्या करेंगी! शेख रंगरेजिनके मतसे तो जीव शिवरूप हो जायगा। देखिए, इसपर इस कवयित्रीका क्याही भावपूर्ण कवित्त है—

"ज्योंही भौंह भीजी आँखि ताकिहै जु तीजिये से,
जीवी कहै ज्याइहै अमर पद आइलै।
अंबर पखारे तें दिगंबर बनैहै तोहि,
छलक छुआये गजछाल तन छाइलै॥
'सेख' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी बडो,
पापी है तो नीर पैठि नागन लवाइ लै।

अंग बोरि गंगमें निहंग ह्वैकै बेगि चलि,
आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइलै ॥"

( ५६ )

दनुजसूदन, दयासिंधु, दंभापहन, दहन दुर्दोष, दुष्पापहर्त्ता।
दुष्टतादमन, दमभवन, दुःखौघहर, दुर्ग-दुर्वासना,नासकर्त्ता ॥१॥
भूरि-भूषन, भानुमन्त, भगवन्त, भव-भंजनाभयद, भुवनेस भारी।
भावनातीत भववंद्य*, भवभक्तहित, भूमिउद्धरन, भूधरन-धारी ॥२॥
बरद†बनदाभ वागीस विस्वातमा, विरज, बैकुण्ठ-मन्दिर-बिहारी।
व्यापक व्योम, बदारु‡बामन||बिभो, ब्रह्मविद्, ब्रह्म, चिंतापहारी ॥३॥
सहज सुन्दर, सुमुख सुमन,सुभ सर्वदा, सुद्ध, सर्वग्य, स्वच्छन्दचारी।
सर्वकृत, सर्वभृत, सर्वजित, सर्वहित, सत्य-संकल्प, कल्पान्तकारी ॥४॥
नित्य, निर्मोह, निर्गुन, निरंजन, निजानंद, निर्वान, निर्वानदाता।
निर्भरानंद, निस्कंप, निस्सीम, निर्मुक्त, निरुपाधि, निर्मम, विधाता ॥५॥
महामंगलमूल, मोद-महिमायतन, मुग्ध-मधु मथन, मानद, अमानी।
मदनमर्दन, मदातीत, मायारहित, मंजु रमानाथ, पाथोजपानी ॥६॥
कमल-लोचन, कलाकोस, कोदंडधर, कोसलाधीस, कल्यानरासी।
जातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरि, भक्तमन पुण्य आरन्यवासी ॥७॥
अनघ, अद्वैत अनवद्य, अव्यक्त, अज, अमित, अविकार, आनंदसिंधो।
अचल, अनिकेत, अविरल,अनामय, अनारंभ, अंभोदनादहन-बंधो ॥८॥
दासतुलसी खेदखिन्न, आपन्न इह, सोकसंपन्न, अतिसै सभीतं।
प्रनतपालक राम, परम करुनाधाम, पाहि मामुर्विपति, दुर्विनीतं ॥९॥

पदच्छेद—दंभ+अपहन। दुःख+ओघ। भंजन+अभयद। भुवन+ईस। भावना+अतीत। बनद+आभ। वाक्+ईस। विस्व+आत्मा। अन्+आमय। चिंता+अपहारी। कल्प+अंत। निज+आनंद। निर्भर+आनंद। महिमा+आयतन। मद+अतीत। कोसल+अधीस। अन्+आरंभ। माम्+उर्वि।

---

* पाठान्तर 'बंदि'। † पाठान्तर 'वर बदन'। ‡ पाठान्तर 'बन्द्यांघ्रि'।
|| पाठान्तर 'पावन'।

शब्दार्थ — अपहन = नाशकर्त्ता । दुर्ग = कठिन । अतीत = रहित, परे । भव = शिवजी । वनद = मेघ । व्योम = आकाश । बंदारु = वन्द्य, वन्दनीय । मुग्ध = मूढ़ । मञ्जु = सुन्दर । मा = लक्ष्मी । निर्भर = पूर्ण । पाथोजपानी = कमल है हाथ में जिनके । करि = हाथी । अनवद्य = दूषण-रहित । अनामय = रोग-दोष-रहित । अम्भोदनाद = मेघनाद । हन = नाशक । इह = संसार । माम् = मुझे । उर्वि = पृथ्वी ।

भावार्थ - हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप दैत्योंके नाशकर्त्ता, दयाके समुद्र पाखंडोंको दूर करनेवाले, बुरे-बुरे पापोंके भस्म करनेवाले और उनके हर्त्ता है आप दुष्टभावके विनाशक, इन्द्रियदमन के स्थान अर्थात् जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, दुःख-समूह के हरनेवाले और कठिन तथा बुरी वासनाओंके नाशकर्ता हैं ॥१॥ आप अनेक अलंकार पहिने, सूर्यके समान प्रकाशमान्, ऐश्वर्य आदि छः दिव्यगुण-संयुक्त, संसार-जन्य जन्म-मरण-भयसे छुड़ानेवाले, अभयवर देनेवाले और ब्रह्माण्ड नायक ब्रह्मा आदिमें शिरोमणि है। आप भावनाओंसे परे, अर्थात् इन्द्रिय-जन्य ज्ञानसे बाहर हैं । शिवजी आपकी वंदना करते है, और शिवभक्तोंके आप हितकारी है । आप भूमिका उद्धार करनेवाले और पर्वत (गोवर्द्धन) धारण करनेवाले हैं ॥२॥ हे वरद, आपका शरीर मेघके समान है । आप वाणी के अधिष्ठाता, विराट् रूप, रजोगुणादि से रहित, और बैकुंठके मंदिरमें नित्य विहार करनेवाले हैं । आप आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं, सबसे वन्दनीय, वामन-अवतारधारी, सर्व-शक्तिमान्, ब्रह्मवेत्ता, स्वयं ब्रह्मरूप और चिंताओंके दूर करनेवाले हैं ॥३॥ आप स्वभावसे ही सुन्दर हैं । आपका मुख सुन्दर और मन शुद्ध है, सदा मंगलस्वरूप, निर्मल, सर्वज्ञ और स्वतंत्र विहार करनेवाले है । आप सब कामोंके करनेवाले, सबके भरण-पोषण करनेवाले, सबके विजेता, सर्वहितकारी, सत्यप्रतिज्ञ और प्रलय करनेवाले हैं॥ ४ ॥ आप नित्य है मोह-रहित है, निर्गुण है, अव्यय हैं, अपनी आत्मामें ही आनंद करनेवाले, मुक्तिस्वरूप और मुक्तिके प्रदान करनेवाले हैं । आप पूर्ण आनंदरूप, अटल, मर्यादा-रहित, मायासे निर्लिप्त, उपाधि रहित, मोह-ममतासे निर्लेप और सबसे उत्पादक हैं ॥५॥ आप बड़े-बड़े कल्याणोंके आदि कारण, आनंद और महत्त्वके स्थान, मूढ़ मधु दैत्यके मारनेवाले, मान प्रदान करनेवाले,

किन्तु स्वयं मान-रहित हैं। आप कामदेवके नाशक, मदसे रहित, मायासे परे, सुन्दरी लक्ष्मीके वल्लभ और हाथमें कमल लेनेवाले हैं ॥६॥ आपके नेत्र कमलके समान हैं। कलाओंके तो आप भाण्डार ही हैं। अर्थात् आप चौसठों कलाओंमें कुशल हैं। हे कोशलाधीश ! आप धनुष धारण करनेवाले और मंगलकी राशि हैं। दैत्यरूपी बड़े बड़े मतवाले हाथियोंके पछाड़नेके लिए आप साक्षात् सिंह हैं। आप भक्तोंका मन पवित्र कर देनेवाले और वनमें निवास करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ आप पाप-रहित, अद्वैत, निर्दोष, अप्रकट, अजन्मा, अपार, विकार-रहित और आनन्दके समुद्र हैं। आप एकरस हैं। निवासस्थान आपका कोई भी नहीं, अथवा आप सर्वत्र, एकही कालमें, रमनेवाले हैं। आप परिपूर्ण, सांसारिक रोगोंसे निर्लेप, अनादि और मेघनादके मारनेवाले महावीर लक्ष्मणके भाई हैं ॥८॥ यह तुलसी-दास इस संसारके दुःखोंसे दुखी, आपत्ति-ग्रस्त, शोकमय और अत्यन्त भयातुर हो रहा है। हे प्रणतपालक, हे परम-करुणाके स्थान, हे पृथ्वी-पति राम, मुझ दुर्विनीतको बचाइए ॥ ९ ॥

टिप्पणी--( १ ) 'अभयद'--४४ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'भूधरनधारी'—यह तो प्रसिद्ध ही है कि जब इन्द्रने कुपित होकर ब्रजपर सात दिनतक मूसलाधार वृष्टि की थी, तब श्रीकृष्णने गायों और गोपोंकी रक्षा करनेके लिए गोवर्द्धन पर्वत उठाकर उसका छत्र तान लिया था। तभीसे श्रीकृष्णका नाम 'गिरिवरधारी' या 'गिरिधर गोपाल' पड़ा है।

( ३ ) 'मदन-मर्दन'--अपने अनुपम और अप्राकृत नित्य सौन्दर्य द्वारा कामदेवका गर्व खर्व करनेवाले। भागवतमें भी 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' वाक्यसे यह सिद्ध होता है। अथवा योगेश्वर रूपसे कामवासनाओंके नाश करनेवाले।

( ४ ) 'दुर्विनीतं'--श्रीवैजनाथजीने इस शब्दको श्रीरामजीका विशेषण माना है और इसका अर्थ उनपर इस प्रकार घटाया है, "किसीकी भय करिके नम्र नहीं होते हौ।" किन्तु यह 'माम्' तुलसीदासका विशेषण है, ऐसा मानना अधिक युक्तिसंगत होगा।

( ५७ )

देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग ! भवभंग-कारन सरन-सोकहारी।
येतु भवदंघ्रिपल्लव-समास्रित सदा, भक्तिरत विगतसंसय मुरारी ॥१॥

असुर, सुर,नाग, नर, जच्छ,गंधर्व, खग, रजनिचर, सिद्ध ये चापि अन्ने।
सत-संसर्ग त्रैवर्ग-पर परमपद प्राप, निष्प्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥२॥
बृत्र, बलि, बान,प्रह्लाद, मय,व्याध,गज, गृद्ध, द्विजबन्धु निजधर्मत्यागी।
साधुपद सलिल-निर्धूत कल्मष सकल,स्वपच जवनादि कैवल्य भागी ॥३॥
सांत, निरपेच्छ, निर्मम, निरामय, अगुन, सब्दब्रह्मैकपर, ब्रह्मग्यानी।
दच्छ,समदृक,स्वदृक बिगत अतिस्वपरमति परमरति विरति तव चक्रपानी ४
बिस्व उपकारहित व्यग्र-चित सर्वदा त्यक्तमदमन्यु कृत पुन्यरासी।
यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्व हरि सहित गच्छन्ति छीराब्धिवासी ॥५॥
बेद पयसिंधु सुविचार मन्दरमहा अखिल-मुनिवृन्द निर्मथनकर्ता।
सार सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदर्भिभर्ता ॥६॥
सोक संदेह भय हर्ष तम तर्षगन साधु-सद्युक्ति विच्छेदकारी।
जथा रघुनाथ-सायक निसाचर चमू-निचय निर्दलन पटु बेगभारी ॥७॥
यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मबस भ्रमत जगजोनि सकट अनेकम्।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम, विस्रामम॑कम् ॥८॥
प्रबल भव-जनित त्रव्याधि भेषज भगति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
सन्त-भगवन्त अन्तर निरंतर नही किमपि,मति मलिन कह दासतुलसी ॥९॥

पदच्छेद—भवत् + अंघ्र। च + अपि। जवन + आदि। तत्र + एव। छीर + अब्धि। निः + आमय। ब्रह्म + एक। सत्संगम् + उद्धृत्य। सत् + युक्ति। विस्राम् + एकम्। कुत्र + अपि। भैषज्यम् + अद्वैत।

शब्दार्थ—अंघ्रि = चरण। अन्ने = अन्ये, दूसरे। च = और। अपि = भी। त्रैवर्ग=धर्म अर्थ और काम। त्वयि = तुम्हारे। निर्धूत = धुला हुआ, स्वच्छ। कैवल्य=मुक्ति। समदृक = समभावसे देखनेवाला। स्वदृक = आत्मद्रष्टा। मृत्यु = क्रोध। तिष्ठन्ति = रहते है। शर्व = शिवजी। गच्छन्ति = जाते है। छीराब्धि = क्षीराब्धि,क्षीर-सागर। उद्धृत्य = निकालकर। वैदर्भि=भरता = रुक्मिणीके पति-। तर्ष = वासना। चमू = सेना। निचय = पुञ्ज। पटु = कुशल। यत्र-कुत्रापि=जहाँ कही भी। भवतु = हो। भेषज=औषधि। किमपि = कोई भी।

भावार्थ—हे श्रीरंग! मुझे सत्संग दीजिए, क्योंकि वह आपकी प्राप्तिका एक प्रधान साधन है। वह संसारके जन्म-मरण-रूपी चक्रका नाश करनेवाला और

आपकी शरणमें आये हुए जीवोंके दुःखोंका हरनेवाला है। जो सदा आपके चरण-पल्लवके भरोसे रहते हैं और आपकी ही भक्तिमें जिनकी लौ लगी रहती है, हे मुरारे! उनके सर्व संदेह ( अविद्या-जन्य ) दूर हो जाते हैं ॥१॥ दैत्य, देव, नाग, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध तथा और भी जितने जीव है, वे सब सन्तोंके सङ्गके प्रभावसे अर्थ, धर्म और कामसे परे उस परम-पद, मुक्ति को ( अनायास ही ) पा जाते है, जो अन्य साधनोसे प्राप्त नहीं हो सकती, केवल आपके प्रसन्न होनेसे मिलती है ॥२॥ वृत्रासुर, बलि, बाणासुर, प्रह्लाद, मय, व्याधा ( वाल्मीकि आदि ),गजेन्द्र, गीध ( जटायु ) और अपने ब्राह्मणोचित धर्म-कर्मको छोड़ देनेवाला अजामिल तथा चाडाल, यवन आदि सन्तोके चरणोदकसे अपने समस्त पापोको धोकर मोक्षपदके अधिकारी हो गये ।.३॥ जो शान्त, निरीह ( जिन्हें किसी बातकी इच्छा नही है ), मोह-ममतासे रहित, निरुपाधि, सत्त्व, रज और तमोगुणसे रहित, शब्दब्रह्म अर्थात् वेदोपनिषद्के ज्ञाताओंमें मुख्य और ब्रह्मवेत्ता है, जो कुशल, समद्रष्टा, आत्मदर्शी और अपनी-पराई बुद्धिसे मुक्त ( सबको एक भाव से देखनेवाले ) है, और हे चक्रपाणे! जो आपके परम-भक्त और संसारसे विरक्त है, ॥४॥ जगत् की भलाईके लिए जिनका चित्त सदा व्याकुल रहता है, जिन्होने अहकार और क्रोधको तिलाजलि देकर पुण्योका समूह अर्जित किया है, ऐसे सत-महात्मा जहाँ रहते है उनके पास, आप-से आप, ब्रह्मा और शिवको साथ लेकर क्षीरसमुद्र-वासी श्रीहरि भगवान् दौड़े हुए जाते हैं ॥५॥ वेद क्षीरसमुद्र है, विवेक मदराचल है, और उसे मथनेवाला है समस्त मुनियोंका समूह। मथनेपर उसमेंसे क्या निकला? सत्सग-रूपी सार, अमृत। ( यह केवल रूपक ही नहीं है ) इस रुक्मिणावल्लभ श्रीकृष्णने निश्चय करके कहा है। साराश यह है कि, समग्र वेदोका सार एक सत्सग है, इसीके बल-भरोसे जीव सहज ही दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त कर सकता है ॥६॥ साधुओंका सदुपदेश, शोक, संदेह, भय, हर्ष, अविद्या और वासनाओंके समूह इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर देता है, जैसे श्रीरघुनाथजीके बाण राक्षसोकी सेनाके समूहको कौशल और बड़े बेगसे नष्ट करनेवाले है ॥७॥ हे रामजी! अनेक कष्ट भोगता हुआ और ससारकी समस्त योनियोमें घूमता हुआ, अपने कर्मके अधीन, जहाँ-कहीं मेरा जन्म हो, वहाँ 'आपकी भक्ति और सन्तोंका समागम' बस यही एक मेरा विश्राम हो ॥८॥ सांसा-

रिक त्रिविध ( भौतिक, दैहिक और दैविक ) रोगोंके दूर करनेके लिए आपकी भक्ति ही एकमात्र औषधि है, और वैद्य है समद्रष्टा आपका भक्त। मलिन बुद्धि-वाले तुलसीदासका तो यह कहना है, कि संत और भगवान्में रत्ती भर भी अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं ॥६॥

टिप्पणी—(१)'वृत्र'—वृत्रासुर था तो दैत्य, किन्तु परमवैष्णव था। इन्द्रके साथ युद्ध करते समय, इसने सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और भक्तिकी व्याख्या की थी। यह इन्द्रके वज्रसे मारा गया था।

(२) 'बान'—यह राजा बलिका पुत्र था। इसके एक हजार हाथ थे। पहले यह परमशैव था, किन्तु श्रीकृष्णके साथ युद्ध करके, जब इसके केवल चार हाथ रह गए, तब भगवद्भक्त हो गया। इसकी पुत्री ऊषा प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको ब्याही गई थी और इसी समय इसके साथ श्रीकृष्णको लड़ना पड़ा था, क्योंकि इसने अनिरुद्धको, चुपके-चुपके, ऊषाके साथ प्रेम करनेके अपराध पर, कैद कर लिया था।

( ३ ) 'मय'—यह भी एक दैत्य था, पर था पूरा भगवद्भक्त। स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टने 'मय' का अर्थ 'सहित' लिखा है। किन्तु 'व्याधा, गज, गृद्ध सहित प्रह्लाद', ऐसा अर्थ कुछ युक्ति-संगत नहीं समझ पड़ता। वृत्रसे लेकर मयतक गोसाईंजीने केवल दैत्योंका नामोल्लेख किया जान पड़ता है।

( ४ ) 'द्विज-बन्धु'—अजामिलसे तात्पर्य है। यह बड़ाही दुराचारी और पापी ब्राह्मण था। इसके कनिष्ठ पुत्रका नाम 'नारायण' था। मरते समय जब यमदूत इसे बाँधने लगे, तब इसने चार-पाँच बार 'नारायण' को पुकारा। नारायण तो न आया, पर नारायणके पार्षद् आ पहुँचे। उन्होंने हठ-पूर्वक यमदूतोंसे यह कहकर, कि यह परमवैष्णव है, इसे छुड़ा लिया।

( ५ ) 'यवन'—४६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( ६ ) 'स्वपर-मति'—भेद-बुद्धि; यही तो माया है—

'मै अरु मोर तोर तैं माया।'

( ७ ) 'परमरति'—भक्तिका यही सर्वोत्कृष्ट लक्षण है। शांडिल्य भगवान् अपने भक्ति-सूत्रोंके आदिमें लिखते हैं—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

( ८ ) 'सार सत्संग......वैदर्भिभरता'—भगवान् कृष्णने, श्रीमद्भागवतमें, श्रीमुखसे उद्धवके प्रति कहा है—

'न रोधयति मां योगो, न सांख्यं धर्म उद्धव !
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो, नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छंदासि, तीर्थानि नियमो यमः ।
यथावरुंधेत्सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥'

( ९ ) 'त्वद्भक्ति सज्जन समागम'—सत्संग और भगवद्भक्तिको गोसाईंजीने अन्योन्याश्रय माना है ।

'बिनु सतसंग बिबेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥'

( १० ) 'अद्वैत दरसो'— इसका अर्थ 'समदृष्टिसे देखनेवाला है', 'जीव, ब्रह्मको एक समझनेवाला' नहीं ।

( ११ ) 'संत भगवंत......किमपि'— इस सिद्धांतकी पुष्टि भक्तवर नाभाजी भी कर रहे हैं—

'भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम वपु एक ।
इनके पद-बन्दन करौ, नासै विघन अनेक ॥'

( ५८ )

देहि अवलम्ब करकमल कमलारमन, दमन दुख समन संताप भारी ।
अग्यान राकेस ग्रासन बिधुंतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी ॥१॥
वपुष ब्रह्माण्ड, सुप्रवृत्ति लंका-दुर्ग, रचित मन दनुज-मय-रूपधारी ।
बिबिध कोसौघ अति रुचिर मंदिर निकर, सत्वगुन प्रमुख त्रैकटककारी ॥२॥
कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर-बिपुल अवगाह दुस्तर अपारं ।
नक्र रागादि-संकुल, मनोरथ सकल संग संकल्प बीची बिकारम् ॥३॥
मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहँकार, पाकारिजित् काम बिस्रामहारी ।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोधपापिष्ठ बिबुधांतकारी ॥४॥
द्वेष दुर्मुख, दंभ खर, अकंपन कपट दर्प मनुजाद, मद-सूलपानी ।
अमितबल परम दुर्जय, निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो जातुधानी ॥५॥
जीव-भवदंघ्रि सेवक बिभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता ।
नियम-यम सकल सुरलोक-लोकेस लंकेस बस नाथ ! अत्यंत भीता ॥६॥

ग्यान-अवधेस-गृह, गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार-हरता।
भक्त-संकष्ट अवलोकि पितु वाक्य-कृत गमन किय गहन बैदेहि भरता ॥७॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विकट*ग्यान-सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रबल बैराग्य दारुन प्रभंजन-तनय, विषय वन-भवनमिव धूमकेतू ॥८॥
दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित, बिस्वदुख-हरन बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी-हृदय-कमलबासी ॥९॥

पदच्छेद—राका + ईस। दूषन + अरि। कोस + ओघ। पाक + अरि। बिबुध + अंत। मनुज + आद। भवत् + अंघ्रि। दुष्ट + अटवी। लोक + ईस। लंका + ईस। अवध + ईस। भवनम् + इव। बोध + एक।

शब्दार्थ— विधुंतुद = राहु। मय = एक मायावी राक्षस। ओघ = समूह। कटक = सेना। कुनप = देह। नक्र = मगर, घड़ियाल। संकुल = पूर्ण। बीचों = लहर। दसमौलि = रावण। पाकारिजित् = इन्द्रको जितनेवाला, मेघनाद। विबुधांतकारी = देवान्तक नामका राक्षस। गो = इन्द्रिय। जातुधानी = राक्षसी। भवत् + अंघ्रि = आपके चरण। अटवी = वन। गेहिनी = स्त्री। गहन = वन। कैवल्य = मोक्ष। प्रभंजन = वायु। धूमकेतु = अग्नि।

भावार्थ—हे लक्ष्मी-रमण! मुझ, संसार-सागरमें डूबते हुए को अपने कर-कमलका सहारा दीजिए। आप तो दुःखोंके हरनेवाले और बड़े-बड़े सन्तापोंके नाश करनेवाले हैं। दूषणारे! आप अविद्या-रूपी चन्द्रमाके ग्रसनेके लिए साक्षात् राहु तथा अहंकार और काम-रूपी मतवाले हाथियोंके मर्दन करनेके लिए सिंह हैं ॥ १ ॥ शरीर-रूपी ब्रह्माण्डमें प्रवृत्ति जो है वह लंकाका क़िला है। इसे मनरूपी मायावी मय दैत्यने निर्माण किया है। इसमें जो अनेक कोश हैं वे ही (शरीरके पाँच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय) सुन्दर महल हैं और सतोगुण आदि तीन गुण वहाँ के तीन प्रचंड सेनापति हैं ॥२॥ देहाभिमान ही महाभयंकर, अथाह, अपार और दुस्तर समुद्र है, जहाँ राग-द्वेष रूपी घड़ियाल भरे हैं और सारी मन कामनाएँ तथा विषयासक्तिके संकल्प-विकल्प ही लहरें हैं ॥३॥ (ऐसे भीषण समुद्रके तटपर बसी हुई लंकामें) मोहरूपी रावण, अहङ्काररूपी कुम्भकर्ण और शांतिभङ्ग करनेवाले कामरूपी मेघ-

* पाठान्तर 'बिपुल'।

नादके साथ, अटल राज्य करता है। वहाँपर लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर, क्रोधरूपी महापापी देवान्तक, ॥४॥ द्वेषरूपी दुर्मुख, दंभरूपी खर, कपट-रूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और मदरूपी शूलपाणि नामके दैत्योंका समूह बडा ही पराक्रमी और कठिनता से विजित होने योग्य है। येही नहीं, इन मोह आदि छः राक्षसोके साथ, इन्द्रियरूपी राक्षसियाँ भी हैं॥ ५ ॥ हे नाथ ! आपके चरणारविन्दोंका सेवक जो यह जीव है वही मानो विभीषण है। यह बेचारा चिंता के मारे, इन दुष्टोंसे पूर्ण वनमें, दिन काट रहा है। यम-नियम-रूपी दसो दिग्पाल और इन्द्र इस रावणके अधीन होकर अत्यन्त भयभीत रहते है ।।६।। सो हे नाथ ! जैसे आपने कोशलेश महाराज दशरथके यहाँ कौशिल्याके गर्भसे पृथ्वीका भार हरनेके लिए सगुण-अवतार लिया था, उसी प्रकार ज्ञानरूपी दशरथ के यहाँ, शुभ भक्तिरूपी कौशिल्याके गर्भसे मोह आदिका नाश करनेके लिए, प्रकट हूजिए। हे जानकी-वल्लभ ! जिस प्रकार आप भक्तोका कष्ट देखकर, पिताकी आज्ञासे, वन गये थे, उसी प्रकार जीवकी भव-बाधा हरनेके लिए, हृदयरूपी वनको पधारिए ।।७।। मोक्षके जितने-कुछ साधन है उन्हे रीछ और बन्दर बनाकर ज्ञानरूपी सुग्रीवको साथ लेकर ( संसार-रूपी ) समुद्रका पुल बाँध दीजिए। उत्कट वैराग्यरूपी पवन-कुमार हनुमान् विषय-वासना-रूपी वन और महलोंको अग्निके समान जलाकर भस्म कर देंगे ॥ ८ ॥ हे अखण्ड ज्ञानस्वरूप रघुनाथजी ! हे संसारके दुःख दूर करनेवाले ! इस दास जीवके लिए इस मोहरूपी दुष्ट दैत्यका वंश-सहित नाश कर दीजिए, और फिर तुलसीदासके हृदय-कमलमे, बेखटके, अपने भ्राता लक्ष्मण और पत्नी श्रीजानकी सहित सदा निवास कीजिए ।।९।।

टिप्पणी—( १ ) 'वपुष ब्रह्माण्ड'—जो कुछ भी समस्त ब्रह्माण्डमें है वह सब इस शरीरमें भी हैं। अपना घट ही ब्रह्माण्ड है। कबीरसाहबके शब्दोंमें—'पिंड ब्रह्माण्डका एक लेखा' है।

( २ ) 'प्रवृत्ति लंकादुर्ग'—प्रवृत्तिके होते ही मोह अपना साम्राज्य जमा लेता है।

( ३ ) 'कुनप-अभिमान'—आत्मा 'सत्' है और शरीर 'असत्'—यही विवेक है, इसका प्रतिकूल ज्ञान अविद्या है। शरीर और आत्माका कुछ भी नित्य संबंध नहीं। "मैं मोटा हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं पण्डित हूँ"

आदि वाक्य देहाभिमानसे उत्पन्न होते हैं। आत्मामें तो ये सब बातें घटती नहीं, और देह नाशवान् है। फिर यह सब स्फूर्ति कहाँसे हुई? अविद्यासे हेर-फेरके ज्ञानसे और मोहसे।

( ४ ) 'संग'—संगसे तात्पर्य 'आसक्ति' से है। यह बड़ी ही भयंकर मानी गई है। गीता में लिखा है—

'संगात्संजायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः, संमोहात् स्मृतिविभ्रमः॥
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'

( ५ ) 'मोह······जातुधानी'—जैसे, रावणके राज्य-कालमें ये सब राक्षस चैन उड़ाते थे, उसी प्रकार मोहने हृदयमें ज्योंही अड्डा जमाया, त्योंही अहंकार, काम, लोभ, मत्सर, क्रोध, द्वेष, दंभ, कपट आदि पनपने लगे और मौज करने लगे।

( ६ ) 'बिभीषन······चिता'—विभीषण किस प्रकार राक्षसोंके बीच में रहते थे, इसकी उत्प्रेक्षा गोसाईंजीने रामायण में क्या ही सुन्दर अंकित की है—

'जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी।'

( ७ ) 'दुष्ट दनुजेस······कमलवासी'—जब योग, कर्म, ज्ञान आदि साधनोंसे जीवका शरीराभिमान दूर हो जाता है और आत्म-ज्ञानकी प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है, तभी आत्मस्वरूपकी झलक पाकर वह परमशान्तिको प्राप्त होता है। जबतक शरीराभिमान नहीं छूटा, मोह समूल नष्ट नहीं हुआ, तबतक परम शान्तिकी आशा करना व्यर्थ है।

( ८ ) समस्त पदमें रूपक अलंकार है। गोसाईंजीका यह रूपक सर्वथा सांगोपांग और उत्तम कोटिका है। इसी पदके आधार पर एक सज्जनने 'आत्म-रामायण' लिखी है, पर वह ऐसी जटिल हो गई है कि पढते समय कोई विशेष आनन्द नहीं आता।

( ५९ )

दीन-उद्धरन रघुवर्य करुनाभवन, समन संताप पापौघहरी।
बिमल-बिग्यान-बिग्रह, अनुग्रहरूप, भूपवर, बिबुध-नरमद, खरारी॥१॥

संसार-कांतार अति घोर गम्भीर घन गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी।
बासना-बल्लि खर-कंटकाकुल बिपुल,निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥२॥
बिबिध चितवृत्ति खग-निकर सेनोलूक, काक बक गृद्ध आमिष-अहारी।
अखिलखल निपुन छलछिद्रनिरखतसदा,जीवजनपथिकमन-खेदकारी॥३॥
क्रोध करि मत्त मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक भालु अति उग्रकर्मा।
महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकररूप, फेरु छल, दंभ मार्जारधर्मा ॥४॥
कपट मर्कट बिकट, व्याघ्र पाखण्डमुख, दुखद मृगव्रात उत्पातकर्त्ता।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागत, पाहि मा पाहि, भो विस्वभर्त्ता ॥५॥
प्रबलऽहंकार दुरघट महीधर, महामोह गिरि-गुहा निबिडांधकारं।
चित्त बेताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग, भोगोघ बृश्चिक विकारं ॥६॥
विषय-सुख-लालसा दंस मसकादि, खल झिल्लि, रूपादि सब सर्पस्वामी।
तत्र आच्छिप्त तव विषम*माया, नाथ, अंध मैं मंद व्यालादगामी ॥७॥
घोर-अवगाह भव-आपगा, पापजलपूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर अपारा।
मकर षड्वर्ग, गोनक्र-चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ, दुख तीव्र धारा ॥८॥
सकल संघट्ट पोच, सोचबस सर्वदा दासतुलसी विषम गहन-ग्रस्त।
त्राहि रघुबंसभूषन कृपाकर, कठिन काल बिकराल कलित्रास-त्रस्त ॥९॥

पदच्छेद—पाप + ओघ। खर + अरि। मुर + अरि। कटक + आकुल। बिटप + अटवी। सेन + उलूक। निबिड़ + अंध। मनुज + आद। मसक + आदि। व्याल + आद। चक्र + आकुला। भोग + ओघ।

शब्दार्थ—विग्रह = मूर्त्ति, रूप। नरमद = सुख देनेवाले। कांतार = वन। खर = तीक्ष्ण। सेन = बाज। फेरु = शृगाल। अटवी = वनस्थली। छिद्र = दोष करि = हाथी। कन्दर्प = कामदेव। व्रात = समूह। पाहि = रक्षा करो। महीधर = पहाड़। निबिड़ = घना, बहुत ज्यादा। मनुजाद = मनुष्यको खानेवाला। आच्छिप्त = (आक्षिप्त) डाल दिया गया। व्यालाद = गरुड़। आपगा = नदी। संघट्ट = इकट्ठा। त्रस्तं = डरा हुआ।

भावार्थ—हे रघुकुलमें श्रेष्ठ देवाधिदेव! आप दीनजनोंका निस्तार करनेवाले,करुणाके स्थान सन्तापके नाशकर्त्ता और पाप-समूहके हरनेवाले हैं। आप शुद्ध

* पाठान्तर 'विषय'।

आत्मज्ञानके रूप, कृपाकी मूर्त्ति, राजाओंमें शिरोमणि, देवताओंको सुख देनेवाले और खर नामक दैत्य के शत्रु हैं ॥१॥ हे मुरारे! यह संसार एक बड़ाही भयानक और सघन वन है। यहाँ कर्मरूपी वृक्ष बड़ी ही सघनता से लगे है। इच्छारूपी लताएँ लिपट रही हैं और व्याकुलतारूपी अनेक पैने काँटे बिछ रहे हैं। ओह! यह कैसा सघन वृक्षोंका महाघोर वन है! ॥२॥ इस संसाररूपी वनमें चित्तकी जो अनेक वृत्तियाँ है, वही मांसाहारी बाज, उल्लू, कौए, बगुले, गीध आदि पक्षियो का समूह है। ये सब-के-सब बड़े ही दुष्ट और कपट करनेमें चतुर हैं। यह सदा दोष देखते ही जीवरूपी पथिकोके मनको दुःख दिया करते हैं, बेचारोंको कभी सुखशान्ति नही पाने देते ॥३॥ यहाँ क्रोधरूपी मतवाला हाथी, कामरूपी सिंह, मदरूपी भेडिया और गर्वरूपी रीछ हैं। ये सब बड़े ही निर्दय है। यही नहीं, यहाँ मत्सररूपी निर्दय भैंसा लोभरूपी शूकर, छलरूपी सियार और दम्भ-रूपी बिलाव भी है ॥४॥ यहाँ कपटरूपी विकट बन्दर है, पाखण्ड-स्वरूप बाघ है, जो सन्तरूपी मृग-समूहको सदा दुःख दिया करते हैं और उपद्रव मचाया करते है। हे विश्वम्भर, हृदयमें यह (असह्य) कष्ट देखकर मै आपकी शरणमें आया हूँ। हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ॥५॥ इस ससाररूपी वनमें (जैसे तैसे जीव-जन्तुओंसे भी बच गया, तो आगे और भी आपत्ति है!) बडा विशाल अहंकार रूपी पर्वत है। इसका लाँघ जाना अत्यन्त कठिन है। इस पहाड़ में महामोहरूपी गुफा है, जिसके भीतर बडा ही अन्धकार है। यहाँ चित्तरूपी बेताल, मनरूपी मनुष्य भक्षक राक्षस, रोगरूपी भूत प्रेतोंके समूह और भोग-विलासरूपी बिच्छुओंका (तीक्ष्ण) विष दिखाई देता है ॥६॥ जहाँ पर विषय-सुख-की इच्छाएँ ही मक्खियाँ तथा मच्छर है, और दुष्ट जन ही झिल्ली हैं, हे स्वामी! जहाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि विषय ही सर्प हैं, वहाँ हे नाथ! आपकी त्रिगुणात्मिका मायाने मुझ मन्दबुद्धिको लाकर पटक दिया है (भला मै कैसे इसे पार पा सकता हूँ!) हे गरुडगामी! मै अन्धा हूँ, (ज्ञान नेत्र नही है) आत्म-प्रकाश-हीन हूँ, (अतः पार पाना कठिन है) ॥७। इतना ही नही, यहाँ प्रवृत्ति-रूपी नदी बडी ही भीषण और अगाध है। इसमें पाप-रूपी जल भरा है। इसकी ओर देखना सहज नहीं, फिर पार कर जाना तो अत्यन्त ही कठिन है। इसका ओर-छोर ही नही जान पड़ता। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मत्सर-

रूपी मगर रहा करते है। जहाँ-तहाँ इन्द्रिय-रूपी घडियाले और जलावर्त भरे पड़े हैं। शुभ और अशुभ कर्म ही इसके दोनों तट है, और इसकी दुःखरूपी धारा बडी ही कठिन है! ।।८।। हे रघुवंश-विभूषण! इन सब नीचोके जमघटने मुझे इस वनमें कैद कर रखा है। यह तुम्हारा दास, तुलसी, मद चिताके मारे घुटा करता है। कृपाकर इस कराल कलिकालसे भयभीत मुझे बचा लीजिए ।।६।।

टिप्पणी—( १ ) 'तरु-कर्म'—कर्मके भेद कई प्रकारसे किये गये हैं। (१) कर्म, अकर्म और विकर्म ( २ ) शुभ और अशुभ ( ३ ) सकाम और निष्काम ( ४ ) संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण ( ५ ) वैध और निषिद्ध आदि । वृक्ष भी अनेक प्रकारके होते हैं। इसलिए कर्मोंकी उपमा वृक्षोके साथ दी गई है।

( २ ) 'कंटकाकुल'—इच्छा पूरी न होनेसे जो व्याकुलता होती है, वही काँटे हैं।

( ३ ) 'क्रोध'—मनुस्मृतिमें क्रोध आठ प्रकारका कहा गया है—

पैशून्यं, साहसद्रोहं ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकम् ।।

( ४ ) 'कंदर्प'—काम, काम दशांगमें विभक्त है। मनुस्मृतिमें लिखा है—

'मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादो स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाद्य च कामजो दशको गणः ।।'

( ५ ) 'विषम माया'—गीतामे लिखा है—

'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया'

( ६ ) 'भव-आपगा'—स्वर्गीय पं० रामेश्वर भट्टजीने इसका अर्थ 'यह संसार-रूपी नदी' ऐसा किया है, किंतु संसाररूपी वनमें संसाररूपी नदी यह कुछ शिथिलताकी सूचना दे रहा है अतएव 'भव' का अर्थ 'प्रवृत्ति' किया जाय, तो ठीक होगा। संसारमें प्रवृत्तिका होना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि नदीका वनमें ।

( ७ ) 'घोर ··· तीव्रधारा'—इसी रूपकसे मिलता-जुलता एक श्लोक राजर्षि भर्तृहरिका है। वह यह है—

'आशानाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरंगाकुला,
रागग्राहवती वितर्क-विहगा धैर्य-द्रुम ध्वंसिनी।

मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगेश्वराः ।।"

( ८ ) इसमें रूपक अलंकार है।

( ६० )

नौमि नारायनं नरं करुनायनं, ध्यान-पारायनं ग्यान-मूलम्।
अखिल-संसार-उपकार-कारन सदय-हृदय तपनिरत प्रनतानुकूलम् ।। ।।
स्याम-नव-तामरस-दामदुति बपुष-छबि, कोटि मदनार्क अगनितप्रकासम्।
तरुन-रमनीय-राजीव-लोचन ललित, बदन राकेस कर-निकर हासम् ।।२।।
सकल-सौंदर्य-निधि, विपुल गुनधाम,बिधि-बेद-बुध-संभु-सेवित अमानम्,
अरुन-पदकज-मकरंद-मन्दाकिनी मधुप मुनिबृन्द कुर्वन्ति पानम् ।।३।।
सक्र-प्रेरित घोर मदन-मद भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी।
मारकण्डेय मुनिवर्यहित कौतुकी बिनहि कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ।।४।।
पुन्य बन सैल सरि बदरिकास्रम सदासीन पद्मासनं एक रूपं।
सिद्ध जोगीन्द्र वृन्दारकानंदप्रद, भद्रदायक दरस अति अनूपं ।।५।।
मान मनभंग चितभंग मद क्रोध-लोभादि पर्वतदुर्ग, भुवन-भर्त्ता।
द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय क्रूरकर्म कर्त्ता ।।६।।
बिकटतर बक्र छुरधार प्रमदा, तीव्र दर्प कंदर्प खर*खड्गधारा।
धीर-गंभीर-मन-पीर-कारक तत्र, के बराका वयं बिगतसारा ।।७।।
परम दुर्घट पन्थ, खल असंगत साथ, नाथ! नहि हाथ बर बिरति यष्टी।
दर्सनारत दास, त्रसित माया-पास,त्राहि हरि, त्राहि-हरि, दास कष्टी†।।८।।
दासतुलसी दीन, धर्म-संबलहीन, स्रमित अति, खेद मति मोह नासी।
देहि अवलंब न बिलंब अंभोज-कर, चक्रधर तेजबल समरासी ।।९।।

पदच्छेद—नार (जल) + अयन । करुना + अयन । प्रनत + अनुकूल । मदन + अर्क । राका + ईस । सदा + आसीन । जोगी + इंद्र । वृन्दारक + आनंद । प्रति + ऊह । दर्सन + आरत ।

शब्दार्थ – तामरस = कमल । दाम = माला । अर्क = सूर्य । कर-निकर = किरणोंका समूह। कुर्वन्ति = करते है । सक्र ( शक्र ) = इन्द्र । कौतुकी = लीला

* पाठांतर 'गर' । † पाठांतर 'दास जान कष्टी' ।

करनेवाले । आसीन = विराजमान् । पद्मासन=योग-शास्त्रानुसार एक आसन । वृन्दारक = देवता । भद्र = कल्याण । प्रमदा = स्त्री । कन्दर्प = कामदेव । वराक = ग़रीब । विगतसार = क्षुद्र, निर्बल । यष्टी = लाठी । पास = फंदा । संबल=मार्गव्यय, कलेवा । सर्म ( शर्म ) = कल्याण ।

भावार्थ—मै करुणाके स्थान ध्यानावस्थित और ज्ञानके कारण श्रीनरनारायण को नमस्कार करता हूँ । वे समस्त संसारके हित करनेवाले, दयालु हृदयवाले, तपः शील और भक्तोपर अनुग्रह करनेवाले हैं ॥१॥ उनका शरीर नीले और नवीन कमलोंकी मालाके समान कांतिमय है, सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंके समान और दीप्ति अनन्त सूर्योंके सदृश है । उनके नेत्र नवीन विकसित कमल-दलोंके जैसे हैं, मुख सुन्दर चन्द्रमाके समान और मन्द-मन्द मुसक्यान चंद्र-किरणावलिके सदृश है ॥२॥ वे समस्त सौन्दर्यके भाण्डार है । मान तो उनको तनिक भी नही हैं। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न नर-नारायणको ब्रह्मा, वेद, पंडित और शिव सदा सेते हैं । उनके लाल कमलके समान चरणोसे निस्सृत गंगाका पराग मुनिरूपी भौंरे नित्य पीते हैं ॥३॥ वे इन्द्रसे भेजे गये भीषण ( दुर्जय ) कामदेवके गर्वको खर्व करनेवाले, क्रोध-रहित, शुद्ध आत्मज्ञानी और ब्रह्मचारी हैं । उन्होंने अपने सामर्थ्यसे बिना ही कल्पान्तके मार्कण्डेय मुनिको दिखानेके लिए प्रलयकालकी लीला रची थी ॥४॥ वे सदा वन, पर्वत और नदी-पूर्ण पवित्र बद्रिकाश्रममें पद्मासन लगाये विराजमान् रहते है । उनका अत्यन्त अनुपम दर्शन सिद्ध, योगीन्द्र और देवताओको आनन्द और कल्याण देनेवाला है ॥५॥ हे संसार के सूत्रधार ! आपके बदरिकाश्रमके मार्गमें 'मनभग' नामक पर्वत है, जिसे देखकर बड़े-बड़े साहसी भी आगे बढ़नेसे हिचकते है, और यहाँ अर्थात् मेरे हृदयमें अभिमानरूपी मनभंग है—अर्थात् अभिमान आते ही सारे उत्साहपर पानी पड़ जाता है । वहाँ 'चितभंग' है, तो यहाँ मद ही चितभंगसे होड़ लगा रहा है । भला यह कोई सत्कार्य करने देगा ! वहाँ जैसे बड़े-बड़े कठिन पहाड हैं, उसी प्रकार यहाँ क्रोध, लोभ आदि पहाड़ोंकी समता कर रहे है । यहाँपर द्वेष, मत्सर, और रागरूपी अनेक भारी-भारी विघ्न-बाधाएँ हैं, ये सब-के-सब बड़े ही निर्दय और दुष्ट है ॥६॥ जैसे बदरिकाश्रमके मार्गमें लुटेरे लोग पैनी छुरी और तलवारसे पथिकोके गले काट लेते है, उसी प्रकार इस हृदयमे, कटाक्ष करनेवाली, टेढ़ी नज़रसे देखनेवाली और काम-रूपी विषभरी तलवार

चलानेवाली कामिनी बड़े-बड़े धीर और शांतजनोंके भी मनको कष्ट दे रही है, फिर हम बेचारे निर्बलोंको पूछता ही कौन है ? ॥ ७ ॥ हे नाथ, यह आत्म-दर्शनका मार्ग बड़ा ही दुस्तर है, तिसपर दुष्टों और नीचोंका साथ पड़ गया है और हाथमें टेकनेके लिए, सहारेके लिए, वैराग्य-रूपी लकड़ी भी नहीं है। यह दास आपके दर्शनके हेतु घबरा रहा है, मायाके फंदेमें फँसा तड़फड़ा रहा है। हे नाथ। दासका कष्ट दूरकर उसकी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ॥ ८ ॥ बेचारे तुलसीदासके पास धर्म-रूपी मार्ग-व्यय ( कलेवा ) भी नहीं है, वह बिल्कुल थक गया है, अत्यन्त कष्टके मारे उसकी बुद्धि भी मारी गयी है, उधर मोहने घर दबाया है ! हे चक्रधारी ! हे तेज, बल और आनन्दके पुञ्ज ! देर न कीजिए, अब मुझे अपने कर-कमलका सहारा शीघ्र दीजिए ॥ ९ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'नारायण'—नार अर्थात् जल मे है जिनका भवन वह 'नारायण'।

( २ ) 'नर'—नर नाम अर्जुनका है। बदरिकाश्रममें ध्यान-मग्न नारायण और अर्जुनके स्वरूप विराजमान् हैं।

( ३ ) 'अर्क अगनित प्रकाश'—गीतामें भी लिखा है—

'दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाःसदृशी सा स्यात् भासस्तस्य महात्मनः' ॥

( ४ )'मारकण्डेय······प्रलयकारी'—मारकण्डेय ऋषिने कठोर तप करनेके अनन्तर भगवान्‌से यह प्रार्थना की कि, मुझे आप प्रलयका दृश्य दिखाइए। बिना ही कल्पान्तके भक्तवत्सल भगवान्‌को प्रलय-लीला रचनी पड़ी। मार्कण्डेयने उस समय सारे ब्रह्माण्डको जलमय देखा, केवल नारायण बालकरूपसे एक वट-पत्रपर खेलते हुए दृष्टि आये।

( ५ ) इस नर-नारायणीय स्वरूपके अन्तर्गत बुद्ध भगवान्‌के पवित्र दर्शनकी भी झलक मिलती है।

( ६१ )

सकल-सुख-कन्द, आनन्दबन पुन्यकृत, बिंदुमाधव द्वन्द्व-बिपतिहारी।
यस्यांघ्रिपाथोज अज संभु सनकादि सुक सेष मुनिवृन्द अलि निलयकारी१
अमल मरकत स्याम, काम सतकोटि छबि, पीतपट तड़ित इव जलदनीलम्।
अरुन सतपत्र लोचन, बिलोकनि चारु,प्रनत जन सुखद, करुनार्द्रसीलम्।२।

काल-गजराज मृगराज, दनुजेस-वन-दहन पावक, मोह निसि दिनेसम्।
चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर, सरसिजोपरि जथा राजहंसम् ॥३॥
मुकुट कुण्डल तिलक, अलक अलिव्रात इव, भ्रकुटि द्विज अधरवर चारुनासा।
रुचिर सुकपोल,दर ग्रीव सुखसीव,हरि ! इन्दुकर-कुन्दमिव मधुरहासा॥४॥
उरसि बनमाल सुबिसाल नवमञ्जरी भ्राज श्रीवत्सलांछन उदारं।
परम ब्रह्मन्य,अतिधन्य,गत मन्यु,अज, अमितबल बिपुल महिमा अपारं॥५॥
हार केयूर, कर कनक-कंकन रतन-जटित, मनि मेखला कटिप्रदेसं।
जुगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग, सौन्दर्य बेसं ॥६॥
सकल सौभाग्य-संजुक्त त्रैलोक्यश्री दच्छ दिसि रुचिर वारीस-कन्या।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदनवर, नैन निरखंति नर तेऽति धन्या ॥७॥
अखिल-मंगल-भवन, निबिड़-संसय-समन, दमन-व्रजनाटवी कष्टहर्त्ता।
बिस्वधृत,बिस्वहित,अजित, गोतीत,सिव, बिस्वपालन-हरन,बिश्वकर्त्ता ॥८॥
ग्यान-बिग्यान-बैराग्य-ऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अनिमादि दे भूरिदानम्।
ग्रसित-भव-व्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीराम उरगारि-यानम् ॥९॥

पदच्छेद—यस्य + अंघ्रि। सनक + आदि। करुना + आर्द्र। सरसिज + उपरि। कुन्दम् + इव। वारि + ईस। बिबुध + आपगा। ते + अति। व्रजन + अटवी। अनिमा + आदि। उरग + अरि।

शब्दार्थ—आनन्दवन = काशीसे तात्पर्य है। द्वन्द्व = राग,द्वेषादि। यस्य = जिसके। अंघ्रि = चरण। पाथोज = कमल। निलय = निवास। मरकत = नील मणि। सतपत्र = सौ दलवाला कमल। आर्द्र = भीगे हुए। कौमोदकी = गदा। दर = शंख। व्रात = समूह। द्विज = दाँत। लाञ्छन = चिह्न। मन्यु = क्रोध। मेखला = करधनी। मुखर = शब्दायमान्। वारीस-कन्या = समुद्रकी पुत्री, लक्ष्मी। विबुधापगा = देव-नदी गंगा। निबिड़ = सघन। व्रजन = पाप। अटवी = बनस्थली। गोतीत = इन्द्रियोंसे परे। उरगारि = गरुड।

भावार्थ—हे विन्दुमाधव, आप सब प्रकारके सुखोंकी वर्षा करनेके लिए मेघरूप हैं। आपने आनंदवन अर्थात् काशीको पवित्र किया है। आप राग, द्वेषादि-जन्य दुखोंके हरनेवाले हैं। आपके चरणारविंदोंमें ब्रह्मा, शिव, सनक, सनंदन, सनातन तथा सनत्कुमार और शेष एवं मुनिरूपी भ्रमर सदा वास किया

करते है ॥ १ ॥ आप स्वच्छ नीलम मणिके समान श्यामसुन्दर हैं, सौ करोड़ कामदेवोंके समान आपका लावण्य है, आप पीताम्बर धारण किये है। यह पीताम्बर ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे नीले आकाशमें विद्युच्छटा। आपके नेत्र लाल कमलके समान है। चितवन सुन्दर है। भक्तोंको सुख देनेवाले और सहज ही करुणामे भीगे रहते है ॥ २ ॥ आप कालरूपी हाथीके पछाडनेको सिंहरूप है, राक्षसरूपी वनके जलानेके लिए अग्निरूप तथा अज्ञान-रात्रिके नाश करनेको सूर्यरूप है। आप चारो हाथोंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। आपके कमलस्वरूपी हाथमे श्वेत शङ्ख तो ऐसा शोभीत हो रहा है जैसे कमल के ऊपर राजहंस ॥३॥ मस्तकपर मुकुट, कानोंमे कुण्डल, भालस्थलीपर (केसरिया) तिलक, भ्रमर-समूहके समान अलके, टेढ़ी भौंहे, सुन्दर दाँत, होठ और नासिका बड़ी ही मनोहर है। सुन्दर लोल कपोल और शंखके समान ग्रीवा मानों ये सब आनन्दकी सीमा हैं। हे हरे! आपकी मंद मुसक्यान चन्द्र-किरण एव कुन्दपुष्पके समान है ॥४॥ आपके हृदयपर नवीन मंजरियों-सहित विशाल वनमाला और सुन्दर श्रीवत्सका चिह्न शोभायमान् हो रहा है। आप परम ब्रह्मण्य है, अर्थात् ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेवाले है, क्रोधका तो आपमे लेशमात्र भी नहीं, अजन्मा है ही, आपका बल और महत्त्व अनत है। ऐसे आप धन्य है, धन्य है ॥५॥ हृदयपर हार, भुजाओंपर बाजूबन्द, हाथोंमें रत्नोंसे जड़े हुए कंकण और कटिमे मणियोंकी करधनी (तागड़ी) धारण किये है। आप अपने दोनो चरणोमे हंसके समान सुन्दर शब्द करनेवाले नूपुर पहिने है। आपके अंग-प्रत्यंग सुन्दर है और सारा वंश ही लावण्यमय है ॥ ६ ॥ सर्व सौभाग्यकी मूर्ति तथा तीनो लोकोंकी शोभा जो लक्ष्मी है, वह आपकी दाहिनी ओर विराज रही है। आप गंगाके समीप सुन्दर मंदिरमें निवास किया करते है। जो आपके दर्शन करते है, वे बड़भागी है ॥७॥ आप सभी प्रकारके कल्याणोंके स्थान, बड़े-बड़े संदेहोंके नाश करनेवाले, पापरूपी-वनस्थलीके जला देनेवाले और कष्टोंके हरनेवाले हैं। आप विश्वको धारण करनेवाले, जगत्‌के हितकारी, अजित, इन्द्रिय-जन्य ज्ञानसे परे, कल्याणमूर्ति और जगत्‌के उत्पादक, पालक एवं संहारक हैं। अथवा आपही ब्रह्मा, आपही विष्णु और आपही शिव है ॥८॥ आप ज्ञान-विज्ञान (अपरा और पराविद्या), वैराग्य और ऐश्वर्यके भाण्डार है और अणिमा आदि बड़ी-बड़ी सिद्धियोंके देनेवाले महान् दानी हैं। यह तुलसीदास बहु तही

भयभीत हो रहा है, कारण कि उसे संसाररूपी साँप निगले जाता है। सो हे गरुड़-गामी श्रीरामचन्द्रजी। कृपाकर उसे बचा लीजिए ॥ ९ ॥

टिप्पणी--(१) 'आनंदवन'--स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टजीने 'आनंदवन' को विंदमाधवजीका विशेषण मानकर उसका अर्थ 'आनंदका वन' किया है। किन्तु पूर्वापर देखने से इसका अर्थ काशी सिद्ध होता है। विन्दुमाधवजी काशीमें अवस्थित हैं ही, और आनंदवन काशीका नाम भी है। अतः यहाँ 'आनंदवन' से काशीसे ही तात्पर्य है।

( २ ) 'द्विज'--दाँत; दो बार उत्पन्न होनेसे दाँतोंका नाम द्विज हुआ है।

( ३ ) 'इंदुकर कुन्दमिव'--साहित्यकारोंने हास्यरसका वर्ण श्वेत माना है, इसीसे इसकी उपमा चन्द्र-किरणों और कुन्दपुष्पके साथ दी गई है।

'उरगारियानम्'-- यह पद निरर्थक नहीं है। गोसाईंजी भव-व्याल ग्रसित हैं और गरुड सर्पके भक्षक हैं। आप अपने प्रभु रामचन्द्रजीको कष्ट नही देना चाहते। ससाररूपी सर्पको खा जानेके लिए वह उनके वाहनहीकी मदद चाहते हैं।

राग असावरी

( ६२ )

*इहै परम फलु परम बड़ाई।
नखसिख रुचिर बिन्दुमाधव-छबि निरखहि नयन अघाई ॥ १ ॥

---

* नखशिख-सम्बन्धी एक पद महात्मा सूरदासजीका भी देख लीजिए—

"करि मन नन्दनंदन ध्यान।
सेइ चरन सरोज सीतल, तजि बिषै-रस-पान ॥ १ ॥
जानु जंघ त्रिभंग सुन्दर, कलित कंचन-दंड।
काछिनी कटि पीतपट-दुति कमल-केसर-खंड ॥ २ ॥
मनु मराल-प्रबालछौना किंकिनी कलराव।
नाभि हृद रोमावली अलि चले सैन सुभाव ॥ ३ ॥
कंठ मुक्तामाल मलयज उर बनी बनमाल।
सुरसरी के तीर मानों, लता स्याम तमाल ॥ ४ ॥

बिसद, किसोर, पीन, सुन्दर बपु, स्याम सुरुचि अधिकाई।
नीलकंज बारिद तमाल मनि, इन्ह तनु ते दुति पाई ॥ २ ॥
मृदुल चरन सुभ चिन्ह, पदज नख अति अद्भुत उपमाई।
अरुन नील पाथोज-प्रसव जनु, मनिजुत दल-समुदाई ॥ ३ ॥
जातरूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर जन-सुखदाई।
जनु हर-उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ॥ ४ ॥
कटितट रटति चारु किंकिनि-रव, अनुपम बरनि न जाई।
हेम जलज-कल-कलिन-मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई ॥ ५ ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति, सूचत कोमलताई।
कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मनलाई ॥ ६ ॥
गज-मनिमाल बीच भ्राजत कहि जाति न पदक-निकाई।
जनु उडुगन-मण्डल बारिदपर, नवग्रह रची अथाई ॥ ७ ॥
भुजगभोग-भुजदण्ड कञ्ज, दर, चक्र, गदा बनि* आई।
सोभासींव ग्रीव चिबुकाधर, बदन अमित छबि छाई ॥ ८ ॥
कुलिस कुन्द-कुडमल दामिनि-दुति, दसनन देखि† लजाई।
नासा-नैन-कपोल ललित स्रुति, कुण्डल भ्रू मोहि भाई ॥ ९ ॥
कुञ्चित कच सिर मुकुट भाल पर, तिलक कहौं समुझाई।
अलप तड़ित जुग रेख इन्दु महँ, रहि तजि चंचलताई ॥१० ॥

---

बाहु पानि-सरोज-पल्लव, गहे मुख मृदु बैनु।
अति बिराजत बदन-बिधुपर, सुरभि रंजित रेनु ॥ ५ ॥
अरुन अधर कपोल नासा, परम सुंदर नैन।
चलित कुण्डल गंडमंडल, मनहुँ निरतत मैन ॥ ६ ॥
कुटिल कच भ्रुतिलक रेखा, सीस सिखि श्रीखंड।
मनु मदन धनु सर सँधाने, देखि घन-कोदंड ॥ ७ ॥
सूर श्रीगोपाल की छबि, दृष्टि भरि-भरि लेत।
प्रानपति की निरखि शोभा, पलक परनि न देत ॥ ८ ॥" (सुर-सागर)

* पाठान्तर 'बन'। † पाठान्तर 'देख'।

निर्मल पीत दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समाई।
बहु मनिजुत गिरि-नील-सिखर पर, कनक-बसन रुचिराई ॥११॥
दच्छ भाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग, नील निचोल ओढ़ाई ॥१२॥
सत सारदा सेष स्रुति मिलि कै× सोभा कहि न सिराई।
तुलसिदास मतिमन्द द्वन्दरत कहै कौन बिधि गाई ॥१३॥

.शब्दार्थ—बिसद = स्वच्छ, निर्मल। पीन = पुष्ट। वपु = शरीर। पदज = पैर से उत्पन्न, अँगुली। पाथोज = कमल। प्रसव = उत्पन्न। जातरूप=सुवर्ण। मुखर = शब्दायमान्। निकाई = सुन्दरता। अथाई=बैठने की जगह (बुंदेलखण्डी)। भोग = सर्प-शरीर। कुलिस = यहाँ हीरेसे तात्पर्य है, बज्रसे नही। कुड्मल = कली। कुञ्चित = टेढ़े, घुँघराले। इन्दिरा = लक्ष्मी। निचोल=वस्त्र।

भावार्थ—हे मन! इस शरीरका बड़ा भारी फल और महिमा इतनी ही है, कि तू अपना सहज स्वभाव अर्थात् चञ्चलता छोड़कर एक क्षण उन्हीं भगवान् बिन्दुमाधवजी, नखसे शिख तक, शोभा देख, ॥१॥ जो निर्मल, किशोर, पुष्ट और सुन्दर शरीरवाले हैं, और जिनके श्याम शरीरकी सुन्दरता असीम है। ऐसा जान पड़ता है कि नीले कमल, (श्याम) मेघ, तमाल और (नीलम) मणिने, मानो, इन्हींके शरीरसे आभा प्राप्त की है ॥२॥ जिनके कोमल चरणारविन्दोंमें सुन्दर चिह्न हैं, अँगुलियो और नखोकी तो कुछ विचित्र ही उपमा है, मानों लाल और नीले कमलोमे रत्न-युक्त पत्तोंका समूह उत्पन्न हुआ हो ॥ ३ ॥ रत्नोंसे जड़े हुए सोनेके नूपुर मनको मोहनेवाले और भक्तोंको आनन्द देनेवाले हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानो शिवजीके हृदयमे अनेक रूप धारण कर विष्णु भगवान् सुन्दर मन्दिर बनाकर निवास कर रहे हो ॥४॥ कमरमें जो करधनीका सुन्दर शब्द हो रहा है, वह अनुपम ही है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। (फिर भी, किसी प्रकार, यो उत्प्रेक्षा हो सकती है कि) कनक कमलकी कलित कलिकाओंके बीच भ्रमरोका मनहरण शब्द (गुंजार) हो रहा हो ॥५॥ प्रशस्त वक्षःस्थलपर, चौड़ी छाती पर, जो भृगुमुनिके चरणका अङ्क है, वह वक्षःस्थलकी कोमलता बतला रहा

× पाठान्तर 'करि'।

है। कंकन आदि नाना प्रकारके गहने, जो अंगोमें पहिने हैं, वे मानों ब्रह्माने चित्त लगाकर अपने हाथसे बनाये हैं ॥६॥ गजमोतियोंकी मालाके बीचमें रत्न-चौकीकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। ( फिर भी इस प्रकार उत्प्रेक्षा घट सकती है कि ) मानों ( नीले ) मेघ पर ताराओंकी मण्डलीके बीचमें नवग्रहोंने बैठनेका स्थान बनाया हो। यहाँ नीले मेघके समान हुआ शरीर, तारागणोंकी मंडली हुई गजमोतियोंकी माला और रंग-रंगके रत्न हुए नवग्रहोंके बैठनेका स्थान ॥७॥ सर्पके शरीर-जैसे भुजदण्डोंमें कमल, शंख, चक्र और गदा शोभायमान् हो रहे हैं। ग्रीवा सुन्दरता की सीमा है, और ठोढ़ी तथा होठों-सहित मुखकी सुन्दरता असीम ही है ॥८॥ दाँतों की ओर देख कर हीरे, कुन्द-कलियाँ और बिजलीकी चमक लज्जित हो जाती है। नासिका, नेत्र, कपोल, सुन्दर कानोंमें कुण्डल और भौंहें मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं ॥९॥ शिरपर घूँघरवाले बाल हैं, तिनपर मुकुट बँधा हुआ है। इधर माथेपर केसरिया तिलक निराली शोभा दे रहा है। उसे समझाकर कहता हूँ मानो बिजलीकी दो छोटी छोटी रेखाएँ चन्द्रमाके मण्डलमें अपनी सहज चंचलता छोड़कर बस रही हो ॥१०॥ शरीरपर स्वच्छ पीताम्बर धारण किया है, जो उपमा-रहित है, जिसकी उपमा मनमें समाती ही नहीं। ( फिर भी इस प्रकार कुछ-कुछ कल्पना की जाती है कि ) मानों अनेक मणि-सम्पन्न नीले पर्वत-के शिखरपर सोने-जैसा वस्त्र शोभायमान् हो रहा हो ॥११॥ दाहिनी ओर प्रेम-सहित लक्ष्मीजी विराज रही हैं। वह ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे तमाल वृक्षके समीप नीला वस्त्र ओढ़े हुए स्वर्ण-लता बैठी हो ॥१२॥ सैकड़ों सरस्वती, शेषनाग और वेद, सब मिलकर, इस शोभाका वर्णन करते हुए भी इसका पार नहीं पा सकते। फिर भला रागद्वेषादिमें फँसा मूढ़ तुलसीदास किस प्रकार गाकर इस दिव्य शोभा का वर्णन कर सकता है? ॥१३॥

टिप्पणी—( १ ) 'किशोर'—१५ और १६ वर्षके बीचकी अवस्था।

( २ ) 'नील कंज······पाई'—यहाँ प्रतीप अलंकार है। इसके पाँच भेद है। 'प्रतीप' शब्दका अर्थ है 'उलटा'। प्रथम प्रतीपका लक्षण अलंकार-मंजूषामें इस प्रकार दिया है—

'जहँ प्रसिद्ध उपमानके, पलटि करिय उपमेय।
तासो प्रथम प्रतीप कवि, बरनत बुद्धि अजेय ॥'

( ३ ) इस पदके 'अरुननील ·····समुदाई'—'जनु हर-उर···बनाई'—'हेमजलज · सुहाई'—'जनु उड़गन ·····अथाई'—'अलप ·····चंचलताई'—'बहु मनियुत ··· रुचिराई' 'हेमलता ·· ··ओढाई'—आदि में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसका लक्षण १४ पदकी टिप्पणी में दिया जा चुका है।

( ४ ) 'गजमनि'—यहाँ मणिका अर्थ 'मुक्ता' किया गया है, क्योंकि हाथियोंके मस्तक से मोती निकलता है, मणि नहीं।

( ५ ) 'नवग्रह'—प्रत्येक ग्रह का भिन्न-भिन्न रंग माना गया है, जैसे सूर्यका श्वेत, मंगलका लाल, बृहस्पतिका पीला, शुक्रका श्वेत, शनि का काला आदि। उधर रत्न भी नौ प्रकार के होते हैं। जैसे श्वेत रंगका हीरा, नील रंग का नीलम, लाल रंगका माणिक आदि। इसीसे रत्नों और ग्रहोंकी यहाँ तुलना की गई है।

## राग जयति श्री

## ( ६३ )

मन, इतनोई या तनु को परम फलु।
सब अँग सुभग बिन्दुमाधव-छबि, तजि सुभाव, अवलोक एक पलु ॥१॥
तरुन अरुन अंभोज चरन मृदु, नख-दुति हृदय-तिमिर-हारी।
कुलिस, केतु, जव, जलज रेख वर, अंकुस मन-गज-बसकारी ॥२॥
कनक-जटित मनि नूपुर मेखल, कटि-तट रटति मधुर बानी।
त्रिबली उदर, गँभीर नाभि सर, जहँ उपजे बिरंचि ग्यानी ॥३॥
उर बनमाल, पदक अति सोभित, विप्र-चरन चित कहँ करषै।
स्याम-तामरस-दाम बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥४॥
कर कंकन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी।
गदा, कंज, दर, चारु चक्रधर, नाग-सुण्ड-सम भुज चारी ॥५॥
कम्बुग्रीव छबिसीव, चिबुक, द्विज, अधर अरुन, उन्नत नासा।
नव राजीव नैन, ससि आनन, सेवक-सुखद बिसद हासा ॥६॥
रुचिर कपोल, स्रवन कुण्डल, सिर मुकुट, सुतिलक भाल भ्राजै।
ललित भ्रकुटि, सुन्दर चितवनि, कच निरखि मधुप-अवली लाजै ॥७॥

रूप-सील-गुन खानि दच्छ दिसि, सिधु-सुता रत पद-सेवा।
जाकी कृपा-कटाच्छ चहत सिव, बिधि, मुनि, मनुज, दनुज देवा ॥८॥
तुलसिदास भव-त्रास मिटै तब, जब मति इहि स्वरूप अटकै।
नाहित दीन मलीन हीनसुख, कोटि जनम भ्रमि-भ्रमि भटकै ॥९॥

भावार्थ—हे मन ! इस शरीर का सबसे बड़ा लाभ केवल इतना ही है कि, नखसे शिख तक सुन्दर अंगवाले श्रीविन्दुमाधवजीकी झाँकी एक क्षणके लिए अपने चंचल स्वभावको छोडकर, अर्थात् स्थिरता से, देख ॥१॥ जिनके कोमल चरण नवीन विकसित लाल कमलके समान हैं और नखोकी प्रभा हृदयके अन्धकारको, अज्ञानको, नाश करनेवाली है। जिन चरणोमें ब्रज, पताका, जौ, कमल आदि, सुदर रेखाएँ, एव अंकुशका चिन्ह मन-मातंगको वशमें करनेवाला है ॥२॥ पैरोंमें रत्नोसे जड़े हुए सोनेके नुपूर धारण किये है और कमरमें करधनी मधुर स्वरसे बज रही है। पेटपर तीन रेखाएँ पड़ी है। नाभि मानो एक गहरा सरोवर है, जहाँसे ब्रह्मा-जैसे प्रसिद्ध ज्ञानी प्रकट हुए हैं ॥३॥ हृदय पर वनमाला और तिसके बीचमें मणि-योंकी चौकी बड़ी ही शोभायमान् हो रही है; वही भृगु-चरणका चिन्ह मनको बरबस खींचे लेता है। नीले कमल के फूलोकी मालाके समान जिनके शरीरका रंग है, उस पर पीताम्बर तो मानों सुन्दरताकी वर्षा ही कर रहा है, चारो ओर सुन्दरता बिखरा रहा है ॥४॥ हाथोंमें कङ्कण और बाजूबंद मनके हरनेवाले हैं और अंगूठी निराला ही आनंद दे रही है। हाथीकी सूँड-जैसी भुजाओमे शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किये है ॥५॥ शङ्खके सदृश ग्रीवा सुन्दरताकी सीमा है। सुंदर ठोढी, दाँत, लाल-लाल होठ, ऊँची ( सुढार ) नाक, नवीन कमलके समान नेत्र, चन्द्रमा-जैसा मुख-मंडल और मंद मुसक्यान भक्तोको सुख देनेवाली है ॥ ६॥ जिनके कपोल सुन्दर है, कानोमें कुंडल, मस्तकपर मुकुट और माथेपर सुन्दर तिलक शोभित हो रहा है, सुन्दर ( कँटीली ) भौहें और सुचारु चितवन हैं और जिनके श्याम केश देखकर भौरो की पंक्ति भी लज्जित हो जाती है, अर्थात् भौरे अपनेको बालोंकी श्यामताके आगे कुछ भी नही समझते ॥७॥ जिनके चरणोकी सेवामें अनुरक्त, सौन्दर्य, शील और गुणोकी खानि लक्ष्मीजी दाहिनी ओर विराज रही हैं। जिनकी कृपा-दृष्टि शिव, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता भी चाहते है ॥ ८। तुलसीदासका संसार-जन्य भय ( जन्म-मरण ) तभी दूर हो सकता

है, जब उसकी बुद्धि इस स्वरूपमें उलझ जाय, नहीं तो दीन, मलीन और निरानन्द होकर वह करोड़ो जन्मतक वृथा ही भटकता फिरेगा, फिर मरेगा और जन्म लेगा, कभी शान्ति न मिलेगी ।। ६ ।।

टिप्पणी – ( १ ) 'नखदुति हृदय . . . हारी'—इस तमच्छेदके सम्बन्धमें सूरदासजी भी लिख गये हैं—

'श्रीवल्लभ-नख-चंद्र-छटा बिनु, सब जग माँझ अँधेरो।'

( २ ) भगवान्‌के दाहिने और बाएँ चरणमें चौबीस-चौबीस चिह्न हैं। लक्ष्मीजीके दाहिने चरणमें वे चिह्न हैं, जो भगवान्‌के बाएँ चरणमें हैं, और बाएँमें वे हैं, जो उनके दाहिने में हैं।

( ३ ) 'विप्र चरन'—महर्षि भृगु द्वारा प्रहार की गई लात।

( ४ ) 'जब मति ·····अटकै'—इस अटकन या उलझन पर रसिकवर हरिश्चन्द्र क्या खूब लिख गये हैं—

"मोहि-मोहि मोहनमई री मन मेरो गयो, 'हरिचंद' भेद न परत कछु जान है।
प्रान भये कान्हमय, कान्ह भये प्रानमय, हिय में न जानि परै कान्ह हैं कि प्रान है।"

## राग बसन्त

( ६५ )

बन्दौं रघुपति करुना-निधान। जाते छूटै भव-भेद-ग्यान ॥ १ ॥
रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस। सेवत पद-पंकज अज महेस ॥ २ ॥
निज-भक्त-हृदय-पाथोज-भृंग । लावन्य बपुष अगनित अनंग ॥ ३ ॥
अतिप्रबल-मोह-तम-मारतंड । अग्यान-गहन पावक प्रचंड ॥ ४ ॥
अभिमान-सिंधु कुंभज उदार। सुररंजन भंजन भूमिभार ॥ ५ ॥
रागादि-सर्पगन पन्नगारि। कंदर्प-नाग मृगपति, मुरारि ॥ ६ ॥
भव-जलधि पोत चरनारबिंद। जानकी-रमन आनन्द-कन्द ॥ ७ ॥
हनुमन्त-प्रेम-बापि मराल । निष्काम कामधुक गो दयाल ॥ ८ ॥
त्रैलोक-तिलक गुनगहन राम। कह तुलसीदास बिस्राम-धाम ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—निसेस = निसा + ईस, चन्द्रमा। अज = ब्रह्मा। पाथोज = कमल। गहन = वन। कुंभज = अगस्त्य ऋषि। पन्नगारि = साँपोंके शत्रु, गरुड़। कंदर्प =

कामदेव। नाग = हाथी। मुरारि = मुर दैत्य के शत्रु, विष्णु भगवान्। पोत = नौका। कामधुक = कामधेनु, मनचाही वस्तु देनेवाली गाय। तिलक = श्रेष्ठ।

भावार्थ—मैं करुणालय रघुनाथजी की बन्दना करता हूँ, कि जिससे मेरी संसारी बुद्धिका नाश हो जाय, 'तू मैं' का भेद दूर हो जाय ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी रघुकुलरूपी कुमुद-पुष्पको चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित करनेवाले है, उनके चरणारविन्दोंकी सेवा ब्रह्मा और शिव भी किया करते हैं ॥ २ ॥ वह अपने भक्तोंके हृदय-कमलमें भ्रमरकी भाँति निवास करते है। उनके शरीरका सौन्दर्य अनेक कामदेवके समान है ॥ ३ ॥ वह बड़े प्रचंड अज्ञानरूपी अंधकारके नाश करनेके लिए सूर्यरूप और अविद्यारूपी वन भस्म करनेको अग्निरूप है ॥ ४ ॥ वह अहंकाररूपी समुद्र सोख जानेको साक्षात् अगस्त्य हैं, और देवताओंको सुख देनेवाले तथा पृथ्वीके भारस्वरूप दैत्योंके मारनेवाले हैं ॥ ५ ॥ रागद्वेषादि-रूपी साँपोंके लिए तो वह गरुड ही है, अर्थात् उनके सामने रागद्वेषादिकी एक भी नहीं चलती; और, कामरूपी हाथीको मर्दित करनेके लिए सिंह हैं। मुर नामक दैत्य मारनेसे उनका 'मुरारि' नाम प्रसिद्ध हो गया है ॥ ६ ॥ उनके चरण-कमल संसार-सागरसे तारनेके हेतु नौका-रूप हैं। ऐसे श्रीजानकी-वल्लभ आनंदकी वर्षा करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ वह हनुमान्‌जीकी प्रेम-रूपी बावडीमें हंसके समान बिहार करनेवाले और निरीह भक्तोंके लिए कामधेनुके समान परम दयालु हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदासका यही कहना है, कि तीनो लोकोंके शिरोमणि, गुणोंके वन अर्थात् सर्वगुणालंकृत श्रीरामचंद्रजी ही शान्तिके स्थान हैं, उन्हींकी सेवा करनेसे जीवको सुख-शान्ति मिल सकती है, अन्यथा नहीं ॥ ९ ॥

टिप्पणी—(१) 'करुना'—भक्तवर वैजनाथजीने 'करुणा' का यह लक्षण दिया है—

'सेवक-दुखतें दुखित ह्वै, स्वामि बिकल ह्वै जाइ।
दुःख निवारे शीघ्र ही, 'करुना' गुन सो आइ ॥'

(२) 'भवभेद-ग्यान'—'यह मेरा है वह तेरा है' ऐसा ज्ञान ही भेदात्मक ज्ञान है। यथा—

'अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्।'

अथवा—'मैं अरु मोर तोर तैं माया।'

(३) 'जानकी-रमन आनंदकंद'—श्रीजानकी-सहित रामचंद्रजी ही आनंद-कंद है, क्योंकि जानकीजी आह्लादिनी शक्ति हैं और बिना उनके आह्लाद अर्थात् आनंद कहाँ?

(४) गोसाईंजीने इस पद तक बंदना की है। अब आगेके पदसे विनयका आरम्भ करेंगे।

## राग भैरव

( ६५ )

राम राम रटु †, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नवनेह-मेहको, मन ! हठि होहि पपीहा ॥१॥
सब साधन-फल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा ।
रामनाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेमपियासा ॥२॥
गरजि तरजि पाषान बरषि पबि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै ॥३॥
रामनाम-गति, रामनाम मति, रामनाम-अनुरागी ।
ह्वै गये, हैं, जे होहिंगे, * त्रिभुवन तेइ गनियत बड़भागी ॥४॥
एकअंग मग अगम गवन कर, बिलमु न छिन छिन छाहैं ।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि नेम निबाहैं ॥५॥

शब्दार्थ—हठि = ज़बरदस्ती । सीकर = बूँद । पबि=बज्र । परमिति=पूरी सीमा । निरुपधि=निर्विघ्न ।

भावार्थ—हे जीभ ! तू सदा राम-राम रटा कर और राम-राम जपा कर । हे मन ! तू भी राम नाममें, नित्यनवीन प्रेम-रूपी मेघके लिए, जैसे-बने-तैसे, पपीहा बन जा ॥१॥ जैसे पपीहा कुवाँ, नदी, तालाब और समुद्र तकके पानीकी आशा न रखकर स्वाति नक्षत्रमें बरसे हुए जलकी केवल एक बूँद चाहता है, न मिले तो प्यासा ही मर जाता है, उसी प्रकार तू भी मुक्तिके सारे साधनों और उनके फलोंकी आशा न कर, केवल राम-नामकी भक्तिरूपी, अमृतके समान मधुर, बूँद के लिए लव लगाये रह ॥२॥ देख पपीहेकी कैसी कठिन परीक्षा है ! उसका प्रेमी मेघ पहले गरजता है, डाँट-दपट दिखाता है, फिर ओले बरसाता है, इतनेपर भी न माननेपर, प्रीति कम न करनेपर, बज्र गिराता है । इन सब बातोंमें उत्तीर्ण हो जाने पर वह प्रेमी चातकके प्रेमकी पूर्ण सीमा परख लेता है और यह समझ जाता

---

† पाठांतर 'रमु' ।

* पाठान्तर 'होहिंगे आगे' । किन्तु यहाँ छन्दोभङ्ग होता है ।

है कि, ओह ! इसके हृदयमें मेरे लिए कितनी अधिक प्रीति है, तब कहीं बेचारेको स्वातिकी बूँद मिलती है ॥३॥ इसी प्रकार तू भी ( हज़ारो विघ्न-बाधाएं आनेपर भी ) राम-नामकी ही शरण ग्रहण कर, राम-नाममें ही बुद्धि लगा और राम-नामका ही प्रेमी बन। रामनामके ऐसे जितने अनन्य भक्त हो गये हैं, और जो आगे होंगे, वही बडभागी हैं, त्रिलोकमें उन्हींका नाम अमर रहेगा ॥ ४ ॥ यह एकांगी मार्ग बड़ा ही कठिन है। देख, भाग्यवशात् तुझे यह मार्ग चलनेको मिल जाय तो क्षण-क्षणपर छाया लेनेके लिए, सुस्तानेके लिए, ठहर ठहर कर देर न करना। हे तुलसीदास ! यदि तुझे अपना भला करना है, तो वह अपनी ओरसे प्रभुमें निष्कंटक प्रीति निबाहनेसे ही होगा, अन्यथा नहीं ॥६॥

टिप्पणी—(१) 'पपीहा'—इस सम्बन्धमें गोसाईंजी, रामचरितमानसमें, लिखते हैं—

"चातक रटनि घटे घटि जाई। पै प्रियतम सब ओर भलाई ॥"

तथा—

"चातक सुतहि पढ़ावहीं, आन नीर मति लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति-बूँद चित देय ॥"—कबीर

सूरदासजी इस प्रेमी पपीहेको आशीर्वाद दिला रहे हैं—

'बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारो।
बासर रैनि नाँव लै बोलत, भयो बिरहज्वर कारो ॥
आपु दुखित पर-दुखित जानि जिय, चातक नाँव तुम्हारो।
देखो सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन कौ दुख न्यारो ॥
जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम-बान अनियारो।
सूरदास प्रभु स्वाति-बूँद लगि, तज्यो सिंधु करि खारो ॥'

( २ ) 'गरजि-तरजि ..... पहिचानै'—जैसी चातककी परीक्षा ली जाती है उसी प्रकार जीवको भी भगवान् परखते और कसते है। प्रायः देखा गया है कि शुभ कर्म, विशेषतः भगवत्साधन, करते ही अनेक विघ्नबाधाएँ आ जाती हैं। कुसंगमें पड़ जाना पड़ता है, धन चोरी चला जाता है, स्त्री-पुत्रादिसे बिछोह हो जाता है, अपमान होता है, जितने कुछ उच्चाटनके साधन हैं, वे सब सामने आते हैं। कच्चे दिलवाले तो ठहर ही नहीं सकते, पीठ दिखाकर इस रण-भूमिसे भाग जाते हैं, पर इस तलवार की धारपर जो बीर बाँकुरे डटे रहते हैं, उन्हींको भगवान् कृपाकर अपनी आत्यन्तिक भक्ति और दुर्लभ मुक्ति देते हैं।

( ३ ) 'रामनाम गति'—केवल एक आश्रय, जैसा कि श्रीकृष्ण उपदेश दे रहे है—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥' ( गीता )

( ४ ) 'एकअंग मग'—अनन्य मार्ग; गीतामें लिखा है—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्ताना योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

रसिक रसखानि कहते हैं—

"इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस, सदा समान।
गनै प्रियहि सरवस्व जो, सोई-प्रेम-प्रमान ॥"

( ५ ) 'बिलमु न छिन-छिन छाहें'—जैसे तेज धूपके मारे बटोही रास्तेमें छायाके नीचे ठहरते हुए जाते हैं, वैसा तू मत करना। तेरे लिए छाया क्या है? पुत्र-कलत्र और धन-संपत्तिका सुख, भोग-विलासकी समग्र सामग्री एवं विद्या, पौरुष आदिका अभिमान। इनके चक्करमें यदि तू पड़ा, तो फिर उस स्थानतक पहुँचनेका नहीं, बीच ही में रह गया। और फिर थकावट कैसी! मार्ग, निःस्संदेह लम्बा है, पर तुझे बेक़रारी न आनी चाहिए।

'दूर है मंजिल, अभीसे बेकरारी आगई।'

( ६ ) 'निरुपधि'—शुद्धि शब्द निरुपाधि है।

( ६६ )

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर-भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥ १ ॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे।
ग्रसे कलि-रोग जोग संजम समाधि रे ॥ २ ॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम रे।
राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे ॥ ३ ॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥ ४ ॥
रम-नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—पोच = नीच । दाहिनो = अनुकूल । बाम = प्रतिकूल । धौरहर= मीनार ।

भावार्थ—अरे पगले ! राम जप, राम जप, राम जप । देख, इस भयानक संसार-रूपी समुद्रसे पार जानेके लिए, जन्म मरणसे छूटनेके लिए, एक राम-नाम ही नौका है, इसीके सहारेपर तू मोक्ष पा सकता है, अन्यथा नहीं ॥ १ ॥ इसी एक साधनके बल-भरोसेपर ऋद्धि-सिद्धियोंको साध ले, क्योंकि फिर दूसरा साधन नहीं हैं । देखता नहीं कि, कलिकाल-रूपी ( दुःसाध्य ) रोगने यम-नियम, योगाभ्यास और समाधिको ग्रस लिया है, अर्थात् ये सब पंगु हो गये हैं, मुक्ति दिलानेमें असमर्थ हैं ॥ २ ॥ अन्त समय एक राम-नामहीसे सबको काम पड़ेगा, चाहे वह भला हो या बुरा, सीधा हो या उलटा ! (जब अन्तकालमें राम-नामसे काम पड़ेगा, तो अभीसे उसके जपनेका अभ्यास क्यों नहीं करता ? ) ॥३॥ यह संसार क्या है, मानो फूली-फली आकाश-वाटिकाका एक दृश्य है । साराश, जैसे आकाशमे रंग-विरगे बादल फूलोंके बागकी तरह जान पड़ते है, वास्तवमे है वहाँ कुछ भी नहीं, उसी प्रकार इस संसार के सारे सुख केवल भ्रममात्र है, विचार करने पर उनकी 'अस्ति' तक नही रह जाती । धूएँके धौरहरोकी तरह इन मिथ्या पुत्र, कलत्रादिके सुखोंको देखकर तू इन भूल-भूलैयोंमें मत पड़ । भाव यह, कि सारा ससार धोखेकी टट्टी है, जो इसमे फँसा वह गिरा ॥४॥ राम-नाम-सा सुलभ साधन छोड़कर जो और साधनोंकी आशा करता है, तुलसीदास कहते हैं, वह उस मूर्खके समान है जो आगेके परोसे हुए भोजनको छोड़कर एक-एक कौर, टुकड़ा-टुकड़ा, कुत्तेकी तरह माँगता फिरता है ॥५॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जोग'—योगके आठ अंग है । यम, नियम, आसन,- प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । समाधि और फिर निर्वि-कल्प समाधि लगने पर आत्म-दर्शन होता है ।**

**( २ ) 'एकही साधन'—इस नामके समान दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं है । केदारखण्डमें लिखा है**

'राम नाम समं तत्त्वं नास्ति वेदान्त गोचरम् ।'

**( ३ ) 'जग ······भूलि रे'—इस अनित्यता पर कबीरदासजी कहते हैं—**

'पानी केरा बुदबुदा, इस मानुष कीं जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्योहार में, झूठे रंग न भूल॥
सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ी की आस।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास॥'

( ४ ) 'परोसो······कौर रे'--पांडव-गीतामें लिखा है—
'वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥'

( ६७ )

राम-नाम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग, जोग, जाग*, तप, त्याग रे॥ १॥
राम सुमिरन सब बिधि ही को राज रे।
राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे॥ २॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिये फनि जियै ब्याकुल बिहाल रे॥ ३॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥ ४॥
रामनाम प्रेम परमारथ को सार रे।
रामनाम तुलसी को जीवन-अधार रे॥ ५॥

**शब्दार्थ**—सानुराग = प्रेम-सहित। जाग = याग, यज्ञ। बिधि = कर्तव्य। निषेध = अकर्तव्य। फनि = साँप। पुरारि = शिवजी। परमारथ=मोक्ष।

**भावार्थ**--हे जीव! सदा प्रेमसे राम-नाम जपा कर। इस कलिकालमें सिवा राम-नामके, वैराग्य, योग, यज्ञ, तप और दान कोई भी साधन सफल नहीं हो सकते और न सध सकते हैं, क्योंकि सभीमें एक-न-एक बाधा लगी है॥ १॥ शास्त्रमें विधि और निषेध, अर्थात् क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, ये दो प्रकारके कर्म लिखे हैं। मेरी समझमें तो राम-नामका स्मरण करना ही सारे

---

* पाठान्तर 'जोग'।

विधि-कर्मों में श्रेष्ठ है और उसे भुला देना ही निषेध कर्मों में सबसे बढ़कर है; अर्थात् सदा राम-नाम जपना चाहिए, उसे स्वप्नमें भी न भुलाना चाहिए ॥२॥ अरे! राम-नाम महामणि है और यह संसारका जल, जगत्-प्रपंच, साँप है । जैसे साँपकी मणि ले लेनेसे वह व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार राम-नाम स्मरण करनेसे सासारिक दुःख आपसे आप मृतप्राय हो जायँगे । साराश, राम-नामके प्रतापसे सांसारिक विकार तनिक भी न व्यापेंगे ॥३॥ अरे ! यह राम-नाम कल्प-वृक्ष है । यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों फलोका देनेवाला है, इस बातको वेद, पुराण, पंडित और शिवजीने कहा है, केवल मै ही नही कहता ॥४॥ राम-नाम भक्ति और मुक्ति दोनोका ही सार है और तुलसीदासके लिये तो यह प्राणोका आधार है, बिना राम-नामके वह क्षण भर भी नहीं जीवित रह सकता ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'राम-नाम महाफनि ·····बिहाल रे'—सर्प बिषैला होता है और उसका मणि उसके बिषका मारक । जो संसारको चाहेगा, वह उसके हाथ मारा जायगा, जन्म-मरणमें फँसेगा और जो उसके मणिस्वरूपी राम-नामपर प्रेम करेगा, वह संसार-सर्पके विषसे छूट जायगा ।

( २ ) 'पुरारि'—शिवजीने सैकड़ों स्थलोपर राम-नामकी महिमा गाई है । केदारखंडमें कहा है—

'रामनामसम तत्त्वं नास्ति वेदान्तगोचरम् ।
यत्प्रसादात्परा सिद्धि संप्राप्ता मुनयोऽमलाम् ॥'

( ३ ) 'जीवन-अधार'—रामचरितमानसमें लिखा है—

'प्रान प्रान के, जीवन जी के' ।

( ६८ )

राम राम राम जीह जौलौं तू न जपिहै ।
तौलौं तू कहूँही जाय तिहूँ ताप*तपिहै ॥१॥
सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।
सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै ॥२॥

* पाठान्तर 'तय' ।

जागत बागत, सपने न सुख सोइहै।
जनम जनम जुग जुग जग रोइहै ॥ ३ ॥
छूटिबे के जतन बिसेष बाँधो जायगो।
ह्वै है बिष भोजन जो सुधा सानि खायगो ॥ ४ ॥
तुलसी तिलोक, तिहुँ काल तोसे दीन को।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—बागत = फिरते हुए।

**भावार्थ**—हे जीव! जबतक तू राम-राम जीभसे न कहेगा, तबतक, तू कहीं भी जा, भौतिक, दैविक और दैहिक इन तीनों तापोंसे जलता ही रहेगा, कदापि विश्राम न मिलेगा ॥ १ ॥ तू गंगाजीके किनारे बसकर भी बिना पानीके तड़पता रहेगा। कल्पवृक्षके नीचे भी तुझे दरिद्रता सताती रहेगी। भाव, तू जो कुछ उद्योग करेगा, वह सब निष्फल हो जायगा ॥२॥ जागते, फिरते, सोते और सपनेमें भी तुझे सुख न मिलेगा। इस संसारमें जन्म-जन्म और युग-युग तू रोता ही रहेगा, कभी भी कल न मिलेगा, सुखसे न बैठ सकेगा ॥३॥ यदि तू इन दुःखोंसे छुटकारा पानेका भी यत्न करेगा, तो और-और कसकर बँधता जायगा; सुलझना तो दूर रहा, उलझता ही जायगा। राम-नामसे विमुख होनेके कारण, जो तू अमृत मिला हुआ भोजन खाना चाहेगा, वह भी विषमय हो जायगा ॥४॥ हे तुलसी! तुझ-सरीखे दीनको तीनो लोकों और तीनो कालोंमें एक राम-नाम हीकी शरण है। जैसे मछली को केवल एक जल हीका आसरा है, वैसेही तुझे राम-नामका भरोसा है ॥ ५ ॥

**टिप्पणी**—'छूटिबे के जतन ··जायगो'—जो दही पौष्टिक माना गया है, वही त्रिदोषमें मारक समझा जाता है। अनुकूल अवस्था ही कल्याणकारी है।

( २ ) 'जैसे जल मीनको'—महात्मा सूरदासजी मीनकी जलानन्यतापर क्याही सुन्दर पद लिखते है—

'उपमा नैननि एक रही।
कविजन कहत-कहत सब आये, सुधि करि नाहिं कही ॥
कह चकोर विधुमुख बिन जीवत, भँवर नही उड़ि जात।
हरि-मुख कमल-कोस बिछुरे ते, ढीले क्यों कत ठहरात ॥

अत्र बधिक ब्याधा ह्वै आये, मृगसम क्यों न पलात।
भाजि जाहिं बन सघन स्याम में, जहाँ न कोऊ घात ॥
खंजन मनरंजन न होहिं ए, कबहुँ नहीं अकुलात।
पंख पसारि न हो चपला गति, हरि-समीप मुकुलात ॥
प्रेम न होहि, कौन बिधि कहिये, झूठे ही तनु आड़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥'

( ३ ) इस पद का सारांश यह है, कि राम-सम्मुख होनेसे प्रतिकूल विषय भी अनुकूल हो जाते हैं और राम-बिमुख होनेसे अनुकूल विषय भी प्रतिकूल हो जाते हैं। सब आसा-भरोसा छोड़कर अनन्यनिष्ठासे एक राम-नामसे प्रीति जोड़ना ही जीवका परम कर्तव्य है।

( ६६ )

सुमिर सनेह सों तू नाम रामराय को।
संबल निसंबल‡ को, सखा असहाय को ॥ १ ॥
भाग है अभागेहू को, गुन गुनहीन को।
गाहक गरीब को, दयालु दानि दीन को ॥ २ ॥
कुल अकुलीन को, सुन्यो है बेद साखि है।
पाँगुरको हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है ॥ ३ ॥
माय-बाप भूखे को, अधार निराधार को।
सेतु भव-सागर को, हेतु सुखसार को ॥ ४ ॥
पतितपावन राम-नाम सो न दूसरो।
सुमिरि सुभमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सबल = कलेवा, मार्गव्यय। साखि = साक्षी, गवाह। पाँगुर= लूला-लँगड़ा। ऊसरो=वह ज़मीन, जहाँपर बोनेसे कुछ भी पैदा न हो।

भावार्थ--हे जीव! तू प्रेमपूर्वक महाराज रामचंद्रजीके नामका स्मरण कर। उनका नाम उन ( भक्ति-पथपर जानेवाले ) पथिकोंके लिए, जिनके पास मार्ग-व्यय नहीं है,कलेवा है और निराश्रयका मित्र है, अर्थात् जिसका कोई सगा-

‡ पाठांतर 'संबर असंबर'।

सम्बन्धी नहीं है, वह भी राम-नामके प्रतापसे संसार भरको अपना मित्र बना लेता है ॥१॥ वह भाग्यहीनका भाग्य और मुर्खका गुण है। भाव यह, कि राम-नाम लेनेवाले, दरिद्र और मुर्ख होने पर भी, सांसारिक समृद्धिशाली और अक्षर भट्टाचार्योंसे कहीं अधिक सौभाग्य-संपन्न और पण्डित हैं। इसी प्रकार वह ग़रीबो-का ग्राहक अर्थात् उनकी कद्र करनेवाला और दीनोंके लिए दयालु दानी है ॥२॥ वह कुलहीनों ( नीच कुलवाले ) के लिए ( उच्च ) कुल और लँगडे-लूलोका हाथ पाँव तथा अंधोंकी आँखें हैं, ऐसा मैने सुना ही नहीं है, वरन्, वेद भी इस बातकी साक्षी दे रहा है ॥३॥ वह ( राम-नाम ) भूखे कंगालोंका माँ-बाप है और जिनका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं, उनका सहारा है। संसार-सागरसे पार होनेके लिए वह पुल है और सब सुखोका सार-रूप जो ब्रह्मानन्द हैं, उसे प्राप्त करनेका कारण है ॥४॥ राम-नामके समान पतितोंका उद्धार करनेवाला और दूसरा नहीं है। (विश्वास न हो तो प्रत्यक्ष ही क्यों नहीं देख लेते, कि ) तुलसीके समान ऊसर, उसे स्मरण करने से, सुन्दर उपजाऊ भूमि हो गया। साराश यह, कि पहले मेरे हृदयमें धर्म-कर्मका लेशमात्र भी न था, पर अब राम-नामके प्रभाव से ज्ञान, भक्ति आदिका पूर्णोदय हो गया है ॥५॥

टिप्पणी--( १ ) 'सखा असहाय को'—सुग्रीव और विभीषणका कौन संगी-साथी था ? राम-नाम स्मरणके प्रभावसे उन्होंने परब्रह्मको अपना मित्र बना लिया। यह "सख्य" ब्रजवासियोको भी प्राप्त हुआ था। श्रीमद्भागवत में लिखा है—

'अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानंदं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥'

( २ ) 'गुन गुनहीन को'—काकभुशुण्डिजीने किस विश्वविद्यालयमें विद्या पढी थी ? रामनामके प्रभावसे उनकी गणना बड़े-बड़े धुरंधर ज्ञानियोंमें की गई है। गरुड़का मोहभंग आपही ने किया था।

( ३ ) 'गाहक गरीब को'—इसके उदाहरण 'सुदामा' है। अहा ! त्रिलो-केश्वर भगवान् कृष्णने किस प्रकार रंक सुदामाका स्वागत किया था—

'ऐसे बिहाल बिवायन सों भये कंटक-जाल लगे पुनि जोये।
हाय ! महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न, कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीनदसा, करुना करिके करुनानिधि रोये।
पानी परात कौ हाथ छुवो नहिं, नैननि के जलसों पग धोये ॥'—नरोत्तमदास

( ४ ) 'कुल अकुलीनको'— व्यास धीवर-कन्यासे, मतंग मातंगीसे, और पराशर चांडालीसे पैदा हुए थे, किन्तु राम-नामके प्रभावसे ये लोग महर्षि माने गये हैं। सत्य है—

'जाति-पाँति पूछै नहि कोई। हरि को भजै सो हरि को होई॥"

( ७० )

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै।
मन राम-नाम सों सुभाय अनुरागिहै॥ १॥
राम-नाम को प्रभाव जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाइ कलिकाल भीरु भागिहै॥ २॥
राम-नाम सों बिराग जोग जप जागिहै।
बाम बिधि भाल हू न कर्म-दाग दागिहै॥ ३॥
राम-नाम मोदक सनेह-सुधा पागिहै।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै॥ ४॥
राम-नाम कामतरु जोइ जोइ माँगि है।
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगि है॥ ५॥

शब्दार्थ— सहाइ = सहायक, सेना। दागिहै = निशान बना देगा; आगमें लोहा गरमकर उससे किसी तरहका निशान बना देना 'दागना' कहलाता है। बागिहै = घूमता फिरेगा। खाँगिहै=कमी रहेगी।

भावार्थ—हे मन! यदि तू मेरे कहेपर चलकर, स्वभावसे ही ( निष्कपट भावसे ) श्रीराम-नामसे प्रेम करेगा, तो तेरा सब प्रकारसे भला होगा॥ १॥ राम-नामके प्रभावसे कलिकाल, अपनी सेना-समेत, डरकर यों भाग जायगा, जैसे आगके आगेसे जूड़ी बुखार॥ २॥ राम-नामके प्रभावसे वैराग्य, योग, जप, तप आदि आप ही जाग्रत हो उठेंगे, अर्थात् बिना बुलाये ही तेरे सामने हाजिर हो जायँगे। और प्रतिकूल दैव भी तेरा मस्तक कर्मके कुअंकोसे न दाग सकेगा, ( कहा भी है, कि 'मेटत कठिन कुअंक भाल के' ) अर्थात्, उसके प्रभावसे तेरे प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण समस्त कर्म क्षीण हो जायँगे॥ ३॥ यदि तू राम-नाम-रूपी लड्डूको प्रेमरूपी अमृतमें पागकर खायगा, तो तुझे ऐसा संतोष प्राप्त हो जायगा, कि फिर द्वार-द्वार न घूमना पड़ेगा, किसी का मोहताज़ न होना

पड़ेगा ॥ ४ ॥ देख, राम-नाम कल्पवृक्ष है, इससे हे तुलसीदास! उससे तू जो-जो माँगेगा, वह वह पायेगा। तुझे न तो स्वार्थकी और न परमार्थहीकी कुछ कमी रहेगी, अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सभी अनायास मिल जायँगे।

टिप्पणी--( १ ) 'सुभाय'—निष्काम बुद्धि और निष्कपटरूपसे, सहज भाव से।

'सहज-सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहब मिलै, सहज कहावै सोय॥'— कबीरदास

( २ ) 'जानि जूड़ी आगि है'—'राम-नामके प्रभावसे तुझे आग भी ठंडी 'जान पड़ेगी'—यह भी अर्थ हो सकता है।

( ३ ) 'सहित सहाई'—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दंभ, पाखंड आदि कलि महाराजके सैनिक हैं।

( ४ ) 'पाइ परितोष .... बागि है'—गीतामें लिखा है—

'यल्लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।'

अर्थात्, जिसे पाकर फिर उससे और कोई लाभ बड़ा न दिखाई देगा।

( ७१ )

ऐसेहू साहब की सेवा सों होत चोर रे।
आपनी न बूझ, न कहै को राँड रोर रे॥१॥
मुनि-मन अगम, सुगम माइ बाप सो।
कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आप सो॥२॥
लोक-बेद-बिदित बड़ो न रघुनाथ सो।
सब दिन सब देस, सबहि के साथ सो॥३॥
स्वामी सर्बग्य सों चलै न चोरी चार की।
प्रीति पहिचानि यह रीति दरबार की॥४॥
काय न कलेस लेस, लेत मान मन की।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की॥५॥
रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे।
फलत सकल फल कामतरु-नाम रे॥६॥

बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम रे।
सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे ॥७॥

शब्दार्थ--चोर होत = जी चुराता है। रोर = रोड़ा, पत्थरका टीला, दुखी। चार = नौकर। लेस = तनिक। जोगवत = देखते हैं। रुचि = रख। निवाज्यो = निहाल कर दिया।

भावार्थ--अरे ! तू ऐसे भी मालिककी नौकरी बजानेसे जी छिपाता फिरता है। अरे ! एक तो तू खुद ही नहीं समझता-बूझता और फिर दूसरोंका कहना नहीं मानता ! तू कौड़ी कामका नहीं है, पत्थरका एक टीला है ॥ १ ॥ देख, जो मुनियोके मनको भी अगम हैं, ध्यानमें भी उनके मनमें नही आते, वही परब्रह्म परमात्मा साकार श्रीरामचन्द्रजी भक्तोंको माँ-बापकी नाईं सुलभ हैं, जैसे माँ-बाप बालकोंकी सेवा सुश्रूषामें सदा तत्पर रहते है, वैसेही श्रीरामजी अपने भक्तोके पीछे-पीछे भक्तवत्सलतावश प्रतिक्षण चला करते हैं। वह कृपाके तो मानों समुद्र ही हैं, निष्कपट और निष्काम मित्र है तथा आप-ही-आप जीवोपर प्रेम करनेवाले हैं ॥ २ ॥ रघुनाथजीसे बडा कोई भी नही है, यह बात लोक और वेद दोनोंहीमें प्रकट है। और नित्य सर्वत्र सबके साथ वह रहते है, जहाँ देखो तहाँ रमते है ॥ ३ ॥ देख, जो मालिक घट-घट की बात जानता है भला उससे नौकर कुछ छिपा सकता है ? ( उनकी सेवा भी कुछ कठिन नही है ) उनके दरबारकी यही रीति है कि वहाँ केवल प्रेमकी रीझ-बूझ है, जो प्रेमी होगा वही वहाँ पैठ सकेगा ॥ ४ ॥ उनकी सेवा करनेमें शरीरको तनिक भी कष्ट नही पहुँचता। वह ( सर्वज्ञ ) स्वामी मनकी ही प्रीति और सेवा जानकर मान लेते हैं, उनका नाम लेते ही वह संकोचमें पड़कर अपने सेवकका रुख पहचान लेते हैं, उसे ज़रा-सी सेवाके बदले चाहे जो दे देते हैं, तिसपर भी तुर्रा यह कि पीछे संकोच करते हैं कि अरे, हमने तो इसे अभी कुछ भी नहीं दिया। धन्य ! ॥ ५ ॥ जिसपर प्रसन्न हो जाते हैं, उसके वशमें हो जाते हैं, और जिसपर नाराज़ होते है, उसे अपने 'साकेत-धाम' को भेज देते हैं। दोनो ही हाथ लड्डू है। उनका नाम ( राम ) कल्पवृक्षके समान है, उससे सारी मनस्कामनाएँ पूरी होती हैं ॥ ६ ॥ ( अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है ) खोटे आदमी को यदि बेचना चाहो तो उसका कुछ दाम नही मिलता, और घरमें रखो तो कुछ काम नहीं निकलता; ऐसे

तुलसीदासको भी जिन्होंने निहाल कर दिया उन महाराजा रामचन्द्रजीकी दयापर क्या कहना है ! ॥ ७ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'राँड़ रोर'— इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि जो अपने स्वमीकी सेवासे जी छिपाता है, अपने धर्मको नहीं समझता है, वह राँड़, विधवा स्त्री, की तरह हो जाता है अर्थात् उसका स्वामी उसे त्याग देता है। व्यभिचारिणी भक्ति भला किस कामकी ?

( २ ) 'सुगम माय-बाप सो'— स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टजीने इसका अर्थ यों किया है कि 'सो वे अपने माँ-बापको सहजमें प्राप्त हुए।' हमें यह अर्थ कुछ असंगत-सा जान पड़ता है।

( ३ ) 'वेद-विदित'—अथर्वण वेदमें लिखा है—

'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः ब्रह्मा विष्णुरीश्वरः।
यः सर्ववेदात्मा भूर्भुवःस्वत्तस्मै वै नमोनमः ॥'

( ४ ) 'रीझे......धामरे,—चाहे जैसे भजन किया जाय, फल सबका एक ही है। कहा भी है—

'भाव, कुभाव, अनख, आलसहूँ। राम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥'

( ७२ )

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हौं तो साईं-द्रोही, पै सेवक-हित साईं ॥ १ ॥
राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो।
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ॥ २ ॥
लोक कहै रामको गुलाम हौं कहावौं।
ऐतो बड़ो अपराध भो, न मन बावों ॥ ३ ॥
पाथ-माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचे।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—खरो = असल, उच्च। खोटो = नकली, नीच। बावो = बाम, टेढ़ा। पाथ = पानी। बोरत = डुबोता है।

भावार्थ— श्रीरामचन्द्रजीने मेरा भला कर दिया, मुझे निहाल कर दिया। क्यों ? इसलिए कि वह स्वयं भले हैं। जो जैसा होता है वह दूसरोंके साथ, भी

वैसा ही व्यवहार करता है। मैं तो स्वामी के साथ बुराई करनेवाला हूँ ( इसलिए यह आशा नहीं कि मैं उन्हें खुश करके उनसे अपना भला कर लूँ ) और स्वामी कैसे हैं सेवकके हितकारी (बस फिर क्या, बन गई) ॥१॥ भला पूछो तो, रामजी से बडा कौन है और मुझसे छोटा कौन है, अर्थात् वह सर्वश्रेष्ठ और मैं सर्वनिकृष्ट हूँ। इसी प्रकार रामजीके समान कौन खरा है और मुझसा कौन खोटा है ॥ २ ॥ संसार कहता है, कि मैं ( तुलसीदास ) रामजीका गुलाम हूँ, संसार ही क्यों, मैं भी यह कहलवाता हूँ। ( पर मुझमें राम-गुलाम होने का एक भी लक्षण नहीं है। यह धोखेबाज़ी क्या कम कसूर है ? ) मैंने इतना बड़ा अपराध कर डाला ( झूठे ही लोगोंकी आँखों में धूल डाल दी ), पर धन्य प्रभो ! आपका मन मेरी ओर से तनिक भी न फिरा ॥ ३ ॥ हे तुलसी ! देख, जलके मस्तक पर तिनका-जैसा नीच चढ़ जाता है, फिर भी वह, यह समझकर कि यह मेरा पाला-पोसा है, उसे डुबोता नहीं है। ( इसी प्रकार जीव ईश्वरका कितना भी अपराध क्यों न करे, पर वह, भक्तवत्सलता-वश उसका उद्धार ही करता है) ॥४॥

टिप्पणी—( १ ) 'ऐसो बडो अपराध भो'—इसका सारांश यह है कि पाखंडके समान दूसरा अपराध नहीं है। पाखंड ही सारे पापोंकी जड़ है।

( २ ) 'पाथ ..... सीचो'—यह चरण अमूल्य है। जन—वत्सलता, उदारता, क्षमा और कृपाका जैसा-कुछ समावेश इसमें किया गया है, वह देखते ही बनता है।

( ७३ )

जागु जागु जीव जड़ ! जोहै जग-जामिनी।<br>
देह-गेह-नेह जनि जैसे घन-दामिनी ॥१॥<br>
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति संताप रे।<br>
बूड्यो मृग बारि, खायो जेवरीको साँप रे ॥२॥<br>
कहैं वेद बुध तू तो बूझ मन माहिं रे।<br>
'दोष-दुख सपनेके जागे ही पै जाहिं रे ॥३॥<br>
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहूँ ताय रे।<br>
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ॥४॥

शब्दार्थ—जड़=मूख। संसृति=संसार। मृगवारि=मृग-तृष्णाका जल। जेठ-वैशाखके महीनोमें मृगोंको प्रायः धूपकी किरणोंमें जलका भ्रम हो जाता है, उसे पीनेको वे दौड़ते हैं, पर वहाँ रखा ही क्या है! इसीको 'मृग-जल' कहते हैं। जेवरी =रस्सी। ताय=ताप। ताप=दाह।

भावार्थ—हे मूर्ख जीव! जाग, जाग। और इस संसाररूपी रात्रिको देख, अर्थात् मोहमें तू कितने दिनोंसे पड़ा है, अब तो मोह छोड़ दे और इस स्वार्थी ससारकी पोल देख ले। शरीर और घरके मोहको ऐसा (क्षणिक) समझ, जैसे बादलोंके बीचकी बिजली, जो क्षण भरमें कौंध कर छिप जाती है ॥ १ ॥ (यदि यह कहता है कि, जागनेमें कष्टोंका अनुभव होगा तो) सोने और सपनेमें भी तू संसारके कष्टोंको सह रहा है (वहाँ भी तुझे कल नहीं); तू मृग-जलमें डुबकियाँ लगा रहा है, अथवा तुझे रस्सीके साँप (भ्रम) ने डँस लिया है (यह दोनो ही बातें असंभव हैं। मृग जल और रस्सी के साँपकी जब 'अस्ति' तक नहीं, तब वे क्या तो डुबो सकेंगे और क्या डँसेगे? पर शोक! तू ऐसा मानता है, इसलिए अब भोग भी)॥ २ ॥ चारो वेद और पंडित कहते हैं और तू भी खूब सोच-विचारकर यह बात समझले कि स्वप्न के सारे दुःख और दोष जगनेपर ही दूर होते हैं, अन्यथा नहीं ॥ ३ ॥ हे तुलसी! ससार के तीनों ताप (भौतिक, दैविक और दैहिक) जागनेपर ही, बोधोदय होनेपर ही, नष्ट होते है और तभी निष्काम बुद्धि अथवा निष्कपट भावसे श्रीराम-नाममें पवित्र प्रीति उत्पन्न होती है, अर्थात् जबतक मोहमें जीव फँसा रहता है, तबतक उससे भगवान्‌का भजन नहीं बनता ॥ ४ ॥

टिप्पणी—(१) 'जागु, जागु'—आत्म-बोधके सम्बन्धमें श्रीशंकराचार्यके निम्नलिखित चार श्लोक क्या ही भावमय हैं—

'माता नास्ति, पिता नास्ति, नास्ति बंधुः सहोदरः।
अर्थन्नास्ति गृहन्नास्ति, तस्माजाग्रत, जाग्रत ॥
आशया बद्ध्यते लोको कर्मणा बहुचिन्तया।
आयुः क्षीणं न जानासि तस्माजाग्रत, जाग्रत ॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञान-रत्नापहाराय तस्माजाग्रत, जाग्रत ॥

जन्म दुःखं, जरा दुःखं जाया दुःखं, पुनः पुनः ।
संसार-सागरं दुःखं, तस्माज्जाग्रत, जाग्रत ।।'

महात्मा कबीरदास कहते हैं—

'जागु पियारी, अब का सोवै ?
रैन गई दिन काहे को खोवै ।।
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं बौरी सब सोय गँवाया ।।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ।।
तैं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन पिय अपन न चीन्हो ।।
जागु, देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाँड़ि उठि गये सबेरे ।।
कह कबीर, सोई धन जागै । सब्द-बान उर-अंतर लागै ।।'

( २ ) 'जग-जामिनी'—अविद्या अथवा मोह ही संसाररूपी रात्रि है । बिना मोहके संसारमें प्रवृत्तिका होना असंभव है । गोसाईंजीने रामचरितमानसमें लिखा है—

'मोह-निसा सब सोवनिहारा । देखहि स्वप्न अनेक प्रकारा ।।'

( ३ ) 'मृगजल'—सांसारिक मृगजल क्या है ? पुत्र-कलत्र, धन, धाम, व्यापार, मित्र आदि । यहाँ 'माया-वाद' का आरोप किया गया है । किन्तु यह विशेषता है कि 'आत्म-बोध' होनेपर भी 'रामनाम-सूचि-रुचि' की सूचना दी गयी है ।

## राग विभास

## ( ७४ )

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव,
जागि त्यागि मूढ़ताऽनुराग श्रीहरे ।
करि बिचार, तजि बिकार, भजु उदार रामचंद्र,
भद्रसिंधु दीनबंधु, बेद बदत रे ।। १ ।।
मोह माय कुहू-निसा काल बिपुल सोयो *,
खोयो सो अनूप रूप स्वप्न जो परे ।
अब प्रभात प्रगट ग्यान-भानु के प्रकास, वासना †,
सराग मोह द्वेष निबिड़ तम टरे ।। २ ।।

---

* पाठान्तर 'बिपुल ब्याल सोयो खोयो ।' † पाठान्तर 'बास नास राग ।'

भागे मद मान चोर, भोर जानि जातुधान-
काम-कोह-लोभ-छोभ-निकर अपडरे।
देखत रघुबर-प्रताप, बीते संताप पाप,
ताप त्रिविध प्रेम-आप दूर ही करे॥ ३॥
स्रवन सुनि गिरा गँभीर, जागे अति धीर बीर,
बर बिराग तोष सकल संत आदरे।
तुलसिदास प्रभु कृपालु निरखि जीवजन बिहालु,
भंज्यो भव-जाल परम मंगलाचरे॥ ४॥

पदच्छेद—जानकी + इस। मूढ़ता + अनुराग। मंगल + आचरे।

शब्दार्थ—भद्रसिंधु = कल्याण के समुद्र। वदत = ( वदति ) कहता है। माय=माया। कुहू = अमावस। जातुधान = राक्षस। तोष = संतोष, आनन्द। आचरे=आचरण किया। आप=जल।

भावार्थ—ज्ञानीजनोंको श्रीरघुनाथजीकी कृपा ( मोह-रात्रिसे ) जगा देती है। ( अतएव ) जड़ता अर्थात् मोह छोड़कर तू जाग और श्रीहरिके साथ प्रीति जोड़ विचार करके ( कि क्या सत् है और क्या असत् ) और सारे विकारोंको छोड़कर कल्याण राशि, उदार रामचन्दजीका भजन कर। वह दीनोंपर कृपा करनेवाले हैं, ऐसा वेद कहते हैं॥ १॥ मोह मायारूपी अमावसकी रातमें तू कबसे सो रहा है कितना अधिक समय निकल गया! सोते सोते तूने स्वप्नमें पड़कर अपना "आत्म स्वरूप" खो दिया! अब सबेरा हो गया है। सूर्योदयके होते ही कामना, रोग, मोह और द्वेषरूपी घोर अन्धकार चंपत हो गया, अर्थात् 'आत्म-बोध' होनेपर सारी संसारी वासनाएँ दूर हो गयीं॥ २॥ सबेरा हो गया, यह देखकर अहंकार और मानरूपी चोर भागने लगे और काम, क्रोध, लोभ और क्षोभरूपी राक्षसोंके समूह! के-समूह डरकर आप -ही-आप हटने लगे। श्रीरघुनाथजीका प्रचण्ड प्रताप देखकर पाप-संताप क्षीण हो गया, और सांसारिक तीनो ताप ( भौतिक, दैविक और दैहिक ) प्रेमरूपी जलने शान्त कर दिये॥ ३॥ इस गंभीर वाणीको सुनकर, कि 'जानकीस की कृपा जगावती'—धीर वीर सन्त एकदम मोह-निद्रासे जाग उठे और उन्होंने सुन्दर वैराग्य, संतोष आदि सबका आदर किया। हे तुलसीदास! कृपासिंधु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने समस्त प्राणियोंको व्याकुल देखकर संसार-रूपी जाल छिन्न-भिन्न कर दिया, और सबको परमानन्द प्रदान करने लगे॥ ४॥

टिप्पणी—( १ ) 'सुजान जीव'—मोह-रात्रिसे कौन जानते हैं, सुनिए—
'यहि जग-जामिनि जागहि जोगी। परमारथ परपंच-वियोगी ॥'
तथैव—'या निशा सर्वभूतानाम् तस्या जागर्त्ति संयमी।' ( गीता )

( २ ) 'बिपुल काल सोयो'— जबसे तेरा 'जीव' नाम पड़ा, तबसे तू बराबर सोता ही चला आ रहा है, आजतक 'चिदानंद' की प्राप्ति का उद्योग नहीं किया।

( ३ ) 'भंज्यो भवजाल परम मंगलाचरे'— देहाभिमान मोह-ममता आदिके नाश होनेपर पराभक्ति और परमानन्द का लाभ होता है। इससे 'सर्वे भद्रं पश्यन्तु' की सूचना मिलती है।

( ४ ) गोसाईंजीने 'आत्म-बोध' का कारण 'भगवत्कृपा' को माना है' 'पुरुषार्थ' को नहीं। ज्ञान-पक्ष और भक्ति-पक्षमें यही तो अन्तर है।

राग ललित
( ७५ )

खोटो खरो रावरो हौं, रावरे सों झूठ क्यों कहौंगो,
जानो सबही के मन की।
करम बचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे, सन की ॥१॥
दूसरो भरोसो नाहि, बासना उपासना को,
बासव, बिरंचि, सुर, नर, मुनिगन की।
स्वारथके साथी मेरे हाथी स्वान लेवा देई,
काहू तो न पीर रघुबीर दीन जनकी ॥२॥
साँप सभा साबर लबार भये देव दिव्य,
दुसह साँसति कीजै आगे ही या तनकी।
साँचे परौं पाऊँ पान, पंचनमे पन प्रमान,
तुलसी-चातक आस रामश्याम घनकी ॥३॥

शब्दार्थ—खोटो-खरो = बुरा-भला। बासव = इन्द्र। लेवा-देई = परस्परका व्यवहार, लेन-देन। साबर = वाममार्गी, मंत्र-तंत्र जाननेवाला। साँसति = सजा। पान = बीड़ा, तांबूल।

भावार्थ—मै बुरा या भला जो कुछ भी हूँ सो आपका हूँ। मैं आपसे झूठ क्यो कहने चला? आप तो घट-घटकी जानते हैं, आपसे छिपा ही क्या है? मैं कर्म बचन और हृदयसे यह कहता हूँ, कि मै 'आपका हूँ'। यह बात, यह गुलामी, इतनी पक्की है, जितनी कि पानीमें पड़े हुए सनकी गाँठ। भाव जैसे, पानीमें पड़े

हुए सनकी गाँठ किसी तरह खुलती नहीं है, उसी प्रकार मैं आपकी सेवकाई नहीं छोड़ सकता ।। १ ।। मुझे किसी दूसरे देवी-देवताका भरोसा नहीं है, और न मुझे इंद्र, ब्रह्मा अथवा देवता, मनुष्य एवं मुनियोंकी उपासना करनेकी ही इच्छा है। क्योंकि ये सब मतलबके यार हैं। मेरी-इनकी भला कैसे बन सकती है ? जब मैं जन्मभर हाथी जैसे भारी इनकी सेवा करूँगा, तब यह कुत्ते-जैसा तुच्छ फल देंगे, स्त्री-पुत्र और धन गले मढ़ देंगे। हे रामजी! इन सबमें किसीकी भी बेचारे दीनोंके साथ ऐसी सहानुभूति नहीं है, जैसी आपकी है ।। २ ।। जो मैं झूठ बोलता होऊँ कि 'मै रामका गुलाम हूँ' तो हे देव ! आप तो सर्वज्ञ हैं, मेरे इस शरीरको अपने ही आगे ऐसी यातना दीजिए, जैसे साँपकी सभामें झूठे सँपेरेकी ( जो साँपको वशमें करनेका मन्त्र नहीं जानता है ) दुर्गति होती है, अर्थात् उसे साँप काट खाता है, और वह मर जाता है। पाखंड कब-तक चल सकता है ! और यदि मैं सच्चा साबित हो जाऊँ ( यह सच हो कि मैं 'राम-गुलाम हूँ ) तो मुझे पंचोंके बीचमें इस सचाईका एक बीड़ा मिल जाय। (भक्तोंकी सनद मिल जाय )। (सौ बातकी बात तो यह है, कि) मुझ तुलसीरूपी पपीहेको एक रामरूपी श्याम मेघका आसरा है, और रहेगा ।। ३ ।।

टिप्पणी—(१) इस पद में गोसाईं जी अपनी भावानन्यताकी पुष्टि कर रहे है। कदाचित् उन्हें यह लालच मिल गयी है, कि—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्युपासते ।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।' – ( गीता )

( ७६ )

रामको गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू की बेद भाखै,
भलो ह्वै है तेरो ताते आनँद लहत हौं ।। १ ।।
बाँध्यो हौं करम जड़ गरब निगड़* गूढ़
सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं।

* पाठान्तर 'निगडे'।

आरत-अनाथ-नाथ कौसलपाल कृपाल,
लीन्हो छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं ॥ २॥
बूझ्यो ज्योंहि, कह्यो मैंहूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि
सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥ ३॥
लोग कहैं पोच, सो न सोच न संकोच मेरे
ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज रामही के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥ ४॥

शब्दार्थ—आगेहू की = परलोककी भी। निगड = बेड़ी। साँसति = यातना, कष्ट। दुरित = पाप। मींजो = ठोक दिया, साहस बँधाया। बिरद बहत हौ = बाना लिए रहता हूँ। पोच = नीच, तुच्छ। बरेखी = सगाई। खीझे = नाराज़ होनेपर।

भावार्थ—मैं श्री रामजीका गुलाम हूँ। गुरुरूप रामजीने मेरा नाम 'रामबोला' रक्खा है। मेरी नौकरी क्या है? यही कि दिनभरमें कभी-न-कभी दो एकबार राम-राम ऐसा स्मरण कर लेता हूँ। जो अच्छी तरह रक्खेंगे तो सिर्फ रोटी और वस्त्र लूँगा (और कुछ नहीं चाहिए), यह तो हुई इस लोककी बात; अब परलोककी रही सो वेद कह रहे है कि (राम नामके प्रभावसे) तेरा भला होगा, मुक्ति मिल जायगी। बस, इसीसे मैं सदा प्रसन्न और निश्चिन्त रहता हूँ। भाव यह, कि रामजीकी गुलामी करने और उनका नाम लेनेसे मेरे दोनो लोक सुधर जायँगे, यह मुझे दृढ़ विश्वास है ॥ १ ॥ पहले जड़ कर्मो ने मुझे अभिमानरूपी मज़बूत बेड़ियोंसे कस लिया था। मुझे उस बंधनसे ऐसा कष्ट हुआ कि मैं सह न सका। दुखियो-अनाथोके नाथ कृपालु कोशलेश श्रीरामचन्द्रजीने मुझे कर्म-बंधन से छुड़ा लिया, क्योंकि उन्होने मुझ दीनको पापोसे जलता हुआ पाया ॥२॥ जब उन्होंने मुझसे पूछा कि तू कौन हैं, तब मैंने कहा, हे नाथ! मै अनाथ हूँ, मेरा कोई नहीं है। मैं आपका गुलाम होना चाहता हूँ और आपके चरणोंको इसीसे पकड़ रहा हूँ। इसपर गुरुरूप रामजीने मेरी पीठ ठोकी, साहस बँधाया,

और हाथ पकड़कर मुझे अपना लिया, अपनी शरणमें ले लिया । उस दिन से हरिभक्तोंको सुख देनेवाला यह वैष्णव बाना धारण किये रहता हूँ, कंठी-तिलक धारण कर अपनेको 'रामदास' मानता हूँ ॥३॥ मैं रामका गुलाम हो गया (वर्णाश्रम-धर्म छोड़कर सब वैष्णवोंके साथ खाने-पीने लगा) यह देखकर लोग मुझे नीच कहने लगे । पर मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता न हुई और न संकोच ही हुआ, क्योंकि न तो मुझे किसीके साथ ब्याह या सगाई करनी थी और न मुझे जाति-पाँतिके ही झगड़ोंसे कुछ काम है । तुलसीका बनना-बिगडना तो रामजीके हाथमें है । यदि वह खुश रहेंगे तो मुझे सुख मिलेगा और नाराज़ हो जायँगे तो दु:ख पड़ेगा, पर मेरा प्रेम और विश्वास उनके चरणोंमें सदा एक-सा बना रहेगा। इसीसे मै सदा सानंद रहता हूँ ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) इस पदमें गोसाईं जी ने, एक प्रकारसे, अपनी राम-कहानी कही है । उन्होंने राम और गुरुमें अभेद माना है । इसीलिए कहीं राम और कहीं गुरु, इन दोनों ही शब्दोंका प्रयोग किया है । कबीरदासजीने तो गुरुको हरिसे भी बड़ा माना है । लिखते हैं—**

'गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय ।
बलिहारी गुरु, आपने गोविंद दियो बताय ॥
गुरु है बड़े गोंविंद ते, मन में देखु बिचार ।
हरि सुमिरै सौबार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥'

**( २ ) 'लोग······चहत हौं'—इसका पुष्टीकरण कवितावली रामायणके निम्नलिखित छन्दोंसे भलीभाँति हो जाता है ।**

'धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारि न सोऊ ॥
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाके रुचै सो कहौ कछु कोऊ ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लेबेको एक न देबे को दोऊ ॥'

**तथैव—**

'मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को ।
लोक-परलोक रघुनाथही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥

अतिही अयाने उपखानो नहि बूझैं लोग,
'साहेब को गोत गोत होत है गुलाम को।'
साधु कै, असाधु कै, भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परयो, जो हौं सो हौं राम को॥

इन्हीं छन्दोंके आधारपर, किसी-किसीके मतसे, यह बात सिद्ध हो जाती है, कि गोसाईंजीका व्याह नहीं हुआ था, वह बालब्रह्मचारी थे।

( ७७ )

जानकी-जीवन, जग-जीवन, जगत-हित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीवलोचन राम।
सरद-बिधु-बदन, सुखसील, श्रीसदन,
सहज सुन्दर तनु, सोभा अगनित काम॥ १॥
जग-सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुमीत,
सबको दाहिनो, दीनबन्धु, काहू को न बाम।
आरतिहरन, सरनद, अतुलित दानि,
प्रनतपाल, कृपालु, पतित-पावन नाम॥ २॥
सकल-बिस्व-बन्दित, सकल-सुर-सेवित,
आगम-निगम कहैं रावरेई गुनग्राम।
इहै जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो,
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम॥ ३॥

शब्दार्थ—श्रीसदन = लक्ष्मीके निवास करनेके स्थान लक्ष्मीरमण। दाहिनो = अनुकूल। बाम = प्रतिकूल। सरनद = शरण देनेवाले। आगम-निगम = शास्त्र और वेद। कै = अथवा। जन = सेवक।

भावार्थ – हे रामजी! आप श्रीजानकीजीके जीवन, संसारके जीवन, जगत्के हितू, जगत्के स्वामी, रघुवंशके नाथ और कमलके समान नेत्रवाले हैं। आपका मुख शरद-ऋतुके पूर्ण चंद्रमाके सदृश है। आप आनंद देनेवाले है। लक्ष्मीजी सदा आपके साथ रमती हैं। आपके शरीर का सौन्दर्य स्वाभाविक और अनेक कामदेवोंके समान है॥ १॥ आप जगत्के पिता, माता, गुरु, हितकारी सन्मित्र

और सबपर अनुकूल हैं। आप दीनोके सहायक हैं, किसीको भी प्रतिकूल नहीं है। आप दुःखोके दूर करनेवाले, शरण देनेवाले अर्थात् अपनानेवाले, अमित दानी भक्तोके पालनेवाले और कृपालु हैं। आपका नाम पापियोका उद्धार करनेवाला है ॥ २ ॥ समस्त संसार आपकी वंदना करता है, सारे देवता आपकी सेवा करते हैं, और वेद तथा शास्त्र सब आपकी ही गुणावली गाते हैं। यही सब तो सोचविचारकर तुलसीदास आपका सेवक हुआ है। अब यह बताइए कि आप इसे अलग गिनेंगे या जहाँ गरीब गुलामोंका नाम आया है, वहाँ गिनेंगे ? ॥ ३ ॥

टिप्पणी—( १ ) इस पदमें 'जानकी-जीवन', 'राजीवलोचन', 'सरद-बिधु-बदन', 'सहज सुंदर तनु'—आदि शब्दों द्वारा माधुर्य तथा जगजीवन, जगदीस, जगतहित, जगपिता, दीनबंधु' आदि शब्दों द्वारा ऐश्वर्य दर्शाया गया है।

( २ ) 'जग-सुपिता.........सुमीत'—इसे देखकर निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक स्मरण आ जाता है—

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥'

( ३ ) 'न्यारो कै गनिबो'—स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टजी और श्रीबैजनाथजीने इसका यह अर्थ किया है कि 'अलग अर्थात् बड़े-बड़े हनुमान् आदि सेवकों में'। पर हमें यहाँ 'बड़े-छोटे' सेवकोंका अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। स्पष्ट-अर्थ तो यही हो सकता है कि आप अपने दीन गुलामोमें मेरी गिनती करेंगे या यों ही मुझसे किनारा किये रहेंगे, भक्तोंकी पंक्तिमें न लेंगे।

## राग टोड़ी

( ७८ )

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जासों दीनता कहौं हौं देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहब तौ घनेरे।
पै तौ-लौं जौ-लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित बेद बदति चारी।
आदि अंत मध्य राम साहबी तिहारी ॥ ३ ॥

तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाव सील सुजसु जाचन जन आयो ॥ ४ ॥
पाहन, पसु, बिटप, बिहँग अपने करि लीन्हें।
महाराज दसरथ के ! रंक राय कीन्हे ॥ ५ ॥
तू गरीबको निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु ! तुलसिदास मेरो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—साइब=स्वामी। घनेरे=बहुतेरे। बदति=कहते हैं। पाहन=पत्थर, यहाँ अहिल्यासे तात्पर्य है। बिटप=पेड़, यहाँ यमलार्ज्जुनसे तात्पर्य है। बिहँग=पक्षी; गीध जटायु और काकभुशुंडिसे तात्पर्य है। राय=राजा। बारक=एतबार।

भावार्थ—दीनोंपर दया करनेवाला और उन्हें (मनोवाञ्छित) दान देनेवाला (हे राम ! आपको छोड़कर) दूसरा कोई नहीं है। मैं जिसे अपनी दीनावस्था सुनाता हूँ, उसीको दीन देखता हूँ। जो स्वयं दीन है, वह दूसरेकी दीनता कैसे दूर कर सकता है ? ॥१॥ देवता, मनुष्य, मुनि, दैत्य, सर्प आदि बहुतेरे मालिक हैं, पर कबतक ? जबतक आपने अपनी दृष्टि टेढ़ी नहीं की। आपने ज्योंही अपनी नज़र फेरी, त्योंही सब अपना-अपना रुख बदलने लगे ॥२॥ भूत, वर्तमान और भविष्यत् तथा आकाश, पाताल और भूलोक सर्वत्र ही यह बात प्रकट है और चारों वेद भी कह रहे है कि आदि, अन्त और मध्यमे, हे रामजी ! आपकी ही एकरस प्रभुता है ॥३॥ आपसे माँगकर कोई फिर भिखमंगा नहीं रहा, अर्थात् आपने उसे इतना अधिक दे दिया कि फिर उसे और किसीसे माँगनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। आपका ऐसा (उदार) स्वभाव और शील सुनकर यह दास आपसे माँगनेके लिए आया है ॥४॥ आपने पत्थर (अहल्या), पशु (रीछ, बन्दर आदि), पेड़ (यमलार्जुन) और पक्षी (जटायु, काकभुशुडि आदि) तक अपनी शरणमें लिये हैं। हे महाराज दशरथके पुत्र ! आपने बड़े-बड़े रंकोंकों, नीचोको, राजा बना दिया है ॥५॥ आप ग़रीबोंको निहालकर देनेवाले हैं, और मैं आपका ग़रीब गुलाम हूँ (इस नातेसे मुझे भी अपना लीजिए)। हे कृपालु ! कम-से-कम एक-बार तो इतना कह दीजिए कि "तुलसीदास मेरा है" ॥६॥

टिप्पणी—( १ ) 'सुर नर ........ घनेरे'—कहा भी है...
'जापर कृपा राम की होई । तापर कृपा करहिं सब कोई ।'
( २ ) 'आदि ....... तिहारी'—लिखा है—
'आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।'
( ३ ) 'पाहन'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए ।
( ४ ) 'बिटप'—एकबार कुबेरके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीवने प्रमाद-वश नारदजीकी दिल्लगी उड़ायी । उन्होंने उन लोगोंको यह शाप दे दिया कि 'तुम बड़े ही जड़बुद्धि हो, जाओ वृक्ष हो जाओ' । दोनों आकर गोकुलमें अर्जुन वृक्ष हुए । एक दिन यशोदाजीने श्रीकृष्णको, किसी अपराधपर, इन वृक्षोंसे बाँध दिया । भगवान्की माया से दोनों पेड़ भर्राकर गिर पड़े और वृक्ष-योनि छोड़कर वे दोनों पुनः दिव्य यक्ष हो गये । भगवान्ने उन्हें मुक्त कर दिया ।
( ५ ) विहँग– जटायु; ४३ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए ।

( ७६ )

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी ॥ १ ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो ॥ २ ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥ ३ ॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ आरति = पीड़ा । ठाकुर = स्वामी । चेरो = सेवक ।

भावार्थ—हे नाथ ! तू दीनोंपर दया करनेवाला है, तो मैं दीन हूँ; तू दानी है, तो मैं भिखमंगा हूँ । मैं उजागर पापी हूँ, तो तू पाप-समूहोंका नाश करने वाला है ॥ १ ॥ तू अनाथोका नाथ है, तो मेरे-जैसा अनाथ भी कोई नहीं है । मेरे समान कोई दुःखी नहीं है और तेरे-जैसा कोई पीड़ाका हरनेवाला भी नहीं है ॥ २ ॥ तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ, तू स्वामी है, मैं सेवक हूँ । अधिक क्या,

तू मेरा माँ-बाप, गुरु, मित्र और सब प्रकारसे हितकारी है ॥ ३ ॥ मेरे-तेरे अनेक सम्बन्ध हैं, अब जो नाता तुझे अच्छा लगे, सो मान ले। पर बात तो यह है कि, जैसे बने तैसे, हे कृपालु! यह तुलसीदास आपके चरणोंकी शरण पा जाये (और कोई इच्छा नहीं है) ॥ ४ ॥

टिप्पणी–(१) 'चेरो'–स्वर्गीय पं० रामेश्वर भट्टजीने इसका अर्थ 'चेला' लिखा है। पर यह अर्थ ठीक नहीं है। इसका अर्थ सेवक या गुलाम ही उचित है।

(८०)

और काहि माँगिये, को माँगिबो निवारै?
अभिमतदातार कौन, दुख-दरिद्र दारै? ॥ १ ॥
धरमधाम राम काम-कोटि-रूप रूरो।
साहब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो ॥ २ ॥
सुसमय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै।
कुसमय दसरथ के दानि! तैं गरीब निवाजै ॥ ३ ॥
सेवा बिनु, गुनबिहीन दीनता सुनाये।
जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये ॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक*-रुचि जानि दान‡दीजै।
रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अभिमतदातार = मनोवाञ्छित फल देनेवाला। दारै = दूर करता है। रूरो = सुन्दर। निसान = नगाड़ा। फूले = प्रसन्न।

भावार्थ—हे नाथ! और किसके आगे हाथ फैलाऊँ? ऐसा कौन है मेरी याचनाको (सदाके लिए) दूर कर देगा? और ऐसा कौन-सा मनोवाञ्छित फलोंका देनेवाला है, जो मेरे दुःख और दारिद्र्यका नाश करदेता? भाव यह कि, ऐसा कृपालु सिवा तेरे मुझे कोई दीखता ही नहीं ॥१॥ हे राम! तू धर्मका स्थान और करोडों कामदेवोंके रूपसे कहीं अधिक लावण्यमय है, अर्थात् तेरी उपासना करनेसे मेरे ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों ही पक्ष सध जायँगे। फिर तू सब तरहसे

* पाठान्तर 'जाचत'। ‡ पाठान्तर 'दानि'

मेरा मालिक है, चतुर है, और दानरूपी तलवारके चलानेमें कुशल है, अर्थात् दान-द्वारा भक्तोंके सारे दुःख दूर कर देता है ॥२॥ अच्छे दिन आने पर तो सभीके दरवाजेपर नगाड़े बजते हैं, सभी उत्सव मनाते हैं, किन्तु हे दशरथे ! तू ऐसा दानी है कि तूने कुसमयमें भी दीन जनोंको निहाल कर दिया ॥३॥ जिन-जिनको तूने निहाल किया, उन्होंने न तो तेरी सेवा ही की है और न किसी गुणसे ही तुझे रिझाया है, पर आज वे सब, केवल अपनी दीनता सुना देनेसे ही, फूले नहीं समाते ॥४॥ अब तुलसीदास भिखारीकी इच्छा जानकर उसे भी निहाल कर दे। ( उसे और कुछ भी नहीं चाहिए; तो चाहता क्या है ( सुनिए ) हे श्रीराम-चन्द्र ! तू चन्द्रमा है ही, मुझे चकोर और बना ले। (बस, इसीसे मेरी मनःकामनाएँ सफल हो जायँगी ) ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'दानखड्गसूरों'—दानवीर पाँच प्रकारके गिनाये गये हैं-

'त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः ।
पराक्रम-महावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः ॥'

( २ ) 'कुसमय'—यहाँ वनवाससे तात्पर्य है। श्रीरामचन्द्रजीने वनवास और सीता-हरणके बाद भी जटायु, सुग्रीव, विभीषण, शबरी आदिका उद्धार किया। अपने दुःख भुला दिये, पर अपने भक्तोंको सदा प्रसन्न ही रखा।

( ३ ) 'चकोर'—चकोर पक्षी चन्द्रमाकी ओर रातभर टक लगाकर देखा करता है। कहते हैं, यह अपने प्रिय चन्द्रमाके विरहमें अंगार चुगता है—

'लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥' —कबीरदास

जैसे चकोरका सदा-सर्वदा अखण्ड एकरस प्रेम चन्द्रमाके प्रति रहता है, उसी प्रकार मेरा प्रेम आपपर बना रहे।

( ८१ )

दीनबंधु सुखसिंधु कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध जुर, करत फिरत बौराई ॥१॥
कबहुँ जोगरत, भोग-निरत सठ, हठ बियोग-बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥२॥

कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडम्बरत, कबहुँ धर्मरत ग्यानी ॥३॥
कबहुँ देव ! जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै।
संसृति-सन्निपात* दारुन दुख बिनु हरि-कृपा न नासै ॥४॥
संजम जप तप नेम धर्म ब्रत, बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास-भव-रोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ॥५॥

शब्दार्थ—जुर = ज्वर। बौराई = पागलपन। बिडम्ब = दम्भ। संसृति = संसार। भेषज = ओषधि। भव = संसार।

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! आप दीनोंके सहायक, आनंदके समुद्र, कृपाके सागर ( खानि ) और करुणाके धारण करनेवाले हैं। हे नाथ ! सुनिए, मेरा, मन संसारके तीनों तापोंसे जल रहा है, अथवा उसे त्रिदोष ज्वर हो गया है और इसीसे वह पागलोंकी तरह बकता फिरता है ॥ १ ॥ कभी तो वह योगाभ्यास करता है और कभी भोगविलासोंमे फँस जाता है। कभी वह मूढ़ हठपूर्वक-वियोगके अधीन हो जाता है, कभी मोहके वश हो जाता है, कभी नाना प्रकारके द्रोह करता है, और कभी वह बड़ा दयावान् भी बन जाता है ॥ २ ॥ कभी दीन कभी मूर्ख, कभी बड़ा ही कंगाल और कभी घमंडी राजा हो जाता है अर्थात् कभी राजाओं के हौसले करता है। कभी मूढ़, तो कभी पंडित बन जाता है। कभी पाखंडी और कभी धार्मिक एवं ज्ञानी बनता है ॥ ३ ॥ हे देव ! कभी उसे सारा संसार धनमय भासता है, तो कभी शत्रुमय। इसी प्रकार कभी-कभी वह जगत् को स्त्रीमय देखता है। भाव यह, कि जब उसकी जैसी भावना होती है तब उसे सारा संसार भी वैसा ही दीखता है। यह संसाररूपी सन्निपात ज्वरका असह्य दुःख बिना भगवत्कृपाके, दूर नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ यद्यपि संयम, जप, तप, नियम, धर्म, व्रत आदि बहुत सी दवाइयाँ हैं, किन्तु तुलसीदासका संसार-रूपी रोग ( जन्म-मरण अथवा मानसिक वृत्तियाँ ) श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेम बिना दूर नहीं हो सकता ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) इस पदमें मनको 'बहुरूपी' बनाया है। इसके अनेक रूप-रंग हैं

* पाठान्तर 'सन्वपात'।

'मन के बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदलै सोय।
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय॥'
'मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक॥—कबीरदास

( २ ) 'रंकतर''''अभिमानी'—मनकी प्रवृत्तियाँ जागृत अवस्था ही में नहीं, वरन् स्वप्नमें भी अपना खेल खेला करती हैं। यही अवस्था संसारकी भी है।

'सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥' (रामचरितमानस)

( ३ ) 'राम-पद-प्रेमहीन नहिं जाई'—अन्यत्र भी कहा है—

'विना भक्ति न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते।'

( ८२ )

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई॥ १ ॥
नैन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे॥ २ ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भे, बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये॥ ३ ॥
तुलसिदास ब्रत दान ग्यान तप, सुद्धिहेतु स्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल * अति नास न पावै॥ ४ ॥

शब्दार्थ—वासना=कामना। अति नास=समूल नाश।

भावार्थ—माया-मोह ( अविद्या ) से उत्पन्न हुआ जो अनेक प्रकारका पाप लगा हुआ है, वह करोड़ों यत्न करनेपर भी नहीं छूटता। अनेक जन्म से यह चित्त ( पाप करनेके ) अभ्यासमें लगा हुआ है, इसलिए वह मल लिपटता ही जाता है, छूटता नहीं है॥ १ ॥ दूसरोंकी स्त्रियोंकी ओर ( कामदृष्टिसे ) देखनेसे नेत्र मलिन हो गये हैं और विषयोंके साथ रहनेसे यह मन विकारी हो गया है।

* पाठान्तर 'अतिमल'।

अहंकार और मानसम्बन्धी कामनाओंसे हृदय काला पड़ गया है और सहज आत्मानंद त्याग देनेसे जीव मलिन हो गया है ।। २ ।। दूसरोंकी निंदा सुन-सुनकर कान तथा परापवाद कह-कहकर जीभ मलिन हो गई है । और, अपने स्वामी ( श्रीरामजी ) के चरण भुला देनेसे यह मलका भार सब तरहसे मेरे पीछे पड़ गया है ।। ३ ।। हे तुलसीदास ! वेद तो यह कहता है, कि मन-शुद्धि के लिए व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेक उपाय विद्यमान हैं, पर मेरा तो यह विश्वास है कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेमरूपी जलके बिना यह ( अनेक जन्म-सञ्चित ) मल पूर्णतः धुल नहीं सकता, समूल नाश होनेका नहीं ।। ४ ।।

टिप्पणी—( १ ) 'अधिक-अधिक लपटाई'—इस मलको छुड़ानेके लिए जो-जो उपाय करते हैं, उसमे अभिमान आ जानेसे वह भ्रष्ट हो जाता है, और ऐसा होनेसे मल और भी पक्का हो जाता है। सुलझना तो दूर रहा और भी उलझन होती जाती है ।

'ज्यों ज्यों सुरभि मज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात ।'

( २ ) 'अनुराग'—श्रीवैजनाथजीने अपनी टीकामें 'अनुराग' की क्याही उत्तम परिभाषा लिखी है—

'व्यापकता जो प्रीति की, जिमि सुठि बसन सुरंग ।<br>
दृगन-द्वार दरसै चटक, सो अनुराग अभग ।।'

( ३ ) 'राम चरन'.......पावै'—लिखा है—

'राम-भक्ति-जल बिनु खगराई । अभ्यंतर मल कबहुँ न जाई ।।'

राग जयतिश्री

( ८३ )

* कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय ।<br>
अति दुरलभ तन पाइ, कपट तजि, भजे न राम मन † बचन काय ।। १ ।।

---

* दो मे एको तौ न भई !<br>
ना हरि भजे न गृह-सुख पाये, वृथा बिहाइ गई ।।<br>
ठानी हुती और कछु मनमें, औरै आनि ठई ।<br>
अविगत गति कछु समुझि परति नहिं, जो कछु करत दई ।।

† पाठान्तर 'राम राम' ।

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुने चाय।
जोबन-जुर जुबती-कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय॥ २॥
मध्य बैस धन हेतु गँवाई, कृषी बनिज नाना उपाय।
राम-बिमुख सुख लह्यो न सपनेहूँ, निसि बासर तयो तिहूँ ताय॥ ३॥
सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भलि भगति भाय।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किये जे चरित रघुबंसराय॥ ४॥
अब सोचत मनि-बिनु भुजंग ज्यों, बिकल अंग दले जरा धाय।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय॥ ५॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्‌यौ, ते लजात होत ठाढ़े ठाँय।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं, तर्‌यो गयंद जाके एक नाँय॥ ६॥

**शब्दार्थ**—जाय=व्यर्थ। मदनबाय=कामरूपी वायु, कामोन्माद। ताय=ताप। भाय=भाव। जरा=बुढ़ापा। दाय=दावानल। नाँय=नाम।

**भावार्थ**—हाय! कुछ भी तो न बन पड़ा! जन्म यों ही बीता जा रहा है! अति दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर भी निष्कपट भावसे कभी तन, मन और वचनसे रामनाम-स्मरण नहीं किया॥१॥ लड़कपन तो अज्ञानहीमें चला गया; उस समय चित्तमें अबसे चौगुनी चपलता और प्रसन्नता थी। और जवानीरूपी ज्वरमें स्त्री रूप कुपथ्य कर बैठा, अर्थात् एक तो वैसे ही ज्वर चढ़ा था तिसपर कुपथ्य कर लिया। फिर क्या, सन्निपात हो गया और सारे शरीरमे कामरूपी वायु भर गई, कामोन्माद हो गया॥२॥ (जवानी ढलनेपर) बीचकी अवस्था धन कमानेमे खोई। धनके लिए खेती, व्यापार आदि अनेक उपाय किये। किन्तु श्री रामचन्द्रजीसे विमुख होनेके कारण, उनका भजन न करनेसे, स्वप्नमें भी

---

सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि, निसिदिन होत खई।
पद-नख-चंद-चकोर बिमुख मन खात अँगारमई॥
बिषय-बिकार-दवानल उपजी, मोह-बयार बई।
भ्रमत-भ्रमत बहुतक दुःख पायो, अजहुँ न टेव गई॥
कहा होत अब के पछताये होनी सिर बितई।
'सूरदास' सेये न कृपानिधि, जो सुख सकलमई॥ (सूर-सागर)

सुख न मिला, दिन रात संसारके तीनों तापोंमें जलता रहा ॥३॥ न तो कभी श्रीरामचन्द्रजीके भक्तों एवं ज्ञानी सन्तोंहीकी भक्ति-भावसे भलीभाँति सेवाकी और न रोमाच होकर प्रसन्नचित्तसे श्रीरघुनाथजीकी कथा-वार्त्ता ही सुनी ॥४॥ अब, जब कि बुढ़ापेने आकर अङ्गप्रत्यङ्ग शिथिल कर दिये, मणि-हीन सर्पके समान सोचा करता हूँ, सिर पटकता हूँ, हाथ मींज-मींजकर पछताता हूँ, पर इस असह्य दावानलके बुझानेके हेतु कोई हितू मित्र नहीं आता ॥५॥ जिनके लिए अपना परलोक तक बिगाड़ दिया। अर्थात् जिनके अर्थ अनेक पाप कमाये, वे भी आज पास खड़े होनेमें शर्माते हैं। हे तुलसी! तू अब भी उन रघुनाथजीकी याद कर, जिनका नाम एकबार ही लेनेसे गजेन्द्र मुक्त हो गया था ॥ ६ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'तरयो गयंद जाके एक नाँय'—एकबार एक तालाबमें एक बडाभारी मदोन्मत्त हाथी हथिनियोंके साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। इतनेमे एक मगरने उसका पैर पकड़ लिया। हाथीने अपनी सारी शक्ति लगा दी पर पैर न छुड़ा सका। निःशक्त और निराश होकर उसने भगवान्‌को पुकारा। 'हरे' कहते ही, गरुड़को छोड़कर, भगवान् तुरन्त वहाँ दौड़ आये और चक्र-सुदर्शनसे ग्राहको काट डाला। हाथी मुक्त हो गया। श्रीमद्‌भागवतमें यह कथा, गजेन्द्रमोक्षके नामसे, विस्तारपूर्वक लिखी है।

( ८४ )

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो है सुगम तोको अमर-अगम तन, समुझिधौं कत खोवत अकाथ?॥१॥
सुख-साधन हरि-बिमुख बृथा, जैसे स्रम फल घृतहित मथे पाथ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति, चलि सुपंथ मिलि भले साथ ॥ २ ॥
देखु राम-सेवक, सुनि कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु, लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ॥ ३ ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब, नाउ रामपद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल, अपनाये जानकी-नाथ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मींजि=मलकर। अमर=देवता। अकाथ=व्यर्थ। पाथ=जल। पानी=हाथ। भाथ=तरकस।

भावार्थ—हे मन! तुझे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ेगा, क्योंकि तुझे आज इव ( मानव ) शरीर सहज ही मिल गया है, जो देवताओंको भी दुर्लभ है।

तनिक विचार तो कर, अब उसे क्यों व्यर्थ खो रहा है ? ॥ १ ॥ परमेश्वरको भुलाकर सुख-प्राप्तिके लिए जितने उपाय करोगे, वह सब ऐसे हैं जैसे कोई घी निकालनेके लिए पानी मथकर केवल श्रमरूपी फल प्राप्त करे। अर्थात् बिना भगवान्की शरण गये हुए किसी भी प्रकार सुख नहीं मिल सकता। यह सोच-समझकर बुरा मार्ग और बुरोंका संग छोड़ दे, और सन्मार्गपर चलकर सज्जनोंका साथ कर ॥ २ ॥ भगवद्भक्तोंका दर्शन कर, उनसे हरिकीर्तन सुन, नामको रट और राम-कथाका गान कर। हाथमें धनुष-बाण लिये, मुनियोंके वस्त्र धारण किये और कमरमें तरकस कसे हुए प्रभु रघुनाथजीका हृदयमें ध्यान कर ॥ ३ ॥ हे तुलसीदास ! संसारकी सारी झंझट छोड़-छाड़कर श्रीरामजीके चरणारविन्दों पर मस्तक झुका। तू किसी भाँति शका मत कर, तेरे-जैसे अनेक नीचोंको श्रीजानकी-वल्लभ रघुनाथजीने अपनी शरणमें लिया है। भाव, तुझे भी अपना लेंगे ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'हृदय आनु........माथ'—यहाँ गोसाईंजीने वनवासी वीरवेषधारी रामचन्द्रजीका ध्यान कहा है। कलिकाल तथा काम, क्रोधादि शत्रुओंके नाश करनेके अर्थ धनुष, बाण, तरकस आदिका स्मरण कराया गया है। 'रामरक्षा' में भी लिखा है—**

'ध्यात्वा नीलोत्पलं श्यामं रामं राजीवलोचनम्।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटा-मुकुटमंडितम् ॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तं चरातकम्।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥'

**( २ )'अनेक खल',—जैसे अजामेल, यवन, श्वपच, गणिका आदि।**

राग धनाश्री

( ८५ )

मन, माधवको नेकु निहारहि।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों, छिन-छिन प्रभुहिं सँभारहि ॥ १ ॥
शोभा-सील-ग्यान-गुन-मंदिर, सुन्दर परम उदारहि।
रंजन संत, अखिल-अघ गंजन, भंजन विषय बिकारहि ॥ २ ॥
जौ बिनु जोग, जग्य, ब्रत संयम गयो चहै भव-पारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसिबासर हरिपद-कमल बिसारहि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—रंजन=प्रसन्न करनेवाले। अखिल=संपूर्ण। अघ=पाप। गंजन=नाश करनेवाले।

भावार्थ—हे मन! भगवान्‌की ओर तनिक देख तो। हे दुष्ट! सुन, जैसे कंगाल दिन-रात अपने धनकी ही देख-भालमें लगा रहता है, उसी प्रकार तू भी अपने स्वामी श्रीरामजीकी सेवा किया कर॥ १॥ वह सौन्दर्य, शील, ज्ञान और समस्त सद्‌गुणोंके स्थान हैं। वह परम सुन्दर और बड़े दानी हैं। संतोंको प्रफुल्लित करनेवाले, संपूर्ण पापोंके नाशकर्त्ता और (इन्द्रियजन्य) विषयोंके विकार दूर करनेवाले हैं॥ २॥ यदि तू बिना ही योग, यज्ञ और संयमके, संसार-सागरको पार करना चाहता है, तो तुलसीदास! दिनरात श्रीहरिके चरणारविन्दोंको मत भूल, सदा उनका ध्यान किया कर॥ ३॥

टिप्पणी—(१) 'सदा रंकके धन ज्यों'—एक स्थलपर गोसाईंजीने खूब कहा है—

"कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभी के जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ, निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥"

(२) 'जोग'—योग; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि।

(३) 'व्रत'—शास्त्रोक्त चान्द्रायण, सोमायन, कृच्छ्र महाकृच्छ्र आदि व्रत।

(८६)

इहै कह्यो सुत बेद नित चहूँ।
श्रीरघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिंन ठौर कहूँ॥ १॥
जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकर हूँ।
सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ॥ २॥
जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ।
हरि-पद-पंकज पाइ अचल भइ, कर्म बचन मनहूँ॥ ३॥
करुनासिंधु भगत-चिन्तामनि, सोभा सेवत हूँ।
और सकल सुर असुर ईस सब, खाये उरग छहूँ॥ ४॥
सुरुचि कह्यो सोइ सत्य, तात! अति परुष बचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथ-बिमुख नहिं मिटै बिपति कबहूँ॥ ५॥

**शब्दार्थ**—अचल=शान्त । उरग=सर्प । सुरुचि=महाराज उत्तानपादकी छोटी रानी । परुष=कठोर ।

**प्रसंग**—महाराज उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि । सुनीतिके पुत्र ध्रुव थे और सुरुचिके उत्तम । एक दिन राजा, सुरुचिके महलमें उत्तमको गोदमें लिये खिला रहे थे । इतनेमें बालक ध्रुव भी वहाँ आ पहुँचा और राजाकी गोदमें बैठने लगा । विमाता सुरुचिने कठोर वाणीसे ध्रुवसे कहा—'राजाकी गोदमें बैठना सहज नहीं है । अभी तप करो, तब कहीं राजाकी गोदके अधिकारी होगे ।' ध्रुव रोते हुए अपनी माताके पास चले आये । माताने उन्हें तप करनेके लिए जो उपदेश दिया है, उसीके प्रसंगका यह पद जान पड़ता है ।

**भावार्थ**—(सुनीति कहती है ) हे पुत्र ! चारों वेदोंने सदा यही कहा है, कि श्रीरघुनाथजीके चरणोंका ध्यान किये बिना इस जीवको, अन्यत्र कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, विश्राम नहीं है ।। १ ।। अरे, जिनके चरणोंकी सेवा करके ब्रह्मा और शिवने भी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, शुक-सनकादिक जीवन्मुक्त होकर ( निश्चिन्त ) विचर रहे हैं और अब भी उनका भजन किये जा रहे हैं ।। २ ।। यद्यपि लक्ष्मी सदासे ही बड़ी चंचला है, कहीं ( क्षण भरको भी ) ठहरती नहीं है, पर वह भी भगवच्चरणारविन्द पाकर मन, वचन और कर्मसे शान्त हो गई है । ( फिर क्या कारण है कि जीव शान्त न हो ? ) ।। ३ ।। करुणाके समुद्र और भक्तोंके लिए चिन्तामणि-स्वरूप रामचन्द्रजीकी सेवा करनेसे ही सब शोभा है । जितने देवता, दैत्य और ऐश्वर्यशाली हैं, उन सबको काम क्रोध, लोभ मद, मोह और मात्सर्य इन छः साँपोंने डस लिया है । ( केवल हरि-भक्त ही अछूते बचे हैं और वही अमर भी हैं ) ॥४॥ हे भैया ! जो ( तुम्हारी विमाता) सुरुचिने तुमसे कहा है ( कि अभी तप करो ) वह सत्य है, यद्यपि सुननेमें वह कठोर वचन है । हे तुलसीदास ! बिना रघुनाथजीकी शरणमें आये विपत्तियों-का नाश होनेका नहीं ( यह ध्रुव सिद्धान्त है ) ॥ ५ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) श्रीमद्भागवतमें सुनीतिने ध्रुवसे इस प्रकार कहा है—

'तमेव वत्साश्रय भक्तवत्सलं, मुमुक्षुभिर्मृग्य पदाब्जपद्धतिम् ।
अनन्यभावे निजधर्मभाविते, मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ।।

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनात् दुःखच्छिद ते मृगयामि किंचन ।
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया, श्रियेतरैरङ्भविमृग्यमाणया ।।'

( २ ) 'परुष बचन जबहूँ'—हितकारी वचन सुननेमें तो कडुवा होता है, पर उसका परिणाम बड़ा मधुर हुआ करता है। न सुरुचि व्यंग्यभावसे ध्रुवसे ऐसा कहती, न वह परमोच्च पदके अधिकारी होते।

( ८७ )

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरो ।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख, * सठ ! यह समुझ सबेरो ।। १ ।।
बिछुरे ससि रवि मन नैननि तें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत-स्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ।। २ ।।
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिवो ताहू केरो ।। ३ ।।
छुटै † न बिपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति सन्देह निबेरो ।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि, होहु राम कर चेरो ।। ४ ।।

भावार्थ—हे मूर्ख मन ! मेरी शिक्षा सुन, भगवान्‌के चरणोंसे विमुख होकर किसीको सुख नहीं मिला। हे दुष्ट ! अभी सबेरा ही है, समय है, इस बातको खूब समझ ले। भाव, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है, अब भी भगवान्‌की शरणमें चला जा ।। १ ।। जबसे चन्द्रमा प्रभु ( भगवान् ) के मनसे तथा सूर्य उनके नेत्रों से अलग हुए, तबसे वे दारुण दुःख भोग रहे हैं। रात-दिन आकाशमें थके हुए चक्कर लगाते हैं वहाँ भी उनका शत्रु राहु पीछा किये रहता है ।। २ ।। यद्यपि गंगाजी देवताओंकी नदी कही जाती हैं, बड़ी पवित्र हैं और उनकी कीर्ति तीनों लोकोंमें छा रही है, तथापि भगवच्चरणोंसे पृथक् होने पर आज तक उनका बहना बन्द नहीं हुआ। भाव, वह चंचल ही बनी हैं शान्त नहीं हुईं ।। ३ ।। वेदोंने यह सन्देह दूर कर दिया है, कि बिना राम-भजन किये विपत्तियोंका नाश नहीं हो सकता। हे तुलसीदास ! इसलिए तू भी सब आशा-

* पाठान्तर 'काहू न लह्यो सुख ।'

† पाठान्तर 'मिटै ।'

सकता । हे तुलसीदास ! इसलिए तू भी सब आशा-भरोसा छोड़कर श्रीरघुनाथजीका अनन्य सेवक हो जा ।। ४ ।।

टिप्पणी—(१) बिछुरे........नैननि तें—स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्टजीने इसका यह अर्थ किया है—'हे मन! सूर्य-चन्द्रमा ( भगवान्‌के ) नेत्रोंसे अलग हुए ।' यहाँ 'मन' सम्बोधनके स्थान पर नहीं आया है, किन्तु वह चन्द्रमाके लिए प्रयुक्त हुआ है । चन्द्र भगवान्‌का मन है और सूर्य नेत्र । कहा भी है—

'चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत ।' ( पुरुष सूक्त )

( २ ) 'रिपु राहु'—जब समुद्रमेंसे अमृत निकला, तब देवता और दैत्य उसके लिए आपसमें लड़ने लगे । विष्णु भगवान्‌ने मोहिनी रूप धरकर अमृतका घड़ा अपने हाथमें ले लिया । राक्षस उनके रूपपर मोहित हो गये । एक ओर देवता और एक ओर दैत्य बिठाये गये । अमृतका बाँटा जाना देवताओंकी पंक्तिसे आरम्भ किया गया । राहु नामका दैत्य विष्णुका कपट समझ गया और सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आ बैठा । धोखेसे मोहिनीने अमृत पिला दिया । पर सूर्य-चन्द्रके इशारेसे, कि यह दैत्य है, भगवान्‌ने चक्रसे उसका सिर उड़ा दिया । मुण्डका हो गया राहु, और रुण्डका केतु । कहते हैं, उसी पुराने बैरसे राहु, ग्रहणके समय, चन्द्रमा और सूर्यको दुःख देता है ।

( ३ ) 'मिटै......रघुपति'—'रुद्रयामल' में लिखा है—

'विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते ।'

( ८८ )

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो ।। १ ।।
जदपि बिषय सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत मूढ़, ममताबस, जानत हूँ नहिं जान्यो ।। २ ।।
जन्म अनेक किये नाना बिधि कर्म-कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु, बेद पुरान बखान्यो ।। ३ ।।
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहीं आन्यो ।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो ।। ४ ।।

शब्दार्थ—सहज सुख=आत्मानन्द । सिरान्यो=बीत गया ।

भावार्थ—अरे मन ! तूने कभी विश्राम नहीं माना, शान्त होकर नहीं बैठा। आत्मानन्दमें भूलकर दिन-रात चक्कर लगाया करता है और इन्द्रियोंकी ही खींच तानमें लगा रहता है। भाव यह है कि, जो इन्द्रिय तुझे जिधर धर खींचती है, उधर ही चला जाता है ।। १ ।। यद्यपि विषयोंके साथ तूने बड़े-बड़े दारुण दुःख भोगे हैं, कठिन जालमें फँसा रहा है, फिर भी अरे मूर्ख ! तू उसे नहीं तजता। जान लेनेपर भी कुछ नहीं जानता-सा रहता है ।। २ ।। अनेक जन्मोंसे तू अनेक प्रकारके कर्म करता चला आ रहा है, उन्हींके कीचमें लिप्त हो गया है, सो, हे चित्त ! यदि तुझे स्वच्छ होना है, तो विवेक प्राप्तकर, क्योंकि बिना विवेकरूपी जलके तू निर्मल नहीं हो सकता, यह वेद और पुराणोंने कहा है ।। ३ ।। जैसा प्रेम अपने मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके साथ किया जाता है, वैसा तूने प्रसन्न होकर कभी हृदयसे भगवान्‌के साथ नहीं किया। सो, हे तुलसीदास ! उस तालाबसे कब प्यास बुझ सकती है, जिसके खोदनेमें ही सारा जीवन बीत गया। भाव, क्षणिक सुखोंके लिए तूने सारे जीवन भर जो अनेक प्रकारके साधन किए हैं, उनके द्वारा पूर्ण आनन्द तुझे प्राप्त होनेका नहीं ।।४।।

**टिप्पणी—( १ ) 'जानत हूँ नहिं जान्यो—यह सभी जानते हैं कि एक-न-एक दिन सब कुछ नाश होने के लिये है, किन्तु मोहवश उनसे विरक्त नहीं होते। देखिए—**

'माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुन लई, काल्हि हमारी बार ।।'—कबीरदासजी

**( २ ) 'विवेक'—क्या तो सत्य है और क्या असत्य—इस ज्ञानको विवेक कहते हैं।**

( ८९ )

मेरो मन हरिजू ! हठ न तजै।
निसिदिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाउ निजै ।। १ ।।
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहिं भजै ।। २ ।।
लोलुप भ्रमत गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै † ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै ।। ३ ।।

† यहाँ एक मात्रा बढ़ती है।

हौं हारयौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अनुभवति=अनुभव करती है । अनुकूल= प्रसन्न । सूल=कष्ट । भजै=संभोग करती है । गृहपसु=कुत्ता । पदत्रान=जूता । अजै=अजय ।

भावार्थ—हे हरे ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता । हे नाथ ! यद्यपि दिन-रात अनेक प्रकारका उसे उपदेश करता हूँ, पर वह अपने ही स्वभावकी करता है, प्रकृति नहीं छोड़ता ॥ १ ॥ जैसे स्त्री संतान-जननेका अनुभव करती है और उस समय उसे अत्यन्त असह्य कष्ट होता है, पर वह मूर्खा सारे विगत दुःख भूलकर फिर ( बार-बार ) प्रसन्न चित्तसे दुष्ट पतिके पास जाती है, उससे संभोग करती है ॥ २ ॥ और जैसे लाचारी कुत्ता जहाँ जाता है वहीं उसके सिरपर जूता पड़ता है, पर वह दुष्ट फिर उसी रास्तेपर जाता है, कभी जरा शर्माता भी नहीं है ॥ ३ ॥ मैं अनेक प्रकारके यत्न कर-कर हार गया हूँ ( पर यह मन समझाये नहीं समझता ) यह मन अत्यन्त बलवान् और न जीते जाने योग्य है । हे तुलसीदास ! यह तो तभी वशमें हो सकता है, जब प्रेरणा करनेवाले भगवान् स्वयं इसे रोकें, अन्यथा नहीं ॥ ४ ॥

**टिप्पणी ( १ ) 'करत सुभाउ निजै'—इसपर सूरदासजीका निम्नलिखित पद बड़ा ही सुन्दर है—**

प्रकृति जो जाके अंग परी ।
स्वान-पूँछ को कोटिक लागै, सूधी कहुँ न करी ॥
जैसे सुभख नहीं भख छाँड़ै जनमै जौन घरी ।
धाये रंग जात नहिं कैसेहुँ, ज्यों कारी कमरी ॥
ज्यों अति डसत उदर नहिं पूरत, ऐसी धरनि धरी ।
सूर होइ सो होइ सोच नहिं, तैसेहिं एऊ री ॥

**( २ ) 'अतिसै प्रबल अजै'—गीतामें भगवान्ने कहा है—**

'असंशयं महाबाहो ! मनो दुर्निग्रहं चलम्' ॥ ( गीता )
'मन-गयंद मानै नहीं, चलै सुरत के साथ ।
दीन महावत क्या करै, अंकुस नाहीं हाथ ॥—कबीरदास

( ९० )

* ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति-सुरसरिता आस करत ओसकन की ॥ १ ॥
धूम—समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की ॥ २ ॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसारि आनन की ॥ ३ ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—गच=भूमि, दीवार। सेन=बाज़। जड़=मूर्ख। छति=(क्षति) हानि।

**भावार्थ**—इस मनकी कुछ ऐसी मूढ़ता है, कि श्रीराम-भक्तिरूपी गंगाको त्यागकर ओसकी बूँदोंकी आशा करता फिरता है। भाव, भगवदानन्द छोड़कर क्षणिक विषयानन्दकी ओर दौड़ता है ॥ १ ॥ जैसे प्यासा पपीहा बहुत-सा धुँआ देखकर उसे मेघ समझ लेता है। (किन्तु वहाँ जानेपर) न वहाँ शीतलता ही है और न पानी ही। इतना नहीं, आँख मुफ्तमें फोड़ लेता है। भाव, यह जीव जब विषयोंकी ओर यह समझकर, कि इनके सेवन करनेसे मेरा दुःख दूर हो जायगा, दौड़ता है, तब उसे सुखके बदले उलटा कष्ट मिलता है ॥ २ ॥ और जैसे मूर्ख बाज़ काँचकी दीवारमें अपने ही शरीरका प्रतिबिम्ब

---

* महामहोपाध्याय प० सुधाकरजी द्विवेदी-रचित संस्कृतानुवाद देखिए—

'एतादृशी मूढ़ता मनसः।
रामभक्ति-सुरसरितं हित्वा, वाञ्छति कणं कुपयसः ॥
धूमपटलमवलोक्य चातको, बुध्वा यथाभ्रमलसः।
लभते तत्र न शीतलमम्भो, दृग्वैरिणं च वयसः ॥
श्येनः काचकुट्टिमे दृष्ट्वा, तं बिम्बमतिरभसः।
पतति तत्र परपतत्रिरूपे, हानिमुपैति च वचसः ॥
मनमः किं वर्णये जड़त्वं, करुणानिधे कुशयसः।
कृत्वाऽऽत्मपणात्रपा जनस्यापहर, दुःखमति तपसः ॥'

देखकर उसे दूसरा ( प्रतिद्वन्द्वी ) बाज़ समझ उसपर भूखके मारे, अपने मुखकी हानि भूलकर, जल्दीसे टूट पड़ता है। ( पर वहाँ क्या रखा है, उसीका मुख घायल हो जायगा )। सारांश यह, कि विषयोंमें सिवा दुःखके सुख तनिक भी नहीं है ।। ३ ।। हे कृपाके भाडार! मैं इस कुचालका कहाँतक बखान करूँ, आप तो अपने जनोंकी दशा जानते ही हैं, क्योंकि आपका नाम अन्तर्यामी है। हे प्रभो! तुलसीदासका दारुण दुःख दूर कर दीजिए और ऐसा कर अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिए, क्योंकि यह आपकी प्रतिज्ञा है कि मैं शरणागतकी रक्षा करता हूँ ।।४।।

**टिप्पणी—( १ ) 'परिहरि·······ओस-कनकी'—सूरदासजी यों कहते हैं—**

'परम गगजल छाँड़ि पियासो नभ महँ कूप खनावै ।'

**( २ ) 'ज्यों गच·······आननको'—इसे कबीरदासजी इस प्रकार खींच रहे हैं—**

दर्पन केरी जो गुफा, सोनहा पैठो धाय ।
देखत प्रतिमा आपनी, भूकि,भूकि मरि जाय ।।

**( ३ ) 'निज पन'—वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है—**

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।।'

**रामानन्दी वैष्णवोंमें इस मंत्रकी बड़ी महिमा है ।**

( ९१ )

* नाचत ही निसिदिवस मर्‍यो ।
तब ही तें न भयो हरि! थिर जब तें जिव नाम धर्‍यो ।। १ ।।

---

* सूरदासजी यों लिखते हैं—

'अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषयकी माल ।।
महामोह को नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।
भरम भर्‍यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ।।
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया कौ कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दिय भाल ।।

बहु बासना बिबिध कंचुकि† भूषन लोभादि भरयो ।
चर अरु अचर गगन जल थल मे, कौन न स्वाँग करयो ।।२।।
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबरयो ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुःख काहू तो न हरयो ।।३।।
थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुरयो ।
अब रघुनाथ ! सरन आयो जन, भव-भय बिकल डरयो ।।४।।
जेहि गुन तें बस होइ रीझि करि, सो मोहि सब बिसरयो।
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन परयो ।।५।।

शब्दार्थ—थिर=स्थिर, शान्त । जिव=जीव । कंचुकि=नाचनेके वस्त्र । स्वाँग=तमाशा । उबरयो=बचा, शेष रहा ।

भावार्थ—हाय ! दिन-रात नाचते-नाचते ही मरा, बार-बार जन्मा और बार-बार मरा । हे हरे ! जबसे आपने "जीव" नाम रखा, तभीसे यह कभी शान्त नहीं हुआ ।।१।। ( नाचते समय ) नाना प्रकारके इच्छारूपी वस्त्र तथा लोभ आदि अलंकार धारण कर जड़ और चैतन्य एवं पृथ्वी, पाताल और आकाशमे ऐसा कौनसा स्वाँग बचा, जो न किया हो ।। २ ।। देवता, दैत्य, मुनि, सर्प, मनुष्य आदि ऐसा कोई भी न रहा, जिससे मैंने कुछ-न-कुछ माँगा न हो, पर इनमेसे किसीने भी मेरा यह ( नाचनेका, जन्म-मरणका ) दारुण दुःख दूर न किया ।।३।। अब नेत्र, पाँव, हाथ और बुद्धि तथा बल सभी थक गये हैं, सबने मुझे अकेला छोड़ दिया है अर्थात् इन्द्रियाँ भी विदा ले गयी हैं, अब हे रघुनाथजी ! संसारके भयसे डरा हुआ आपकी शरणमें आया हूँ ।।४।। हे नाथ ! जिन गुणोंपर रीझकर आप प्रसन्न होते हैं, वह सब मै भूल गया हूँ, आप जैसे

---

कोटिक कला काँछि' देखराई, जलथल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अबिद्या, दूरि करौ नंदलाल ।।'

बलिहारी ! नृत्यका सांगोपांग रूपक लिखकर आपने कवि-कल्पनाका सजीव चित्र अंकित कर दिया है ।

† पाठान्तर 'कचुक' ।

खुश होते हैं, यह मैं नहीं जानता। हे प्रभो! अब तो आप तुलसीदासको अपने द्वारपर ही पड़ा रहने दीजिए, वह और कुछ नहीं चाहता ॥ ५ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'जब ते जिव नाम धरयो'—जीव परमात्माका अंश है जैसा कि गीतामें कहा है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'

किन्तु मायाके आच्छादनसे इसमें 'सत्' और 'चित्' तो रहा है, पर 'आनन्द' भूल गया है। इससे अनेक यातनाएँ सहता है, चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रम रहा है।

( २ ) 'जेहि गुन ते बस होहु'—किन गुणोंसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, यह रामचरित मानसमें लिखा है—

'बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा हरि-आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृनसम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥

( ३ ) 'द्वार....परयो'—कविवर बिहारीलाल भी स्वरमें स्वर मिला रहे हैं—

'हरि कीजत तुम सों यहै, बिनती बार हजार।
जिहि-तिहि भाँति डर्यो रहौं, पर्यो रहौं दरबार ॥

( ९२ )

माधवजू! मो सम मन्द न कोऊ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति, मोहि नहि पूजैं ओऊ ॥ १ ॥
रुचिर रूप-आहार-बस्य उन्ह, पावक लोह न जान्यो।
देखत बिपति विषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो ॥ २ ॥
महामोह-सरिता अपार महँ, संतत फिरत बह्यो।
श्रीहरिचरन-कमल नौका-तजि, फिरि फिरि फेन गह्यो ॥ ३ ॥
अस्थि पुरातन† छुधित स्वान अति ज्यौं भरि मुख पकरै‡।
निज तालूगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरै ॥ ४ ॥
परम कठिन भवब्यालग्रसित हौं त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपतिनाथ बिसारी ॥ ५ ॥

† पाठान्तर 'पुराना'। ‡ पाठान्तर 'पकरयो, धरयो।'

जलचर-बृन्द जाल-अन्तरगत होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिं देखत निज नासा ।। ६ ।।
मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिं पावै ।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै ।। ७ ।।

शब्दार्थ—पूजैं=बराबरी करते हैं। ओऊ=वह भी। वश्य=अधीन। अयान्यो=मूर्ख। भेक=मेढक। खगपति=गरुड़। सारद=सरस्वती, शारदा।

भावार्थ—हे माधवजी! मेरे समान कोई भी मूर्ख नहीं है। यद्यपि मछली और पतिंगे मूर्ख कहे जाते हैं, पर मेरी बराबरी वे भी नहीं कर सकते, मैं उनसे कहीं बढ़कर मूर्ख हूँ ।। १ ।। पतिंगेने सुन्दर रूप देखकर दीपकको आग नहीं समझा और मछलीने आहार के वश हो लोहेका काँटा नहीं जाना, दोनों ही बिना जाने जले और फँसे, किन्तु मैं कष्ट देख-देखकर भी विषयसंग नहीं छोड़ता हूँ; अतएव मैं उन दोनोंसे अधिक अज्ञानी हूँ ।। २ ।। महामोहरूपी अपार नदींमे सदा बहा-बहा फिरता हूँ, भगवान्‌के चरण-कमलोंकी जो नाव है, उसे छोड़कर बराबर फेन, अर्थात् क्षणिक विषय-सुख, पकड़ता हूँ। (यह मूर्खता नहीं, तो क्या है) ।। ३ ।। जैसे भूखा कुत्ता, पुरानी पड़ी हुई हड्डीको मुँहमे भरकर पकड़ता है और तालूमें अटक जानेसे जो रुधिर बहता है, उसे चाट-चाटकर बड़ा प्रसन्न होता है, यह नहीं समझता कि यह रक्त तो मेरे ही शरीरका है। इसी प्रकार मनुष्य विषयसंगमें अपने ही वीर्य-पराक्रमको नाश कर झूठे सुखसे सुखी होता है ।। ४ ।। मैं संसार-रूपी साँपसे डसे जानेके कारण बड़ा ही डरा हुआ हूँ, तथापि गरुड़गामी भगवान्‌की शरणमें न जाकर मेढककी शरणमें जाता हूँ। भाव, जो स्त्री-पुत्रादि स्वयं काल-कलेवा हैं, उनसे अपनी रक्षा कराता फिरता हूँ। भला, मुझ-सरीखा कोई मूर्ख होगा! ।। ५ ।। जैसे जलमें रहनेवाले जीवोंके समूह जालमें सिमट-सिमट कर इकट्ठा हो जाते हैं और लोभवश एक दूसरेको खाते हैं, अपना भावी नाश नहीं देखते (वैसे ही, हम सब इस जगज्जालमें फँसे हुए एक दूसरेसे लड़ते-झगड़ते हैं, यह नहीं जानते, कि फँसानेवाला काल-रूपी धीमर थोड़ी देरमें हम सबको स्वाहा कर देगा) ।। ६ ।। यदि सरस्वती भी अनन्त युगोंतक मेरे पापोंकी गणना करे, तो भी उनका अन्त न पा सकेगी। पर तुलसीदासके मनमें तो यह पूरा विश्वास है, कि उनके स्वामी श्रीरघुनाथजी पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः मेरा भी उद्धार कर देंगे ।। ७ ।।

टिप्पणी—( १ ) 'महामोह-सरिता'—रामचरितमानसमें गोसाईंजीने इसे और भी सुन्दर सांगोपांग रूपसे लिखा है—

'नर-तनु भव बारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।
करनधार सतगुरु दृढ़ नावा। दुरलभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरइ, भवसागर, नर-समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आतमहन गति जाइ॥'

श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहा है—

'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धि न तरेत्स आत्महा।'

( २ ) 'खगपति-नाथ'—यहाँ यह शब्द बहुत ही उपयुक्त है। गरुड़ सर्पका भक्षक है। वह अपने स्वामी, विष्णु, की आज्ञा से उसे तुरन्त खा जायगा।

( ३ ) 'मेरे····· पावै'—इस पाप-बाहुल्यपर सूरदासजी कहते हैं—

'कोउ न मोसम अघ करिबे कों खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज 'सूर' पतितन में, हम हू ते को नीको॥'

( ६३ )

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम!
जेहि करुना सुनि स्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजि धाम॥ १॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन्हों।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलंब न कीन्हों॥ २॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसिदिन प्रहलाद-प्रतिग्या राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज-तनु दनुज हत्यो स्रुति साखी॥ ३॥
भूप-सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु, राखु कह्यो नर-नारी।
बसन पूरि, अरि-दर्प दूरि करि, भूरि कृपा दनुजारी॥ ४॥
एक एक रिपु तें त्रासित जन, तुम राखे रघुबीर।
अब मोहि देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर॥ ५॥
लोभ-ग्राह, दनुजेस-क्रोध, कुरुराज-बन्धु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार॥ ६॥

शब्दार्थ—नागराज = गजेन्द्र । खगपति = गरुड़ । दितिसुत=हिरण्यकशिपु से तात्पर्य है । त्रसित = भीत, डरा हुआ । मृगराजमनुज = नरसिंहरूप । सदसि= सभामें । नर-नारी = अर्जुनकी स्त्री, द्रौपदी । दर्प = घमंड । कुरुराजबन्धु = दुर्योधनका भाई दुःशासन । मार = कामदेव । उदार = कृपालु ।

भावार्थ—हे रामजी ! आपने अब उस करुणाको कहाँ भुला दिया, जिसे सुनकर आप दीन-दुखियोंका उद्धार करनेके लिए अपना लोभ छोड़कर दौड़ आते थे ? ॥ १ ॥ जब गजेन्द्रने अपने पुरुषार्थकी ओर देखकर और मन मारकर आपके चरणोंमें चित्त लगाया, प्रीति की, तब आप उसकी सकरुण वाणी के सुनते ही, गरुड़को वहीं छोड़कर तुरन्त दौड़ आये, क्षणमात्रकी भी देरी न की ॥२॥ हिरण्यकशिपुसे भयभीत प्रह्लादकी भी पैज आपने पूरी की; ( उसे दिन-रात राम-नाम लेनेसे उसका पिता हिरण्यकशिपु डाँट-डपट बतलाता था, पर वह सत्याग्रही वीर, अनेक यातनाएँ सहनेपर भी राम-नाम नहीं छोड़ता था । ) आपने महान् बलवान् सिंह और मनुष्यका ( नृसिंह ) शरीर धरकर उस दैत्य ( हिरण्यकशिपु ) को मार डाला, इस बातका साक्षी वेद है ॥३॥ महाराज धृतराष्ट्रकी सभामें ( दुःशासनके हाथसे अपनी लज्जा जाती देखकर ) जब अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीने पुकारकर कहा, कि हे नाथ ! मेरी रक्षा कीजिए, तब हे दैत्यविनाशक ! आपने वहाँ उसके शरीरकी लाज रखनेके लिए ) वस्त्रोंका ढेर लगाकर तथा शत्रुओंका घमंड मिट्टीमें मिलाकर बड़ी कृपा की ॥४॥ हे रघुनाथजी ! आपने इन सब भक्तोंकी रक्षा, एक ही एक शत्रुसे सताये जानेपर, की है, पर यहाँ तो मुझे बहुतसे शत्रु, एक साथ ही, दारुण दुःख दे रहे हैं । फिर आप मेरी यह सांसारिक यातना क्यों नहीं दूर कर देते ? ॥ ५॥ लोभरूपी मगर, क्रोधरूपी दैत्यराज हिरण्यकशिपु और दुष्ट कामदेवरूपी दुर्योधनका भाई दुःशासन, ये सब मुझ तुलसीदासको बड़ा दुःख दे रहे हैं । हे कृपालु रामजी ! मेरे इन शत्रुओंका नाश कीजिए ॥ ६ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'कृपा'—भगवान्की भक्त-वत्सलता पर जो प्रतिज्ञा है, उसे सूरदासजी ने क्या ही ओजस्वी शब्दोंमें लिखा है—

'हम भक्तन के, भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन, परतिग्या मेरी, यह ब्रत टरत न टारे ॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पाय-पयादे धाऊँ ।

जहँ-जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सों निज बैरी मेरो ।
देखि बिचारि, भक्तहित-कारन, हाँकत हौ रथ तेरो ॥
जीते जीत भक्त अपने की, हारे हारि बिचारौ ।
सूरदास, सुनि भक्त-बिरोधी, चक्र सुदर्शन जारौं ॥'

( २ ) 'नागराज'—८३ पदकी टिप्पणी देखिए ।

( ३ ) 'दिति सुत ···· साखी'—प्रह्लादका सत्याग्रह प्रसिद्ध है । इनका पिता हिरण्यकशिपु इन्हें राम-नाम लेनेसे रोकता था, और यह बराबर 'राम-राम' ही कहा करते थे । उसने सब प्रकार से इन्हें रोका, पर यह न माने । अन्तमें, उसने एक खम्भे से इन्हें बाँध दिया और तलवार लेकर इन्हें मारनेको तैयार हो गया । भक्तवत्सल भगवान् नृसिंह-रूपसे खम्भा फाड़कर निकल आये और देखते-देखते हिरण्यकशिपुको चीर-फाड़ डाला । प्रह्लादकी महाभागवतोंमें गणना है । कवित्त-रामायणमें गोसाईं जीने प्रह्लादपर क्याही उत्तम पद्य लिखा है—

'आरत-पाल कृपाल जो राम जुही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े ।
नाम प्रताप महामहिमा अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े ।
सेवक एक-ते-एक अनेक भये तुलसी तिहुँताप न माढ़े ।
प्रेम बड़ो प्रहलादहि को, जिन पाहन ते परमेसुर काढ़े ॥'

( ४ ) भूप सदसि ···· दनुजारी'—जब दुर्योधनने पांडवोंका सर्वस्व जुएमें जीत लिया; तब द्रौपदीको भी दाँवपर रखवा लिया । दुःशासन द्रौपदीके केश पकड़कर उसे भरी सभामें ले आया और लगा उसकी साड़ी खींचने । पाँचों पांडव, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि सभी बैठ रहे, किसीने भी दुर्योधनके डरके मारे बेचारीकी मर्यादा न बचाई । तब तो वह करुणासिंधु भगवान् को पुकारने लगी । भगवत्कृपासे उसकी साड़ी इतनी लम्बी हो गई, कि दुःशासन उसे खींचते-खींचते थक गया, पर ओर-छोर न पा सका । इस प्रसंगपर अनेक कवियोंने, अतिशयोक्तिके साथ, अनेक पद्य लिखे हैं । निम्नलिखित एक कवित्त देखिए—

'पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो, द्रुपद-सुता को चीर गहे भीर भारी है ।
भीषम, करन द्रोन बैठे ब्रतधारी तहँ, कामिनी की ओर काहू नेक न निहारी है॥

मुनिकै पुकार धाये द्वारका ते जदुराई, बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है, कि सारी ही कि नारी है कि नारीहीकी सारी है॥

(५) 'लोभ ग्राह . ...मार'—श्रीबैजनाथजीने, अपनी टीकामें, लोभ आदिका रूपक इस प्रकार बाँधा है—

लोभ = ग्राह; मन = गयन्द; भव = सागर। क्रोध = हिरण्यकशिपु; शुद्धचित्त= प्रह्लाद। काम = दुःशासन; बुद्धि = द्रौपदी; मर्यादा = साड़ी।

(९४)

काहे ते हरि! मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो॥१॥
पतित-पुनीत दीनहित असरन-सरन कहत स्रुति चारो।
हौं नहि अधम सभीत दीन? किधौं, बेदन मृषा पुकारो?॥२॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ, तहँ हौंहूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान, परसत पनवारो फारो॥३॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो, तुव निदेस तें न्यारो।
तौ हरि रोप भरोस दोप गुन तेहि भजते तजि गारो॥४॥
मसक बिरञ्चि, बिरञ्चि मसक सम, करहु प्रभाउ तुम्हारो।
यह सामरथ अछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो॥५॥
नाहिन नरक परत मो कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नामहु पाप न जारो॥६॥

शब्दार्थ— मृषा = असत्य। हौं = मुझे भी। पनवारो = पत्तल; यह शब्द बुन्देलखण्डी है। गारो = झगड़ा, झंझट। मसक = मच्छर। अछत = होते हुए।

भावार्थ— हे हरे! मुझे आपने किस कारणसे भुला दिया? हे नाथ! आप अपनी महीमा और मेरे पाप, इन दोनो ही बातोको जानते है, फिर भी आपने मेरी रक्षा न की!॥१॥ चारो वेद कहते है, कि आप नीचोका उद्धार करनेवाले, गरीबो के हितू और जिन्हे कोई भी शरण न दे, उन्हें भी शरण देनेवाले हैं, तो क्या मै नीच, भयभीत या दीन नहीं हूँ, अथवा क्या वेदों ने ही यह झूठ-मूठ कह दिया है?॥२॥ पक्षी (जटायु गीध), गणिका (पिंगला), हाथी, बहेलिया (वाल्मीकि) आदि इन सबकी जहाँ पंक्ति थी वहाँ मैं भी बैठ गया, अथवा आपने वहाँ मुझे बिठा दिया; अब हे कृपासिंधो! आपको क्या शर्म आ गयी, जो उस पंक्तिमें मेरी

परसी हुई पत्तलको फाड़ रहे हैं ? भाव यह है कि, मुझे पूरा भरोसा था कि मैं पापियोंकी पाँतिमें बैठकर भोजन करने योग्य हूँ और आपने ही मुझे वहाँ ला बिठाया, पर अब क्या हुआ, जो मुझे वह अधिकार न मिल सका, मैं आपकी शरणमें न जा सका, ससार-सागरसे न तर सका ? ॥३॥ यदि कलिकाल ही पराक्रमी होता और आपकी आज्ञा न मानता होता, तो हमलोग तुम्हारी आशा छोड देते, तुम्हारा गुणगान भी न करते और क्रोधकर उस बेचारेको जो भला-बुरा कहते है, सो भी न कहते; बस, सब झंझट छोड़-छाड़कर उस कलि-राजका ही भजन करते, जिससे कम-से-कम वह विघ्न-बाधा तो न करता ?॥४॥ आप मच्छर से ब्रह्मा और ब्रह्मासे मच्छर बना सकते हैं, ऐसा आपका प्रताप है, पर यह सब सामर्थ्य होते हुए भी आप मुझे त्याग रहे हैं, हे नाथ ! इसमें मेरा क्या वश है। भाव, जो चाहे सो कीजिए ॥५॥ यद्यपि सब प्रकारसे हार चुका हूँ, मुझे नरकमें जानेका भी कुछ भय नहीं है, किन्तु मुझ तुलसीदासको खेद है तो इस बातका है कि, आपके नामने भी मेरे पापोको न जलाया, अर्थात् आपके नाममें कुछ शक्ति न रही; नाम मुफ्तमें ही बदनाम होगा, यही डर है और कुछ नहीं ॥६॥

टिप्पणी—( १ ) 'खग'—४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'गनिका'—पिंगला नामकी एक वेश्या थी। एक दिन जब उसका प्रेमी आधीरात तक न आया और वह शृंगार किये उसकी राह देखती रही, तब उसे बड़ी ही ग्लानि हुई। कहने लगी, यदि जितनी देरतक इसकी राह देखती रही उतनी देर भगवद्भजन करती तो मेरा उद्धार ही न हो जाता ? यह विचारकर, उस दिनसे वह वेश्यावृत्ति छोड़कर सच्चे हृदय से राम-नाम जपने लगी। भगवत्कृपासे वह मुक्त हो गई।

( ३ ) 'गज'—८३ पदकी टिप्पणी देखिए।

( ४ ) 'ब्याध'—वाल्मीकिसे तात्पर्य है। यह पहले बहेलिया थे। पीछे सनकादिकके उपदेशसे, जीवहिंसा छोड़कर, भगवद्भजन करने लगे और भजनके प्रतापसे महर्षि हो गये। कहा भी है—

'उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भे ब्रह्मसमाना॥'

( ५ ) 'मसक ··· सम'—संभवको असंभव और असंभव को संभव कर दिखानेवाला ईश्वर। प्रमाण है—

'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुन् समर्थः हरिः।'

( ६५ )

तऊ न मेरे अघ/अवगुन गनि हैं ।

जौ जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनि हैं ॥ १ ॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के, असमञ्जस जिय जनिहैं ।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों, मेरी भूरि भलाई भनिहैं * ॥ २ ॥
हँसि करिहैं परतीति भक्त की, भक्त सिरोमनि मनिहैं ।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति, अपनायहि पर बनिहैं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—अनिहैं = लायेंगे । खलल = बाधा । भूरि = अधिक । भनिहैं = कहेंगे । मनिहैं = मानेंगे ।

भावार्थ—यदि यमराज सब काम-काज छोडकर सिर्फ मेरे ही पापोके हिसाब-किताबका विचार मनमें लायेंगे, तो भी मेरे पापों और दुर्गुणोका लेखा न कर सकेंगे । भाव, मैंने इतने अधिक पाप कमाये हैं कि यमराज तक उन्हें नही गिन सकने ॥१॥ (जब वह मेरे पापोका हिसाब करने लगेंगे, तब उन्हें इधर प्रवृत्त देख कर उधर) पापियोंके झुण्ड-के झुण्ड कैदसे छुटकर भागने लगेंगे । तब तो उनके मनमे बडी चिन्ता होगी । अपने अधिकारमे (मेरे कारणसे) बाधा पडते देखकर (वह मेरा हिसाब-किताब छोडकर) भगवान्‌से मेरी झूठी ही खूब तारीफ कर देंगे (कि तुलसीदासने आपका भजन किया है, उसने एक भी पाप नहीं किया) ॥२॥ भगवान् भी मुसकराकर मुझपर विश्वास कर लेंगे (क्योंकि जब स्वयं यमराजकी सिपारिश पहुँच गई, तब और सुबूत क्या चाहिये ?) और मुझे भक्तोंमें शिरोमणि मान लेंगे । साराश यह कि, कोशलेश ! आपको जैसे-तैसे मुझे अपनाना ही पडेगा ॥ ३ ॥

टिप्पणी—( १ ) गोसाईंजीने इस पदमें 'ख्याल' और 'खलल' ये दो फ़ारसीके शब्द प्रयुक्त किये हैं । इनकी अन्यान्य रचनाओंमें भी फारसीके शब्द पाये जाते है । सूरदासजीने भी फ़ारसी शब्दोंका प्रयोग किया है और ऐसा करना ठीक भी है । जो शब्द बोलचालमें प्रचलित हो गये हैं, उनका बहिष्कार करना उचित नहीं है ।

( ९६ )

जो पै जिय धरिहौ अवगुन जनके ।

तौ क्यों कटत सुकृत-नख ते मोपैं†, बिपुल‡ बृन्द अघ-बनके ॥ १ ॥

---

* इस चरणमें चार मात्राएँ बढती है । † इस शब्दको "मुप" करके पढ़ें तो ठीक हो जाता है । ‡ पाठान्तर 'विटप' ।

कहिहै कौन कलुष मेरे कृत, कर्म बचन अरु मन के।
हरिहैं*अमित सेष सारद स्रुति, गिनत एक इक छन†के ॥२॥
जौ चित चढ़ै नाम-महिमा निज, गुनगन पावन पन के।
तौ तुलसिहि तारिहौ बिप्र ज्यों, दसन तोरि जमगन के ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि कहीं आप इस दासके दोषोंको मनमे लायेंगे, उन-पर ध्यान देंगे, तो मै पुण्यरूपी नखसे पापरूपी बड़े-बड़े वन-समूह कैसे काट सकूँगा ? भाव, मेरा पुण्य न होनेके बराबर है, उसके प्रभावसे भला पापों के भारी-भारी जंगल कैसे कट सकते हैं ॥१॥ मैंने जितने पाप, कर्म, वचन और मनसे किये हैं, उनका बखान भला कौन कर सकता है ? एक-एक क्षणके किये हुए पापोका लेखा लगानेमें अनेक शेष, सरस्वती और वेद थक जायँगे ॥२॥ हाँ, जो (मेरे पापोंकी ओर ध्यान न देकर) आपके मनमें अपने नामकी महिमा और उद्धार करनेकी गुणावलीका प्रण आ जाय, तो आप यमदूतोंके दाँत तोड़कर तुलसीदासको वैसेही संसार-सागरसे पार कर देंगे, जैसे कि अजामेल ब्राह्मणको किया था ॥३॥

टिप्पणी--( १ ) 'नाम-महिमा'—राम-नाम अथवा भगवान् के किसी भी नामका माहात्म्य किसीसे छिपा नहीं है। हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धके अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुका यह सिद्धान्त था कि—

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥'

तथा--

कलियुग केवल नाम-अधारा। जानि लेहि जो जाननिहारा ॥

( २ ) 'गुन-गन'—दया, शील, वात्सल्य, सौलभ्य, क्षमा, करुणा, कृतज्ञता, सौहार्द्र आदि भगवान्के दिव्यगुण हैं।

( ३ ) 'विप्र'--अजामेल ५७ पदकी, चौथी टिप्पणी देखिए।

( ४ ) 'तौ क्यों कटत......बनके'—यह बड़ीही सुन्दर कल्पना है। नखसे वनका काट डालना गोसाईंजी-सरीखे महाकवियोंको ही सूझ सकता है।

---

* पाठान्तर 'हारहिं'। † पाठान्तर 'छिन'।

( ९७ )

जो पै हरि जनके औगुन गहते।

तौ सुरपति कुरुराज बालि सों, कत हठि बैर बिसहते॥ १॥
जौ जप जाग जोग ब्रत बर्जित, केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोप-गेह बसि रहते॥ २॥
जौ जहँ तहँ प्रन राखि भक्त को, भजन-प्रभाव न कहते।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते॥ ३॥
जौ सुतहित लिय नाम अजामिलके अघ अमित न दहते।
तौ जमभट साँसति-हर हम-से बृषभ खोजि खोजि नहते। ४॥
जौ जगबिदित पतितपावन, अति बाँकुर बिरद न बहते।
तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी-से, सपनेहुँ सुगति न लहते॥ ५॥

शब्दार्थ--कत = क्यों, कैसे। बिसहते = बिसाहते, ठानते। बर्जित = रहित। साँसति=यातना। नहते = जोतते। बाँकुर = बाँका, अनूठा।

भावार्थ--यदि भगवान् अपने सेवकोंके दोषोंको ही मनमें लाते, तो इन्द्र, दुर्योधन और बालिसे क्यों हठपूर्वक शत्रुता कर बैठते?॥१॥ यदि आप जप, यज्ञ, योग,व्रत आदि छोड़कर केवल प्रेम न चाहते, तो देवता और श्रेष्ठ मुनियोंको त्यागकर ब्रजमें गोपोंमें यहाँ किसलिए रहते?॥ २॥ जो आप जहाँ-तहाँ भक्तों-की पैज रखकर भजनका प्रभाव न कहते, तो हम सरीखे जीव इस कलियुगके कराल कर्म मार्गपर किस प्रकार चल सकते, कैसे हमारा निर्वाह हो सकता?॥३॥ यदि आपने उस अजामेलके अनन्त पापोंको भस्म न किया होता, जिसने पुत्र-भावनासे ही आपका नाम (नारायण) लिया था, तो यमदूत हम-जैसे बैलोंको खोज-खोजकर आज यातनारूपी हलमें जोतते होते॥ ४॥ यदि आपने जगत्-उजागर पापियोंका उद्धार करनेवाला बाँका बाना न लिया होता तो अनेक कल्पों-तक यह दुष्ट तुलसीदास स्वप्नमें भी मुक्तिका भागी न हो पाता॥ ५॥

टिप्पणी--( १ ) ९६ और ९७ पदका पूर्वापर सम्बन्ध है। पहले पदमें कहा गया है कि, हे रामजी! आप अपने जनोंके अवगुण चित्तमें न लाइए, इत्यादि इस पदमें गोसाईंजी को निश्चय हो गया है, कि हमारे स्वामी कभी भक्तोंके अवगुणों पर ध्यान नहीं देते।

( २ ) 'सुरपति'— एकबार देवर्षि नारद स्वर्गसे पारिजात पुष्प लाकर रुक्मिणिको दे गये। सत्यभामा ( श्रीकृष्णकी दूसरी रानी ) ने सौतिया डाहसे, उसको लेना चाहा, पर मिले तो कैसे ! सत्यभामाके मान करनेपर श्रीकृष्ण स्वर्गमें इन्द्रसे लड़-भिड़कर, वहाँ से पारिजातका वृक्ष ही उखाड़ लाये और सत्यभामाके भवनमें उसे लगा दिया। सत्यभामाका हठ और मान यद्यपि अवगुण था, किन्तु भक्त-अधीन भगवान्‌ने उसपर कुछ ध्यान न दिया।

( ३ ) 'कुरुराज' दुर्योधन; पाँडवोंके कारण श्रीकृष्ण भगवान्‌को कौरवोंके विरुद्ध लड़ना पड़ा। द्रौपदीको पाँचो भाइयोंके बीच रख लेना, जूवा खेलना आदि पांडवोंके प्रत्यक्ष दोष थे, किन्तु उनकी भक्ति देखकर भगवान्‌ने उनका ही पक्ष लिया और दुर्योधनसे शत्रुता बिसाह ली।

( ४ ) 'बालि'—सुग्रीवका पक्ष लेकर निरपराध बालिको मारकर रघुनाथजी ने उपर्युक्त उदाहरणोंकी पुष्टि की।

( ५ ) 'ब्रज गोपगेह'—इस प्रसंगपर निम्नलिखित सवैया ही काफ़ी है—

'ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन बेदन, भेद सुन्यो चित चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ वह कैसो स्वरूप औ कैसे सुभायन॥
ढूँढत-ढूँढत ढूँढि फिर्‌यो 'रसखानि' बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यो कहाँ? वह कुंज-कुटीर में बैठ्यो पलोटत राधिका-पायन'॥—रसखान

( ६ ) 'अजामेल'—५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ९८ )

ऐसी हरि करत दास पर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस, होत सदा यह रीति॥ १॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोरी।
सोई अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि, बाँध्यो सकत न छोरी॥ २॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥ ३॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता, बरु ह्वै द्विज माँगी भीख॥ ४॥
जाको नाम लिये छूटत भव-जन्म-मरन दुख-भार।
अंबरीष-हित-लागि कृपानिधि, सोइ जनमें दस बार॥ ५॥

जोग बिराग ध्यान जप तप करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी।
बानर भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी ॥ ६ ॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत-करधारी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—अविच्छिन्न = अखंड, कला-रहित। लीख = लीक, रेख। बरु = उलटे। पामर = नीच। रति = प्रीति।

भावार्थ—भगवान् अपने सेवकपर इस प्रकार प्रेम करते है। अपनी महिमा भूलकर वह भक्तके अधीन हो जाते हैं, उनकी सदासे यही रीति चली आती है ॥१॥ जिसने देवता, दैत्य, सर्प और मनुष्योंको कर्मरूपी मज़बूत रस्सीसे बाँध रखा है ( कर्मोमे फँसा रखा है ) उसीको, उसी अखंड परमात्माको, यशोदाजीने ज़बरदस्ती बाँध लिया और उस बन्धनको आप खोल भी नही सके ॥२॥ जिसकी मायाके अधीन होकर ब्रह्मा और शिवतकने नाच-नाचकर जिसका पार नही पाया, उसीको गोपियोंने करताल बजा-बजाकर नाच नचाया ॥३॥ वेदोंमें यह लीक है, पक्की लिखावट है, कि परमात्माका नाम विश्वम्भर, लक्ष्मीपति, त्रिलोकेश्वर आदि है, किन्तु राजा बलिके आगे, उसकी एक न चली, उलटे ब्राह्मण-भेप बनाकर उससे भीख माँगनी पडी ॥४॥ जिसका नाम स्मरण करनेसे संसारके जन्म मरणरूपी भारसे पिंड छूट जाता है, वही कृपासिन्धु, अम्बरीष भक्तके लिए, दस बार इस भूमण्डलपर अवतीर्ण हुआ ॥५॥ बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि जिसे योग, विराग, ध्यान, जप और तप कर-करके खोजते फिरते हैं, उसी नाथने बन्दर, रीछ आदि नीच पशुओंसे प्रेम किया ॥६॥ लोकपाल, यम, काल, पवन, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब जिसकी आज्ञा मानते हैं, वही प्रभु, हे तुलसीदास, महाराज उग्रसेनके द्वारपर हाथमें लकड़ी लिये खडा हैं ॥७॥

टिप्पणी—( १ ) 'सोइ अविच्छिन्न ·· छोरै' - एक बार यशोदाजीने श्रीकृष्णको किसी अपराधके कारण पेड़से कसकर बाँध दिया था। इतनेमें वहाँ कहींसे बलरामजी आ पहुँचे। देखकर चकित हो कहने लगे—

'निरखि स्याम हलधर मुसुकाने।
को बाँधै को छोरै इनको, यह महिमा एई पै जाने ॥
उत्पति प्रलय करत हैं एई, सेष सहसमुख सुजस बखाने।

यमलार्जुन को तोरि उधारत, कारन-करन करत मनमाने ॥
असुर सँहारन भक्तहि तारन, पावन-पतित कहावत बाने।
'सूरदास' प्रभु भाव भक्त के, अतिहित जसुमति-हाथ-बिकाने ॥'

( २ ) 'करतल ······ नचायो'—स्वर्गीय पण्डित रामेश्वर भट्टजीने इसका उलटा अर्थ किया है । लिखा है—उसीने हथेली पर ताल बजा-बजाकर गोपियोंको नाच नचाया।' सो क्या हुआ ? जब उसने ब्रह्मा तक को नचा डाला, तब उसके लिए गोपियाँ है हीं क्या ? यह बात नहीं हैं, 'गोपियोंने उसे नचाया,' यही स्पष्ट और सुसंगत अर्थ है । सूरदासजी भी कहते हैं—

'चुटकिन दै-दै ग्वालि गवावति, नाचत कान्ह बाल-लीला धरि।'

रसखानिने भी क्या खूब कहा है—

'सेस गनेम महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावै ॥
जाहि हिये लखि आनँद ह्वै जड मूढ हिये रसखानि कहावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥'

( ३ ) 'अम्बरीष'—महाराज अम्बरीष परमवैष्णव थे। एकादशीव्रत करने-वाले तो एक ही थे। एकबार द्वादशीके दिन दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे । राजाने उन्हें निमन्त्रण दिया, क्योंकि वह द्वादशीके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर-पीछे आप खाते थे। दुर्वासाजी स्नान करनेको चले गये और वहाँ बड़ा विलम्ब-कर दिया। उस दिन द्वादशी थोड़ी थी, उपरान्त त्रयोदशी आनेवाली थी। शास्त्रका प्रमाण है, कि द्वादशीमें पारण कर लेना चाहिए। ब्राह्मणोंके कहने से राजाने, यह दोष मिटानेके लिए, चरणोदक ले लिया । इतनेमें दुर्वासा आ गये। यह जानकर कि राजाने बिना मेरे आये जलपान कर लिया है, वह आग-बबूला हो गये। उन्होंने राजाको यह शाप दिया, कि तुझे जो यह घमंड है कि, मैं इसी जन्ममें मुक्त हो जाऊँगा सो मृषा है, अभी जलचर, नभचर, मनुष्य आदिके दशसहस शरीर धारण करने होंगे। उन्होंने कृत्या नामकी एक राक्षसी भी पैदा की। वह राजाको खानेको दौड़ी। उधर भगवान्ने चक्र सुद-र्शनको आज्ञा दी। उसने कृत्याको मारकर ऋषिका पीछा किया। ऋषि त्रिलोक में भागते फिरे, पर किसीने शरण न दी। लाचार अंबरीषके पैरोंपर गिर पड़े। राजाने चक्रको शांत कर दिया। विष्णु भगवान्ने दुर्वासासे कहा, कि

जो आपने मेरे भक्तको शाप दिया है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ, मैं दश शरीर धारण करूँगा।

पूज्यवर भट्टजीने इसका यह अर्थ किया है कि, 'उसी कृपाके समुद्रने अम्बरीप ( सरीखे भक्तों ) के लिए दश बार जन्म लिया।' इससे अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अम्बरीपके साथ 'सरीखे भक्तों' जोड़ना अनुपयुक्त जान पड़ता है। बैजनाथजीने उपर्युक्त कथाकी चर्चा की है, और है भी वह युक्तिसंगत।

( ४ ) 'उग्रसेन'—कंसके पिता और श्रीकृष्णके नाना, कंसके मरने पर इनको श्रीकृष्णने राजा बनाया था और आप बने थे मंत्री तथा द्वारपाल।

( ९९ )

बिरद गरीबनिवाज राम को।
गावत बेद पुरान संभु सुक, प्रगट प्रभाव नाम को ॥१॥
ध्रुव प्रहलाद बिभीषन कपिपति, जड़ पतंग पांडव सुदाम को।
लोक सुजस, परलोक सुगति इन्ह में को है राम काम को ॥२॥
गनिका, कोल, किरात आदिकबि, इन्हते अधिक बाम को।
बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को ॥३॥
छली मलीन हीन सब ही अँग, तुलसी सो छीन छाम को।
नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग, जुग जुग चालत चाम को ॥४॥

शब्दार्थ—बिरद = बाना। सुदाम=सुदामा। बाम=प्रतिकूल, नीच। बाजिमेध = अश्वमेध यज्ञ। छाम = पतला। चाम = चमड़ेका सिक्का।

भावार्थ—गरीबोंको निहाल कर देना-बस यही रामचन्द्रजीका बाना है। उसे वेद, पुराण, शिव, शुकदेव, आदि सभी गाते है; और उनके (राम) नामका प्रभाव तो प्रत्यक्ष ही है ॥१॥ ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, जड़ ( यमलार्जुन ), पक्षी (जटायु), पाँचों पाडव और सुदामा इन सबको भगवान्‌ने इस लोकमें सत्कीर्ति और परलोकमें जो मोक्ष दी है, भला, इनमेंसे कोई भी उनके कामका है? एक भी नहीं ॥२॥ वेश्या (पिंगला), कोल-किरात (गुह, निषाद आदि), बाल्मीकि आदि से बुरा कौन था? अजामेलने कब अश्वमेध यज्ञ किया था? और गजेन्द्रने कब सामवेदका गान किया था? कभी नहीं ॥३॥ तुलसीके समान कपटी, नीच, सब साधनोंसे हीन, दुबला और पतला कौन है? किंतु बात तो यह है, कि (राम) नाम-रूपी राजाके राज्यमें उसके प्रबल प्रतापसे, युग-युगसे, चमड़ेका भी सिक्का चलता

आ रहा है। भाव यह है, कि नामके प्रतापसे नीच-से-नीच मुक्त होते आये हैं। इस सिद्धान्तपर विश्वास कर मैं भी तर जाऊँगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

टिप्पणी--( १ ) 'ध्रुव'--८६ पदका प्रसंग देखिए।

( २ ) 'प्रह्लाद'--६३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( ३ ) 'विभीषण'--इनकी कथा प्रसिद्ध ही है।

( ४ ) 'कपिपति'--सुग्रीव; इनकी भी कथा प्रख्यात है।

( ५ ) 'सुदाम'--सुदामा; यह श्रीकृष्णके सहपाठी थे। परिस्थितिवश अत्यन्त दरिद्र हो गये। स्त्रीके आग्रहसे अपने मित्रके पास द्वारका गये। भगवान्‌ने इनका बड़ा ही आदर किया और इन्द्रके समान समृद्धिशाली बना दिया।

( ६ ) 'गनिका'--६४ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( ७ ) 'आदिकवि'--वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ८ ) 'अजामिल'--५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ९ ) 'गज'--८३ पदकी टिप्पणी देखिए।

( १० ) गोसाईंजीने चमड़ेके ही सिक्केका ज़िक्र किया है, जो कि कुछ कीमती भी होता है, पर आज, अँग्रेजी राज्यमें कागजके भी सिक्के चल रहे हैं रद्दी भी लाखों रुपयेपर बिक रही है! धन्य काल-चक्र!

( १०० )

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।

मोद न मन तन पुलकि नैन जल, सो नर खेहर खाउ ॥ १ ॥
सिसुपन ते पितु मातु बन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसौहैं सुपनेहुँ लख्यो न काउ ॥ २ ॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जुगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥ ३ ॥
सिला साप-संताप-बिगत भई, परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरषि हिय, चरन छुए* पछताउ ॥ ४ ॥

* पाठान्तर 'छुये को।'

भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ ॥ ५ ॥
कह्यो राज, वन दियो नारिबस, गरि गलानि गे † राउ।
ता कुमातु को मन जुगवत ज्यों निज तनु मरमकुघाउ ॥ ६ ॥
कपि-सेवा-बस भये कनौड़े, कह्यो पवनसुत आउ।
देवे को न कछू; रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ ॥ ७ ॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥ ८ ॥
निज करुना करतूति भक्त पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ ॥ ९ ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम-पसाउ ॥ १० ॥

शब्दार्थ—खेहर = धूल, खाक। काउ = किसीने, बुन्देलखण्डी शब्द है। अनट = अनीति। अपाउ = अपाय, नुकसान। दाउ = दाँव, खेलनेका अवसर। सिला=अहल्याकी पाषाण-मूर्तिसे तात्पर्य है। भव = शिवजी। ताउ = ताव, क्रोध। समाउ=शक्ति। गे = गये। मरम = मर्मस्थान। कनौड़े = उपकृत। चपत = दबते हैं। सकृत = एकबार। अनयास = सहज ही। पसाउ = प्रसन्नता।

भावार्थ—श्रीजानकीवल्लभ रघुनाथजीका शील और स्वभाव सुनकर जिसके मनमें न तो प्रसन्नता है, न शरीर ही पुलकायमान् होता है और न जिसकी आँखोंमें प्रेमाश्रु ही भर आते है, वह मनुष्य गली-गलीमें धूल फाँकता फिरे, तो अच्छा। भाव यह है कि, उस नीरस मनुष्यका जीवन बिल्कुल ही निःसार है ॥१॥ बचपनसे ही पिता माता, भाई, गुरु, नौकर-चाकर, मंत्री और मित्र कहते है कि, किसीने कभी रामचन्द्रजीका चन्द्रमा-जैसा प्रफुल्लित मुख स्वप्नमें भी क्रोधित नहीं देखा, सदा हँसमुख ही रहे ॥२॥ उनके साथ जो उनके भाई और दूसरे बालक खेलते थे, उनका अन्याय्य और हानि वे सदा देखते रहते थे। और अपनी जीत

† पाठांतर 'गयो'।

पर भी (दूसरोंको प्रसन्न करने के लिए ही) स्वयं हार जाते थे। उन लोगों को पुचकार पुचकारकर प्रेमसे आप दाँव देते और दूसरोंसे भी दिलाते। सारांश, आप सौहार्द्रके रूप ही थे ॥ ३ ॥ चरणके स्पर्शसे ही पाषाणमयी अहल्याको शापके दुःखसे मुक्त कर दिया। उसे मोक्ष देनेका तो कुछ हर्ष न हुआ, पर हाँ, इस बातका दुःख अवश्य हुआ, कि इनने ऋषि-पत्नीको पैरसे छू दिया। धन्य! ॥४॥ शिवजी का धनुष तोड़कर राजाओंका मान-मर्दन कर दिया। जब (शिवजीके धनुष-भंगका समाचार सुनकर) परशुराम आकर क्रोधित हुए, तब उनका अपराध क्षमा करके और लक्ष्मणजीसे माफी मँगवाकर उनके चरणोंपर पड़े। भला, इतना सामर्थ्य और किसमे है ॥ ५ ॥ राजा दशरथने जिन्हे राज्य देनेका वचन दिया, पर कैकेयीके अधीन होकर वनवास दे दिया और इसी लज्जा के मारे बेचारे मर भी गये, उस कुमाता (कैकेयी) का भी मन इस तरह अपने हाथमें लिये रहे, जैसे कोई मर्मस्थानके घावको देखता रहे, अर्थात् कैकेयीकी सदा हृदयसे सेवा ही करते रहे, उसके रुखपर चलते रहे ॥ ६ ॥ जब आप हनुमान्‌जीकी सेवाके अधीन होकर उनके उपकृत हो गये, तब उनसे बोले—"भैया! मेरे पास देनेका तो कुछ है नहीं मैं तेरा ऋणी हूँ, तू धनी है; बस, इसी बातकी (विश्वास न हो तो) सनद लिखा ले।" ॥७॥ यद्यपि सुग्रीव और विभीषणने अपना कपट-भाव नहीं छोडा, पर आपने उन्हे अपनी शरणमे ले ही लिया। और भरतजी की तो सभामें सदा प्रशंसा करते रहते है, प्रशंसा करते-करते तृप्ति ही नही होती ॥ ८ ॥ भक्तोंपर आपने जो जो कृपा और उपकार किया है, उसकी जब-जब प्रसंगवश चर्चा आयी, तब-तब आप लज्जासे मानो गड़-से गये, अपनी प्रशंसा कभी अच्छी नहीं लगी। आप जिसने एकबार भी आपको प्रणाम कर लिया उसकी महिमाका सदा बखान किया, उसका यश सुना और उसका दूसरोंसे भी बारबार गान करवाया ॥ ९ ॥ ऐसे करुणासिंधु श्रीरघुनाथजीकी गुणावली सुन-सुनकर हृदयमे प्रेम-प्रवाह बढ़ रहा है। हे तुलसीदास! तू सहज ही इस प्रेमानन्दके कारण भगवच्चरणारविन्दोंको पायगा ॥ १० ॥

टिप्पणी—( १ ) 'जीति हारि'—भरतजी भी कह रहे है—

'हारेउ खेल जितायहु मोहीं'।

( २ ) 'सिला'—अहल्या, ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(३) 'सुग्रीव'—सुग्रीवने कहा था कि—

'सुख, संपति, परिवार, बडाई, सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥'

पर पीछे ताराके प्रेममें फँसकर अपनी प्रतिज्ञा भुला बैठा, राज्यमदमें अंधा हो गया।

(४) 'विभीषण'—विभीषणने भी कहा था, कि—

'उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु-पद-प्रीति-सरित सो बही ॥'

पर, वह भी बड़े भाईकी स्त्री, मंदोदरी, के साथ फँसकर सारी ज्ञान-गाथा भूल गया!

( १०१ )

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥
कौने देव बराइ बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे।
खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब, माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ बराइ = चुन-चुनकर। जवन = यवन, एक म्लेच्छ। बिचारे = बेचारे। अपनपौ हारे = शरणमें जाय।

भावार्थ—हे नाथ! आपके चरणोंको छोडकर और कहाँ जाऊँ? संसारमें "पतित पावन" (नीचोंको पवित्र करनेवाला) नाम और किसका है? और दीन-जन किसे बहुत ही प्यारे हैं? ॥ १ ॥ आजतक किस देवताने, अपने बानेकी लाज रखनेके लिए, हठपूर्वक अधमोंको चुन-चुनकर तारा, उनको खोज-खोजकर उद्धार किया? और किस देवताने पक्षी (जटायु), मृग, बहेलिया (वाल्मीकि), पत्थर (अहल्या), जड वृक्ष (यमलार्जुन) और म्लेच्छको मुक्ति प्रदान की? सारांश यह, कि आपके अतिरिक्त ये काम आजतक और किसीसे नहीं हुए और न होनेके है ॥२॥ देवता, दैत्य, मुनि नाग, मनुष्य आदि सभी बेचारे मयाके अधीन हैं। उनलोगोंके हाथमें यह तुलसीदास क्यों अपनेको व्यर्थके लिए सौंपता फिरे, किसलिए उनकी शरण गहे! भाव, जब वे स्वयं ही मायाके वश हैं, मुक्त नहीं हैं, तब औरोंको, और विशेषकर हम-सरीखे नीचोंको, कैसे तार सकते हैं? उनसे यह कभी संभव नहीं ॥ ३ ॥

टिप्पणी—(१) 'खग'—जटायु; ४३ पदकी पांचवीं टिप्पणी देखिए।

(२) 'ब्याध'—वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(३) 'पाषान'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(४) 'बिटप'—यमलार्जुन; ७८ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(५) 'यवन'—एक म्लेच्छ; ४६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

(६) 'देव······बिचारे'—भगवान् ने गीतामें कहा है—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया॥'

अर्थात्, हे अर्जुन, ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें रहता है और अपनी मायासे संसार-चक्र-रूपी यन्त्र पर चढ़े हुए सब जीवोंको घुमाता रहता है। अथवा—

'उमा दारु-जोषित की नाईं। सबै नचावत राम गुसाईं॥ (रामचरितमानस)

( १०२ )

हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों॥ १॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं *, दीजै परम उदार॥ २॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहि होत कबहुँ पल एक।
ताते † सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥ ३॥
कृपा डोरि, बंसी पद अंकुस, परमप्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥ ४॥
हैं स्रुति बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोई बाँध्यो सोइ छोरै॥ ५॥

भावार्थ—हे नाथ! आपने मुझपर बड़ी दया की, जो मुझे सारे साधनोंका मन्दिर, देवताओं को भी कठिनाईसे प्राप्य, मानव-शरीर कृपाकर दे दिया॥१॥ यद्यपि आपका एक-एक उपकार करोड़-करोड़ मुखसे नहीं कहा जा सकता, तथापि

* पाठान्तर 'तदपि नाथ और कछु माँगौं।' † पाठान्तर 'तेहिते'।

(इतनेमें मुझे सन्तोष नहीं है) मैं कुछ और माँगूगा। आप तो बड़े भारी दानी हैं, अतः विश्वास है, कि उसे आप अवश्य दे देंगे ॥२॥ मेरा मन-रूपी मच्छ विषय-रूपी पानीसे क्षणमात्र भी अलग नहीं होता, जैसे मछली जलके बाहर ज़रा भी नहीं निकलना चाहती, उसी प्रकार यह मन विषय-वासनाओंसे तनिक भी नहीं हटता। इससे मुझे सदा दारुण दुःख सहना पड़ता है। अनेक योनियोंमें जन्म लेता हूँ और मरता हूँ ॥३॥ हे रामजी! अपनी कृपाकी तो बनाइए रस्सी और आपके चरणोंमें जो अंकुशका चिह्न है, उसका बनाइए काँटा। उसमें परमभक्ति-रूपी चारा (आटा) चपका दीजिए। इस प्रकार मेरे मन-रूपी-मच्छको छेदकर(विषय-रूपी जलसे बाहर निकाल दीजिए, जिससे कि वह शान्त होकर आपका भजन किया करे) मेरा दुःख दूर कर दीजिए। आपके लिए यह एक लीला ही होगी। भाव, इसमें कुछ परिश्रम न करना पड़ेगा ॥४॥ वैसे तो वेदमें अनेक उपाय भरे पड़े हैं, जैसे योग, यज्ञ, जप, तप, आदि, और देवता भी अनेक हैं, जैसे शिव, गणेश, सूर्य, देवी आदि, किन्तु यह दीन किस-किसकी बिनती करता फिरे? हे तुलसीदास! जिसने इस जीवको अविद्या-रूपी रस्सीसे बाँधा है संसारमें भेजा है, वही (मायाधीश) इसे छुटकारा भी देगा, संसार-सागरसे पार करेगा ॥५॥

टिप्पणी—(१) यह पद सिद्धान्ती है। इसका रूपक अनुपम और अलौकिक है। विरक्ति और अनुरक्तिका ऐसा सजीव सिद्धान्त अन्यत्र मिलनेका नहीं।

(२) 'परम प्रेम'—बैजनाथजी लिखते हैं—

'साधन सून्य, लिये सरनागत, नैंन रँगे अनुराग-नसा है।
भूतल व्योम जलानिल पावक, भीतर बाहर रूप बसा है॥
चिंतवना हम बुद्धिमयी मधु ज्यों मखियाँ-मन जाइ फँसा है।
बैजसुनाथ सदा रस एकहि, या बिधि सों संतृप्त दसा है॥'

इसे आपने प्रेमकी बारहवीं 'संतृप्त दशा' मानी है। यही 'परमप्रेम मृदु चारो' है। क्या मज़ाल, कि मन-मत्स्य इसमें न फँस जाय?

(३) 'जोइ बाँध्यो सोइ छोरै'—जो रोग है वही हकीम है, और वही दवा भी है। कविवर बिहारी कहते है—

'वहई रोग-निदान, वहै बैद, औषध वहै।'

( १०३ )

यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
और आस बिस्वास भरोसो, हरौ * जीव-जड़ताई ।।१।।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि सिधि बिपुल बड़ाई ।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै †, अनुदिन अधिकाई ।।२।।
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये, कमठ-अंड की नाईं ।।३।।
या ‡ जगमें जहँ लगि या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाई ।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहि सिमिटि इक ठाईं ।।४।।

शब्दार्थ—जड़ताई = अज्ञान । सुगति = मोक्ष । बिपुल = अधिक । हेतु-रहित = निष्काम । छोह = प्रेम । सगाई = सम्बन्ध ।

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! हे प्रभो ! मेरी यही विनती है कि इस जीवको दूसरों-का जो-जो विश्वास, आशा और भरोसा तथा अज्ञान है, उसे दूर कर दीजिए । भाव यह, कि सबको छोड़कर अब यह एक आपहीका होकर रहे ।।१।। न तो मुझे मोक्ष या ज्ञानकी चाह है और न कुछ धनकी ही । मुझे ऋद्धि-सिद्धि अथवा बड़ी भारी महिमाकी भी इच्छा नहीं है । ( यदि कोई कामना है तो केवल यह कि ) हे रामजी ! आपके चरणोंमें, दिनदूना-रातचौगुना, मेरा प्रेम बढ़ा करे, सो भी निष्काम ।।२।। मुझे यह खोटा कर्म जिस-जिस योनिमें हठ करके ले जाय, तहाँ-तहाँ, हे नाथ ! आप पलभर भी इसपरसे अपनी कृपा न छोड़ना, जैसा कि कछुआ कभी अपने अण्डोंको नहीं छोड़ता । भाव, सदा इस जीवकी खबर लेते रहना, क्योंकि यह जड़ है ।।३।। इस संसारमें जहाँतक इस शरीरका प्रेम, प्रीति और संबन्ध है, वह सब एक ही स्थानपर सिमटकर, हे नाथ ! आपसे हो हो । आपके चरणोंमें इस जीवकी अनन्यभक्ति हो जाय ।।४।।

टिप्पणी—( १ ) 'हेतुरहित अनुराग'—निष्काम प्रेम ही सच्चा प्रेम है । जो प्रेम किसी अर्थसे किया जाता है, वह प्रेम नहीं है, दूकानदारी है, रोज़गार है ।

* पाठान्तर 'हद जिय की ।' † पाठांतर 'बढ़ा ।' ‡ पाठांतर 'यह ।'

( २ ) 'कुटिल......नाईं'—इसी बातको गोसाईंजीने बालिके मुखसे, प्राण छोड़ते समय, कहलवाया है—

'जेहि जोनि जन्महुँ कर्मबस, तहँ राम-पद अनुरागऊँ।'

अन्यत्र—

'जेहि-जेहि जोनि करम-बस भ्रमहीं। तहँ-तहँ ईस देहि यह हमहीं॥
सेवक हम, स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥'

( १०४ )

जानकी-जीवन की बलि जैहौं!
चित कहै, रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं॥१॥
उपजी उर प्रतीति सुपनेहुँ सुख, प्रभु-पद-बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तनु के बासिन्ह, इहै सिखावन दैहौं॥२॥
स्रवननि और कथा नहि सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नैन बिलोकत औरहि* सीस ईस ही नैहौं॥३॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं॥४॥

शब्दार्थ = नैहौं=नवाऊँगा, प्रणाम करूँगा। छर = भारी। छर भार=भारी बोझा, भलाई बुराई, यश-अपयश।

भावार्थ— मैं तो श्रीजानकी-जीवन रघुनाथजीपर बलि जाऊँगा, उनपर अपने आपको निछावर कर दूँगा। मेरा मन कह रहा है कि सीतारामजीके चरणोंको छोड़-कर अब मैं इधर-उधर कही न भटकता फिरूँगा। वहीं निश्चल हो जाऊँगा॥१॥ मेरे हृदय में कुछ ऐसा विश्वास उत्पन्न हुआ है, कि प्रभु रामचन्द्रजीके चरणोंसे विमुख होकर स्वप्नमें भी कहीं सुख न पासकूँगा। अब मैं मनको तथा इस शरीरके अन्य निवासियोंको अर्थात् इन्द्रियोंको यही उपदेश दूँगा, कि॥२॥ कानोंसे किसी और की चर्चा न सुनूँगा (केवल आपहीकी कथा सुनूँगा), जी से दूसरोंका गुण न गाऊँगा ( केवल आपहीके चरित्र गाऊँगा, कीर्तन करूँगा ), दूसरोंकी ओर देखते हुए नेत्रोंको मोड़ लूँगा (केवल आपहीकी ओर टक लगाकर देखा करूँगा), और

* पाठांतर 'औरत।'

माथा केवल आपको ही झुकाऊँगा (और किसीको प्रणाम न करूँगा) ॥३॥ आपके साथ नाता और प्रेम करके सबसे नाता और प्रेम तोड़ दूँगा। सारांश यह, कि सब प्रकारसे, अनन्य भावसे, एक आपहीका होकर रहूँगा, इधर-उधर न भटकता फिरूँगा। इस संसारमें, मैं तुलसीदास जिसका सेवक कहाऊँगा, उसीपर यह भारी बोझ पटक दूँगा, उसीके मत्थे सारी भलाई बुराई मढ़ दूँगा ॥४॥

टिप्पणी—(१) 'मन समेत ······नेह बहै हौं'—यदि मन और इंद्रियोंसे हरि-भक्तिमें सहायता नहीं ली गयी, तो उनका होना ही निरर्थक है। रामचरितमानस में लिखा है—

'जिन हरि-कथा सुनी नहिं काना। स्रवन-रंध्र अहि-भवन समाना ॥
नयननि संत-दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख सम लेखा ॥
ते सिर कटुतूमरि-समतूला। जे न नवत हरि-गुरु-पदमूला ॥
जिन हरि-भक्ति हृदय नहिं आनी। जीवत सव-समान ते प्रानी ॥
जे नहिं करहि राम-गुन-गाना। जीह सो दादुर-जीह-समाना ॥'

(२) इस पदमें अनन्यताका सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। यहाँपर यह शंका उठती है—

शंका—क्या गोसाईं जीने, सिवा रामचन्द्रजीके औरोंकी ओर देखना तथा उन्हें प्रणाम करना निषिद्ध माना है?

समाधान—अवश्य। जो भगवद्-विमुख हैं उनके लिए ऐसा कहा गया है, किन्तु जो हरि-भक्त हैं, गुरुजन हैं, उनके लिए ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए। हरिमय संसार गोसाईं जीकी दृष्टिमें वंदनीय है और हरिविमुख ब्रह्मा भी निन्द्य और उपेक्षणीय है। कहा है—

'सीय-राम-मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥'

(३) 'छर भार'—क्योंकि भगवान् गीतामें स्वयं कह चुके हैं—

'तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'

( १०५ )

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि* न डसैहौं ॥ १ ॥
पायो नाम चारुचिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं ॥ २ ॥

---

* पाठांतर 'फिरि।'

परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर † पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—नसानी=करनी बिगड़ गई। भव=संसार। डसैहौं=बिछौना बिछाऊँगा। खसैहौं=गिराऊँगा। पन=प्रण।

भावार्थ—अबतक (इतनी आयुतक) तो मेरी करनी बिगड़ चुकी, पर अबसे न बिगाड़ूँगा, अब सम्हल जाऊँगा। रघुनाथजीकी कृपासे संसार-रूपी रात्रि बीत चुकी है, अर्थात् सांसारिक प्रवृत्ति दूर हो गई है, अब जागनेपर विरक्ति उत्पन्न होनेपर, फिर कभी बिछौने न बिछाऊँगा, मायात्मक भ्रममें न फसूँगा ॥१॥ मुझे राम-नामरूपी सुन्दर चिन्तामणि (अनायास ही) प्राप्त हो गया है, उसे हृदयरूपी हाथ से न गिराऊँगा, अर्थात् सदा हृदयमें रखूँगा। रघुनाथजीका जो श्यामसुन्दर पवित्र रूप है, उसकी कसौटी बनाकर उसपर अपने चित्तरूपी सोनेको कसूँगा। अर्थात् यह देखूँगा कि भगवत्स्वरूपके ध्यानपर मेरा मन कहाँतक ठीक-ठीक उतरता है, खरा है या खोटा। विरक्ति और आत्म-बोधकी अग्निमें उसपर (मन-रूपी सुवर्णपर) जो कुछ मैल होगा, उसे जलाकर तब उसे भगवान्के ध्यानमें लगाऊँगा और तब ही उसका खरापन जान पड़ेगा, कसौटीपर उसकी कस ठीक-ठाक उतरेगी ॥२॥ जबतक मै मनका गुलाम रहा तबतक इन इंद्रियोंने मेरा खूब उपहास किया, पर अब मन तथा इंद्रियोंको अपने वशमें करके अपनी दिल्लगी न कराऊँगा। अर्थात् परतंत्रताकी अवस्थामें चाहे जिसने जो कुछ कह लिया, पर स्वतंत्र होनेपर मुझसे कोई क्या कह सकता है? मै, तुलसीदास, अपने मनको रघुनाथजीके चरणोंमें इस प्रकार लगा दूँगा, जैसे भौंरा इधर-उधर दूसरे फूलोंपर न जाकर प्रण-पूर्वक अपनेको कमल कोशमें बसा लेता है! भाव यह, कि इस मन-को सब ओरसे मोड़कर केवल श्रीरघुनाथजीके ही चरणोंका सेवक बनाऊँगा ॥३॥

टिप्पणी—(१) 'अबलौं नसानी······नसैहौं'—इसका रूपान्तर यह है—

'बीती ताहि बिसारि दै, आगे की सुधि लेइ।'

(२) 'स्याम···कसौटी'—कसौटी एक पत्थरका नाम है। इसका रंग काला, शालिग्राम शिलाके समान होता है। इसीपर सोना कसा जाता है। श्रीरामजीका भी शरीर श्याम है। इसलिए यह उपमा सर्वांग सुन्दर है।

---

† पाठातर 'मधुपहि।'

( ३ ) १०४ और १०५ संख्यावाले ये दोनों पद बड़े ही उत्तम हैं। इनमें वरक्ति, आत्म-निवेदन, अनन्यता और मनोराज्यका बड़ा ही सुन्दर संमिश्रण हुआ है। अनन्यताका तो इनमें साम्राज्य ही है। देखने से जान पड़ता है, कि भक्तने अपने इष्टदेवके आगे कलेजा चीरकर रख दिया है!

राग रामकली

( १०६ )

महाराज रामादरयो धन्य सोई।
गरुअ गुनरासि सर्बग्य सुकृती सूर, सील-निधि साधु तेहि-सम न कोई॥१॥
उपल-केवट-कीस-भालु निसिचर-सबरि-गीध सम-दम-दया-दान-हीने।
नाम लिये राम किये परम पावन सकल, नर तरत तिनके गुन गान कीने॥२॥
व्याध अपराध की साध राखी कहा, पिंगलै कौन मति भक्ति भेई।
कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम, कौन गजराज धौं बाजपेयी॥३॥
पांडु-सुत गोपिका बिदुर कुबरी सबहि, सुद्ध किये सुद्धता लेस कैसो।
प्रेम लखि कृष्ण किये आपने तिनहुँ को, सुजस संसार हरिहर को जैसे॥४॥
कोल, खस, भील जवनादि खल राम कहि, नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो।
दीन-दुख दमन श्रीरमन करुना-भवन, पतित-पावन बिरद बेद गायो॥५॥
मंदमति कुटिल खल-तिलक तुलसी सरिस, भो न तिहुँ लोक तिहुँ काल कोऊ
नाम की कानि पहिचानि जन आपनो, ग्रसित कलि-ब्याल राख्यों सरन सोऊ

पदच्छेद--राम + आदरयो।

शब्दार्थ--आदरयों = आदर किया। गरुअ = भारी। उपल = पाषाण, यहाँ अहल्यासे तात्पर्य है। कीश = बन्दर। व्याध = यहाँ वाल्मीकिसे तात्पर्य है। साध = कमी, कसर, इच्छा। भेई = लगाई। सोमयाजी = सोमयज्ञ करनेवाला। बाजपेयी = अश्वमेध करनेवाला। भो = हुआ।

भावार्थ – महाराज रामचन्द्रजीने जिसका आदर किया वही धन्य है। वही भारी गुणोंका भाण्डार, सर्वज्ञ, पुण्यात्मा, वीर, सुशील और साधु है। उसके समान बडभागी कोई भी नहीं है॥१॥ देखो, अहल्या, गुहनिषाद, बन्दर, रीछ, राक्षस, शवरी, जटायु--ये सब शम, दम, दया, दान आदि सद्गुणोंसे नितान्त रहित थे, इनमें एक भी गुण न था, किन्तु राम-नाम स्मरण करनेसे भगवान्ने इन

सबको परमपवित्र बना दिया और ऐसा बना दिया कि उनका चरित्र-गान करनेसे मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाते हैं। अर्थात् भक्तोंके गुण गागाकर प्राणी-मुक्त हो जाते है। २॥ वाल्मीकि व्याधने पाप करनेमें क्या उठा रखा था? पिंगला वेश्याने अपनी बुद्धि कब भक्तिकी ओर लगाई थी? अजामेलने कब सोमयज्ञ किया था,? और गजेन्द्र कहाँ का अश्वमेध करनेवाला था? अर्थात् ये सब महान् पापी थे, स्वप्नमें भी पुण्य करने की इच्छा न करते थे॥३॥ पांडवों, गोपियो, विदुर और कुबरीमें पवित्रताका नाम भी न था, किन्तु आपने इन सबको भी पवित्र बना लिया। इनका प्रेम देखकर श्रीनन्दनन्दनने इन्हें अपना लिया। आज इनका यश ससारमें ऐसा छा रहा है, जैसा कि विष्णु और शिवका॥४॥ कोल, खस, भील, यवन आदि दुष्टोंने राम-नाम उच्चारण कर ऊँचा पद पाया। दीनों के दुःख दूर करनेवाले, लक्ष्मीके पति, करुणाके स्थान, पापियोका उद्धार करनेवाले श्रीरघुनाथजीका यश वेदोंने गाया है॥५॥ ( और भी लीजिये ) तीनों लोकमें और तीनो कालमे तुलसी-सरीखा मूर्ख, पापी और दुष्ट-शिरोमणि कोई नहीं हुआ, किन्तु अपने नामकी मर्यादा रखकर, अपना दास जानकर और कलिकाल-रूपी साँपसे डसा हुआ देखकर उसे भी उन्होंने ( रामजीने ) अपनी शरणमें ले लिया है॥६॥

टिप्पणी—( १ ) 'महाराज रामादरथो ......न कोई'—सूरदासजी भी यही बात कहते हैं—

'जाकों मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहि सिरतें, जो जग बैर परै॥'—इत्यादि।

( २ ) 'उपल'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( ३ ) 'केवट'—'गुहनिषाद'; इसे रघुनाथजी भ्राता या सखा-समान मानते थे। इसकी भक्ति सराहनीय है। गंगा-पार उतारने के लिए जब रामचन्द्रजीने इससे नाव मँगाई तब यह गद्गद् कण्ठसे बोला—

'माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई॥
छुवत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परे मोरि नाव उड़ाई॥

जो प्रभु पार अवसि गा चहऊ । मोहि पद-पदुम पखारन कहऊ ॥

× × × ×

बरु तीर मारहु लखन पै, जबलगि न पाँव पखारिहौं ।
तबलगि न 'तुलसीदास' नाथ कृपालु पार उतारिहौं ॥

( ४ ) 'निसिचर'—प्रह्लाद, बलि, बाण, वृत्र, विभीषण आदि ।

( ५ ) 'सबरि'—शबरी; यह जातिकी भीलनी थी । मतंग ऋषिकी सेवा करते-करते इसे भगवद्भक्ति प्राप्त हो गई । जब रामचन्द्रजी सीताजी के वियोगमे इसके आश्रम में पहुँचे, तब इसने उनका बड़ा सत्कार किया । सामने फल रख दिये । बेर चख-चखकर प्रभु को देने लगी । भगवान् भी बड़े प्रेम से इसके जूठे बेर खाने लगे । इसे भगवान् ने नवधा भक्ति का उपदेश देकर मुक्त कर दिया । रसिक बिहारीजीने कहा है -

'बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु 'रसिकबिहारी' देत बन्धु कहँ फेर फेर ।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहु ते महान मीठो लेहु तौ लषन यौं बखानत हैं हेर हेर ॥
बेर बेर देवै बेर सबरी सु बेर बेर तोऊ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर ।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर ॥'

( ६ ) 'गीध'—जटायुः ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।

( ७ ) 'ब्याध'—बाल्मीकि, ९४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।

( ८ ) 'पिंगला'—९४ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए ।

( ९ ) 'गजराज'—८३ पदकी टिप्पणी देखिए ।

(१०) 'पांडुसुत'—पांडव; युधिष्ठिरादि एक ही स्त्री द्रौपदीके साथ संभोग करनेसे पतित हुए । इनका उद्धार श्रीकृष्णने सख्य-प्रेमवश किया ।

(११) 'गोपिका'—इनकी पवित्रताके विषयमें कहना ही क्या है । 'भक्ति-सूत्र' में नारदजीने भक्तों के प्रमाणमें इतनाहीं लिखा है—

'यथा व्रज गोपिकानां ।'

और भी—

'गोपी प्रेम की धुजा ।'

(१२) 'विदुर'—यह दासी पुत्र थे किन्तु भगवद्भक्त होने के कारण सर्वमान्य समझे गये ।

(१३) 'कुबरी'—यह कंसकी दासी थी । मथुरामें श्रीकृष्णके माथेपर चन्दन लगाकर यह कृतकृत्य हो गई । भगवान् का इसपर बड़ा प्रेम था । गोपियों ने सौतिया डाहसे इसे हज़ारो कटूक्तियाँ और व्यंग्य सुनाये, पर यह प्रेम-पंथसे तनिक भी नहीं हटी ।

१४) 'यवन'—४६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।

## राग विलास

### ( १०७ )

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह लोचन सुठि सुंदर स्याम ॥१॥
सिय-समेत सोहत*सदा छबि अमित अनंग।
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषङ्ग ॥२॥
बलि पूजा चाहत नहीं, चाहत† इक प्रीति।
सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ॥३॥
देहि ‡सकल सुख, दुख दहै, आरत-जन-बंधु।
गुन गहि, अघ-औगुन हरै, अस प्रभु करुनासिंधु ॥४॥
देस-काल-पूरन सदा बद बेद पुरान।
सब को प्रभु सब में बसै, सब की गति जान ॥५॥
को करि कोटिक कामना, पूजै बहु देव।
तुलसिदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव ॥६॥

शब्दार्थ—सरोरुह = कमल। अनंग=कामदेव। निषंग = तरकस। बद= वद, कहते हैं। सेव = सेते हैं।

भावार्थ—कोशलपति श्रीरामचन्द्रजी मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। उनके नेत्र कमल के समान सुंदर और उनका शरीर बडा ही लावण्यमय और श्याम वर्ण है ॥१॥ श्रीजानकीजीके साथ सदा शोभायमान हो रहे हैं। उनका सौन्दर्य अनेक कामदेव के समान है। बड़े-बड़े बाहुओंमें धनुष और बाण लिये हैं तथा कमरमें तरकस कसा हुआ है ॥२॥ वह न तो बलि चाहते हैं और न पूजा। चाहते क्या हैं—केवल एक प्रेम। केवल नाम लेते ही वह प्रसन्न हो जाते हैं, और सबको पवित्र कर देते हैं। यह उनकी सहज प्रकृति है ॥३॥ जितने सुख हैं उन सबको दे देते हैं, और दुःखोंको भस्म कर देते हैं, दीन-दुखियोंके तो वह भाई ही है। वह ऐसे करुणा-सागर है, कि गुणोंको तो ग्रहण कर लेते हैं और पापों का नाश कर देते

* पाठान्तर 'सोभित।' † पाठान्तर 'चाहै।' ‡ पाठान्तर 'देइ।'

हैं ॥४॥ सब देशों और सब कालोंमें वह पूर्ण रहते हैं, ऐसा वेद-पुराण सदासे कहते आये हैं। वह सबके स्वामी हैं सबमें रमते हैं और सबके हृदयकी बात जानते हैं ॥५॥ करोड़ों इच्छाएँ कर-करके कौन अनेक देवता पूजता फिरे ? हे तुलसीदास, जिसे शिवजी सेते हैं, उसीकी सेवा करना चाहिए, अर्थात् शंकरजीके आराध्य इष्टदेव श्रीरघुनाथजीकी ही अर्चना करनी चाहिए ॥६॥

टिप्पणी—( १ ) 'नीको'—माधुर्य और ऐश्वर्य; दोनों ही दृष्टियों से श्रीरामजी श्रेष्ठ हैं। इस पदमें, माधुर्य और ऐश्वर्यका साथ-ही-साथ प्रतिपादन किया गया है।

( २ ) 'चाहत इक प्रीति'—रामचरितमानसमें भी लिखा है—

'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहि जो जाननिहारा ॥'

( १०८ )

बीर महा अवराधिये साधे सिधि होय।
सकल काम पूरन करै, जानै सब कोय ॥१॥
बेगि, बिलंब न कीजिए, लीजै उपदेस।
बीजमंत्र जपिये सोई, जो जपत महेस ॥२॥
प्रेम-बारि तर्पन भलो, घृत सहज सनेहु।
संसय समिध, अगिन छमा, ममता बलि देहु ॥३॥
अघ-उचाट, मन बस करै, मारै मद-मार।
आकरषै सुख - संपदा - संतोष - बिचार ॥४॥
जिन्ह यहि भाँति भजन कियो, मिले रघुपति ताहि।
तुलसिदास प्रभुपथ चढ़्यौ, जो लेहु निबाहि ॥५॥

शब्दार्थ – बीजमंत्र = मूलमंत्र। समिध = हवनकी लकडी। छमा = क्षमा। उचाट = उच्चाटन, षट् महाप्रयोगोंमेंसे एक, इससे मन उचट जाता है। मार = कामदेव।

भावार्थ—वीर-पुंगव रघुनाथजीकी ही आराधना करनी उचित है। उन्हें साध लेनेसे सब सिद्ध हो जाता है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वह सब इच्छाएँ पूरी कर देते हैं, इसे सभी जानते हैं ॥१॥ तुरन्तही (किसी सद्गुरुसे)

उपदेश लेना चाहिए, विलम्ब न करना चाहिए। उसी बीजमंत्र (राम) को जपना चाहिए, जिसे शिवजी जपा करते हैं ॥२॥ (मंत्रके जपके अनन्तर जो हवन-आदि किया जाता है, उसकी भी विधि सुन लो) प्रेमरूपी जलसे तो तर्पण करना चाहिए और सहज स्वाभाविक स्नेहका घी बनाना चाहिए। संदेहरूपी समिधसे क्षमारूपी अग्नि प्रज्वलित कर उसमें 'ममता' का बलि करना चाहिए ॥३॥ पापोंका उच्चाटन, मनका वशीकरण, अहंकार और कामका मारण और संतोष तथा ज्ञानरूपी सुख संपत्तिका आकर्षण करना चाहिए ॥४॥ जिसने इस प्रकार भजन किया, उसे अवश्य रघुनाथजी प्राप्त हुए हैं। तुलसीदास भी इसी मार्गपर चढ़ा है। उसके स्वामी ही उसे निबाह लेंगे, उसका योगक्षेम वही करेंगे ॥५॥

सारांश—राम-भजन मुख्य है। प्रभुके प्रसन्न करनेका मुख्य साधन प्रेम ही है। सांसारिक मोह-ममता एक-दम छोड़ देनी चाहिए। संदेह अर्थात् अज्ञानको क्षमाकी सहायतासे नष्ट कर देना चाहिए। इस साधनसे पाप धुल जायँगे, मन निश्चल हो जायगा, अहंकार और कामका नाम भी न रहेगा। संतोष और विवेकका उदय होगा और तब ऐसे निर्मल हृदयमें श्रीरघुनाथजीका दर्शन हो जायगा।

टिप्पणी—(१) 'लीजै उपदेश'—यहाँ गोसाईंजी गुरुकी आवश्यकता बतला रहे हैं। बिना गुरु-उपदेशके कुछ भी सिद्ध नहीं होता। गुरुपर उनकी कितनी श्रद्धा थी, यह निम्नलिखित चौपाइयोंसे भलीभाँति प्रकट हो जायगा—

'बन्दौ गुरु-पद-पदुम-परागा। सुरुचि, सुबास, सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल-भवरूज-परिवारू॥

❁ ❁ ❁ ❁

श्रीगुरु-पद-नखमनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह-तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग्य उर आवइ जासू॥'

(२) 'जो लेहि निबाह'—कलिके भयके मारे निभा लेनेकी प्रार्थना की गई है, क्योंकि यह सारा बना-बनाया काम मिट्टीमें मिला देगा।

( १०६ )

कस न करहु करुना हरे, दुखहरन मुरारि।
त्रिविधताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥ १ ॥

इक* कलिकालि-जनित मल मतिमंद मलिनमन।
तेहि पर प्रभु नहि कर सँभार केहि भाँति जियै † जन ॥२॥
सब प्रकार समरथ प्रभो, मैं सब बिधि दीन।
यह जिय जानि द्रवौ ‡ नहीं, मैं करम-बिहीन ॥३॥
भ्रमत अनेक जोनि रघुपति, पति आन न मोरे।
दुःख-सुख सहौ रहौं सदा सरनागत तोरे ॥४॥
तो सम देव न कोउ कृपालु, समुझौं मन माहीं।
तुलसिदास हरि तोषिये, सो साधन नाहीं ॥५॥

शब्दार्थ—संदेह = अज्ञान, संकल्प-बिकल्प। संशय = अनिश्चय। सँभार= रक्षा। द्रवौ = कृपा करते हो।

भावार्थ— हे हरे! आप दुःखोंके हरनेवाले हैं। हे मुरारे! फिर आप मुझपर दया क्यों नहीं करते? भाव यह, कि मैं भी तो दुखी हूँ, मुझपर भी दयाभाव रखना चाहिए। आप संसारके तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक), अज्ञान, शोक, अनिश्चय (क्या आत्मा है और क्या अनात्मा) और भयके नाशकर्ता हैं ॥१॥ एक तो कलिकालसे उत्पन्न पापोंसे मेरी बुद्धि यो भी मंद पड़ गई है और मन पापी हो गया है, तिसपर हे नाथ! आप रक्षा नहीं करते! भला, इस जीवका निर्वाह कैसे होगा? यह कैसे जी सकेगा? ॥२॥ हे प्रभु! आप तो सब प्रकारसे सामर्थ्यवान् हैं, सब कुछ कर सकते हैं, मैं ही सब प्रकारसे दीन हूँ। क्या यह जानकर मुझपर कृपा नहीं करते, कि मैं अभागा हूँ अथवा आपकी कृपाका प्रभाव मुझ-अभागे पर न पडता होगा? ॥३॥ हे रघुनाथजी! मैं अनेक योनियोंमें भ्रम आया हूँ, पर मुझे आपके सिवाय कोई दूसरा स्वामी नहीं मिला। इसीलिए मैं सदा दुःख-सुख सहता हुआ भी आप ही की शरणमें रहता हूँ ॥४॥ मै अपने मनमें यह समझे बैठा हूँ, कि आपके समान कृपा करनेवाला कोई दूसरा देवता नहीं है। पर हे नाथ! जिस साधनसे आप प्रसन्न होते हैं, वह साधन इस तुलसीदासके पास नहीं है यह तो केवल आपकी शरण जानता है) ॥५॥

टिप्पणी - (१) 'मुरारि—मुर दैत्य के शत्रु।

* पाठान्तर 'यह'। † पाठान्तर 'जिव।' ‡ पाठान्तर 'द्रवहु।'

( २ ) 'करम बिहिन'–क्योंकि, 'करमहीन कलपत रहे, कलपवृच्छ की छाँह ।'

( ३ ) 'सो साधन'—अर्चन, वंदन, श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, दास्य, आत्म-निवेदन आदि ।

( ११० )

कहु केहि कहिये कृपानिधे ! भव-जनित बिपति अति ।
इन्द्रिय सकल बिकल सदा, निज निज सुभाउ रति ॥१॥
जे सुख संपति सरग नरक संतत सँग लागी ।
हरि ! परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥२॥
मैं अति दीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे ।
जो न द्रवहु रघुबीर धीर काहे न दुख लागे ॥३॥
जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख-समन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ आस यहै बहु पतित उधारे ॥४॥

शब्दार्थ—भवजनित = संसारसे उत्पन्न । संतत = सदा । समन = नाशक ।

भावार्थ—हे कृपानिधान ! कहो तो, इस ससारी विपत्तिको मै किससे कहूँ ? आपको छोडकर और किसके आगे अपना रोना रोऊँ ? सारी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयके लिए तड़प रही हैं, प्रत्येक इन्द्रिय चाहती है, कि मै अपने विषयमें सदा लीन रहूँ ॥१॥ वे इन्द्रियाँ सदा सुख-संपति और स्वर्ग-नर्कमें ही फँसी रहती है । और हे हरे ! आपको छोड़कर मेरा मन भी वही उपाय करता है, अर्थात् इन्द्रियोंका वह भी साथ दे रहा है, ऐसा अभागा है ! ॥२॥ हे देव ! जब मुझ अत्यन्त दीन-दुखीने आपके विषयमें यह सुना कि आप बड़ेही दयालु हैं, तब आपमें मैंने अपना मन लगा दिया, आपसे प्रीति जोड़ ली । इतने पर भी, हे रघुबीर ! हे धैर्यवान् ! आप मुझपर दया नहीं करते । फिर मुझे दुःख क्यों न हो ? भाव यह है, कि आप तो धैर्यवान् हैं, पर मैं अधीर जीव हूँ । आपके जरासे ही विलम्बसे मैं अधीर और दुखी हो रहा हूँ ॥३॥ हे मुरारे ! यद्यपि मै सारे अपराधोंका घर हूँ, मुझमें सभी दोष भरे है, पर आप तो 'दुःख-शमन' हैं, दुखोंके नाश करनेवाले हैं । मुझ तुलसीदासको आपसे सदा यही आशा है, कि जब आप अनेक पापियोंका उद्धार कर चुके हैं, तो मेरा भी करेंगे ॥४॥

टिप्पणी—'इन्द्रिय······रति'—इद्रियोंका यह हाल है, कि आँखें चाहती

हैं, कि सुन्दर रूप देखें, नाक चाहती है, कि सदा सुगंधित चीजें सूघती रहूँ; कान चाहते हैं, कि मधुर शब्द, गानवाद्य, सुना करे ; रसना चाहती है, कि षट्रस भोजन किया करूँ; त्वचा चाहती है कि कोमल और शीतल पदार्थों का स्पर्श करूँ ।

( २ ) 'तुलसिदास ·····उधारे'--यहाँ यह ध्वनि निकलती है, कि मुझे भी आप तार देंगे । यह वाक्चातुर्य है, कहनेका निराला ढंग है ।

( १११ )

केसव, कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये ॥ १ ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न, मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥ २ ॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहिं माहीं ।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥ ३ ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ*मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—भीति = दीवार । रविकर-नीर = सूर्यकी किरणोंसे, ग्रीष्ममें, जो भूमिपर पानीका भ्रम हो जाता है । इसे 'मृगतृष्णा' या 'मृगजल' भी कहते हैं । 'भ्रम' से तात्पर्य है । चराचर = ( चर + अचर ) चैतन्य और जड़ । जुगल = दोनो, अर्थात् सत्य और मिथ्या । आपन = आत्मा ।

भावार्थ — हे केशव ! कुछ कहनेका नहीं, क्या कहूँ ! आपकी यह अद्भुत रचना देखकर मन-ही-मन समझकर रह जाता हूँ, कुछ वर्णन नहीं करते बनता ॥ १ ॥ ( अब सृष्टि-वैचित्र्य दिखाते हैं ) किसी निराकार चित्रकारने शून्य दीवार पर, बिना रंगके ही चित्र बनाये हैं । भाव यह है, कि आदिकर्ता-निराकार परमात्माने माया-रूपी दीवार पर अथवा अन्तरिक्ष (आकाश) पर, जो शून्यमय भास रहा है, ऐसे-ऐसे विचित्र चित्र खींचे हैं, जिनमें रंगका लेश भी नहीं है, अर्थात् प्रकृतिके शून्याधार पर, असत्के आश्रय पर, पंचभौतिक रचनाका प्रसार किया है, और उस रचनामें स्थूल, सूक्ष्म कारण आदि शरीर है, जिनका कोई रंग, कोई रूप निश्चित

* पाठान्तर 'करि' ॥

नही होता अतः बिना रंगके हैं। प्रायः चित्रकारी धोनेसे मिट जाती है, पर इस निराकार चित्रकारके चित्र धोने पर भी नहीं मिटते, अर्थात् कर्मादि करनेसें यह पंचभौतिक रचना नाश को प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत और भी पक्की होती जाती है। जड़ चित्रकारीको मरने का भय नहीं हुआ करता, पर इन चित्रोको सदा मृत्यु-भय रहता है। एक और उलटी बात है। वह यह, कि इन चित्रोकी ओर देखनेसे दुःख होता है। भाव यह है, कि इस सृष्टिमें मोह-ममताजन्य भय सदा उपस्थित-रहता है, पाँचों विषयरूपी पिशाच डराते रहते हैं, और मन, जो दारुण दुःख देता है, वह किसीसे छिपा नही ; इसलिए, इन चित्रोंकी ओर देखना महान् भयावह और दुःखदायी है ॥ २ ॥ सूर्यकी किरणोंमें ग्रीष्म ऋतुमें, जो जलकी लहरें-सी दिखाई देती हैं, उनमें एक भयानक मगर रहता है। यद्यपि उस मगरके मुख नहीं है, पर जो भी वहाँ जल पीने जाता है, चाहे वह जड हो या चैतन्य, उसे वह निगल जाता है। भाव यह है, कि यह संसार मृग-जलके समान भ्रममय है। जैसे सूर्यकी किरणोको जल समझकर मृग प्यासके मारे दौड़ते चले जाते हैं, पर वहाँ क्या रक्खा है ! वे जितना ही भागेगे उतनी ही दूर जल दिखायी देगा। अन्तमें, बेचारे छटपटाकर मर जाते हैं। इसी प्रकार इस अविद्याजन्य मिथ्या संसारके विषयोंमें जो सुख ढूँढना चाहते है, पुत्र-कलत्र, धन सपत्तिसे अपनी विषय पिपासा बुझाना चाहते हैं, उन्हे मिलता तो कुछ नही, पर हाँ, उसी प्रवृत्ति में फँसे रहने के कारण, एकदिन बिना मुखवाला मगर अर्थात् अव्यक्त काल उन्हें खा जाता है। चित्रशालापर मुग्ध हो जानेका यह फल है। विचित्रता भी अनिर्वचनीय ही है ॥ ३ ॥ कोई तो इस रचनाको सत्य कहते हैं और कोई मिथ्या। किसी-किसीके मतसे यह सत्य और मिथ्या-दोनोंका ही मिश्रण है। अर्थात् अद्वैतवादी वेदान्ती इस जगत्को मिथ्या अथवा भ्रममात्र कहते है। वे ब्रह्मकी ही सत्ता स्वीकार करते हैं और उसीमें, रज्जु-सर्पवत् जगतका आभास मानते है। और पूर्वमीमांसा-वाले, अथवा द्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी कर्मप्रधान जगत्को सत्य मानते हैं। मनु, दक्ष, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ आदि इसी सिद्धान्तके प्रतिपादक थे। एक और पक्ष है, वह जगत् को असत् और सत् दोनों ही मानता है। यह मत पतंजलि आदि योग-शास्त्रियोंका है, इस मतको श्रीनिम्बार्काचार्यने भी स्वीकृत किया है। अस्तु ये तीनों सिद्धान्त हैं। किन्तु तुलसीदास कहते हैं, कि ये तीनो ही भ्रम हैं,

कर्म, ज्ञान और योग इन सबकी शक्ति कलियुग में नष्ट हो गई है । इन तीनों को छोड़कर जो भगवान्‌की शरण रहेगा, वही आत्माका वास्तविक स्वरूप पहिचान सकेगा ॥ ४ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'झूठ कह कोऊँ'—श्रीबैजनाथजीने और पंडित रामेश्वर भट्टजी ने इस मत को 'उत्तर मीमांसा' नाम दिया है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। उत्तर-मीमांसाके प्रतिपादक और ब्रह्मसूत्रके रचयिता व्यासजीने इस 'असत्' सिद्धान्त ही की पुष्टि नहीं की। ब्रह्मसूत्र तो सभी वेदान्तियोंका प्रमाण-ग्रन्थ है। जगत्‌का असद्वाद तो शंकराचार्यजीका मत है। जिस उत्तर मीमांसासे उन्होंने 'अद्वैतवाद' का प्रतिपादन किया है, उसीसे रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैतका, माध्वाचार्यने द्वैतका और निम्बार्काचार्यने द्वैताद्वैतका सिद्धान्त सिद्ध किया है; अतः इस मत को मायावादी अद्वैतवादियोंका मत कहना ही युक्तिसंगत होगा।

( २ ) 'परिहरै तीन भ्रम'—जैसा कि गीतामें लिखा है—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'

( ३ ) यह पद बड़ा ही जटिल और दार्शनिक है। इसे देखनेसे गोसाईं जीके असाधारण दार्शनिक ज्ञानकी सूचना मिलती है। हम-सरीखे मूढ़ ऐसे-ऐसे गंभीर पदोंका अर्थ और भाव भला कैसे लिख सकते है।

( ११२ )

केसव, कारन कौन गुसाईं।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहि तजेहु अग्य की नाईं ॥१॥
परम पुनीत संत कोमल चित, तिनहि तुमहि बनि आई।
तौ कत बिप्र, ब्याध, गनिकहि तारेहु, कछु रही सगाई ॥२॥
काल करम, गति अगति जीव की, सब हरि हाथ तुम्हारे।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम, फिरहुँ न तुमहिं बिसारे ॥३॥
जौ तुम तजहुँ भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे।
मन बच करम नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ॥४॥
जद्यपि नाथ ! उचित न होत अस, प्रभु सों करौं ढिठाई।
तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हार निठुराई ॥५॥

**शब्दार्थ**—अग्य = ( अज्ञ ) अनजान। कत = क्यों। सगाई = नाता। पन = प्रतिज्ञा। प्रमान = पक्की। सीदत = कष्ट पाता है।

**भावार्थ**—हे केशव! हे नाथ! ऐसी क्या बात है, कि जिस अपराधसे आपने मुझे दुष्ट समझकर एक अनजान, अपरिचित की तरह छोड़ दिया? इसका कारण बता दीजिए॥ १॥ (यदि यह बात है, कि तू पापी है और) जिनके आचरण बड़े ही पवित्र हैं, जो दयावान् और संत हैं, उन्हीको आप अपनाते हैं, तो अजामेल, वाल्मीकि और गणिकाको क्यों मुक्त किया? क्या उनसे आपकी कोई रिश्तेदारी थी? भाव यह है कि यदि उन पापियोको आपने तारा है, तो मेरा भी उद्धार कीजिए, क्योकि मै भी तो उन्हींकी तरह एक पापी हूँ॥ २॥ हे हरे! इस जीव-का काल, कर्म, दशा, दुर्दशा सब कुछ आपहीके अधीन है, सो हे नाथ! मेरे मोहको हटाकर कुछ ऐसा उपाय कीजिए, जिससे मै आपको भूलकर इधर-उधर न मारा-मारा फिरूँ॥ ३॥ जो आप मुझे त्याग भी देंगे, तो भी मैं आपहीको भजूँगा, और किसीको अपना 'प्रभु' न मानूँगा, यह मेरी अटल प्रतिज्ञा हैं; अर्थात् यदि किसीका होकर रहनाही है तो आपहीका होकर रहूँगा, औरोका नही। मन, वचन और कर्मसे जहाँ-कहीं भी आप नरक या स्वर्गमें भेजेंगे, वहाँ, हे रघुनाथजी? आपहीका निहोरा करता रहूँगा। भाव यह कि, यदि नरक या स्वर्गवाले मुझसे पूछेंगे, कि यहाँ कैसे आया तो कह दूँगा कि मेरे स्वामी रघुनाथजीने मुझे यहाँ भेजा है, मै केवल उन्हींको जानता हूँ॥ ४॥ हे नाथ! यद्यपि यह उचित नहीं है कि मैं आपके साथ ऐसी धृष्टता करूँ, मुँहलगा होकर बात करता रहूँ, पर क्या करूँ? यह तुलसीदास आपकी निष्ठुरता, सगदिली, देखकर रात दिन यातना भोग रहा है इसीसे जो न कहनेका था, सो भी आज आपसे कहना पड़ा॥ ५॥

**टिप्पणी**—(१) 'बिप्र'—अजामेल, ५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(२) 'ब्याध'—वाल्मीकि ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(३) 'गनिका'—पिंगला, ६४ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(४) 'जद्यपि'' निठुराई—आर्त्त मनुष्य क्या-क्या नही कह सकता या कर सकता। कहा भी है—

'आरत काहि न करइ कुकरमू।'—(रामचरितमानस)

तथा—

'कामार्त्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतना चेतनेषु।'—( मेघदूत )

( ११३ )

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे ।
अनतपाल पन तोर मोर पन, जिअहुँ कमलपद देखे ॥ १ ॥
जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अन्तर जामी ॥ २ ॥
तू उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत श्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहिं मोहि, अब न तजे बनि आवै ॥ ३ ॥
जनक जननि गुरु बंधु सुहृद पति, सब प्रकार हितकारी ।
द्वैतरूप तम-कूप परौं नहि अस कछु जतन बिचारी ॥ ४ ॥
सुन अदभ्र करुना बारिजलोचन मोचन भय भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिन, संसय टरत न टारी ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—द्रवहु = पिघलते हो, कृपा करते हो । केहि लेखे = किस कारण से । पन = प्रण, प्रतिज्ञा । नात = नाता, रिश्ता । जनक = पिता । द्वैत = भेदबुद्धि । रूप = अज्ञान से तात्पर्य है । अदभ्र = अधिक, बहुत बड़ा ।

भावार्थ—हे माधव ! अब तुम किस कारण से कृपा नहीं करते ? तुम्हारी प्रतिज्ञा तो भक्तों पर कृपा करनेकी है और मेरा भी प्रण है, कि तुम्हारे चरणारविन्दों को देख-देख कर ही जीवन बिताऊँ । भाव यह है, कि मै तुम्हारे चरणोंहीके भरोसेपर रहता हूँ, मुझे कोई और आसरा नहीं है । पर आश्चर्य है, कि तुम इतनेपर भी मुझपर कृपा नहीं करते ॥ १ ॥ जबतक मैं दीन और तुम दयालु, मैं सेवक और तुम स्वामी नहीं हुए, तबतक मैने जो-जो कष्ट भोगे वह मैंने तुमसे नहीं कहे, यद्यपि तुम जानते सब थे, क्योंकि तुम्हारा नामही अन्तर्यामी है, अर्थात् घट-घटकी बात जाननेवाले हो ॥ २ ॥ किन्तु अब हमारा तुम्हारा संबंध हो गया है । तुम दानी हो और मैं लोभी हूँ, तुम पवित्र हो और मैं पापी हूँ अथवा तुम नीचों का उद्धार करनेवाले हो, और मै नीच हूँ । हे रघुनाथजी ! वेद गा रहे हैं कि हमारे-तुम्हारे अनेक रिश्ते हैं, अर्थात् जीव और ब्रह्मका नैसर्गिक संबंध है ।

फिर भला तुम्हीं कहो, कि मुझे त्यागना कहाँतक उचित है ॥ ३ ॥ तुम मेरे पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र, स्वामी और सब प्रकारसे हितू हो। अतएव कुछ ऐसा उपाय सोचकर बता दो, जिससे अब मै अविद्यारूपी अन्धेरे कुएँमें न गिरूँ, अर्थात् तुम्हें पहिचानकर जन्म-मरणसे मुक्त हो जाऊँ ॥ ४ ॥ हे कमलनेत्र! तुम्हारी करुणाका कोई पार नहीं है वह संसार के बड़े भारी भय अर्थात् जन्म-मरण से छुड़ा देनेवाली है। हे नाथ! तुलसीदासको जो यह अविद्याजन्य संशय हो रहा है वह, बिना तुम्हारे प्रकाशके, बिना तुम्हारे दर्शनके, किसी भी प्रकार टलनेका नहीं, अर्थात् 'संसार सत् है अथवा असत्"—यह संकल्प-विकल्प आपके ही दर्शनसे दूर होगा, अन्यथा नही ॥ ५ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'मोर प्रण······देखे'— अनन्यताकी सूचना मिलती है। जीवके जीवनाधार एक परमात्मा ही है। रामचरितमानस में लिखा है—

'प्रान प्रान के, जीवन जी के।'

( २ ) 'बहुत नात'—जीव और ब्रह्मके स्वभाव से ही अनेक संबंध हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने 'ब्रह्मसम्बन्ध' के विषय पर बहुत ही उत्तम विवेचना की है। श्रीरामानुजाचार्यजी ने भी जीव-ब्रह्मके इस प्रकार सम्बन्ध लिखे हैं—

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ब्रह्म | ··· | जीव | गुरु | ··· | शिष्य |
| शेषी | ··· | शेष | स्वामी | ··· | सेवक |
| अवतारी | ··· | अवतार | पति | ··· | कान्ता |
| अंशी | ··· | अंश | धर्मी | ··· | धर्म |
| नियामक | ··· | नियम्य | शरीरी | ··· | शरीर |
| पिता | ··· | पुत्र | रक्षक | ·· | रक्ष्य, इत्यादि। |

( ३ ) 'करुना बारिज-लोचन'—'करुना' शब्दके साथ 'वारिज' का मेल बड़ा ही युक्ति-युक्त हैं; 'करुणा' जलरूप हैं, रसमय है, इधर 'वारिज' की उत्पत्ति भी जलसे है, वह भी रसमय और कान्त है।

( ४ ) 'प्रभु······टारी'—बिना भगवत्स्वरूप-ज्ञानके अविद्याका नाश होना असम्भव है, श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

'तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं, प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥'

( ११४ )

माधव, मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-बिषय कोउ नाहीं ॥१॥
तुम सम हेतु-रहित कृपालु आरत-हित ईस न त्यागी।
मैं दुख-सोक-बिकल, कृपालु केहि कारन दया न लागी ॥२॥
नाहिंन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
ग्यान-भवन तनु दियहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥३॥
बेनु करील, श्रीखण्ड बसन्तहि दूषन मृषा लगावै।
सार-रहित हत-भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहु किमि पावै ॥४॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-सृङ्खला, छूटिहि तुम्हारे * छोरे ॥५॥

शब्दार्थ—हेतुरहित=निष्कारण, निष्काम। बेनु=बाँस। श्रीखण्ड=चँदन। सुरभि=सुगन्ध। कठिन=कठोर। दृढ़=निश्चय, पक्का। सृखला=शृंखला, जंजीर।

भावार्थ – हे माधव, मेरे समान, इस संसारमें, सब प्रकारसे निस्सहाय, पातकी, दीन और भोग-बिलासोंमें, लिप्त कोई अन्य नही है, मै सबसे बढ़कर पापी हूँ ॥१॥ और तुम्हारे समान, निष्काम कृपा करनेवाला दीन-दुखियोंका हितू, स्वामी एवं दानी कोई दूसरा नहीं है। मै दुःख और शोक-सन्तापोंसे व्याकुल हो रहा हूँ। क्या कारण है, कि तुमने अभीतक मुझपर कृपा नहीं की? ॥२॥ मै यह माननेको तयार हूँ कि इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है, सब मेरा ही अपराध है। और वह अपराध यह है, कि तुमने मुझे जो ज्ञानका भाण्डार यह नर-शरीर दिया, उसे पाकर भी मैने तुम्हारा वास्तविक रूप आजतक नही पहचाना। भाव यह है, कि यह मानव-शरीर अखण्ड-ज्ञानका मन्दिर है। जिसने इसे पाकर परमात्माका सान्निध्य प्राप्त करनेकी चेष्टा नही की, वह क्यों न पतित होगा, उसपर परमात्मा कैसे कृपा कर सकता है? ॥ ३ ॥ बाँस चन्दनको और करील वसन्तको वृथा ही दोष देते है। यह अभागे है। बाँसमें सार ही नही है, खोखला

* पाठान्तर 'छूटहिं तुम्हारे।'

है, भला, बेचारा चन्दन उसमें सुगन्ध कहाँसे भर दे ? इसी प्रकार करीलमें पत्ते नही होते, उन्हें वसन्त हरा-भरा कैसे कर सकेगा ? भाव यह है, कि जैसे, बाँसमें सुगन्ध और करीलमें पत्ते किसी प्रकार नहीं आ सकते, उसी तरह उस जीवपर परमेश्वर कृपा क्या करेगा, जो स्वभावसे ही महापापी है, जिसका परमेश्वरपर लेशमात्र भी प्रेम नहीं ? ॥ ४ ॥ हे नाथ ! मैं सब भाँति कठोर हूँ, पर तुम तो कोमल स्वभाववाले हो न ? मैंने अपने मनमें यह निश्चय-रूपसे विचार कर लिया है, कि हे प्रभो ! इस तुलसीदासकी अविद्यारूपी बेड़ी तुम्हारे ही छुड़ानेसे छूट सकेगी, अन्यथा नहीं; जबतक तुम्हारी कृपा न होगी, तबतक मै मायाके ही चक्करमें फँसा रहूँगा ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'ग्यान-भवन तनु'—गोसाईंजीने रामचरितमानसमें भी मनुष्य शरीरकी सार्थकताके सम्बन्धमें लिखा है—

'साधन-धाम, मोक्षकर द्वारा ।'

( २ ) 'दूषन मृषा लगावै'—कहा भी है—

'सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताइ ।<br>
कालहि कर्महि ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ ॥' (रामचरितमानस)

( ११५ )

माधव, मोह-पास * क्यों टूटै ।<br>
बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै ॥१॥<br>
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै ।<br>
ईंधन अनल लगाय कल्पसत, औंटत नास न पावै ॥२॥<br>
तरु-कोटर महँ बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे ।<br>
साधन करिय बिचार-हीन मन, सुद्ध होइ नहि तैसे ॥३॥<br>
अंतर मलिन, विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।<br>
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि बिबिध बिधि मारे ॥४॥<br>
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु, बिमल बिबेक न होई ।<br>
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि, पार न पावै कोई ॥५॥

* पाठान्तर 'फास ।'

शब्दार्थ—पास=( पाश ) फाँस, फन्दा। ग्रन्थि=गाँठ। कोटर=छेद। विचार=आत्मबोध। पखारे=धोकर। उरग=साँप। बलमीकि=बाँबी, साँपके रहनेका घर। निधि=खज़ाना, यहाँ समुद्रसे आशय है।

भावार्थ—हे माधव! मेरी यह अविद्याकी फाँस कैसे टूटेगी! बाहर चाहें करोड़ों साधन क्यों न करो, पर भीतरकी गाँठ उन साधनोंसे कैसे छूट सकेगी? भाव यह है, कि जबतक अन्तःकरण शुद्ध नहीं हुआ, तबतक कर्मकाण्ड आदि बाहरी साधन जीवको मुक्त नहीं कर सकते ॥ १ ॥ घीसे लबालब भरे हुए कड़ाहमें जो चन्द्रमाकी परछाईं दिखाई देती है, वह सौ कल्पतक भी ईंधन और आग लगाकर औटानेसे दूर नहीं हो सकती। जबतक घीका लेशमात्र भी रहेगा, तबतक प्रतिबिम्ब भी रहेगा। इसी प्रकार जबतक मोह रहेगा तबतक भेद-बुद्धि भी रहेगी ॥ २ ॥ किसी पेड़के कोटरमें जैसे कोई पक्षी जो उसमें रहता है, उस पेड़के काट डालनेसे नहीं मर सकता, उसी प्रकार अनेक साधन क्यों न करो, पर बिना आत्मज्ञानके यह मन शुद्ध होनेका नहीं। भाव यह है, कि तुम चाहे इस मन-रूपी पक्षीके रहनेका शरीररूपी स्थान भले ही छिन्न-भिन्न कर दो, मर जाओ, पर मन-विहंग मरनेका नहीं। वह सूक्ष्मरूपसे ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। जब तुम उसे पकड़कर पिंजड़ेमें बन्द कर दोगे अर्थात् उसे हरि-शरणापन्न कर दोगे, तभी वह वशमें हो सकेगा, अन्यथा नहीं ॥ ३ ॥ जैसे बाँबीपर अनेक प्रकार से प्रहार करनेपर और नाना उपायोंसे भी उसमें रहनेवाला साँप नहीं मरता है, वैसे ही शरीरको खूब धो धोकर स्वच्छ रखनेसे कहीं विषयी मलिन मन पवित्र हो सकेगा। कदापि नहीं ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास! बिना भगवान् और गुरुकी दयाके विशुद्ध ज्ञानका होना असंभव है। और, विवेकके बिना इस घोर संसार-सागरसे पार पा जाना किसीके बूतेका नहीं ॥ ५ ॥

टिप्पणी—( १ ) 'घृत पूरन······पावै'—इसे स्पष्टतया यों लिख सकते हैं—घृत=मन, बुद्धिचित्त, अहंकार, अथवा अष्टधा प्रकृति। कराह=शरीर। चन्द्र=माया, अविद्या। प्रतिबिम्ब=मिथ्या ज्ञान, जीव-बुद्धि। ईंधन-अनल=जप, तप, योग, कर्मकाण्ड आदि।

( २ ) 'तरु-कोटर'—इसे इस प्रकार लिख सकते हैं—तरु-कोटर=शरीर विहंग=मन। साधन=जप, तप, यम, नियम, व्रत आदि।

( ३ ) 'मरइ न ·· ··मारे'—यहाँ भी 'उरग' से मनका और 'बलमीकि'से शरीरका अर्थ लेना चाहिए ।

( ४ ) 'हरिगुरु ·कोई'—रामचरितमानसमें लिखा है—

'बिनु सतसग बिबेक न होई । राम कृपा-बिनु सुलभ न सोई ॥'

( ५ ) इन दोनों पद्योंमें जगत्‌का मिथ्यात्व निरूपण किया गया है । यह युक्तियाँ अद्वैतवादियोकी हैं । आत्म-ज्ञान भ्रम-निवारणका मुख्य साधन बताया गया है, किंतु यहाँ यह एक विशेषता है कि वह विवेक, जिससे मायाका ध्वंस होता है, हरि-कृपासे ही प्राप्त हो सकता है । यही तो भक्ति-वादका प्राण है ।

( ११६ )

माधव* असि† तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥१॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहि आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोहज नित भव, दारुन बिपति सतावै ॥२॥
ब्रह्म-पियूष मधुर सीतल जोपै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल-रूप विषय कारन निसिबासर धावै ॥३॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस परै जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥४॥
ग्यान भक्ति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मनमाहीं ॥५॥

शब्दार्थ—मोह-जनित=अविद्यासे उत्पन्न । भव=संसार । रस=आनन्द । कत=क्यों, कैसे । चिन्तामनि=स्वर्गका एक रत्न, जो सारी चिन्ताओंको दूर कर देता है । भ्रम=अज्ञान, संशय ।

भावार्थ—हे माधव ! यह तुम्हारी माया ऐसी है कि कितने ही उपाय करके पच मरो, पर जबतक तुमने कृपा नहीं की, तबतक इससे पार पा जाना असम्भव ही है । भाव यह है, कि मायासे मुक्त होना केवल हरि-कृपा-साध्य है, क्योंकि इसका फन्दा कुछ ऐसा है कि वह सैकड़ों साधनोंको भ्रष्ट कर देता है ॥ १ ॥ सुनता हूँ, विचारता हूँ, समझता हूँ और औरोंको भी समझाता हूँ, पर इस मायाकी

* पाठान्तर 'माधो' । † पाठान्तर 'अस ।'

गति फिर भी ठीक-ठीक मनमें नहीं बैठती, अर्थात् वह अनिर्वाच्य ही रहती है। और जबतक इसका वास्तविक रहस्य ज्ञात नहीं हुआ, मन निश्चल और शान्त नहीं हुआ, तबतक अविद्याजन्य संसारकी बड़ी-बड़ी घोर विपत्तियाँ दुःख देती ही रहेंगी। भाव, यह जीव जबतक प्रकृतिसे पृथक् होकर कैवल्यका अधिकारी नहीं हुआ, तबतक यह जन्म मरणके चक्रसे छूट नहीं सकता ॥२॥ यदि ब्रह्मामृत, जो बड़ा ही मधुर और शीतल है, इस मनको मिल जाय, यदि इसे उस रसका चसका पड़ जाय, तो फिर यह क्यों विषय-रूपी झूठे मृगजलके अर्थ रात दिन दौड़ता फिरे ॥३॥ जिसके घरमें ही दिव्य चिन्तामणि विद्यमान है, वह काहेको काँच बटोरता फिरेगा? सारांश, जिसे आत्मबोधका आनन्द प्राप्त हो गया, उसे फिर विषयानन्द महातुच्छ जँचेगा। जैसे कोई सपनेमें किसीके फंदेमें पड़कर उसके अधीन हो जाय और छूटनेके लिए उससे विनय करता फिरे, पर जब जाग पड़े तब वह किससे निहोरा करेगा? भाव यह है कि, उसी प्रकार यह जीव मायारूपी सपनेमें मोहके वशमें जा पड़ा है, उस अवस्थामें चाहे जितने छूटनेके प्रयत्न करे, पर जबतक यह जागा नहीं, इसे आत्म-बोध नहीं हुआ, तबतक इधर-उधर भटकना व्यर्थ है। ज्ञानोदय होनेपर इसे किसीसे निहोरा न करना पड़ेगा ॥ ४ ॥ ज्ञान, भक्ति आदि अनन्त साधन हैं। यह सभी सच्चे हैं, झूठ एक भी नहीं। किंतु, हे तुलसीदास! मुझे तो यह निश्चय है कि अविद्याका नाश केवल हरि-कृपासे ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। भाव यह है कि, कलियुगमें जितने और साधन किये जाते हैं, वे एक तो सिद्ध ही नहीं होते, दूसरे उनसे अहंकार बढ़ता है और अहंकारसे जीवका पतन अवश्यभावी है, इसलिए भगवान्‌की कृपा ही, जो दासभावसे प्राप्य है, अविद्याका नाश करनेवाली है ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) इस पदमें सिद्धान्तरूपेण गोसाईंजीने माया-नाशका मुख्य और अविच्छिन्न साधन केवल हरि-कृपाको माना है।

( २ ) 'ब्रह्म-पियूष······धावै'—सहचरिशरणजी कहते हैं—

'मिश्री-प्याला पिया जिन्होने, फेरि पियैं क्या नीमैं!'

सूरदासजीने भी कहा—

'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।'

( ३ ) 'भ्रम'—यह जगत् सत्य है अथवा असत्य। इस भ्रमका अद्वैत-

वादियोंके मतानुसार यह अर्थ नहीं है, कि जगत् असत्य होकर भी सत्यकी नाईं भासित हो रहा है, किन्तु यह आशय है, कि 'समझ ही में नहीं आता कि जगत सत् है वा असत्' !

( ११७ )

हे हरि, कवन दोष तोहि दीजै ।
जेहि उपाय सपनेहुँ दुरलभ गति, सोइ निसिबासर कीजै ॥१॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे ।
तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यों, फिरत बिषय अनुरागे ॥२॥
भूत-द्रोह कृत मोह-बस्य हित आपन मैं न बिचारो ।
मद-मत्सर-अभिमान ग्यान-रिपु, इन महँ रहनि अपारो ॥३॥
वेद-पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगब्यापी ।
बेधत नहि श्रीखंड बेनु इव, सारहीन मन पापी ॥४॥
मैं अपराध-सिंधु, करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।
तुलसिदास भव-ब्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी ॥५॥

शब्दार्थ—गति=यहाँ, मुक्तिसे आशय है । अज=बकरा । श्रीखंड=चंदन । बेनु=बाँस । सार=यहाँ गूदेसे तात्पर्य है । उरगरिपु=साँपो के शत्रु गरुड़ ।

भावार्थ—हे हरे ! तुम्हें भला मैं क्या दोष दूँ ? जिस-जिस यत्नसे मोक्ष सपनेमें भी दुर्लभ है, वही-वही मै दिन-रात किया करता हूँ । अर्थात्, सदा पापही कमाया करता हूँ, फिर मोक्ष कहाँसे मिले ? सारा अपराध मेरा ही है । तुम्हें दोषी कह ही नहीं सकता ॥१॥ यद्यपि यह मैं जानता हूँ कि इंद्रियोंके विषय अनिष्ट-रूप हैं, इनमें पड़कर अंधेरे कुएँमे गिरना है, फिर भी विषयोंमें लौलीन होकर कुत्ते, बकरे और गधेकी तरह उन्हें छोड़ता नहीं हूँ, उन्हीसे बारबार प्रेम करता हूँ ॥२॥ सारे प्राणियोके साथ द्रोह करके अज्ञानवश मैने अपना हित नहीं सोचा, आजतक यह नहीं जाना, कि मेरी सच्ची भलाई किसमें है । और मद, ईर्ष्या, अहंकार आदि जो ज्ञान के शत्रु हैं, उनमें और भी लीन हो गया हूँ । सार यह है, कि जिन्हें त्यागनेसे ज्ञानप्राप्ति होती है, उन्हीं शत्रुओंके हाथ में पड़ा रहना अहोभाग्य समझता हूँ । भला, मुझ-सरीखा भी कोई मूर्ख होगा ? ॥ ३ ॥ वेदों और पुराणों में सुनता हूँ और समझता हूँ कि रघुनाथजी समस्त संसार में रम

रहे हैं, किन्तु मेरे नीरस पापी मनमें यह बात ऐसे नहीं समाती, जैसे चंदनकी सुगंध बिना गूदेके खोखले बाँसमें नहीं जाती ॥४॥ हे करुणालय ! मैं अगणित दोषोंका समुद्र हूँ—यह तुम जानते हो, क्योंकि तुम सभी के हृदयकी जाननेवाले हो। सो, हे गरुडगामी ! संसाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह तुलसीदास तुम्हारी शरणमें आया है। भाव यह है, कि मुझे संसारके आवागमनसे छुड़ाकर कृपया अपना सामीप्य दो ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'अर्थ'—अर्थका 'स्वार्थ' से तात्पर्य है। 'स्वार्थ' का 'स्व' आत्मवाचक नहीं, किन्तु शरीर-वाचक है। इन्द्रियोंके जितने विषय है, वे सब इस 'अर्थ' के अन्तर्गत है। श्रीशकराचार्यजीने भी 'भावय अर्थमनर्थम्' में यही बात कही है। जिसे हम अर्थ अर्थात् इष्ट समझते है, वह, वास्तवमें अनर्थ है, अनिष्ट है।

( २ ) 'स्वान, अज, खर'—ये तीनों ही महाविषयी होते है। इन-सा कामी दूसरा पशु नहीं होता है। इन्द्रिय लोलुपताकी इनके साथ उपमा देकर गोसाईं जीने जीवकी निर्लज्जता और कामैषणा सिद्ध की है।

( ३ ) 'उरग-रिपु-गामी'—यहाँ संसार साँप है, उसका भक्षक है ज्ञान, और ज्ञानके अधिष्ठाता है भगवान्। भगवत्कृपासे ज्ञान इस जीवका मोह नष्टकर सकता है—यह भाव है।

( ११८ )

हे हरि, कवन जतन सुख मानहुँ।
ज्यों गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम जानहु ॥१॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बत्सपद जैसे।
रहनि आन बिधि; कहिय आन, हरिपद-सुख पाइय कैसे ॥२॥
देखत चारु मयूर बैन* सुभ बोल सुधा इव सानी।
सबिष, उरग-आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥३॥
अखिल-जीव-बत्सल निरमत्सर, चरन-कमल अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुबीर धीरमति, अतिसय निज-पर-त्यागी ॥४॥
जद्यपि मम औगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निजगुन बिचारि करुनानिधान करु दाया ॥५॥

* पाठान्तर—'वचन', 'नयन'।

शब्दार्थ—रहनि=आचरण। उरग=सर्प। निरमत्सर=ईर्ष्यारहित। निज-पर-त्यागी=जिसमें अपने-परायेका भेद नहीं है।

भावार्थ—हे हरे! किस उपायसे मैं सुख मानूँ, कैसे सुखी होऊँ? मेरा कर-तब हाथीके दातोंके समान है, तुम तो सब भलीभाँति जानते हो। भाव यह है, कि जैसे हाथीके दाँत खानेके तो और होते हैं और दिखानेके और, उसी प्रकार मै करता हूँ कुछ और, और दिखाता हूँ कुछ और ही। सदा कपट किया करता हूँ। हूँ तो महाअधम, पर बनता हूँ महात्मा ॥१॥ यदि मैं, जैसा कि कहता हूँ वैसा ही करूँ, तो संसार-सागरको इस प्रकार पार कर जाऊँ जैसे कोई बछड़ेके पैर भर जलको लाँघ जाता है, अर्थात् अनायास ही मुक्ति पा जाऊँ। पर मेरा आचरण तो कुछ और ही है और कहता फिरता हूँ कुछ और। अब, भला, तुम्हारे चरणों का आनंद मिले तो कैसे! ॥२॥ देखनेमें तो मोर सुंदर लगता है और मीठी वाणीसे ऐसे वचन बोलता है, मानों अमृत से सने हों, किन्तु उसका आहार है ज़हरीला साँप! कैसा कठोर है! यह करनी है और वह कथनी! दोनों में पृथ्वी-आकाशका अंतर है ॥३॥ हे रघुनाथजी! आपको तो वे ही संत प्यारे हैं, जो समस्त प्राणियों-पर प्रेम करते हैं, जिनमें ईर्ष्याका लेश नहीं है, जो आपके चरणारविंदोके भक्त हैं, जिनकी बुद्धिमें धैर्य है, जो अपने-परायका भेद बिल्कुलही छोड चुके है। (ये सब सद्गुण मुझमें कहाँ है? फिर मै तुम्हें कैसे प्रिय लगूँ?) ॥४॥ हे रघुनाथजी! यद्यपि मुझमें अनन्त दोष हैं और मैं ससारहीमे आने योग्य हूँ, किन्तु हे करुणालय! तनिक अपने गुणोंपर तो विचार कीजिए, जब आप अपने गुणोंकी ओर देखेंगे तब अवश्य मुझपर कृपा करेंगे। भाव यह है, कि आप भक्त-वत्सल है, कृपासागर हैं, पतित-पावन हैं, अतएव मुझे विश्वास है, कि मुझ पतितका आप अवश्य ही उद्धार करेंगे ॥५॥

टिप्पणी (१)—'हे हरि''''मानहुँ—पंडित रामेश्वर भट्टजीने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—'हे हरे! तुम कौनसे उपायसे सुख मानो', यह अर्थ कुछ ठीक नहीं जँचता। 'मानहु क्रिया मैं के साथ आती है और 'हरि' को सुख माननेसे क्या पड़ी है?, 'मैं कैसे सुख मानूँ, अर्थात् अपने को सुखी समझूँ' यही अर्थ उपयुक्त जान पड़ता है।

(२) 'ज्यों गजदसन''''''करनी'—इसपर कबीरदासजी कहते हैं—

'कबिरा तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।<br>
जानो कली अनार की, तन राता मन सेत ॥'

अथवा—

'विष-रस-भरा कनक-घट जैसे ।'—( रामचरितमानस )

तथा—

'चपल औ चतुर हैं बने बहु चीकने, बात में ठीक पै कपट ठानी ।
कहा तिन सों कहौं दया जिनके नहि, घात बहुतै करैं बगुल ध्यानी ।।'

( ३ ) 'अतिसय निज-पर-त्यागी'—समद्रष्टा; जो दूसरेके हितको अपना हित और दूसरेकी हानिको अपनी हानि समझे ।

( ४ ) इस पदमें गोसाईंजीने कथनी और करनीका बड़ा ही सुंदर और सजीव विवेचन किया है । कबीरदासजी भी इस संबंधमें क्या अच्छा लिख गये हैं—

'कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार ।
कह कबीर करनी सबल, उतरे भौजल-पार ।।
जस करनी तस करनियौ, जस चुम्बक तस नाम ।
कह कबीर चुम्बक बिना, क्यों छूटै संग्राम ।।
कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोय ।
सो कहता बहि जान दे, जो नहिं गहता होय ।।
कथनी मीठी खाँड़—सी, करनी विष की लोय ।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमरत होय ।।'

## ( ११९ )

हे हरि, कवन जतन भ्रम भागै ।
देखत सुनत बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिं त्यागै ।।१।।
भक्ति, ग्यान, बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहउ, देउ कछु कोऊ, असि बासना हृदय ते न जाई* ।।२।।
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी बिपरीत देखि मोहि, समुझि महाभय लागै ।।३।।
जद्यपि भग्न मनोरथ बिधिबस, सुख इच्छत दुःख पावै ।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ।।४।।

---

* यहाँ पाँच मात्राएँ अधिक है ।

हृषीकेस सुनि नाम† जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख, हरे बनिहिं प्रभु तोरे ॥५॥

शब्दार्थ—भ्रम=अविद्यारूपी संशय। सूतहिं= सोते हैं; यह बैसवाड़ी भाषा-का ग्रामीण प्रयोग है। कर-हीन=इसका यह अर्थ नही है कि जिसके हाथ ही न हों, पर यह है कि जो अपने हाथोंसे कुछ काम न ले। हृषीकेस=हृषीक + ईश; इन्द्रियोंके स्वामी।

भावार्थ—हे हरे! किस उपायसे मेरा यह संशय दूर होगा? देखता है, सुनता है, सोचता है फिर भी मेरा यह मन अपने स्वभावको नहीं छोड़ता। भाव यह है कि संसारमें स्पष्टतः दिखाई देता है कि सभी कुछ क्षणभंगुर है, सुना भी गया है कि, बड़े-बड़े प्रतापी राजे-महाराजे भी कालके कराल गालसे अछूते नही बचे और यही विचार करनेपर भी सत्य जँचता है, किन्तु यह चचल मन फिर भी विषयोंमें जा-जा कर फँसता है! आश्चर्य है! ॥१॥ इस मनको शान्त करनेके लिए ही भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि समस्त साधन बनाये गये हैं, पर ये सब निष्फल है, क्योंकि यह इच्छा हृदयसे कभी भी नहीं जाती, कि 'कोई मुझे अच्छा कहे' अथवा 'मुझे कुछ दे।' साराश यह, कि बड़े-बड़े भक्त, ज्ञानी और वैरागी भी अहमन्यता और लोभमें फँसे दिखाई देते हैं, फिर औरोकी गिनती ही क्या? मन ऐसा प्रबल है ॥२॥ जिस (संसार-रूपी) रातमें सब लोग सोते है (भूले पड़े हैं) उसमें केवल आपका भक्त जागता है (भगवद्भजनमें लीन रहता है), किन्तु मुझे बड़ा डर लग रहा है, क्योंकि मै अपनी करनीको बिलकुल ही उलटा देख रहा हूँ। अर्थात् मुझमें वैसा एक भी गुण नही, जिससे मै संसारको मिथ्या समझकर आपके चरणोंमें चित्त लगाऊँ, संसार-रूपी रात्रिसे जाग पड़ूँ ॥३॥ यद्यपि दैव-वश विधाताके प्रतिकूल होनेपर, मेरी सारी कामनाएँ नष्ट हो चुकी, अर्थात् भाग्यमें तो लिखा ही नहीं कि सुख मिले, तथापि सुखोंकी इच्छामात्र कर-कर मैं ऐसे दुःख पा रहा हूँ, जैसे कोई चित्रकार अपने हाथसे चित्र बनाये बिना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहे। भाव यह है, कि जैसे कोई चित्रकार कल्पनाके चित्रोंसे रुपया कमाना चाहे, तो कैसे कमा सकता है? जब हाथसे चित्र बनायेगा, तभी रुपया पैदा कर

† पाठान्तर 'नाउँ।'

सकेगा; उसी प्रकार मैं पुरुषार्थ तो कुछ करता-धरता नहीं, मनके ही लड्डू खा रहा हूँ, अब सुख कहाँसे मिले ? दुःख ही-दुःख देखना पड़ेगा ।।४।। आपका हृषीकेश नाम सुनकर मैं आपकी बलैया लेता हूँ । मेरे मनमें यह दृढ़ विश्वास है, कि इस तुलसीदासका इन्द्रिय जन्य दुःख आप अवश्य दूर कर देंगे, क्योंकि आप 'हृषीकेश' अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी हैं, नियन्ता हैं । आपकी आज्ञासे वे मुझे सता न सकेंगी, यह निश्चय है ।।५।।

टिप्पणी —( १ ) 'निज स्वभाव'—संकल्प-विकल्प, चञ्चलता, विषय-लोलुपता, इन्द्रिय-परायणता ।

( २ ) 'जेहि ''जागै'—यह पद गीताके निम्नलिखित श्लोकार्द्धका छायानुवाद जान पड़ता है—

'या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी ।'

( ३ ) 'हृषीकेश'—श्रीरामचन्द्रजीका यह नाम राशिका नाम प्रतीत होता है, क्योंकि आपका प्राकट्य पुनर्वसु नक्षत्रके चौथे चरणमें हुआ था । अतएव 'हकारादि' नाम पड़ना ज्योतिष-शास्त्रके संगत है । इस मतका प्रतिपादन श्रीबैजनाथजीने किया है ।

( ४ ) इस पदमें भी अविद्या-नाशका मुख्य कारण भगवत्कृपाको ही माना है ।

( १२० )

हे हरि, कस न हरहु भ्रम भारी ।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ।। १ ।।
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाई गुसाईं ।
बिन बाँधे निज हठ सठ परबस पर्‌यो कीर की नाईं ।। २ ।।
सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई ।
बैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ।। ३ ।।
स्रुति-गुरु-साधु-स्मृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी ।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी ।। ४ ।।
बहु उपाय संसार-तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै ।
तुलसिदास मैं-मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै ।। ५ ।।

शब्दार्थ—अविद्यमान = नाशवान्, क्षणिक । संसृति = संसार । कीर = तोता । दृश्य = संसार । गिरा = वाणी । जिउ = जीव ।

भावार्थ— हे हरे ! मेरे इस भारी भ्रम को क्यो दूर नहीं करते ? यद्यपि यह संसार मिथ्या है, असत् है, तथापि जबतक आपने कृपा नही की, तबतक तो यह सत्य-सा ही भास रहा है, अर्थात् बिना आपकी कृपाके यह संशय दूर हो ही नहीं सकता, कि 'संसार सत् है अथवा असत्' ॥१॥ यह मैं जानता हूँ कि अर्थ नाशवान् है विषय-सुख क्षणिक है, किन्तु हे स्वामी ! इतने पर भी इस संसारसे छुटकारा नहीं पाता । भाव, देखता हुआ भी अन्धा हूँ । मै बिना किसीके बंधनके ही, अपने ही हटसे, तोते की तरह परतंत्र पडा हूँ ! मै ऐसा मूर्ख हूँ, कि स्वयं अपने ही हाथसे स्वयं बँध गया हूँ ॥२॥ जैसे स्वप्नमें ऐसे-ऐसे कराल रोगोने आ घर दबाया कि बस अब मौत आ ही गई, और वैद्योंने भी अनेकों उपाय किये, पर जबतक जागे नही, तबतक दुःख दूर होनेका नहीं (इसी प्रकार मायात्मक भ्रममें पडकर हमलोग अनेक यातनाएँ भोग रहे हैं, साथ ही उन्हें दूर करनेका प्रतिकार कर रहे हैं, पर बिना आत्मज्ञानके मायासे छुटकारा पा जाना दुर्लभ है ) ॥३॥ वेद, गुरु, संत और स्मृतियाँ, सभी एक स्वरसे कहते चले आये हैं कि यह दृश्यमान् जगत् सदा दुःख रूप है । जबतक इसे त्यागा नहीं और रघुनाथजीका भजन नहीं किया तबतक ऐसा कौन समर्थ है, जो इस विपत्तिका नाश कर सके ? भाव यह है, कि संसार-त्याग अर्थात् संसारसे निर्लिप्त रहना और भगवद्भजन करना यही दो आवागमनसे छुडा सकते हैं ॥ ४ ॥ वेद निर्मलवाणीसे कह रहे हैं, कि संसार-सागरसे पार होनेके अनेक उपाय हैं, किन्तु, हे तुलसीदास ! जबतक 'मै और मेरा' दूर नहीं हुआ माया मोह नहीं छूटा, तबतक यह जीव कभी भी सुख नहीं पा सकता सारांश, परमानन्द लाभका मुख्य साधन निर्मोह अथवा निर्ममत्वही है ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'परबस परेउ कीर की नाईं'—खेतमें किसान लोग दो लकड़ियाँ गाड देते है । उनपर एक आडी लकडी रख देते हैं और उसमें चौंगली पहिना दी जाती हैं । खेती चुगनेवाला तोता ज्योंही उसपर बैठता है, वह घूम जाती है और बेचारा उलटकर टंग जाता है । यहाँ शुभ अशुभ कर्म दो लकड़ियाँ और एक स्वभावरूपी लकडी इन दोनोके बीचमें हैं और इसमें इच्छारूपी चौंगली और इच्छा करते ही जीवरूपी तोता बिना किसीके बाँधे ही शुभाशुभ कर्मके बंधनमें स्वयं बँध जाता है । गोसाईंजीकी उपमा बड़ी ही युक्तिसंगत है ।

( २ ) 'बहु उपाय'—स्नान, तर्पण, संध्या, पूजा, पाठ, हवन योग, जप, तप, व्रत, दान, विवेक, शम, दम, आदि सहस्रों मुक्ति-साधन

( ३ ) 'मैं—मोर'—यही तो माया है। कहा भी है—
'मैं अरु मोर, तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥'

( १२१ )

हे हरि, यह भ्रम की अधिकाई।
देखत, सुनत, कहत, समुझत संसय संदेह न जाई ॥ १ ॥
जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाय मृगबारि सत्य, भ्रम ते दुख होइ बिसेखे ॥ २ ॥
सुभग सेज सोवत सपने, बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो, जब लगि आपु न जागै ॥ ३ ॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम-संतोष-दया-बिबेक तें, ब्यवहारी सुखकारी ॥ ४ ॥
तुलसिदास सबबिधि प्रपंचजग, जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति-भक्ति संत-संगति बिनु, को भव-त्रास नसावै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—संशय = विकल्पज्ञान, कुछ-का-कुछ मान लेना। संदेह='यह है अथवा वह'—ऐसा ज्ञान। मृषा = असत्य।

भावार्थ—हे हरे! यह अविद्याका आधिक्य नहीं तो क्या है, कि देखने, सुनने, कहने और समझनेपर भी न तो संशय अर्थात् विकल्प ज्ञान ही जाता है और न संदेह ही? भाव यह है, कि भ्रमवश ही मैं असत्य जगत्को सत्य मान रहा हूँ और अभीतक निश्चय भी नहीं हुआ, कि क्या तो सत्य है और क्या असत्य॥१॥ यदि संसार असत्य ही है, तो फिर सांसारिक तीनों तापोंका अनुभव, कहो, किस कारणसे होता है? (मिथ्या कारणका कार्य भी मिथ्या ही होना चाहिए, पर ऐसा नहीं होता। सुख दुःखका अनुभव तो प्रत्यक्ष सत्य प्रतीत होता है)। मृगजल सत्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु जबतक भ्रम है, तबतक तो सच-सा ही दीखता है, और इसी भ्रमके कारण विशेष दुःख होता है। सारांश, अज्ञान अथवा अविद्या ही सारे दुःखोंका मूल कारण है ॥२॥ जैसे कोई सपनेमें सुन्दर सेजपर सोता हुआ समुद्रमें डूबनेसे भयभीत हो रहा हो, और करोड़ों नौकाओं द्वारा भी वह पार नहीं जा सकता हो, जबतक वह स्वयं न जाग पड़े, उसी प्रकार यह जीव अज्ञानावस्थामें पड़ा संसार सागरमें डूब रहा है; बिना आत्म-बोधके सहस्रों साधनों द्वारा भी यह मुक्त नहीं हो सकता ॥३॥ यह संसार कबतक मनोरम दिखाई देता है? जबतक

कि ज्ञानका उदय नहीं हुआ, वस्तुतः तो यह अत्यंत भयानक है। यह संसार यदि सुखमय है तो केवल उनको, जो सम, सतोष, दया और विवेकसे सबके प्रति सद्व्यवहार कर रहे हैं। अर्थात् ऐसे सच्चे कर्म करते हुए भी, कर्मसे निर्लिप्त रहते हैं, अतः वे आवागमनसे भी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ हे तुलसीदास ? वेद कह रहे हैं, कि सासारिक प्रपंच सर्वथा असत्य है, किन्तु रघुनाथजीकी भक्ति और सन्तो के सतसगके बिना किसमें सामर्थ्य है, जो इस ससारके भीषण भयको दूर कर सके, इस भ्रमसे छुडा सके ? किसीमें भी नहीं ॥ ५ ॥

टिप्पणी--(१) 'भ्रम की अधिकाई'–भ्रमाधिक्यपर कबीरदासजी कहते है–

भर्म परा तिहुँ लोक में, भर्म बसा सब ठाउँ।
कहहि कबीर पुकारि कै, बसैं भर्म के गाउँ ॥'

(२) 'जो जग······बिसेख'—जबतक यह ज्ञान नहीं हुआ कि ससार असत्य है वा सत्य, तबतक वह जैसा है, तैसा मानकर ही उसमें निष्काम-कम करना चाहिए। 'मिथ्या है, मिथ्या है' पुकारनेसे कुछ न होगा। ऐसी अवस्था-में कर्म-त्याग महान् पातक है। वासना-त्याग ही श्रेयस्कार है। और इसी निष्काम कर्म द्वारा संसारका यथेष्ट ज्ञान भी प्राप्त हो जायगा। यही गीताका निचोड़ है।

(३) अज्ञानसे संसार रम्य प्रतीत होता है } दोनों में ही रम्यत्व है।
ज्ञानसे ,, ,, ,, ,, ,,

किन्तु अज्ञान द्वारा अनुभूत रमणीयता क्षणिक है, क्योंकि वह बाह्य सौन्दर्य है, उसका आत्माके साथ कोई चिरसंबंध नहीं; और ज्ञानद्वारा जो रमणीयता अनुभवमें आती हैं वही सच्ची रमणीयता है, क्योंकि वह आन्त-जगत्का सौन्दर्य है। उसके कारण बाह्यजगत् फीका दिखाई देता है, उसका वास्तविक रहस्य अवगत हो जाता है। जिन्हें समता, संतुष्टि, दया और विवेक प्राप्त हो गया, उनके आगे 'सत्' और 'असत्' दोनोंका ही भेद प्रकट हो जाता है।

(४) इस पदमें गोसाईंजीने अविद्या-नाशके दो मुख्य साधन बताये है–भगवद्भक्ति और सत्संग। दोनोमें अन्योन्याश्रय है।

(१२२)

मै हरि, साधन करइ न जानी।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी * ॥ १ ॥

* पाठान्तर 'अरवानी'।

सपने नृप कहँ घटै बिप्र-बध, बिकल फिरै अघ लागे।
बाजिमेध सत कोटि करै नहिं सुद्ध होइ बिनु जागे ॥ २ ॥
स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक, प्रगट होइ अबिचारे।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहि मरइ न मारे ॥ ३ ॥
निजभ्रम ते रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै ॥ ४ ॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहि भाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — आमय = रोग। दिरमानी = हिकमत, प्रतीकार; (यह शब्द अरबी भाषाका है)। घटै = लग जाय। बाजिमेध = अश्वमेध नाम का यज्ञ। स्रग = माला। अविचारे = अज्ञानसे। रविकर-सम्भव = सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न। बोहित = जहाज। आपु = अहङ्कार।

भावार्थ — हे हरे! मुझसे साधन करते ही नहीं बना। जैसा रोग था वैसी औषधि नहीं की। इसमें इलाजका क्या दोष है? साराश यह है, कि संसारसे मुक्त होनेके सैकडों उपाय तो करता फिरा, पर मुख्य उपाय जो मनशुद्धि है उसे तनिक भी नही किया। रोग ज्यों-का-त्यों बना रहा। संसारमें वैसा ही फँसा रहा ॥ १ ॥ जैसे सपनेमें किसी राजाको ब्रह्महत्याका दोष लग जाय और वह उस महापापके कारण जहाँ-तहाँ तड़पता फिरे, सौ करोड़ अश्वमेध भी करे, पर जबतक जागता नहीं, तबतक वह शुद्ध नही होता ( उसी प्रकार बिना आत्मबोधके अज्ञानावस्थामें जो अनेक पाप हो गये हैं, वे शुद्ध नहीं हो सकते ) ॥२॥ और जैसे अज्ञानके कारण मालामें महा भयानक सर्पका भ्रम हो जाता है और वह अनेकों हथियारों और बलसे मारनेपर भी नहीं मरता, भले ही कोई मारते-मारते हार जाय, उसी प्रकार तत्त्वतः जिस संसारका 'अस्तित्व' ही नहीं है, उसे नष्ट करनेके लिए, उससे मुक्त होनेके लिए, ऊपरसे कितने ही साधन क्यो न करो, बिना आत्मज्ञानके उससे छूटना दुर्लभ ही नहीं, असंभव है ॥ ३ ॥ अथवा जैसे अपनेही भ्रमसे सूर्यकी किरणोंसे उत्पन्न हुआ ( मृग-जल ) समुद्र बडा भयंकर जान पडता है, और उसमें डूबकर जहाज या नावपर चढ़नेसे कोई पार नहीं पा सकता है (उसी प्रकार जैसे 'मृगजल-समुद्र' का कोई वास्तविक अस्तित्व नही है, इस ससारको सत्य मान

कर हमलोग, भ्रमवश, जो अनेक दुःख पा रहे हैं, वे दुःख बाहरी उपायोंसे कैसे दूर हो सकते हैं? उनके नाशका अमोघ उपाय तो एक आत्मज्ञान ही है ) ॥४॥ तुलसीदास कहते है, जबतक आप समेत, अहङ्कार सहित, संसारका निर्मूल नाश न होगा, तबतक, भाइयो! करोड़ों यत्न कर-करके मर भले जाओ, पर इस संसार-सागरसे पार न पा सकोगे।

टिप्पणी—( १ ) 'दिरमानी'—श्रीबैजनाथजीने 'बरबानी' पाठ लिखा है और उसका अर्थ 'वेद-वाणी' किया है। किन्तु हमें 'दिरमानी' पाठ अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, क्योंकि रोग और औषधिकी असंगति दिखाकर गोसाईंजीने स्वभावतः यही कहा होगा कि 'इसमें चिकित्साका क्या दोष है?'

( २ ) इस पदमें 'स्वप्नमें ब्रह्महत्या' 'मालामें सर्प' और 'मृगजल में समुद्र' तीन दृष्टान्त दिये गये हैं। इन सबका मूलकारण भ्रम या अविद्या है, जिसका नाश अन्तःकरणकी शुद्धिसे ही सम्भव है। सारांश यह है, कि अविद्यासे छूटनेका मुख्य साधन 'आत्म-बोध' है।

( ३ ) 'आपु'—यहाँ 'आपु' शब्द आत्म-वाची नहीं है। इससे देहाभिमान, मिथ्या-शरीर-ज्ञान अथवा 'असद्भावना'से तात्पर्य है। यही देहाभिमान ( शरीरको ही आत्मा मानना ) संसारका मूल कारण है।

( १२३ )

असकछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित, मोह न छूटै माया ॥ १ ॥
बाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातिन्ह, तम निवृत्त नहिं कोई ॥ २ ॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन-हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न बिपति नसावै ॥ ३ ॥
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ, दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख, खाइ सोइ पै जानै ॥ ४ ॥
जबलगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मनमाहीं।
तुलसिदास तबलगि जग-जोनि भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—वाक्य-ज्ञान=वाचनिक ज्ञान, कोरा शास्त्रीय ज्ञान । असन=भोजन । हृदि=हृदयमें ।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी ! मुझे कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि, हे दयालु ! हे भक्तहितकारी ! बिना तुम्हारी कृपाके न तो मोह ही दूर होता है और न माया ही, यह ध्रुव सिद्धान्त है ।।१।। कोई वाचनिक ज्ञानमें कितना ही कुशल क्यों न हो, पर वह संसार-सागर पार नहीं कर सकता । भाव यह है, कि बिना आत्मानुभूतिके केवल 'सोऽहं सोऽहं' कहनेसे न कोई मुक्त हुआ और न होगा । घरमें, रातके समय, दीपककी बातें करनेसे कहीं अन्धेरा दूर होता है ? (अन्धेरेका तो तभी नाश होगा, जब सचमुच ही दीपक जलाया जायगा) ।।२।। (दूसरा दृष्टान्त सुनिए) जैसे कोई बड़ा ही दीन और दुखिया, बिना भोजनके, भूखके मारे, दुःख पा रहा हो तो क्या उसके घरमें कल्पवृक्ष और कामधेनुके चित्र लिख देनेसे उसकी विपत्ति दूर हो जायगी ? (जब उसे भरपेट भोजन दिया जायगा, तभी वह सुखी होगा, लिखे हुए कल्पवृक्षसे अर्थात् केवल शास्त्रोंकी बातों से उसका दुःख दूर नहीं हो सकता) ।।३।। (और दृष्टान्त लीजिए) कोई रातदिन षट्रस व्यञ्जनोंका वर्णन करे, पर इससे क्या ? जो भोजनोंका नाम लिये बिना ही वस्तुतः भोजन करता है और क्षुधा-तृप्तिसे उसे जो आनन्द मिलता है, उसे वही जानता है । (इसी प्रकार वेद-शास्त्रोंका कोरा निरूपण करनेवाले पंडितोंसे उसका दर्जा बहुत ही ऊँचा है, जो ब्रह्मसाक्षात्कार कर लेता है (कथनी और करनीमें बड़ा भारी अन्तर है) ।।४।। जबतक अपने हृदयमें आत्म-ज्ञानका प्रकाश नहीं हुआ और विषयोंकी आशा मनमें बनी रही, तबतक, हे तुलसीदास ! यह जीव संसारी योनियोंमें भटकता ही फिरेगा, सपनेमें भी इसे सुख न मिलेगा ।।५।।

**टिप्पणी**—( १ ) 'वाक्य ज्ञान······कोई'—इसपर कबीरदासजी कहते हैं—

'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ।।
भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथै अनेक ।
जोपै भीतर लखि परै, भीतर-बाहर एक ।।'

( २ ) इस पदमें भी गोसाईंजीने भगवत्कृपाको ही प्रधानता दी है । यद्यपि आत्मज्ञान और विषय-त्यागको भी मायानाशका साधन बताया है, पर

भगवत्कृपाको कदाचित् वह स्थान दिया गया है, जिसके प्रभावसे उपर्युक्त दोनों साधन अनायास सिद्ध हो सकते हैं।

( १२५ )

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा॥ १॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।
त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाई॥ २॥
असन, बसन, पसु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥ ३॥
बिटप मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥ ४॥
रघुपति-भक्ति-बारि-छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै॥ ५॥

शब्दार्थ— संसृति=संसार। मध्यस्थ=उदासीन, न मित्र ही न शत्रु ही। बरिआई=ज़बरदस्ती। उपेच्छनीय=उदासीन। हाटक - स्वर्ण। पुतरिका= पुत्रिका, पुतली, मूर्ति। छालित=धोया हुआ, स्वच्छ। चिद=(चिव) चैतन्य।

भावार्थ—यदि यह मन अपने विकारोंको ही छोड दे, तो फिर भेद-भावसे उत्पन्न संसारी दुःख, भ्रम और बडा भारी शोक क्यों हों? भाव यह है, कि जितने सुखदुःख, सकल्प-विकल्प, शोक-सन्ताप आदि जीवको हुआ करते हैं वे सब मनकी ही बदौलत होते है। मन शान्त हो जानेपर ये सब द्वन्द्व भी छूट जायँगे॥१॥ शत्रु, मित्र और उदासीन इन तीनोंको हठपूर्वक मनने ही मान रखा है (वैसे, वास्तवमें, न कोई शत्रु है, न मित्र और न उदासीन) शत्रुको साँपके समान त्याग देना चाहिए, मित्रको सुवर्णकी तरह ग्रहण करना चाहिए, और उदासीनकी, तिनकेकी नाईं, उपेक्षा कर देनी चाहिए, उसकी ओर कुछ ध्यान ही न देना चाहिए ये सब मनकी ही कल्पनाएँ है॥२॥ जैसे मणिके बीचमें भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकारकी चीजे रहती हैं वैसे ही इस मनमे स्वर्ग, नर्क, जड़, चैतन्य और बहुतसे लोक संनिहित हैं। इसका भाव यह है, कि जैसे किसीके हाथमें मणि हो तो वह उसे बेंचकर चाहे जो खरीद सकता है। उसी प्रकार इस मनरूपी मणिके प्रतापसे यह जीव स्वर्ग-नर्क तथा अन्यान्य लोकोंमें भी जा सकता

है। यदि अच्छा कार्य करेगा, तो स्वर्गादिका लाभ होगा और जो बुरे कार्योंकी ओर प्रवृत्ति करायेगा, तो नर्क है ही। अतएव सिद्ध हुआ कि यावत् पदार्थोंका भाण्डार यह मन ही है ॥३॥ जैसे पेड अथवा काठके बीचमें पुतली और सूतमें वस्त्र, बिना बनाये ही, पहलेसे विद्यमान, रहते हैं, उसी प्रकार इस मनमें भी समय-समयपर अनेक शरीर, जो उसमें लीन रहते हैं व्यक्त हो जाते है। साराश यह है, कि मनस्कामनाएँ ही जन्मादिकी मुख्य कारण हैं। जैसी इच्छा होगी, वैसा ही शरीर धारण करना पड़ेगा। इसी मनके प्रभावसे मनुष्य देवता हो सकता है, और इसीके कारण शूकर आदि। (मन-महाराजकी लीला अपरम्पार है) ॥४॥ रघुनाथजीकी भक्तिके जलसे जब चित्त धुलकर निर्मल हो जायगा, अन्त.करणसे विषय-प्रवृत्ति हट जायगी, तब बिना किसी परिश्रमके ही सब कुछ (क्या सत् है और क्या असत्) दृष्टिगोचर हो जायगा, विवेक प्राप्त हो जायगा। किन्तु, हे तुलसीदास! तू चैतन्य आनन्दको, अखण्ड आत्मानन्दको, समझते समझते ही समझ सकेगा। क्रम-क्रमसे ही वह आनन्द प्राप्त होगा ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'द्वैत'—राग और द्वेष,—अनुकूल और प्रतिकूल संवेदन।

(२) 'सत्रु ·····तैसे'—यहाँ क्रमालंकार है। जहाँ दो, तीन या और भी अधिक वस्तुओंका जिस-जिस क्रमसे पहले वर्णन किया जाय, उसी क्रमसे उनका वर्णन अन्ततक निबाहा जाय, वहाँ क्रम अलंकार होता है कहा भी है—

'क्रम सों कहि पहले कछू, क्रम ते अर्थ मिलाय।
यों हीं और निबाहिये, क्रम भूषन सु कहाय ॥"

यहाँ यह क्रम है—

| | | |
|---|---|---|
| १—शत्रु | २—मित्र | ३—मध्यस्थ |
| १—त्यागन | २—गहन | ३—उपेक्षणीय |
| १—अहि | २—हाटक | ३—तृन |

(३) 'नाना तनु'—विविध योनियोके अतिरिक्त इसका यह भी अर्थ हो सकता है, कि मन स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण चारों शरीरोंमें किसी-न-किसी रूपमें गुप्त रहता है, यह पिंड नहीं छोड़ता।

(४) 'बूझत-बूझत बझै'—पहले कर्मकाण्ड आदि साधनों द्वारा शरीर शुद्ध किया जायगा। फिर योगद्वारा मनःशुद्धि होगी, तब कहीं ज्ञानका उदय

होगा। ज्ञानोपरान्त भक्तिका साम्राज्य आवेगा, तब कहीं चैतन्य आनन्द प्राप्त होनेपर सद्विवेकका लाभ होगा। भगवान् श्रीकृष्णने, गीतामें, कहा है—

'अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्।'

( १२५ )

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्री रघुबीर धीर हितकारी॥ १॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥ २॥
अति कठिन करहि बरजोरा। मानहिं नहि विनय निहोरा॥ ३॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा॥ ४॥
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा॥ ५॥
मैं एक, अमित बटपारा। कोउ सुनै न मोर पुकारा॥ ६॥
भागेहु नहि नाथ, उबारा। रघुनायक, करहु सँभारा॥ ७॥
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥ ८॥
चिन्ता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥ ९॥

शब्दार्थ—बरजोरा = ज़बरदस्ती, हठ। तम = अज्ञान। बोधरिपु = ज्ञानका शत्रु। मारा = मार, कामदेव। बटपार = डाकू। सँभार = रक्षा। तसकर = चोर।

भावार्थ—मै तुम्हें छोड़कर, हे रघुनाथजी! और किसे अपनी दारुण विपत्ति सुनाने जाऊँ? क्योंकि आपही भलाई करनेमें धीर हैं॥१॥ हे नाथ! मेरे हृदय में, तुम्हारा निवास-स्थान है। अब उसमें बहुत-से चोर आकर रहने लगे हैं, अर्थात् मेरे हृदयमें जो तुम्हारा मन्दिर है, चोरोंने उसमें अपना अड्डा जमा लिया है। अब तुम कहाँ रहोगे? ॥२॥ ये लोग बड़े ही निर्दय हैं, सदा ज़बरदस्ती करते रहते हैं। न तो बिनती ही मानते हैं और न कृतज्ञता ही। ऐसे कठोर हृदयवाले हैं॥३॥ अज्ञान, मोह, लोभ, अहंकार, मद, क्रोध और ज्ञानका शत्रु काम, यही वे चोर हैं॥४॥ हे नाथ! ये सब बड़ा ही ऊधम कर रहे हैं, मुझे अनाथ जान कर कुचले डालते हैं। उन लोगोंने यह समझ लिया है, कि मेरा कोई धनी-धोरी नहीं है, सो अवसर पाकर जितना उनसे बनता है, उतना मुझे सताते है॥५॥ मैं एक हूँ और ये उपद्रवी चोर बहुत-से हैं। कोई मेरी पुकारतक नहीं सुनता (जिसे पुकारता हूँ, वही कानोंमें तेल डाल लेता है। कदाचित् डरता हो कि कहीं

ये हमारा भी घर न लूट ले जायँ। ) ॥ ६ ॥ हे नाथ ! यदि भागूँ तो भी इनसे बचना कठिन है, क्योंकि जहाँ-जहाँ जाऊँगा वहाँ-वहाँ ये भी खदेड़ेंगे। अब हे रघुनाथजो ! आप ही इनसे मेरी रक्षा कीजिए ॥७॥ तुलसीदास फिर भी कहता है, कि इसमें मेरा कुछ भी नहीं जाता, तुम्हारा ही घर चोर लूट रहे हैं। भाव यह है, कि यदि यह हृदय इन चोरोंके अधिकारमें आ जायगा, तो फिर आप कहाँ रहेंगे ? ।८॥ मुझे तो सिर्फ़ यही सोच है, कि कहीं तुम्हारी बदनामी न हो ( कि देखो, इतने बड़े राजा-महाराजाका घर चोरोंने लूट लिया ! इसलिए, शीघ्र ही इन दुष्टोंको हटाकर अपने मन्दिरमें निवास कीजिए ) ।, भाव यह है, कि काम, क्रोध आदिको दूरकर मेरे हृदयमें आप निवास कीजिए ॥ ९ ॥

टिप्पणि—(१) 'तम मोह ··· मारा'—श्रीशंकराचार्यजीने भी कहा है—

'कामः क्रोधश्च लोभश्च, देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञान-रत्नापहाराय तस्माज्जाग्रत, जाग्रत ॥'

( २ ) 'बोध-रिपु'—श्रीपण्डित रामेश्वर भट्टजीने बोधरिपुका अर्थ अज्ञान लिखा है, किन्तु 'तम' शब्द पहले ही आ गया है, जिसका अर्थ अज्ञान है। यहाँ 'बोध-रिपु' 'मार' का विशेषण है, क्योंकि विशेष रूपसे काम ही ज्ञानका नाशकर्त्ता है।

( ३ ) 'लूटहिं'—क्या लूट रहे हैं ? वैराग्य, विवेक, ज्ञान, संतोष, समता, दया, भक्ति आदि सद्रत्न।

( ४ ) कबीरदासजी भी इस लूट-मार पर लिख गये हैं—

'तोरी गठरीमें लागे चोर, बटोहिया, का रे सोवै ?
पाँच-पचीस-तीन हैं चोरवा, यह सब कीन्हा सोर ॥
जाग सबेरा, बाट अनेरा, फिर नहि लागै जोर।
भव-सागर इक नदी बहत है, बिन उतरे जीव बोर ॥
कहैं कबीर, सुनो भाई साधो, जागत कीजै भोर ॥'

( १२६ )

मन मेरे, मानहि सिख मेरी। जो निज भक्ति चहै हरि केरी ॥१॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते। सेवहि तजे अपनपौ चेते ॥२॥
दुख-सुख अरु अपमान-बड़ाई। सब सम लेखहिं बिपति बिहाई ॥३॥

सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥४॥
तुलसिदास बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट लौ* लाये ॥५॥

शब्दार्थ · कृत = किये हुए। अपनरो = अहंकार। बिदूषहि = निन्दा कर।

भावार्थ—हे मेरे मन! मेरा उपदेश मान ले; यदि तू अपने हृदयमें भगवान्‌की भक्ति चाहता है, अर्थात् यदि तुझे भगवद्भक्ति प्राप्त कर पवित्र बनना है, तो मेरी सीख मानकर अपने सारे विकार छोड दे ॥ १ ॥ पहले तो, प्रभुने, भगवान्‌ने, तेरे साथ जो-जो भलाई की हो, उसका हृदयमें स्मरण कर, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर। फिर अहंकार छोडकर, सावधानीसे, उनकी टहल कर। भाव यह है, कि यदि तू प्रमादवश सेवा भी करेगा, तो उसका कुछ फल न होगा, सारा किया-कराया मिट्टीमें मिल जायगा ॥२॥ सुख-दुःख, मान-अपमान, सबको एक-सा समझ। इसी समतासे तेरी विपत्ति जायगी; अर्थात् राग-द्वेष छोड दे, क्योंकि यही आनन्दका प्रतिरोधक है ॥३॥ अरे दुष्ट! सुन, यह शरीर काल-कलेवा है; न जाने, कब मौत इसे अपने चंगुलमें फँसा ले, इसलिए इस (क्षणभंगुर) शरीरके अर्थ किसीकी निन्दा मत कर ॥४॥ हे तुलसदास! जबतक ऐसी बुद्धि, ऐसा विचार प्राप्त नहीं हुआ, तबतक रामजी मिलनेके नहीं; क्योंकि वह सकपट प्रेम करनेसे प्राप्त नहीं होते, सच्ची लगनसे ही मिलते है ॥५॥

टिप्पणि—(१) 'दुख-सुख ······· बिहाई'—गीतामें यह समभाव विस्तारपूर्वक लिखा गया है—

'यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ-परित्यागी, भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संग-विवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥'

(२) 'कालग्रसित'—कबीरदासजी कहते हैं—

'माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुनि लईं, कालि हमारी बार॥'

* पाठान्तर 'लय।'

( ३ ) 'कपट लौ लाये'—'मुखमें राम-राम, बगलमें कसाईके काम'—इस तरह भगवद् दर्शन नहीं होते। परमात्मा-प्राप्ति सच्चे हृदयवालोंको ही होती है।

( १२७ )

मैं जानी हरिपद-रति नाहीं। सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ॥१॥
जो रघुबीर-चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ॥२॥
काम-भुजंग डसत जब जाही। विषय नींब कटु लगत न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी ॥४॥
जब कब राम-कृपा दुख जाई। तुलसिदास नहि आन उपाई ॥५॥

शब्दार्थ—भुजंग = भुजग, साँप। असमंजस = दुविधा।

भावार्थ—मैने समझ लिया है, कि रघुनाथजीके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है; क्योंकि सपनेमें भी मेरे मनमें वैराग्यका उदय नहीं होता, अर्थात् जब संसारसे विरक्ति ही नही हुई, तब परमेश्वरमें अनुरक्ति कैसे होगी? ॥१॥ जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंसे प्रीति जोड़ी है, उन्होंने सारे भोग-विलासोंको रोगकी तरह छोड़ दिया है ॥२॥ जब जिसे कामरूपी साँप डस लेता है, तब उसे विषयरूपी नीम कडवी नही लगती। भाव यह है, कि जिसे साँप काटता है, उसे नीम खिलाई जाती है। यदि साँपका विष चढ आया तो नीम कडवी न लगेगी और जो नहीं चढा, तो कडवी मालूम होगी। इसी प्रकार जब सुन्दर कामिनीके रूपलावण्यपर मनुष्य मोहित हो जाता है, तब उसे विषय-प्रवृति अरुचिकर प्रतीत नही होती, निश्चयपूर्वक उसके सर्वाङ्गमें काम-विष पैठ जाता है और वह किसी प्रकार नहीं बच सकता ॥ ३ ॥ ऐसा हृदयमें विचारकर सदा यही दुविधा मनमें रहा करती है, कि क्या करूँ, क्या न करू? भाव, रामसे प्रेम करूँ या कामसे? इस दुविधाके मारे दिन दूना रात चौगुना सोच बढ़ता जाता है ॥४॥ हे तुलसीदास! तुमसे और उपाय तो कोई बनता नही। बस, जब कभी श्रीरामजी कृपा कर देंगे तभी यह दुःख दूर होगा, अन्यथा नहीं ॥५॥

टिप्पणी—( १ ) 'मैं जानी···मन माही'—माया और भक्ति एक साथ नहीं रह सकती है। कहा भी हैं—

'जहाँ राम तहँ काम नहीं, जहाँ काम नहि राम।
एक संग निबसत नहीं, 'तुलसी' छाया घाम ॥'

कविवर रहीम भी लिख गये हैं—

'जिन नैननि प्रीतम बसे, परछबि कहाँ समाय ।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आपु पथिक फिरि जाय ॥'

( २ ) 'जो रघुबीर ''त्यागे'—श्रीभरतजीके संबंधमें रामचरितमानसमें, गोसाईंजीने क्या अच्छा लिखा है—

'तेहि पुर बसत भरत बिनुरागा । चंचरीक जिमिचंपक-बागा ॥
रमा-बिलास राम-अनुरागी । तजत बमन इव जन बड़भागी ॥'

( ३ ) 'असमंजस—दुबिधा बुरी बला है, क्योंकि—

'दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ।'—कबीर

'दो में एकौ तौ न भई ।
ना हरि भजे, न गृह सुख पाये, ऐसेहि आयु गई ॥'—सूरदास

( ४ ) ''दुविधाका नाश रामकृपा से ही होगा''—यह सिद्धान्त है ।

( १२८ )

सुमिरु सनेह-सहित सीतापति । रामचरन तजि नहिन आनि गति ॥१॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी । कलिमति-बिकल, न कछु निरुपाधी ॥२॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं । रक्तबीज जिमि बाढ़त जाही ॥३॥
हरति एक अघ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका ॥४॥

भावार्थ—अरे भाई ! प्रेमके साथ श्रीजानकी-वल्लभ रघुनाथजीका स्मरण कर क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको छोड़कर इस जीवकी अन्यथा गति नही है अन्य किसी साधनसे यह मुक्त नहीं हो सकता ॥१॥ जप, तप, तीर्थ, योगाभ्यास, समाधि आदि सब कलियुगके मारे व्याकुल हो रहे हैं । कोई भी साधन निर्विघ्न अथवा बाधारहित नहीं है अर्थात् किसीके साथ अहंकार लगा है, तो किसीके साथ संयमकी कैद या धनका अभाव । इधर सिद्धियाँ और लोकमान्यता साधकका पतन कर रही हैं ॥२॥ पुण्य कमाते हुये भी पापोंका नाश नहीं होता । रक्तबीज राक्षसके अघ समान ये क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते ही जा रहे है। भाव यह है, कि एक पापके नाशका जबतक उपाय किया, तबतक दस नये पाप आगे आ खड़े हुए ॥३॥ हे तुलसीदास ! पाप-रूपी राक्षसोंके समूहको नाश करनेवाली केवल श्रीरघुनाथ-

जीकी कृपारूपी कालिका ही है, भगवत्कृपासे ही पापपुञ्ज नष्ट हो सकेगा, अन्यथा नही ।।४।।

टिप्पणी—( १ ) 'रक्तबीज'—यह एक दैत्य था। युद्धमें महाकाली जब इसपर प्रहार करती थीं, तब इसके एक बूँद रक्तके गिरनेसे सैकड़ों नये राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। अंतमे, हैरान होकर भगवती कालिकाने अपनी इतनी लम्बी जीभ बढ़ाई कि जितना उसका रक्त गिरे, वह सब उसीसे चाट जायँ। इस युक्तिसे नवीन राक्षसोंकी उत्पत्तिका नाश कर उन्होंने रक्तबीजका बध किया। दुर्गासप्तशतीमें यह कथा विस्तारपूर्वक दी गई है।

( २ )"पापोंका नाश भगवत्कृपा-साध्य हैं"—यह सिद्धान्त है।

( १२९ )

रुचिर रसना तू राम राम* क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुकृति बढ़त अघ अमंगल घटत ।। १ ।।
बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर-तोम फटत ।। २ ।।
जोग जाग जप बिराग तप सुतीर्थ अटत।
बाँधिवेको भव-गयन्द रेनु कि रजु बटत ।। ३ ।।
परिहरि सुर-मनि सुनाम गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसि तोहि हटत ।। ४ ।।

शब्दार्थ—सुकृत = पुण्य। तिमिर-तोम = अंधकारका समूह। अटत = फिरता है। रजु=रस्सी। सुरमनि = चितामणि। गुंजा = घुँघची। लटत = लोभ करता है।

भावार्थ—हे सुन्दर जीभ ! तू राम-राम क्यो नहीं रटती ? जिस राम-नामके स्मरणसे आनन्द और पुण्य बढ़ते है तथा पाप और अनिष्ट कम होते है ।।१।। बिनाही परिश्रमके, जिस राम-नाम-स्मरणसे कलियुगके पाप-पुंज, जो कटु और दारुण हैं, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदयसे अंधकारका समूह छिन्न-भिन्न हो जाता है ।।२।। तू योग, यज्ञ, जप, तप, और वैराग्य करता है, तीर्थोंमें भी घूमता फिरता है, पर ये सब साधन ऐसे है, जैसे कोई संसार-रूपी गजेन्द्र के

---

* पाठान्तर 'राम राम राम।'

बाँधनेके अर्थ धूलके कणोंकी रस्सी बटता हो; अर्थात, जैसे धूलकी रस्सीसे हाथी-का बाँधना असंभव है, वैसेही इन सब साधनोंसे संसार पार कर जाना असम्भव है ।।३।। चिंतामणि छोड़कर तू, घुंघचीपर लार टपकाता है। राम-नाम छोड़कर विषयोंपर चित्त लगाता है, और इसी कारणसे तेरा यह तुच्छ लोभ देखकर तुलसी तुझसे किनारा काट रहा है, तुझसे अलग हो रहा है ।।४।।

टिप्पणी--(१) 'रुचिर····· रटल'—श्रीयुत् भट्टजीने इसका इस प्रकार अर्थ किया है—'तू सुन्दर जीभसे राम-राम क्यों नहीं रटता ।' पर यहाँ रसना को संबोधित कर कहा गया जान पड़ता है ।

( २ ) वही जीभ सार्थक है जो राम-नाम-स्मरण करती है। सूरदासजी भी कह गये हैं—

'सोइ रसना जो राम-गुन गावै ।'

इसीसे—

'रसना, क्यों न जुगल-रस पावै ।'

तथा—

'रसना, युगलनिधि-रस बोल ।'

( १३० )

राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।
मंगल मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत ।। १ ।।
कहु के लहे फल रसाल, बबुर-बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ।। २ ।।
काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत ।
राम-नाम-महिमा की चरचा चले चपत ।। ३ ।।
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत ।
कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम-नगर खपत ।। ४ ।।
नाम- सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किये रावन-रिपु तुलसिहु से अपत ।। ५ ।।

शब्दार्थ—छपत=छिप जाते हैं, नाश हो जाते है। के=किसने। बपत=बोनेसे। जाय=व्यर्थ। गालगूल=वृथालाप, अनर्गल बातें। गपत=गप्पे हाकने

से। चपत = दबता है। खपत = खप जाता है, बिक जाता है। अपत = अपवित्र, पतित।

भावार्थ--राम-नाम-स्मरणसे कल्याण और आनन्दका उदय अर्थात् लाभ होता है और कलियुगके पाप तथा छल-छिद्र, डरके मारे, छिप जाते हैं, सामना नहीं कर सकते ॥१॥ कहो तो, बबूलका बीज बोकर किसने आमके फल पाये ! भाव यह है कि, दुष्कर्म कर-कर किसने सुख पाया ? विषय करके किसे ब्रह्मानन्द मिला ? किसीको नही। अरे ! वृथा अनर्गल बाते बक-बककर जन्म नष्ट मत कर। सारांश, सारा गुल-गपाड़ा छोड़कर केवल राम नाप जप। इसी में श्रेय है ॥२। काल, कर्म, गुण ( सत्व, रज और तम ) और प्रकृति ये सब सभीके मस्तकोको जला रहे हैं, दुःख दे रहे हैं, पर हाँ राम-नामका महत्त्व जब यह सुनते है, तब चप जाते हैं, दबक जाते हैं, फिर कुछ वश नही चलता है ॥३॥ सब लोग, घबराए-से, बिना ही साधनोंके सिद्धियाँ लपका चाहते हैं, टस-से-मस न करने पर भी बड़े-बड़े फल चाहते है ! भला, यह सम्भव है ? हाँ, कलियुगका जितना कुछ माल है, बनिज व्यौपार है, वह सब नाम-नगरमें खप जायगा, अर्थात् कलियुगमें किये गये सारे पाप राम नामके प्रतापसे नष्ट हो जायँगे, एक भी शेष न रहेगा ॥४॥ नाममें विस्वास और प्रेम करनेसे हृदय शान्त हो जाता है, सारी जलन बुझ जाती है। क्योंकि रावणादि रघुनाथजीके नामसे तुलसी-सरीखे अपवित्र, पतित जन भी पवित्र हो गये हैं ॥५॥

टिप्पणी—(१) श्रीबैजनाथजीने, अपनी टीकामें, छः बार 'राम' शब्द आनेका तीन प्रकारसे कारण लिखा है।

१—राम-तारक मंत्रमें ॐकारकी षट् मात्राएँ वर्तमान है, अतः 'प्रणव' राममें सन्निहित है, यह दिखाया गया है।

२—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और मैथुन इन छहों विषयोंका राम-नाम नाशक है। अतः षट्बार स्मरण किया गया है।

३—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर, इन छहों शत्रुओंपर विजय लाभ करनेके लिए षट्वार स्मरण किया गया है।

२—'पापन···अपत'—श्रीभट्टजीसे इसका यह अर्थ किया है कि 'रामचन्द्रजीने रावण-सरीखे शत्रु और तुलसीदाससे पापीको भी पवित्र कर दिया।' यह अर्थ भी ग्राह्य है।

( १३१ )

पावन प्रेम रामचरनकमल जनम लाहु परम।
रामनाम लेत होत, सुलभ सकल धरम ॥ १ ॥
जोग मख बिबेक बिरति, बेद-बिदित करम।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥ २ ॥
तुलसी सुनि, जानि*बूझि, भूलहि जनि भरम।
तेहि प्रभु की तू सरन, होहि, जेहि सबकी सरम† ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—लाहु = लाभ। मख = यज्ञ। नरम = कोमल।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंमें विशुद्ध प्रेम । होना ही जीवन का परमफल है। राम-नाम-स्मरण करते ही सारे धर्म सुलभ हो जाते हैं, अर्थात् नामस्मरण सर्व धर्मानुष्ठान करनेके बराबर है ॥ १ ॥ वैसे तो, योग, यज्ञ, विवेक, वैराग्य आदि अनेक कर्म-धर्म वेदोंमें प्रकट हैं; किन्तु वे सब सुननेमें ही मीठे और कोमल जान पड़ते है, करनेमें तो बड़े ही कटु और कठोर हैं, अर्थात् फल-श्रुति सुनकर जी चाहता है, कि इनका अनुष्ठान करना चाहिए, किन्तु जब करने बैठते है, तब पहाड़के समान भारी कठिन दिखाई देते हैं, मन ही नहीं लगता, करें तो कैसे ? ॥२॥ इसलिए, हे तुलसीदास! सुन और जान बुझकर सशयमें मत पड, भुलावेमें न आ। तू तो उसी प्रभुकी शरणमें जा, जिसे सबकी लाज है, जिसके हाथमें सबका-बनना-बिगड़ना है ॥ ३ ।

टिप्पणी—( १ ) 'राम-नाम ··धरम'—क्योंकि,

'कलिजुग केवल हरिगुन-गाहा। गावत नर पावहिं भव-थाहा।
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार रामगुन-गाना।।
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रभु समेत गावै गुन-ग्रामहिं।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम-प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥'

(२) 'तेहि प्रभु की · सरम'—सब छोड़-छाड़कर परमात्माकी शरणमें जाओ, क्योंकि गीतामें स्वयं श्रीमुखसे उन्होंने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

---

*पाठान्तर 'ज्ञान'। † पाठान्तर 'तेहि प्रभुको तू होहि जाहि सबहीकी सरन'।

( १३२ )

राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत ।
जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ॥ १ ॥
जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत ।
तहँ तहँ तू बिषय-सुखहि, चहत लहत नियत ॥ २ ॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो, गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ, क्यों न सुधा पियत ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—जाय = व्यर्थ । कियत = कितना । बियत = आकाश । नियत = प्रारब्ध । लट्यो = सना हुआ ।

भावार्थ— श्रीरामके समान प्रीतमसे प्रेम न करके यह जीव व्यर्थ ही जीता है; जिसकी लगन प्यारे रामसे नहीं, उसका जीना-न-जीना बराबर है । अरे ! जिसे तू सुख मान रहा है, तनिक समझ तो, उसमे कितना सुख है ? भाव यह है, कि संसारमें जितने कुछ विषय-सुख हैं, वे क्षणस्थायी हैं, उनका परिणाम महा-दुःखदायक है ॥१॥ जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनिमें—पृथ्वी, पाताल और आकाश-में— तूने जन्म लिया, तहाँ-तहाँ तूने विषय-सुखकी कामना की और वही प्रारब्ध-वश तुझे मिला भी ( क्योंकि जैसी मन्शा, तैसी दशा ) ॥ २ ॥ अब तू अज्ञानमें फँसकर, मोह-ममतामें सना हुआ, फटे आकाशके सीनेमें क्यों प्रफुल्लित हो रहा है ? भाव यह है, कि जैसे आकाशका सीना 'ख-पुष्पवत्' अर्थात् असम्भव है, उसी प्रकार संसारी भोग-विलासोंमें आनन्दकी आशा करना पागलपन है । हे तुलसी ! यदि तुझे आनन्द ही की इच्छा है, तो प्रभु रामचन्द्रजीका कीर्तन करके पीयूष-पान क्यों नहीं करता ? ॥३॥

टिप्पणी--(१) 'प्रभु सुजस गाइ…… पियत'–भगवत्कीर्तन अमृत-रूप है । उसके पानसे जीव अमर हो जाता है । सूरदासजी भी इसी सुधा-रसके अर्थ लालायित हो रहे हैं । देखिए—

'सुआ, चलु ता बन को रसु लीजै ।
जा बन कृष्ण-नाम अमरत-रस, स्रवन-पात्र भरि पीजै ॥'

( १३३ )

तोसो हौं फिरि फिरि हित-प्रियपुनीत सत्य बचन कहत।
सुनि मन, गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥ १ ॥
छोटो बड़ो, खोटो खरो जग जो जहँ रहत।
अपने अपने को भलो कहु को न चहत* ॥ २ ॥
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥ ३ ॥
विषय मुद निहार भार सिर को काँधे ज्यों बहत।
योंही जिय जानि मानि सठ तू साँसति सहत ॥ ४ ॥
पायो केहि घृत बिचार हरिन-बारि महत।
तुलसी तकु ताहि सरन, जाते सब लहत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—लगि = से, आरम्भ करके। अवधि = तक। लौं = समान। पसु-पाल = ग्वाल। नहत = जोतता है। बहत=ढोता है। साँसति = यातना। हरिण-बारि=मृग-तृष्णा। महत = मथता है। लहत=लाभ।

भावार्थ—अरे जीव! मै तुझसे बार-बार हितकारी, मधुर वा पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ। सुन, मनमें विचार कर और समझ, तू सरल और सुन्दर-मार्गपर क्यों नही चलता, अथवा सुन-समझकर भी तू सरल मार्ग क्यों नहीं पकड़ता? ॥ १ ॥ छोटा-बड़ा, खोटा-खरा अर्थात् बुरा-भला, जो जहाँ संसारमें रहते हैं, कहो तो, उनमें ऐसा कौन होगा, जो अपना भला न चाहता हो, अर्थात् सभी अपना-अपना भला चाहते हैं। तात्पर्य यह है, कि रामजी भी अपने जनोंका भला चाहते हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मासे लगाकर छोटे-छोटे कीड़े तक सुखसे सुखी होते हैं और दुःखसे जलते है, अर्थात् सुख-दुःख सभी प्राणियोको एक-सा व्यापता है। परमात्मा ग्वालेकी नाईं जीव-रूपी पशुओंको बाँधता है, खोलता है, और उन्हें जोतता है ( प्रवृत्ति-रूपी रस्सीसे बाँधता है, निवृत्तिसे खोलता और कर्म-रूपी हलमें जोत देता हैं ) ॥ ३ ॥ विषयोके सुखोंको देख। वे क्या है, मानो सिरके

* पाठांतर 'कहु सो को जो न चहत।' 'कहहु को न चहत'।

बोझेको कंधे पर रखना ! भाव यह है कि, जैसे कोई सिर परके बोझको कंधे पर रखकर, क्षणभरके लिए, सुख मान बैठता है, और कंधे परसे, दर्द होने पर, फिर सिर पर रख लेता है, उसी प्रकार तू एक विषयसे हट-कर दूसरे विषयमें फिर फँस जाता है और क्षणिक सुखको आनंद मान रहा है ! देख, इस विषयानंदमें कोई चिरस्थायी आनंद नहीं है, केवल भ्रम है। इसी तरह मनमें समझकर मान जा। अरे शठ ! क्यों व्यर्थ कष्ट सह रहा है ॥४॥ तनिक विचार तो कर, मृग-जल मथकर किसने घी पाया ? तात्पर्य यह है, कि जिस संसारका वस्तुतः अस्तित्व ही नहीं, उसमें सच्चा आनन्द कैसे मिल सकता है ? ( यदि तुझे आनंद ही चाहिए तो ) हे तुलसी ! उसी प्रभुकी शरणमें जा, जिससे सब प्रकारका आनन्द-लाभ प्राप्त होता है ॥५॥

टिप्पणी—(१) 'पसु लौं……नहत'—इसे यों भी कह सकते हैं, कि—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।<br>
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥' ( गीता )

'उमा दारु-जोषित की नाईं । सबै नचावत रामगोसाईं' ॥

(२) 'जाते सब लहत'—जिससे सब सुख पाते हैं—इसका ऐसा भी अर्थ हो सकता है।

( १३४ )

ताते हौं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत।<br>
आरति नति दीनता कहे प्रभु सङ्कट हरत ॥ १ ॥<br>
लोकपाल सोक-बिकल रावन-डर डरत।<br>
का सुनि सकुचे कृपालु नर-सरीर धरत ॥ २ ॥<br>
कौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत।<br>
साधन केहि सीतल भये, सो न समुझि परत ॥ ३ ॥<br>
केवट खग सबरि सहज चरनकमल न रत।<br>
सनमुख तोहिं होत नाथ ! कुतरु सुफल फरत ॥ ४ ॥<br>
बंधु-बैर कपि-बिभीषन गुरु गलानि गरत।<br>
सेवा केहि रीझि राम, किये सरिस भरत ॥ ५ ॥

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिये राम, नाम सब को सुढर ढरत ॥ ६ ॥
जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहु से तरत ॥ ७ ॥

शब्दार्थ— नति = नम्र होकर; नम्रता । कौसिक = विश्वामित्र । रत = अनुरक्त ; लवलीन । गरत = गला जाता है । सुढर = भलीभाँति कृपा करते हो । ढलनाका अर्थ द्रवना या पिघलना अर्थात् कृपा करना है ।

भावार्थ—हे नाथ ! इसीसे मैं तुम्हारे द्वारपर पड़ा हुआ बारबार पुकार कर कहता हूँ, कि तुम दुःख, नम्रता और ग़रीबीके सुनते ही, हे प्रभो ! संकट हर लेते हो । अर्थात् तुम्हारा ऐसा स्वभाव देखकर ही बारबार कहनेके लिए मेरा साहस पड़ा है, नहीं तो न कहता ॥१॥ जब रावणके भयके मारे इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल डर गये, तब हे कृपालु ! तुम्हें नर-देह धारण करनेके लिए किस बातको सुनकर संकोच हुआ ? (यही दुःख, नम्रता और दीनता) । भाव यह है, कि देवताओंकी दीनता और नम्रता सुनकर ही तुम्हें मानवलीला करनी पड़ी ॥२॥ यह समझमें नहीं आता, कि जो विश्वामित्र, अहल्या और जनक चिताकी अग्निमें जले जा रहे थे, वे किस साधनसे शान्त हुए, किस उपायसे निश्चिन्त हुए ॥३॥ गुह निषाद, पक्षी ( जटायु ), शबरी आदिकी लगन तुम्हारे प्रति कुछ स्वभावसे ही नहीं थी । किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामने आते ही बुरे-बुरे पेड़ोंमें भी अच्छे-अच्छे फल फलने लगे ! भाव यह है, कि निषाद, शबरी आदि पापियों के हृदयमें धर्म और भक्तिके फल फल उठे ! तुम्हारी शरणागतिका यह प्रभाव है ॥४॥ अपने-अपने भाईके साथ शत्रुता करनेसे सुग्रीव और विभीषण बड़े भारी दुःखसे गले जाते थे । हे रामजी ! तुमने उन्हें किस सेवापर प्रसन्न होकर भरत-जीके समान मान लिया, उनमें और भरतमें तनिक भी अंतर न रखा ॥५॥ हनुमान्‌जी तुम्हारी सेवा करते-करते तुम्हारे ही समान हो गये । हे भगवन् ! उनका (हनुमान्‌का) नाम लेते ही तुम सबपर भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हो, अर्थात् तुम्हारी प्रसन्नताके मुख्य साधक हनुमान्‌जी माने जाते हैं ॥६॥ हे नाथ ! बिना तुम्हारी रीति जाने संसार पच-पचकर मर रहा है, अर्थात् यदि वह यह जान ले,

कि आप भक्त-वत्सल, दीनबंधु, दीनानाथ हैं, तो जप-तप आदि अनेक दुःसाध्य साधनोंके फेरमें वह क्यों पड़ने लगे? कपटभाव त्यागकर तुलसी-जैसे जीव भी तुम्हारी शरणमें जानेसे मुक्त हो जाते हैं, संसार-सागर पार कर जाते हैं ॥७॥

टिप्पणी—( १ ) 'कौसिक'—विश्वामित्र। महर्षि विश्वामित्रको यज्ञ करते समय, ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि दैत्य बहुत तंग किया करते थे। हैरान होकर आप महाराज दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगकर ले आये। दोनों वीर भ्राताओंने मुनिपुंगवसे शस्त्रविद्या सीखकर समस्त राक्षसोंका वध कर डाला और तब मुनिवर्यने यज्ञ आदि अनुष्ठानोंको विधिवत्, निर्विघ्न समाप्त किया।

( २ ) 'खग'—जटायु, ४३ वे पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( ३ ) 'मुनितिय'—अहल्या, ४३ वें पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( ४ ) 'शवरी'—१०५ वें पदको पाँचवी टिप्पणी देखिए।

( ५ ) 'साहब अनुहरत'—हनुमान्‌जी साक्षात् शम्भुरूप थे, और तत्त्वतः शिव और राम में कुछ अंतर नहीं है। यों भी वह भगवान्‌का तात्विक स्वरूप जान चुके थे, फिर उनमें अन्तर ही क्या रह सकता, क्योंकि—'जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई।' यह सिद्धान्त-वाक्य है।

(६) इस पदमें, पुरुषार्थहीन होनेपर भी, भगवत्कृपासे जीव मुक्त हो जाता है, यह दिखाया गया है। इसमें 'परिहरि छल सरन गये' सिद्धान्त-वाक्य है।

## राग सूहो बिलावल

( १३५ )

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहि दियो॥
दियो सुकुल जन्म, सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चार को।
जो पाइ पण्डित परमपद, पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरतखण्ड समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहति विष फल फली॥ १॥

❀ ❀ ❀ ❀

अजहूँ समुझि चित दै सुनु परमारथ ।
है हित सो जगहूँ जाहि ते स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो का ते, कौन बेद बखानई ।
देखु खल, अहि-खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपौ, तिय तनय सेवक सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेम सों, बिनु हेतु हित तैं नहिं लखा ॥ २ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

दूरि न सो हितू हेरु हिये ही है ।
छलहि छाँड़ि सुमिरे छोह किये ही है ॥
किये छोह छाया कमल कर की भक्त पर भजतहि भजै ।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सब को सजै ॥
हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति, मोदमय मंगलमई ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

ठाकुर अतिहि बड़ो, सील सरल सुठि ।
ध्यान अगम सिवहूँ, भेट्यो केवट उठि ॥
भरि अंक भेट्यो सजल नैन सनेह, सिथिल सरीर सो ।
सुर सिद्ध मुनि कबि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो ॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किये आपु ते बंदित बड़े ।
तापर तिन्ह कि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचति गड़े ॥ ४ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहै ।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मन मानिहैं ॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै ।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै ॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुन-ग्राम रामहि धरि हिये ।
बिचरहि अवनि अवनीस-चरनसरोज मन-मधुकर किये ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—अमर = देवता। पुरारि = शिव। मुरारि = विष्णु। अहि = साँप, यहाँ संसारी विषयोंसे तात्पर्य है। छोह = कृपा। सुठि = सुन्दर। ततकाल = (तत्काल) उसी समय। ग्राम = समूह। अवनि = पृथ्वी।

**भावार्थ**—अरे! जिन्होने तुझे देवताओंसे भी दुष्प्राप्य शरीर दिया है। उन प्रेमरूपी श्रीरामजीके साथ तुने प्रेम नहीं किया, उनसे लौ नहीं लगाई! उन्होंने अच्छे वंशमें, ऊँचे कुलमें, तुझे जन्म दिया है, और सुन्दर शरीर भी दिया है, जो अर्थ, धर्म काम और मोक्षका कारण है, अर्थात् जिसे पाकर तू ज्ञानद्वारा चारों फल पा सकता है। जिसे पाकर ज्ञानी लोग शिव तथा विष्णु भगवान्‌का परमपद प्राप्त करते हैं, अथवा कैलाश और वैकुण्ठ पाते है। फिर यह देश भारतवर्ष है, पास ही देव-नदी गंगाजी भी हैं। क्या ही सुन्दर स्थान है! साथ ही सत्संग भी अच्छा है। किंतु अरे कायर! तेरी कुबुद्धिरूपी कल्पना यहाँ भी विषैले फल फला चाहती है! भाव यह है, कि जिस बुद्धिसे तुझे धर्म, ज्ञान, भक्ति आदि साधन सिद्ध करने चाहिए थे, उससे तू संसारी विषयोंको, जो विषरूप हैं, खोजता फिरता है ॥१॥ अब भी समझ ले। मन लगाकर परमार्थ-विषय सुन। वह बात इस संसारमें श्रेयष्कर है और उससे अपना स्वार्थ भी सिद्ध होता है। यदि तुझे स्वार्थ ही अच्छा लगता है, अर्थात् परमार्थ-विषयकी ओर चित्त नहीं जाता, तो समझ तो, वह कौन है। जिससे स्वार्थ प्राप्त होगा, और जिसे वेद गाते हैं, जिसका वेद निरूपण करते हैं? (श्रीरघुनाथजीसे तात्पर्य है)। अरे दुष्ट! देख, साँपके साथ मत खेल, अर्थात् संसारी विषयोंसे मन न लगा, क्योंकि एक दिन वे साँपकी तरह तुझे डस लेंगे। तू तो उस स्वामीको पहिचान, उस पतिके साथ लगन लगा, जिसके प्रेमके कारण पिता, माता, गुरु, स्वामी, अपनी आत्मा, पुत्र, सेवक, मित्र आदि सब प्रिय जान पडते हैं, उस निष्कारण स्नेह करनेवाले प्रभुको तूने नहीं देखा! आश्चर्य है! ॥२॥ वह हितकारी, स्नेही प्रभु दूर नहीं है। देख, वह तेरे हृदयमें ही है। छल छोडकर उसका स्मरण तो कर। वह तुझपर कृपा अवश्य करेगा। भाव यह है, कि परमात्मा हृदयमें तो अवश्य हैं किन्तु बीचमें कपटका परदा पडा है, इसीसे उसका साक्षात्कार नहीं होता, परदा हटा नहीं, कि प्यारेका दीदार हुआ नहीं। वह कृपा करके अपने जनोपर करकमलकी छाया किये रहता है, सदा उनकी रक्षा करता है। जो उसे भजता है, वह भी उसे भजता है। वह संसार भरका नाथ है। जीवका भी जीव है। जो सबके लिए सब

तरहकी सामग्री प्रस्तुत करता है, जिसने विष्णुको विष्णुत्व, ब्रह्माको ब्रह्मत्व, और शिवको शिवत्व दिया, अर्थात् विष्णुको पालन-पोषण-शक्ति, ब्रह्माको सृजन-शक्ति और शिवको संहार-शक्ति जिसने दी है, वह यही जानकी-वल्लभ रघुनाथजीकी आनंद-स्वरूपिणी कल्याणमयी सुन्दर मूर्ति है ॥३॥ यद्यपि वह बहुत बड़ा स्वामी है, लोकपालोंका भी अधीश्वर है, तथापि वह सुशील, सुन्दर और सरल भी बड़ा है। अरे! जिसका ध्यान शिवको भी दुर्लभ है, उसने उठकर निषादको छातीसे लगा लिया! जब उसे अपने हृदयसे लगाया, तब आँखोंमें आँसू भर आये, प्रेमके मारे शरीर शिथिलसा हो गया, प्रेम-पुलकित हो गये। तभी तो देवता, सिद्ध, मुनि और कवि कहते है, कि श्रीरघुनाथजीके समान कोई भी प्रेम प्रिय नहीं है, जितना उन्हें प्रेम प्यारा लगता है उतना और किसीको नहीं लगता। उन्होंने पक्षी (जटायु), सबरी, राक्षस (विभीषण), रीछ (जाम्बवान् आदि) और बन्दरों (सुग्रीव प्रभृति) को अपनेसे भी अधिक बन्दनीय, पूज्य, बना लिया। (अब शीलकी ओर देखिए) इसपर भी जब उनलोगोकी की हुई सेवा याद करते हैं, तब सकोचके मारे गड़े से जाते है, कृतज्ञता प्रकाशित ही नही करते बनती। भाव यह है, कि मन-ही-मन कहते है कि हमने इन्हें कुछ भी नही दिया, हम इनसे उऋण नहीं हो सकते, सदा ऋणी ही रहेंगे ॥४॥ स्वामी रघुनाथजीका जो शील-स्वभाव मैने अभी कहा है, उसे जब तू हृदयमें लावेगा, उसपर मनन करेगा, तब तेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो जायँगी, तू निश्चित हो जायगा और प्रभु रामचन्द्रजी भी प्रसन्न होंगे। अरे! वह तो तभी प्रसन्न हो जायँगे जब, तू हाथ जोड़कर मस्तक झुकायेगा, प्रणाम करेगा। तुलसीदास! तू उसी क्षण जन्म लेनेका फल पा जायगा, तेरा जीवन सार्थक हो जायगा। अर्थात् नर-शरीर धारण करनेका परमफल यही है, कि परमात्मासे भेंट हो जाय। राम-नामका स्मरण कर, वंदना कर, गुणावलीका कीर्तन कर, और रघुनाथजीका हृदयमें ध्यान धर। जगदीश रामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें अपने मनको भ्रमरके समान बसाकर पृथ्वीपर निर्भय विचरण कर। तात्पर्य यह है, कि जब तू 'भगवदीय' हो जायगा, तब तुझे संसार भरमें कहीं भय न रहेगा, सर्वत्र निर्भय विचर सकेगा, क्योंकि तेरी दृष्टिमें संसार हरिमय हो जायगा ॥४॥

टिप्पणी—(१) 'हेतु जो फल चार को'—कहा भी है,—

"साधनधाम, मोक्ष कर द्वारा।" —(रामचरितमानस)

(२) 'भरतखंड'—भारतवर्ष कर्मभूमि है। सत्कर्मोंका संपादन इस पवित्र भूमि पर जितना हो सकता है उतना अन्यत्र नहीं। क्योंकि यहाँके कण-कणमें आध्यात्मिकता, अहिंसा, शान्ति आदि सद्धर्मों की व्याप्ति है। गोसाईंजीके हृदयमें स्वदेश-प्रेमका सजीव भाव था, यह इस पदसे स्पष्ट हो जाता है। रामचरितमानसमें भी अपने भारतवर्षीय अयोध्याको स्वर्गसे भी बड़ा गिनाया है। देखिए, श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

'सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावनपुरी रुचिर यह देसा॥
यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद-पुरान-बिदित जग जाना॥'

अन्यत्र—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि।'

(३) 'अहिखेल'—सँपेरा, यद्यपि गारुड़ी विद्यामें परम कुशल होता है, किन्तु कभी-कभी वह भी धोखा खा जाता है। साँप उसे काट खाता है, और फिर उसकी एक भी नहीं चलती। इसी प्रकार संसारके व्यवहारमें बड़े-बड़े चतुर मनुष्य भी ऐसे ठगे जाते हैं कि उन्हें फूट-फूटकर रोना पड़ता है। कभी-कभी बड़े-बड़े बुद्धिमानों, ज्ञानियों और योगियोंकी भी बुद्धि मारी जाती है। कहा है—

'काजर की कोठरी मे कैसहू सयानो जाय, काजर की एक रेख लागिहै पै लागिहै।'

(४) 'पितु मातु लखा'—यदि आत्मा न हो तो किसे पिता, पुत्र आदि प्यारे लगें। कहीं शवको भी कुछ प्यारा लगता है? वास्तवमें, अपनी आत्मा ही प्यारी है, न पिता प्यारा है न पुत्र। और आत्मा, परमात्माका अंश है, परमात्म-स्वरूप है। अतः सिद्ध हुआ, कि सब प्रिय-अप्रिय वस्तुका मुख्यकारण परमात्मा है। ऐसा निरूपण बृहदारण्यक उपनिषद्में किया गया है।

(५) 'छलहि छाँड़ि'—भगवान् छलसे सदा दूर रहते हैं। भगवान् तो सत्य-स्वरूप है, और छल है विशुद्ध असत्य। भला, अंधकार और सूर्य एक साथ रह सकते हैं?

(६) 'हरिहि हरिता······मंगलमई'—रामतापनीय उपनिषद्में इसका प्रमाण है—

'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यः ब्रह्माविष्णुरीश्वरो यः।
सर्ववेदात्मा भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमोनमः॥'

(७) 'केवट'—गुह निषाद; १०६वें पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

(८) 'प्रेम-प्रिय'—रामचरितमानसमें लिखा है—

'राम'हि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहि जो जाननिहारा॥'
'जद्यपि हरि सर्वत्र, समाना। प्रेम ते प्रगट होहि भगवाना॥'

(९) 'खग'—जटायु, ४३वें पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

(१०) 'सबरी'—१०६वें पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

(११) 'विचरहि .... किये'—इस मस्तानी अवस्थाका कबीरदासजीने बड़ा ही सच्चा चित्र खींचा है। देखिए—

'दरस-दिवाना बावला अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा, अस मत का धीरा॥
हिरदे में महबूब है, हरदम का प्याला।
पीवेगा कोइ जौहरी गुरु-मुख-मतवाला॥
पियत पियाला प्रेमका सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै, जस मैंगल हाथी॥
बंधन काट मोह के बैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता, क्या राजा क्या रंका॥
धरती तो आसन किया, तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाक का, रह पाक समाना॥
सेवक को सतगुरु मिले, कछु रहि न तबाही।
कह'कबीर'निज घर चलौ जहँ काल न जाही॥'

धन्य है वह मस्त प्रेमी, जिसे ऐसी ऊँची दशा प्राप्त हो गई है।

( १३६ )

( १ )

जिय जब तें हरि ते बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख लेस सपनेहुँ नहि मिल्यो।
भव-सूल सोग अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो॥
बहु जोनि जनम जरा बिपति, मतिमंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ बिचार लखि पायो कहीं।१॥

( २ )

आनँद-सिन्धु-मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानो॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहाँ॥
निर्मल निरंजन निर्विकार उदार सुख तैं परिहर्यो।
निःकाज राज बिहाइ नृप इव सपन कारागृह पर्यो॥२॥

( ३ )

तैं निज कर्म डोरि दृढ़ कीन्हीं। अपने करनि गाँठि गहि दीन्हीं॥
तातें परबस पर्यो अभागे। ता फल गरभ-बास-दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई*।
कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवई†॥३॥

( ४ )

तू निज करम-जाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहि तेरो॥
बहुबिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हों॥
तोहि दियो ग्यान बिबेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी बिषम माया गुनमई॥
जेहि किये जीव-निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ बेगि सँभार श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई॥४॥

( ५ )

पुनि बहुबिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी॥

---

* पाठान्तर 'सोवहि'। † पाठान्तर 'रोवही'।

प्रेर्यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान ध्यान बिराग अनुभव जातना-पावक दह्यो॥
अति खेद ब्याकुल अल्प बल छिन एक बोलि न आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हरषित गावई॥५॥

( ६ )

बाल दसा जेते दुख पाये। अति असीम नहिं जाहिं गनाये॥
छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोई करै बिबिध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
ब्यतिरेक* तोहि निरदय महाखल आन कहु को सहि सकै॥६॥

( ७ )

जौबन युवती सँग रँग रात्यो। तब तू महा मोद मद मात्यो॥
ताते तजी धरम मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥
बिसरे बिषाद निकाय-संकट समुझि नहि फाटत हियो।
फिरि गर्भगत-आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो॥
कृमि† भस्म-बिट-परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो॥७॥

( ८ )

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रकट देखु तनु माहीं॥
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि सूल सतावई।
सिरकंप इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई॥
गृहपाल हू तें अति निरादर खान-पान न पावई।
ऐसिहु दशा न बिराग तहँ तृस्ना तरंग बढ़ावई॥८॥

* पाठांतर 'बितरेक।' † पाठांतर 'क्रिमि।'

( ९ )

कहि को सकै महाभव तेरे । जनम एक के कछुक गनेरे ।।
चारि खानि*संतत अवगाहीं । अजहुँ न करु विचार मन†माहीं ।।
अजहूँ बिचार बिकार तजि भजु राम जन सुखदायकं ।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुरनायकं ।।
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार-माया-तारनं ।
कैवल्य-पति, जगपति, रमापति, प्रानपति गतिकारनं ।।९।।

( १० )

रघुपति-भक्ति सुलभ सुखकारी । सो त्रयताप-शोक-भय-हारी ।।
बिनु सतसंग भक्ति नहिं होई । ते तब मिलैं द्रवै जब सोई ।।
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइये ।
जेहि दरस-परस समागमादिक पापरासि नसाइये ।।
जिनके मिले दुख-सुख समान, अमानतादिक गुन भये ।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध तें सहजहि गये ।।१०।।

( ११ )

सेवत साधु द्वैत-भय भागै । श्रीरघुबीर-चरन-लौ‡लागै ।
देह-जनित बिकार सब त्यागै । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ।।
अनुराग सो निज रूप जो जग तें बिलच्छन देखिये ।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिये ।।
निरमल निरामय एकरस तेहि हर्ष-सोक न ब्यापई ।
त्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ।।११।।

( १२ )

जो तेहि पंथ चलै मन लाई । तौ हरि काहे न होहिं सहाई ।
जो मारग स्नुति साधु दिखावै । तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ।।

---

* पाठातर 'खानि चारि ।' † पाठांतर 'जग ।' ‡ पाठांतर 'लय ।'

पावै सदा सुख हरि-कृपा संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत*दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार-पार न पाइयै†।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइयै‡॥१२॥

**पदच्छेद**—निः + मल। निः + अंजन। निः + विकार। निः + आमय। कर्दम + आवृत। करुना + आकर। समागम + आदिक। अमानता + आदिक।

**शब्दार्थ**—सोग=शोक; यह व्रजभाषाका प्रयोग है। जरा=बुढ़ापा। विस्राम =(विश्राम) शान्ति। निरंजन= अविनाशी। संसृति=संसार। हेठ = नीचे। पुरीष = विष्ठा। वेदन = कष्ट। विषय = कठिन। चक्रपानी = हाथमें चक्र है जिनके, विष्णु। व्यतिरेक=सिवाय। निकाय = समूह। आवर्त = चक्र घूमना। त्रिट = मल। प्रतिहत = नष्ट। भव = जन्म। चारि खानि = अंडज, स्वेदज, पिंडज और उद्भिज। कैवल्य = मोक्ष। गति=मुक्ति। द्रवै=कृपा करता है। सुबोध=आत्मज्ञान। निरामय = नीरोग। द्वैत = द्वन्द्व, राग-द्वेष।

( १ )

**भावार्थ**—जबसे यह जीव भगवान्‌से पृथक् हुआ, तभीसे इसने शरीर और घरको अपना मान लिया। ( यों तो जीव परमात्माहीका अंश है, किन्तु प्रकृतिके अधीन होकर उसे परमात्मासे अलग होना पड़ा, और उससे पृथक् होते ही उसमें शरीराभिमान आ गया, तथा स्त्री-पुत्रादिमें ममत्व प्राप्त हुआ)। मायाके वश होकर उसने निजस्वरूप, अर्थात् "सच्चिदानन्द" रूप भुला दिया, और उसी भ्रमके कारण उसे असह्य दुःख भोगने पड़े। भाव यह है कि, मायाके संसर्गसे उसमें अनेक विकार—रागद्वेष, सुख-दुःख—आ मिले, आनन्द बिदा ले गया। अविद्याके कारण, संसार दुःख-मय भासने लगा। बड़ा ही कठिन असहनीय दुःख मिला। सुखका तो स्वप्नमें भी नाम न रहा। अरे! जिस मार्गमें अनेक संसारी कष्ट और शोक भरे पड़े है, उसी पर हो तू हठपूर्वक बारबार गया, रोकने पर भी न माना! अनेक योनियोंमें जन्म लेना पड़ा। बुढ़ापा भी आया, विपत्तियाँ भी झेलनी पड़ीं। पर, अरे मूर्ख! तूने इतने पर भी भगवान्‌को न पहिचाना! अरे मूढ़!

* पाठांतर 'देत'। † पाठांतर 'पावई।' ‡ पाठांतर 'गावई।'

विचारकर, भला देख तो, श्रीरामचन्द्रजीको छोडकर तुझे क्या कहीं शान्ति मिली ? कहीं भी नहीं। तात्पर्य यह है, कि शान्ति और सुखका स्थान मूलाधार एक परमात्माही है। उसे छोड़ कर कहीं भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता ॥१॥

( २ )

हे जीव ! तेरा निवास-स्थान आनन्दसागरमें है, अर्थात् तू आनन्दस्वरूप परब्रह्मका अंश है। उस आनन्द-सागरको भुलाकर तू क्यों प्यासा मर रहा है ? तूने मृगजल सच्चा मान रखा है, और वहीं तू आनन्द समझकर लट्टू हो रहा है। वहाँ तू मगन होकर नहा रहा है। अरे ! वहाँ तीन कालमें भी पानी नहीं है। अपना स्वाभाविक अनुभवगम्य-रूप भूलकर आज यहाँ आ पड़ा है। भाव यह है, कि यह संसार मृगजलके समान भ्रममात्र है। यहाँ तू विषयरूपी झूठे जलमें प्रसन्नतासे स्नान कर रहा है, विषयोंमें फँस कर अपनेको शीतल या शान्त करना चाहता है, पर यहाँ शीतलता कहाँ ? जब जल ही नहीं है, संसारका तत्त्वतः 'अस्तित्व' ही नहीं, तब वहाँ सुख कहाँसे आयगा ? तूने उस आनन्दको त्याग दिया, जो विशुद्ध, अविनाशी और विकाररहित है। व्यर्थ ही तू राजाओंके जैसा राज्य छोड़कर स्वप्नरूपी कारागृहमें बद्ध पड़ा है। आत्मानन्द छोड़कर विषय-पंकमें फँसा है ॥२॥

( ३ )

तूने स्वयं ही अपनी कर्मरूपी रस्सी मजबूत कर ली, और अपने ही हाथोंसे उसमें पक्की गाँठ भी लगा दी। इसीसे, अरे अभागे ! तू परतन्त्र पड़ा हुआ है। और इसका फल क्या होगा ? आगे गर्भमें रहनेका दुःख। सारांश यह है, कि न तू इच्छा कर-कर कर्म करता और न परतन्त्र होकर, मोहाधीन होकर, गर्भमें आता। और आगे संसारमें जो बहुतेरे दुःखोंके समूह है उन्हें वही जानता है जो माँके पेटमें पड़ा है। सिर तो नीचे है और पैर ऊपर। इस संकटके समय कोई बात भी नहीं पूछता। रक्त, मल, मूत्र, विष्ठा कीड़ो और कीचसे घिरा हुआ (गर्भमें) सो रहा है। तेरा शरीर तो सुकुमार है, पर कष्ट बड़ा ही दारुण है, सहा नहीं जाता। सिर धुन-धुनकर रो रहा है। भाव यह है, कि वहाँ तू-ही-तू है, चाहे जितना कष्ट हो भोगना ही पड़ेगा। बचानेवाला कौन बैठा है ? जैसे कर्म किये, वैसे फल चखने ही पड़ेंगे। सो चख, चाहे सिर पटक, चाहे छाती पीट ॥ ३ ॥

( ४ )

जहाँ-जहाँ तू अपने कर्म-जालमें फँसा, तहाँ-तहाँ भगवान् तेरे साथ रहे, कभी साथ नहीं छोड़ा। प्रभुने नाना प्रकारसे तेरा पालन-पोषण किया, रक्षा की और परमकृपालु स्वामीने तुझे ज्ञान भी दिया। जब तुझे ज्ञानविवेक मिला, तब पिछले अनेक जन्मोंका तुझे स्मरण हुआ और कहने लगा—जिसकी यह त्रिगुणात्मिका दारुणमाया है, अर्थात् जिसकी आज्ञासे मायाने जगत्में तीनों गुणोंका पसारा फैलाया है उसी परमेश्वरकी मैं शरण हूँ। जिसने जीव-समूहको अपने वशमें कर लिया है, जिस मायाने उन्हें परतन्त्र बनाकर नीरस अर्थात् आनन्दरहित भी कर दिया है, वह दिन-दिनपर नवीन ही दिखाई देती है; उससे, हे लक्ष्मीरमण! शीघ्र ही रक्षा कीजिए, क्योंकि आपहीने मुझे इस विपत्तिमें बुद्धि दी है, मेरे हृदयमें 'ज्ञानोदय किया है' ॥ ४ ॥

( ५ )

फिर बहुत भाँतिसे मनमें ग्लानि मानकर तू कहने लगा, कि अब (ससारमें) जाकर चक्रधारी भगवान्का भजन करूँगा। ऐसा विचारकर ज्योंही तू मौन हुआ, कुछ शान्त-सा हुआ, त्योंही प्रसवकालकी पवनने तुझ अपराधीको प्रेरित किया, अथवा भगवान्की प्रेरणासे पवनने, जो बड़ी ही प्रचण्ड है, तुझे अनेक कष्ट दिये और तूने उन्हें सहा। अब जो ज्ञान, ध्यान, वैराग्य वा आत्मानुभव तुझे प्राप्त हुआ था वह सब कष्टकी अग्निमें जल-बल गया, अर्थात् मारे कष्टके तू सब भूल गया। अत्यन्त दुःखके कारण तू व्याकुल हो गया और थोड़ा बल रहनेके कारण एक-क्षण तुझसे बोलते भी न बना। उस समयका तेरा दारुण दुःख, असह्य यातना, किसीने न जानी, उलटे सबलोग आनन्द-बधाई गाने लगे। भाव यह है कि तू जो जन्मकालके कष्टोंके मारे मूर्छित-सा हो गया, पर सबको यह आनन्द हुआ कि अहो-भाग्य, आज अमुकके पुत्र उत्पन्न हुआ है, और लगे आनन्द-बधाई गाने ॥५॥

( ६ )

बचपनमें तुझे जो-जो कष्ट हुए, वे सब अनंत हैं, उनकी गणना करना असम्भव है। भूख, रोग और अनेक बड़ी-बड़ी बाधाओंने तुझे घेर लिया, पर तेरी माँको यह सब कष्ट मालूम न हुआ। माँ यह तो जानती नहीं, कि बच्चा किसलिए रो रहा है, किंतु वह बारबार वही उपाय करती है, वही उपचार करती है, जिससे

तेरी छाती और भी अधिक जले। भाव यह है, कि हुआ तो है तुझे रोग, पर वह जादू-टोना समझकर मन्त्रसे झड़वाती है, टोटका करती है। उलटे-पुलटे उपचारोंसे तुझे और भी कष्ट होता है। कुमारावस्था, बचपन और किशोरावस्था-मे तूने कितने अनन्त, अगणित, पाप किये है, इसका वर्णन करना सामर्थ्यके बाहर है। अरे निर्दय! महादुष्ट! तुझे छोड़कर और कौन ऐसा मिलेगा जो, इन्हे सह सकेगा? कोई भी नहीं ॥ ६ ॥

( ७ )

अब, जवानी चढ़ते ही तू कामिनी-प्रेममे फँस गया। बड़े भारी अज्ञान और मदमे मतवाला हो गया, अर्थात् स्त्रीकी हवा लगते ही तुझे मस्ती चढ़ आई, आँखें फूट गयीं। और इसीसे तूने धर्म-मर्यादाको लात मार दी; पहले जितने कष्ट हुए थे, वह सब, बात की-बातमें भुला दिये, अथवा गर्भवासके समयका पश्चात्ताप भूल गया, और लगा फिर पाप कमाने। कष्टोंके समूह भूल जानेके कारण, आगे और क्या क्या दुःख होंगे, यह समझकर, अरे! तेरी छाती फट नहीं जाती! जिससे फिर-फिर गर्भके गड्ढेमें गिरना पड़े, संसार चक्रमें आना पड़े, वही तूने बारबार किया, अर्थात् इंद्रियोंके वशमें पड़कर सदा विषयोंहीकी ओर चित्त लगाया। जो शरीर, कीड़ों, राख, विष्ठा आदिका परिणाम है, उसके लिए तू सारे संसारका शत्रु बन बैठा, इस क्षणिक शरीरको आराम देनेके लिए तूने किस-किसके साथ भला-बुरा बर्ताव नहीं किया? दूसरे की स्त्री, दूसरे का धन, दूसरोसे द्रोह, यही संसारमें दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता गया। भाव यह है, कि दूसरेकी सुन्दर स्त्री, बहुत-सा मान, विपुल धन देखकर तेरे मनमे कुढ़न हुई, उसे चाहा, जब न मिला, छल-बल किया और बैर बिसाह लिया; यही तूने नित्य किया, यही तेरी जीवन-चर्या रही ॥ ७ ॥

( ८ )

देखते-ही-देखते बुढ़ापा आ पहुँचा, जिसे तूने स्वप्नमें भी नहीं बुलाया था, स्वप्नमें भी इच्छा न की थी, कि मै बूढ़ा हो जाऊँ; तू तो सदा यही चाहता था कि जवान ही बना रहूँ। उस बुढ़ापेकी बातें कुछ कहनेको नहीं। जो हैं वह सब प्रत्यक्ष अपने शरीरमें देखले। देख, शरीर जीर्ण हो गया है। बुढ़ापेके कारण रोग और शूल सता रहे हैं। सिर हिल रहा हैं। इन्द्रियोंकी शक्ति चली गई है। तेरा बोलना किसीको अच्छा नहीं लगता। घरकी रखवाली

करनेवाला कुत्ता, अथवा घरका मालिक तक, तेरा मान नहीं करता, औरोंकी गिनती ही क्या ? न तुझे कोई खाना देता है, न पानी। इतनी सब दुर्दशा होने पर भी तुझे वैराग्य नहीं आता ? नित्य तृष्णाकी लहरें उठा रहा है, तृष्णामे फँसता चला जा रहा है ॥ ८ ॥

( ९ )

तेरे अनेक बड़े-बड़े जन्मोकी, अनेक योनियोंकी, कथा कौन कह सकता है? यह तो एक जन्मके कुछ थोड़े-से कष्ट गिनाये हैं। देख, सदा चार खानो-पिंडज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज—मे घूमना पड़ता है। अब भी तू मनमे विचार नहीं करता! आज भी विचार कर ( अभी कुछ बिगड़ा नहीं )। विषयों को छोड़ दे, और भक्तोको आनन्द देनेवाले भगवान् रामचन्द्रजीका भजन कर। वे कठिनाईसे पार करने-योग्य संसार-सागरके लिए नाव-रूप हैं, अर्थात् संसारसे जीवोंको मुक्त कर देते है। चक्रसुदर्शन धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान्का भजन कर। वे निष्कारण करुणा करनेवाले हैं, बड़े ही दानी हैं और इस अपार मायासे छुड़ा देनेवाले है। वे मोक्षके पति है, संसारके स्वामी हैं, लक्ष्मी-वल्लभ हैं, प्राणोके नाथ हैं, और मुक्तिके कारण हैं—अर्थात् उनके भजते ही जीव मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥

( १० )

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुलभ और सुख देनेवाली है। वह संसारके तीनो ताप–भौतिक, दैहिक और दैविक—शोक और भयको दूर करनेवाली है। किंतु सत्संगके बिना भक्ति प्राप्ति नही होती; और, सतजन तभी मिलते है, जब रघुनाथजी प्रसन्न हो जायँ, कृपा दृष्टि कर दें। दीनदयालु रघुनाथजीके कृपा करते ही सन्त समागम होता है। जिन सन्तोंके दर्शनसे, स्पर्शसे और मिलने-जुलनेसे पाप-पुञ्ज नष्ट हो जाते है, जिनके मिलनेसे सुख दुःख समान जान पड़ते हैं, मान-अपमान एक-सा मालूम होता है—ऐसे अनेक सद्गुण प्राप्त हो जाते हैं। (उनकी कृपासे जो) आत्मज्ञान उदय होता है, उसके प्रभावसे अहंकार, अज्ञान, लोभ, शोक, क्रोध आदि सहज ही दूर हो जाते है। साराश यह है,जकि सत्संगके प्रभावसे 'स्थितप्रज्ञ' पुरुषकी अवस्था आप-से-आप प्राप्त हो ाती है ॥ १० ॥

( ११ )

संत-सेवा करनेसे भेद-बुद्धि अथवा राग द्वेष चले जाते है, भयका नाम भी

नहीं रहता। और तब श्रीरघुनाथजीके चरणोंमे लगन लग जाती है। शरीरसे उत्पन्न जितने कुछ विकार है, वे सब छूट जाते हैं, और तब अपने स्वरूपमें, "आत्म स्वरूप" में, प्रेम बढ़ता है। जिसका 'स्वरूप' में अनुराग बढ़ गया है, उसकी दशा संसारमे कुछ विलक्षण ही हो जाती है, उसे अलौकिक, अप्राकृत, दिव्य आनन्द प्राप्त हो जाता है। सदा उसके हृदयमे सन्तोष, समता और शान्ति रहती है। जितेन्द्रिय होनेके कारण वह प्राणी ( शरीर रहते भी ) विदेह रहता है, उसे शरीरका भान नहीं रहता। साराश यह कि, वह परमहसावस्थाको प्राप्त हो जाता है। वह विशुद्ध, नीरोग—आधि-व्याधि-रहित-एकरस ( त्रिकालाबाधित ) हो जाता है। फिर उसे हर्ष-विषाद नहीं व्यापता। जिसकी ऐसी अवस्था हो गई, वह ( स्वयं तो पवित्र हुई है, वरन् ) तीनों लोकोंको भी पवित्र कर देता है॥ ११॥

( १२ )

जो प्राणी इस मार्गपर मन लगाकर चलता है, अर्थात् सन्त-सेवा करता हुआ भगवद्भक्तिका आराधन करता है, भगवान् उसकी अवश्यही सहायता करते हैं। सहायता क्यो न करेंगे, (जब कि वह उनकी शरणमे आगया) जिस मार्गको वेद और सन्तोने दिखा दिया है, उसपर चलनेसे सभी प्रकारके सुख मिलेंगे, इसमे संदेह नहीं। उस वेदोक्त और सन्त-प्रदर्शित मार्गपर चलकर प्राणी, भागवत्कृपासे, आनन्द-लाभ करता है और संसारी आशाओंपर पानी फेर देता है। उसे सपनेमे भी द्वैत-भावका दुःख नहीं दिखाई देता। यो तो करोड़ों बातें है, उन्हे कौन कहता फिरे? साराश तो यह है, कि ब्राह्मण, देवता, गुरु, हरि और सन्तोंके बिना कोई ससार-सागरका पार नहीं पा सकता, आवागमनसे छुटकारा नहीं पा सकता। यह समझकर तुलसीदास भी भव-भय दूर करनेवाले श्रीलक्ष्मीरमण भगवान्‌का गुणकीर्तन करता है॥ १२॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जिय…… बिलगान्यों'—जीव और ब्रह्म, तत्वतः, एकही हैं, किन्तु मायाके आवरणसे जीव अपना 'स्वरूप' भूल गया है। जैसे पुत्र और पिताका सम्बन्ध है। पिताके ही वीर्यसे पुत्रका जन्म हुआ, किंतु माताके रजके संयोगसे उसमें विकार आ गया है। इसी प्रकार परमात्मा प्रकृतिके साथ रत होनेके कारण 'जीव-रूप' मे अपना स्वरूप भूल गया है। वास्तव मे, ब्रह्म और जीव एकही है—**

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'— ( गीता )

( २ ) 'अब जग······चक्रपानी'—यहाँ 'चक्रपानी' शब्द बहुत ही सार्थक प्रयुक्त हुआ है। जीव मायाके जालमें फँसा है। उसे अपना जाल छिन्न-भिन्न कराना है। सुदर्शनचक्रधारी विष्णु भगवान् ही उस जालको काट सकेंगे, इसीसे वह चक्रपाणि नामसे भगवान् को पुकारता है।

( ३ ) 'जीवन······ रंग रात्यो'—यौवनावस्था पर कविवर विहारीने क्याही मार्केका दोहा कहा है। सुनिए—

'इक भीजे, चहले परे बूड़े, बहे हजार।
किते न ऐगुन नर करत, नय-बय चढती बार॥'

( ४ ) 'धर्ममर्यादा'—मनुस्मृतिमें धर्म-मर्यादाका लक्षण यह दिया है—

'इज्याध्ययनदानानि, तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अक्षोभ इति मार्गोऽयं, धर्मश्चाष्टविधः स्मृतः॥'

धर्मशास्त्रमें धर्मके भिन्न-भिन्न प्रकारसे भिन्न भिन्न अंग लिखे हैं, किन्तु सत्य, क्षमा, अहिंसा, भक्ति आदि कुछ ऐसे अंग हैं, जो संसार भरके समस्त धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें अवश्य पाये जाते हैं, उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं आया है।

(५) 'सो प्रगट······बढ़ाबई'—वृद्धावस्थापर अनेक कवियोंकी सूक्तियाँ पाई जाती हैं; जिनका वर्णन बड़ा ही सुन्दर है। श्रीशंकराचार्यजी, चर्पट-पंजरीमें, लिखते हैं—

'अंगं गलितं पलितं मुंडं, दशनविहीनं जातं तुंडम्।
मार्गे याति गृहीत्वा दंडं, तदपि न मुंचत्याशा पिंडम्॥
भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्द भज मूढ़मते॥'

सूरदासजी कहते हैं—

'सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनों पन ऐसेही बीते, केस भये सिर सेत॥
आँखिन अंध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गगाजल तजि पियत कूपजल, हरि तजि पूजत प्रेत॥
राम-नाम बिन क्यों छूटौगे, चन्द्र गहे ज्यों केत।
'सूरदास' कछु खरच न लागत, राम-नाम मुख लेत॥'

( ६ ) 'गृहपालहूँ ते अति निरादर'—इसके तीन अर्थ हो सकते हैं—
१—घरके मालिकसे भी, अर्थात् लड़केवालोंसे भी अपमान हो रहा है।
२—घरकी रखवाली करनेवाला कुत्ता तक अपमान करता है।
३—कुत्ते से भी अधिक अपमान लोग करते हैं।

( ७ ) 'सत्संग'—संसारसे मुक्त होने तथा भगवद्भक्तिके प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन सत्संग ही है। गीतामें लिखा है, भागवत पुराण कहता है, उपनिषद् गाते हैं, सन्त भी पुष्टि कर रहे हैं, कि 'सत्संग करो, सत्संग करो, बिना सत्संगके गति नहीं।' कबीरसाहब कहते हैं—

'साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यों रहैं, ज्यो पय मद्धे घीव॥'

तथा—

'तुलसी' संगति साधु की, कटै कोटि अपराध।
एक घरी आधी घरी, आधी मे पुनि आध॥'

( ८ ) 'देह जनित········लेखिये'—इस अवस्थाको गीतामें "ब्राह्मी" अवस्था कहा है। इस अवस्थाको पहुँचा हुआ 'स्थितप्रज्ञ' महापुरुष कैसा होता है, इसे सुनिए—

'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'

अर्थात् हे अर्जुन, जब जीव मनकी सारी इच्छाएँ छोड़ देता है, मनमें किसी तरहकी भी इच्छा नहीं करता, तब अपनी आत्मामें ही, सन्तुष्ट होकर रहनेवाला प्राणी स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जो दु खोंमें घबराता नहीं, सुखोंमें कामना नहीं करता, राग, भय, क्रोध जिसने जीत लिये हैं, उसे 'स्थितधी' मुनि कहते हैं। वही स्थिरबुद्धिवाला समझा जाता है। जिसका मन सब ओरसे हट गया है, शुभाशुभमें जिसे हर्ष और द्वेष नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए। यही विदेहावस्था है। यह परमहंस-अवस्था भगवद्भक्तको सहज ही प्राप्त हो जाती है, किन्तु निष्कपट, शुद्ध, परमप्रेम होना चाहिए, सच्ची लगन होनी चाहिए।

( ९ ) 'त्रैलोकपावन'—सूरदासजी कहते हैं—

'जा दिन सन्त पाहुने आवत ।

ता दिन तीरथ कोटि आपही, ताके गृह चलि आवत ॥'

श्रीमद्भागवतमें—

'ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।'

( १० ) यह पद बड़ा ही सुन्दर, प्रभावपूर्ण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-रसप्लुत है । इसमें गोसाईंजीने अपने सिद्धांतका भलीभाँति निरूपण और प्रतिपादन किया है । जीवकी पूर्वापर दशा, उसका उद्धार और मुक्तिका उपाय आपने जिस खूबीके साथ अंकित किया है, वह देखते ही बनता है । वैसे तो सारी विनय-पत्रिका ही हृदयंगम करनेके योग्य है, पर यह पद सभीको मुखाग्र, कंठाग्र और हृदयस्थ करना चाहिए, यह मेरी विनीत प्रार्थना है ।

* इति पूर्वार्द्धः समाप्तः

श्रीहरि-तोषिणी टीका-समलंकृता

# विनय-पत्रिका

( उत्तरार्द्ध )

# विनय-पत्रिका

## [ उत्तरार्द्ध ]

### राग बिलावल

( १३७ )

जो पै कृपा रघुपति कृपालु की, बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भक्त को, जो कोउ कोटि उपाय करै ॥ १ ॥
तकै नीच जो मीच साधु की, सो पामर तेहि मीच मरै।
बेद-बिदित प्रह्लाद-कथा सुनि, को न भक्ति-पथ पाउँ धरै ॥ २ ॥
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ॥ ३ ॥
सो धौं कहा जु न कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु-प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पांडु-तनै बरिआइ बरै ॥ ४ ॥
जोइ जोइ*कूप खनैगो पर कहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न संतद्रोही कहुँ, सुरतरु सोउ बिष फरनि फरै ॥ ५ ॥
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सींव † चरै।
तुलसिदास रघुबीर-बाँहुबल सदा अभय, काहू न डरै ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—सरै=पूरा पड़ सकता है। मीच=मौत। पामर=पापी। बरिआई=हठपूर्वक। खनैगो=खोदेगा। फरनि=फलोंसे। सींव=सीमा।

**भावार्थ**—यदि कृपालु रघुनाथजीकी कृपा बनी है, तो औरोंके बैर करनेसे क्या पूरा पड़ सकता है ? भगवद्भक्तका बाल भी बाँका नहीं होता, चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे ॥१॥ जो नीच सन्त की मौत विचारता है, वह पापी स्वयं उसी मौतसे मरता है। प्रह्लादकी कथा वेदोंमे प्रसिद्ध है, उसे सुनकर ऐसा कौन होगा, जो भक्ति-मार्गपर पैर न रखेगा, भक्तिके सिद्धान्तको न मानेगा ! सभी मानेंगे। भाव यह है, कि प्रह्लादको उसके पिता हिरण्यकशिपुने अनेक

---

* पाठान्तर 'जो जो'। † पाठान्तर 'सीम।'

प्रकारसे कष्ट दिये, पर भगवत्कृपासे उसका वह बाल भी बाँका न कर सका, उलटा आपही मारा गया।[1] ऐसी भक्तवत्सलता सुनकर ऐसा कौन अभागा होगा, जो उस प्रभुकी भक्ति न करेगा ॥ २ ॥ भगवान्‌ने गजेन्द्रका उद्धार किया, बिभीषणको राज्य पदपर स्थापित किया, ध्रुवको अटल पद दे दिया, और अम्बरीष भक्तके संबंधमें कुछ पूछिये ही नहीं। उनको महा-मुनि (दुर्वासा) ने जो शाप दिया था, उसे स्मरण कर वह अब भी ग्लानिसे गले जाते हैं, लाजके मारे दबे जाते हैं ( अपना पराभव देखकर और समझकर कि अम्ब रीषपर भगवान्‌का हाथ है, दुर्वासा शाप देकर पछताया करते है) ॥३। दुर्यो-धनने क्या अनिष्ट करनेको छोड़ा, जो कुछ करते बना सभी किया, मूर्ख अपने ही घमंडमें जलता रहा। पर भगवत्कृपासे सौभाग्य, विजय और कीर्तिने पाडवों को ही हठपूर्वक अपनाया, अर्थात् पाडवोंको सौभाग्य मिला, विजय-लाभ हुआ और कीर्ति भी मिली ॥४॥ जो भी दूसरेके लिए कुवाँ खोदेगा, वह दुष्ट स्वयं उसमें गिरेगा ! सन्तोंके साथ बैर करनेवालेको स्वप्नमे भी सुख मिलनेका नहीं। उसके लिए कल्पवृक्ष तक विषैले फल फलेगा, अर्थात् वह जिस उपायसे सुख चाहेगा उससे उसे दुःख ही मिलेगा ॥५॥ किसके दो सिर हैं जो भगव-द्भक्तकी सीमा लाँघेगा अर्थात् जो भी भक्तका अपराध करेगा, वह मारा जायगा। (हाँ, किसीके दो सिर हो तो ठीक है, एक कट जायगा तो एक तो बच रहेगा। पर यह असंभव है)। हे तुलसीदास ! जिसे श्रीरघुनाथजीके बाहुबलका भरोसा है, जो उनकी शरणागत हैं, वह सदा निर्भय है, किसीसे भी नहीं डर सकता ॥६॥

**टिप्पणी—(१) 'जोपै……सरै'—कविवर रहीम भी यही बात कह रहे हैं। देखिए—**

> "कहु 'रहीम' का करि सकैं, जारी, चोर, लबार।
> जो पत राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥"

**(२) 'कोटि उपाय'—जैसे यंत्र, मंत्र, तंत्र, नाटक, चेटक, प्रयोग, छल, कपट, अस्त्र-शस्त्र, शाप, बिष आदि।**

**(३) 'प्रह्लाद'—१३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।**

**(४) 'गज'—८७ पदकी टिप्पणी देखिए।**

**(५) 'ध्रुव'—८६ पदकी टिप्पणी देखिए।**

---

१ यहाँ 'ढुंढिका'से भी तात्पर्य है, जो प्रह्लादको जलानेमें स्वयं जल मरी।

( ६ ) 'अंबरीष'—१८ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ७ ) 'सो धौं·······सुजोधन'—दुर्योधनने पांडवोंके साथ सभी छल-बल किये। जुएमें हराया, द्रौपदीका सतीत्व भ्रष्ट करना चाहा, लाक्षागृहमें पांडवोंके जलानेका प्रयत्न किया और अनेक प्रकारके षड्यंत्र रचे।

( ८ ) इस पदसे सूरदासजीका भी मिलता-जुलता एक पद है। वह यह है—

'जाको मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तें, जो जग बैर परै॥
हिरनकशिपु परहारि थक्यौ प्रह्लाद न नेकु डरै।
अजहूँ तौ उत्तानपाद-सुत, राज करत न मरै॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कोपित चीर हरै।
दुर्योधन कौ मान भंग करि, बसन प्रवाह धरै॥
बिप्र-भक्त नृग अंध कूप दिय, बलि पढ़ि बेद छरै।
दीनदयालु कृपालु कृपानिधि, कापै कह्यौ परै॥
जो सुरपति कोप्यो ब्रज ऊपर, कहिधौ कछु न सरै।
राखे ब्रजजन नँदके लाला, गिरि धरि बिरद धरै॥
जाकौ बिरद है गर्व-प्रहारी, सो कैसे बिसरै।
'सूरदास' भगवंत-भजन करि, सरन गहे उधरै॥'

इन दोनोंका भाव-सादृश्य देखने ही योग्य है।

( १३८ )

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ, सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे॥ १॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बन्धु ज्यों, परम प्रीति केवट भेंट्यो॥ २॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ, पिंड देइ निज धाम*दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित, कपिकुल-पति सुग्रीव कियो॥ ३॥

*पाठांतर 'लोक'।

आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हों।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभयदान देवन्ह दीन्हों ॥ ४ ॥
सीतल सुखद छाहँ जेहि कर की, मेटति पाप, ताप† माया।
निसि बासर तिहि कर-सिरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—आरत=आर्त्त, दुखी। बारक = एक बार। तिलक=राज्याभिषेक। चाप=धनुष। छाया=रक्षासे तात्पर्य है।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! हे नाथ! क्या आप कभी अपने उस कर-कमलको मेरे माथेपर रखेंगे, जिस हाथसे आपने दुखी भक्तोको अभय कर दिया था, जब कि उन्होने परतंत्रतावश एक बार आपका नाम-स्मरण किया था? ॥ १ ॥ जिस कर-कमलसे महादेवजीका कठोर धनुष तोड़कर आपने महाराज जनकका संदेह हटा दिया था और जिस कर-कमलसे गुह निषादको, भाईके समान उठाकर बड़े ही प्रेमसे छाती लगा लिया था ॥ २ ॥ हे कृपालु! जिस कर-कमलसे आपने जटायु गीधको ( पिताके समान ) पिंड दान देकर अपने लोक अर्थात् साकेतलोक भेज दिया था, और जिस हाथसे, अपने सेवकके अर्थ, बालिको मारकर, सुग्रीवको बन्दरोके वंश का स्वामी बना दिया था ॥३॥ जिस कर-कमलसे आपने सभय शरणागत विभीषणका राज्याभिषेक किया था और जिस हाथसे, धनुष-बाण उठाकर राक्षसोंका संहार कर देवताओंको अभय-दान दिया था, अर्थात् उनको निर्भय बना दिया था ॥४॥ तथा जिस कर-कमलकी शीतल और आनन्ददायक छायासे पाप, सन्ताप और अविद्याका नाश हो जाता है, हे नाथ! आपके कर कमलकी वही छाया ( रक्षा ) यह तुलसीदास रात-दिन चाहता है ॥५॥

**टिप्पणी**—(१) 'केवट'—१०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

( ३ ) इस पदमें माधुर्य और ऐश्वर्य तथा सौशील्य और वात्सल्यका बड़ा ही मधुर मिलन हुआ है।

( १३९ )

दीनदयालु, दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ‡ ताप तई है।

---

† पाठान्तर 'ताप पाप।' ‡ पाठान्तर 'त्रय।'

देव, दुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के बचन बेद-बुध-सम्मत मम मूरति महिदेव मई है।
तिनकी मति रिस राग मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुप कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुबाद हठि हेर हई है ॥३॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग, लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रङ्ग रई है ॥४॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु-धरनी कलि-गोमर, बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥
कलि-करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर† ज्यों ज्यो सीलबस ढील दई है।
सरुष बरजि तरजिये तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥
दीजै दादि देखि नातौ बलि, मही मोद-मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम अवध‡ चितवनि चितई है ॥९॥
बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है।
राम-राज भयो काज सकुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥१०॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब, सुकृत-सैन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास साँसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन, उजारि बसावन, गई बहोरि बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर, अभयबाँह केहि केहि न दई है ॥१२॥

**शब्दार्थ**—दुरित=पाप। दुनी=दुनियाँ। तई=तच गई है। महिदेव=ब्राह्मण। परमिति=परम्परा की रीति। हेतुवाद=नास्तिकवाद। हई=हनी,

† पाठान्तर 'नीच बढ़त सो चढ़त सिर।' ‡ पाठान्तर 'अवधि।'

नाश की। रई=रँगी, अनुरक्त हुई। सीदत=कष्ट पाता है। खलई=दुष्टता। सई=बरकत; सही, सच्ची। गोमर=गऊ मारनेवाला, कसाई। बई=बोई हुई। टई=काम। सरुष=क्रोधसे। तरजिये=डॉट दीजिए। जई=छोटा-सा फल, जिसे बतिया कहते है। दादि=न्याय। रितई=खाली। सुकृत=पुण्य। साँसति =यातना। उथपे-थपन=उजड़े हुए को बसानेवाले। सदई=सदा ही।

**भावार्थ**—हे दीनदयालु रामजी! पाप, दारिद्रय और दुःख इन तीन दारुण तापो—भौतिक, दैविक, दैहिक—से दुनियाँ जली जा रही है ( इसके पहलेके पदोमे गोसाईंजीने अपने ही दुःख निवेदन किये हैं, अब इस पदमे सारे संसारकी व्यथा सुना रहे हैं )। हे भगवन्! यह आर्त्त आपके द्वारपर पुकार रहा है। देखिए, सभीका सब प्रकारसे सुख जाता रहा, सभी निरानन्द दिखाई देते हैं ॥१॥ वेद और पंडितोकी सम्मति है, तथा आपने भी स्वयं श्री-मुखसे कहा है, कि ब्राह्मण मेरी ही प्रतिमूर्ति है, अर्थात् वे 'ब्रह्ममय' है। पर उनकी बुद्धिको क्रोध, राग, मोह, अहंकार, लोभ और लालचने निगल लिया है, अर्थात् उनमें सम, सतोष, दया, धर्म आदि तो रहे नहीं, किन्तु वे कामी, क्रोधी, मूढ़ और लोभी हो गये हैं ॥२॥ राजसमाज ( क्षत्रिय-जाति ) करोड़ों बुरी-बुरी बातो से भरा है, वे (लूटना, मारना, पर-स्त्री, पर-धन-अपहरण करना, अन्याय करके प्रजाको सताना आदि ) नित्य नई पापपूर्ण चालें चल रहे हैं। नास्तिकताने राजनीति, धर्मशास्त्र, श्रद्धा भक्ति और कुल मर्यादाकी प्रतिष्ठाको, ढूँढ़-ढूँढ़कर, चौपट कर दिया है। साराश यह है, कि जहाँ नास्तिकवाद खड़ा हुआ, परमे-श्वरको न माना, वहाँ धर्म-कर्म रह ही कैसे सकते हैं? क्योकि परमात्मा ही सब धर्मोंका मूल है ॥३॥ ससारमे न तो आश्रम-धर्म है और न वर्ण-धर्म ही। लोक और वेद दोनोकी मर्यादा नष्ट होती जा रही है, न कोई लोकाचार मानता है, और न वेदोक्त धर्म ही। प्रजाका ह्रास हो रहा है, पाखड और पापमे सन रही है। सभी अपने-अपने रंगमे मस्त है, अथवा मनमुखी हो गये हैं, कोई किसीकी नही सुनता ॥ ४ ॥ शान्ति, सत्य और सुमार्ग न्यून हो गये हैं, और दुराचार तथा छल-कपटकी बढ़ती हो रही है। सज्जन कष्ट पाते है, सज्जनता चिंता-ग्रस्त है। दुष्ट मौज कर रहे है और दुष्टता भी चैनमे है ॥५॥ परमार्थ स्वार्थमे परिणत हो गया अर्थात् धर्मके नामपर लोग पेट पालने लगे

हैं। साधन निष्फल होने लगे हैं ( इसीसे कोई करता भी नहीं) और सारी सिद्धियाँ भी सच्ची नहीं उतरतीं, झूठी जान पड़ती हैं, अथवा उनमें कुछ बरकत नहीं रही है; कामधेनु-रूपी पृथ्वी कलियुग-रूपी कसाई के हाथमे पड़ गई है। जो उसमें बोया जाता है, वह व्याकुलताके मारे, जमता ही नहीं ( और इसीसे जहाँ-तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं ) ॥ ६ ॥ कलियुगका करतब कहाँ-तक बखाना जाय। यह बिना कामका काम करता फिरता है। इतने पर भी दाँत पीस-पीसकर हाथ मल रहा है, अर्थात् मन-ही मन मसोस रहा है कि अभी तो मैंने कुछ भी नहीं कर पाया, न जाने, इसके मनमे अभी क्या-क्या है। साराश यह है, कि वह जो करे सो थोड़ा है ॥ ७ ॥ ज्यो ज्यों आप शीलके कारण इसे ढील दे रहे हैं, क्षमा करते जाते हैं, त्यो-त्यो यह नीच सिरपर चढ़ता जाता है, अर्थात् दिन-पर-दिन जुल्म करता है। जरा क्रोध करके इसे डाँट तो दीजिए। यह तरजनी दिखाते ही कुम्हड़ेकी बतियाकी नाईं मुरझा जायगा, दब जायगा ॥ ८ ॥ आपकी बलैया लेता हूँ, देखकर न्याय कर दीजिए, नही तो अब पृथ्वी आनन्द-मगलसे खाली होनेवाली है, आनन्द-मंगलका, यदि ऐसी ही दशा रही तो, कहीं नाम भी न सुनाई पड़ेगा। ऐसा कीजिए, कि जिससे लोग सौभाग्यशाली होकर प्रेमपूर्वक यह कहे, कि श्रीराम-जीने हमे अबाध्य अर्थात् पूर्णतया नित्य कृगादृष्टिसे देखा है ॥ ९ ॥ मेरी यह विनती सुनकर, भगवान्ने मेरी ओर आनन्दसे देखा और मुसकराकर करुणाके जलसे पृथ्वीको भिंगो दिया, तर कर दिया ( शान्ति-वर्षा कर दी। बस राम-राज्य-होनेसे सब काम सफल हो गये। शुभ शकुन होने लगे, क्योंकि महाराज राम-चन्द्रजी जगद्विजयी है। भाव यह है, कि जगद्विजयी रामचन्द्रजीके आगे कायर कलियुगकी एक भी न चली ॥ १० ॥ सर्वशक्तिमान् सुचतुर स्वामीने पुण्य रूपी सेनाको हारनेसे जिता लिया, अर्थात् पापोका क्षय कर दिया। उनके सद्भक्त स्वभावसे ही आदरपूर्वक उनकी प्रशसा करते हैं, कि धन्य है! सहज ही यातनाएँ दूरकर दी ॥ ११ ॥ आपका यह बाना सदासे ही चला आता है, कि जिनका कहीं ठौर-ठिकाना न हो, उन्हे स्थापित करना ( जैसे विभीषण और सुग्रीवको राज्यपर बिठा देना ), उजड़े हुएको बसाना और गई हुई वस्तुको फिरसे दिला देना ( जैसे रावणके भयसे डरे हुए देवताओंको फिरसे स्वर्गमे बसा देना )। हे तुलसी! दुखियोके दुःख हरनेवाले भगवान्ने किस-किसको अभय बाँह नही दी? अर्थात् सभीकी रक्षा की, जो भी शरणमे गया उसका पालन-पोषण किया ॥ १२ ॥

टिप्पणी—(१) 'दीनदयालु.......तई है'—गोसाईंजीके हृदयमें संसार कल्याणका भाव बड़ा ही प्रबल था। वह दुनियाँके दुःखोंको एक क्षण भी नहीं देख सकते थे। कवित्त-रामायणमें भी उन्होंने इस विषय पर कुछ पद्य लिखे हैं। उनमेंसे नीचे एक छंद उद्धृत किया जाता है—

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग, सीद्यमान सोचबस,
कहैं एक-एकन सों, कहाँ जाई, का करी?
बेदहु पुरान कही लोकहूँ बिलोकियतु,
साँकरे—समय के राम, रावरे कृपा करी।
दारिद—दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु,
दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी॥'

क्या ही प्रभावोत्पादक दुःख-निवेदन है! इतने बड़े राष्ट्रीय आन्दोलनके होते भी, आज गोसाईंजी—जैसा कोई राष्ट्रीय कवि नहीं है, जो भगवान्के कानोंमें कुछ आर्त्तनाद पहुँचा सकता।

(२) 'राज-समाज.....नई है'—बलिहारी! कदाचित् तब राज-समाजकी यह दशा न रही हो, पर आज तो सवा-सोलह आने यह हालत देखनेको मिल रही है। अच्छा हो, यदि यह राज्यवंश, क्षत्रियजाति, पृथ्वीसे रसातलको चला जाय।

(३) 'हेतुवाद'—कारणवाद, यहाँ नास्तिकवादसे तात्पर्य है।

(४) 'देखि नातौ बलि'—किसी-किसी सज्जनने इसे 'राजाबलि और उनका पृथ्वीदान' वाला संकेत लिखा है, किंतु यह खींचातानी है। स्पष्ट अर्थ तो 'नातौ' का 'नहीं तो', और बलि का 'बलिहारी' है।

(५) 'अभय बाँह'—अभय-दान, निर्भय कर देना। 'निर्भयं वैष्णवं पदं'।

## ( १४० )

ते नर नरकरूप जीवत भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी।
निसिबासर रुचि पाप असुचि मन, खलमति मलिन निगमपथ-त्यागी॥१॥
नहिं सतसंग, भजन नहिं हरिको, स्रवन न राम-कथा-अनुरागी।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि, सोवत अति न कबहुँ मति जागी॥२॥

तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि, सठ, हठि पियत बिषय-बिष माँगी ।
सूकर-स्वान सृगाल-सरिस जन, जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥३॥

शब्दार्थ—भव-भंजन = संसारका नाश करनेवाले, जन्म-मरण से मुक्त करनेवाले । निगम = वेद । दार = स्त्री । सृगाल = गीदड़ ।

भावार्थ—वे अभागे मनुष्य संसारमें नरकरूप होकर जी रहे हैं, जो जन्म-मरणसे मुक्त कर देनेवाले श्रीभगवच्चरणोंसे विमुख है । रात-दिन उनकी रुचि पापोंमें ही लगी रहती है । उनका मन अशुद्ध रहता है । उन दुष्टोंकी बुद्धि इतनी मलिन रहती है, कि वह वेदोक्तमार्गको छोड़ बैठती है, अर्थात् पाप करते-करते उन दुष्टोंकी ऐसी प्रकृति हो जाती है, कि उन्हें वेद-विहित कर्म अच्छे ही नहीं लगते ॥२॥ न तो वे संतोंका संग ही करते है, न भगवद्भजन ही और न कानोंमें श्रीराम-कथाका प्रेम ही रहता है । (फिर करते क्या हैं, सुनिए) वे सदा पुत्र-कलत्र और धन तथा गृह आदिकी मोह-रात्रिमें सोते रहते हैं, अर्थात् इन्ही सबके मोहमें बदहोश पड़े रहते हैं । उनकी बुद्धि (इस निद्रासे) कभी जागती ही नहीं, अर्थात् उनके मनमें क्षणमात्रको भी वैराग्यका उदय नही होता ॥२॥ हे तुलसीदास ! जो दुष्ट राम-नाम-रूपी अमृतको छोड़कर हठपूर्वक विषयरूपी ज़हर माँग-माँगकर (बार-बार विषयो ही की कामना करके) पीते हैं, वे मनुष्य सूअर, कुत्ता और गीदड़के समान इस जगत्में केवल अपनी माँ को दुख देने के लिए ही जन्म लेते हैं । तात्पर्य यह है, कि जैसे सूअर आदि सदा विष्ठाका भक्षण करते हुए काम-प्रवृत्तिके दास बने रहते हैं, इसी प्रकार वे विषयी मनुष्य आत्म-दर्शनका लाभ छोड़कर विषयोंमें फँसे हुए व्यर्थ ही जी रहे हैं, उनका तो मर जाना ही अच्छा है ॥३॥

( १४१ )

रामचंद्र रघुनायक तुम सौं हौं बिनती केहि भाँति करौं ।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमान डरौं ॥१॥
पर-दुख दुखी सुखी पर-सुख ते, संत-सील नहि हृदय धरौं ।
देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥२॥
भक्ति बिराग ग्यान साधन कहि, बहु बिधि डहँकत लोग* फिरौं ।

* पाठान्तर 'लोक ।'

सिव-सरबस सुखधाम नाम तव, बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥३॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज-सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रज तें निदरौं ॥४॥
नाना बेष बनाय दिवस निसि, परबित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकौ पल न कबहुँ अलोल चित, हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥५॥
जो आचरन बिचारहु मेरो. कलप कोटि लगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि, गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥६॥

शब्दार्थ—डहँकत = ठगता हुआ। सीकर = बूँद। लरौं=लड़ता हूँ। बित = धन। अलोल = स्थिर, शान्त। औटि = जलकर।

भावार्थ—हे रघुवंश में श्रेष्ठ रामचंद्रजी! मै किस प्रकार तुमसे विनय करूँ? अपने पापोंकी ओर देखकर और तुम्हारा अनघ अर्थात् पापरहित नाम विचार कर, मन-ही-मन, डर रहा हूँ। (इसलिए डरता हूँ, कि पाप और पुण्यकी कभी बनती नही है, इन दोनोंमे पृथ्वी-आकाशका अंतर है। रघुनाथजी मुझ पापीका उद्धार कैसे कर सकेंगे?) ॥१॥ दूसरेके दु:खसे दुखी तथा दूसरेके सुखसे सुखी होना-ऐसा जो संतोका शील स्वभाव है, उसे मैं कभी हृदयमे धारण नही करता। (फिर करता क्या हूँ, सो सुनिए) दूसरोकी विपत्ति देखकर बड़ा प्रसन्न होता हूँ। और दूसरोंकी संपत्ति देखकर बिनाही आग ईर्षाके मारे जला जाता हूँ ॥२॥ भक्ति, वैराग्य, ज्ञान आदिके साधनोंका उपदेश देता हुआ नाना प्रकारसे लोगोंको ठगता फिरता हूँ। शिवका सर्वस्व और आनंदका धाम जो तुम्हारा राम-नाम है, उसे बेचकर (अर्थात् राम-नाम जप करके यह सिद्ध करता हूँ, कि मै तुम्हारा बड़ा भारी भक्त हूँ), पेट भरता हूँ, और उस पेटको, जो नरक भेजनेवाला है। सारांश यह, कि इस पापी पेटके लिए मै तुम्हारे नामकी ओटमें अनेक पाप करता हूँ. कुछ उठा नहीं रखता ॥३॥ यह जानता हूँ, कि मेरे पाप समुद्रके समान है, पर, जानकर भी, जब यह सुनता हूँ, कि मेरे पाप पानीकी बूँदके बराबर है, तब लड़ने लगता हूँ। तात्पर्य यह है, कि सदा यही चाहता हूँ, कि लोग मुझे पापी न कहें, धर्मधुरंधर कहे! और दूसरोंके धूलके कणके समान अवगुण, सुमेरुपर्वतके समान मानता हूँ। और यदि उनके गुण पर्वतके समान हैं, तो उन्हे धूल समान तुच्छ

देखता हूँ। मतलब यह कि मुझे अपना ही सब कुछ अच्छा लगता है, दूसरोंका नहीं, ऐसा स्वार्थी हूँ ॥४॥ अनेक वेष बना-बनाकर दिन-रात, जैसे-तैसे, दूसरोंका धन बटोरता फिरता हूँ। कभी, एक क्षण भी निश्चल चित्तसे प्रेमपूर्वक तुम्हारे चरणारविन्दों का स्मरण नही करता ।५॥ यदि तुम मेरे आचरणोंपर विचार करोगे, मेरे पापोंका लेखा लगाने बैठोगे, तो करोडो कल्पतक मुझे औट-औटकर मरना पड़ेगा, संसार-रूपी कड़ावेमें जलना होगा, आवागमनके चक्रसे कभी छुटकारा न मिलेगा। हे प्रभो! पर यदि तुम अपनी कृपादृष्टिसे मेरी ओर देख दोगे, तो मै, तुलसीदास, इस संसारको गायके खुरके समान पार कर जाऊँगा, इस संसार-समुद्रसे अनायास तर जाऊँगा ॥६॥

टिप्पणी - ( १ ) 'परदुख-दुखीं ·· आगि जरौ'—गोसाईंजीने, रामचरितमानसमें संतोंके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं--

'विषय-अलंपट सील-गुनाकर। परदुख दुख, सुख सुख देखे पर ॥
सम, अभूतरिपु विमद-विरागी। लोभामर्ष–हर्ष–भय–त्यागी ॥
कोमल चित, दीनन पर दाया। मन-बच-क्रम मम भक्त अमाया ॥
सबहिं मानप्रद, आपु अमानी। भरत, प्रान-सम मम ते प्रानी ॥
× × × × × ×
निन्दाअस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रान-प्रिय, गुन मंदिर सुखपुंज ॥

असन्तोंके भी लक्षण सुन लीजिए--

खलन-हृदय अति ताप बिसेखी। जरहि सदा परसम्पति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हर्षहि मनहुँ परी निधि पाई ॥
× × × × × ×
काहू की जो सुनहिं बडाई। साँस लेहि जनु जूडी आई।
जब काहू की देखहिं बिपती। सुखी होहि मानहुँ जग-नृपती ॥

( २ ) 'सिव-सरबस' - शिवजीको रामनाम प्राणाधिक प्रिय है। आप पार्वतीजी से कहते हैं —

'राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्य, राम-नाम वरानने ॥'

और भी—

'गोप्याद् गोप्यतमं भद्रे, सर्वस्वं जीवन मम ।
राम-नाम परब्रह्म कारणाना च कारणम् ॥'

( ३ ) 'नानावेष'—मनुष्य पेट भरनेके लिए क्या-क्या नहीं करता ? कभी कवि बनता है, तो कभी चित्रकार । कभी साधु-संत बन जाता है, तो कभी अवधूत फकीर । कभी गुलामी करने लगता है, तो कभी डकैती देता है। कभी उपदेशक बनता है, तो कभी धर्मध्वज महात्मा । कहाँतक कहें, इससे जो कुछ भी हो सकता है, वह सब पेट-पूजाके लिए करनेको तैयार रहता है ।

( ४ ) 'अलोल'—निश्चल; शान्त चित्तसे यदि एक भी क्षण भगवन्-नाम स्मरण किया जाय तो मुक्ति हाथ जोड़े सामने खड़ी है । क्योंकि चित्त-वृत्ति-निरोधात्मक योग सद्यः फल देनेवाला है ।

( १४२ )

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि, क्यों करि बिनय सुनावौं ।
सकल धरम बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं ॥१॥
जानत हौं हरि रूप चराचर, मैं हठि नैन न लावौं ।
अंजन केस सिखा जुवती तहँ, लोचन-सलभ पठावौं ॥२॥
स्रवननि को फल कथा तुम्हारी, यह समुझौं समुझावौं ।
तिन्ह स्रवननि परदोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥३॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं ।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यों, रटि रटि जनम नसावौं ॥४॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं ।
हौं निज उर अभिमान-मोह-मद-खल-मंडली बसावौं ॥५॥
जो तनु धरि हरिपद साधहि, जन सो बिनु काज गँवावौं ।
हाटक-घट भरि धर्‌यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं ॥६॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौं ।
पर-प्रेरित इरषा बस कबहुँक, किय* कछु सुभ जो जनावौं ॥७॥

* पाठान्तर 'कियो' ।

बिप्र-द्रोह जनु बाँट पर्‌यो हठि, सब सों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति-बिलास सब, संतन माँझ गनावौं॥ ८॥
निगम सेस सारद निहोरि जो, अपने दोष कहावौं।
तौं न सिराहिं कलप सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौं॥ ९॥
जो करनी आपनी बिचारौं, तौं कि सरन हौं आवौं।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं॥ १०॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि, सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं।
नाथ-कृपा भवसिंधु धेनुपद सम, जो जानि सिरावौं*॥ ११॥

शब्दार्थ—भावौ = अच्छा लगूँ। सिखा = दीपककी ज्योति, आगकी ज्वाला। सलभ = (शलभ) पतिंगा। तावौं = दृढ़तासे धारण करता हूँ; उमंगसे फूला नहीं समाता। प्रयास = परिश्रम। अपवाद = निन्दा। भेक = मेढ़क। हाटक = सुवर्ण। खनावौं = खोदता हूँ। बिलास = आनन्द। सिराना = समाप्त होना। सिरावौं = शान्त करता हूँ, सन्तोष होता है।

भावार्थ—हे कृपानिधि रामजी! मुझे बड़ा संकोच हो रहा है, मैं किस प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ? जो कुछ भी मैं करता हूँ, वह सब धर्मके विरुद्ध ही किया करता हूँ। फिर भला, आपको मैं क्यों अच्छा लगने लगा? तात्पर्य यह है, कि आपको तो धर्मात्मा ही प्यारे हैं; मुझसरीखे पापी नहीं, इससे मुझे आपके सामने आनेमें संकोच होता है॥ १॥ यद्यपि मै यह जानता हूँ, कि भगवान् सर्वत्र—जड़ और चैतन्यमें—व्यापक हैं, पर मैं भगवत्-स्वरूपकी ओर हठपूर्वक ध्यान नहीं देता। मैं तो अपने नेत्ररूपी पतिंगोंको कामिनीरूपी अग्नि-शिखामें (जलनेके लिए) भेजता हूँ॥२॥ मैं यह स्वयं समझता हूँ और दूसरोंको भी समझाता हूँ, कि इन कानोंकी सार्थकता तो आपकी कथा सुननेमें ही है, पर उन कानोंसे सदा दूसरोंके दोष सुन-सुनकर, मनमें दृढ़तासे भर-भरकर, रखता हूँ, अथवा सुन-सुनकर हृदयमें फूला नही समाता॥३॥ जिस जीभसे आपके गुणानुबाद गाकर बिना ही परिश्रमके परमानन्द पा सकता हूँ; उसी मुखसे उसी जीभसे मेढककी नाईं दूसरोंकी निन्दाएँ रटा करता हूँ, जीभको परदोष कहनेके लिए ही मान रखा है॥४॥ मैं यह बात सबको समझा-समझाकर सिखाता फिरता हूँ, कि

* पाठान्तर 'जो समुझि नियरावों।'

'हृदयको नितांत शुद्ध बना डालो, तभी भगवान् उसमें बास करेंगे' किंतु मैं अपने हृदयमें अहंकार, अज्ञान और मद—इन दुष्टोंका समाज बसाता हूँ। ( स्वयं तो महा व्यसनी हूँ, पर दूसरोंको सज्जन बननेका उपदेश देता हूँ। भला, यह कहाँका न्याय है!) ॥५॥ जिस शरीरको मानव-शरीरको, धारण कर भक्त-जन वैष्णव पद, मुक्ति पद, प्राप्त करनेकी साधना करते हैं, उसे पाकर मै व्यर्थ ही खो रहा हूँ। घरमे तो सोनेके घड़ेमें अमृत भरा रक्खा है, पर उसे छोड़कर आकाशमें कुआँ खुदवाता हूँ! तात्पर्य यह है, कि यह जो कंचन-सी देह है, और जिसमें आत्मस्व-रूप-अमृत भरा है, उसे छोड़कर काम-काँचनरूपी मृगजलकी खोजमें मारा-मारा फिरता हूँ। जिसका अस्तित्व ही नहीं, भला, उस जगत्में सुखकी आशा हो सकती है? कदापि नही ॥६॥ मनसे, कर्मसे और वचनसे जो-जो पाप किये हैं, उन्हें मै यत्न कर-कर छिपा रहा हूँ। और दूसरोकी प्रेरणासे अथवा ईर्षावश यदि कभो कोई अच्छा काम बन गया, तो उसे ( ढिंढोरा पीटता हुआ ) जनाता फिरता हूँ ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंके साथ द्रोह करना तो मानो मेरे हिस्सेमें ही पड़ गया है। जबरदस्ती ही सबसे बैर बिसाहता फिरता हूँ ( यह तो मेरे कर्म हैं, किन्तु ) यह सब होने पर भी, अपनी बुद्धिकी चेष्टासे, अपने सिद्धान्तका प्रति-पादन करके अपनेको सब सन्तोंके बीचमें गिनता हूँ। यह सिद्ध करना चाहता हूँ, कि लोग मुझे सन्त-महन्त कहें ॥ ८ ॥ वेद, शेषनाग, सरस्वतो आदिका निहोरा कर कर भी यदि मै अपने दोषोंका बखान कराऊँ, तब भी, हे प्रभो! सौ कल्प तक वे समाप्त न होंगे! फिर, भला मैं एक मुखसे उनका क्या वर्णन करूँ? ॥ ९ ॥ यदि कहीं मैं अपनी करनीपर विचार करने लगूँ, तो क्या मैं आपकी शरणमें आने योग्य हूँ? मतलब यह, कि मै इतना भारी पापी हूँ कि आपकी शरणमें आ ही नही सकता, किन्तु "रघुनाथजीका स्वभाव कोमल है, उनका शील असीम है" यह बल मनको दिखाता रहता हूँ। तात्पर्य यह है, कि जब रघुनाथजी ऐसे सुशील और कोमल स्वभाववाले है, तो वह मुझ-सरीखे पापियो और अपराधियोंको शरणमें लेकर क्यो न उद्धार करेंगे? अवश्य करेंगे। बस, यही सदा मनको साहस बँधाता रहता हूँ ॥ १० ॥ हे प्रभो! इस तुलसीदासके पास ऐसा एक भी गुण नहीं है, जिसके बल-भरोसे पर आपको स्वप्नमें भी प्रसन्न कर सके। किन्तु हे नाथ! आपकी कृपा

के आगे यह संसार-सागर गायके खुरके समान है। यह समझकर मनमें सन्तोष कर लेता हूँ ( कि आपकी कृपासे, अपने में कोई साधन न होनेपर भी मैं संसार-समुद्र को अनायास पार कर जाऊँगा ) ॥ ११ ॥

टिप्पणी— ( १ ) 'धरम विपरीत'— धर्मका मुख्य स्वरूप सत्य है। सत्यकी अवहेलना कर जो कुछ भी किया जाता है, वह धर्म-विरुद्ध है, सदाचार नहीं, कदाचार है। मिथ्याचारसे दुराचार अच्छा है। दंभ ही सब अधर्मों की जड़ है। यही इस पदसे सिद्ध होता है।

( २ ) 'अंजन केस सिखा'—इसके दो अर्थ हैं—

१—नेत्रोंमें अंजन लगाये, सटकारे काले केशवाली, दीपककी ज्योतिके समान कामिनी।

२—काजलके समान केश ही जिस स्त्रीरूपी अग्निकी धूम्र-शिखा है। साधारणतः, नेत्रों और केशोंकी मोहकतापर ही कामियोंका ध्यान जाता है।

( ३ )—'हाटक घट ···खनावों'—सूरदासजी यों कहते हैं—

'परम गंगजल छाँड़ि पियासो, दुर्मति कूप खनावै'।

परन्तु इस उक्तिसे गोसाईंजीकी 'हाटक-घट' वाली उक्ति अधिक-मनोहारिणी है, सर्वांग-सुन्दर सूक्ति है।

( ४ ) 'मन-क्रम-वचन'—पाप-पुण्य दोनों ही त्रिविध होते हैं। यहाँ पापोंकी चर्चा की गई है, जो इस प्रकार हैं—

१—मानसिक—जैसे, परधन, परस्त्री आदि पर ध्यान, परहानिका चिंतवन, मन-ही-मन नास्तिकभाव इत्यादि।

२—कायिक—परस्त्री-गमन, हिंसा, चोरी आदि।

३—वाचनिक-मिथ्या भाषण, परनिंदा, कठोर-वचन इत्यादि।

( ५ ) 'मृदुल ···रघुपति को'—कदाचित् निम्नलिखित प्रतिज्ञा सुनकर ही गोसाईंजीने ऐसा कहा है—

"सकृदेव प्रपन्नाय 'तवास्मीति' च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रतं मम।।"

( १४३ )

सुनहुँ राम रघुबीर गुसाईं, मन अनीति-रत मेरो।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसिदिन फिरत अनेरो ॥ १ ॥

मानत नाहिं निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल करम-कोलुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥ २ ॥
जहँ सतसंग, कथा माधवकी, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ-मोह-मद-काम-कोह-रत, तिन्ह सों प्रेम घनेरो ॥ ३ ॥
पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हरख बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥ ४ ॥
साधन-फल स्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो* पर-कर काँकिनी लागि सठ, बेंचि होत हठ चेरो ॥ ५ ॥
कबहुँक हौं संगति सुभाव † तें, जाऊँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥ ६ ॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति, बिपति-जाल अति घेरो।
तापर सहि न जाय करुनानिधि, मन को दुसह दरेरो ॥ ७ ॥
हारि पर्‌यो करि जतन बहुत‡ बिधि, तातें कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अनेरो=अन्यत्र, दूर, विमुख। अनुशासन = आज्ञा ! कोह = क्रोध। घनेरो = बहुत ज्यादा। खेरो=खेड़ा, छोटा-सा गाँव। बेरो=बेड़ा। काँकिनी=कौड़ी, छदाम। नेरो=पास। दरेरो=धक्का। सबेरो=जल्दी, पहलेसे। डेरो=निवास।

भावार्थ—हे रामजी, हे रघुनाथजी, हे प्रभो, सुनिए—मेरा मन अन्यायमें लगा रहता है। आपके चरणारविन्दों को भूलकर दिन-रात इधर-उधर भटकता फिरता है, विषयोंकी ओर दौड़ता रहता है ॥ १ ॥ न तो वह वेदकी ही आज्ञा मानता है, और न उसे किसीका डर ही है। वह कई बार कर्मरूपी कोल्हू में तिलकी तरह पेरा जा चुका है, पर अब सारा कष्ट भूल गया है ( यह खबर नहीं, कि दुष्कर्म करनेसे फिर वही दुर्दशा होगी ) ॥ २ ॥ जहाँ सन्त-समागम होता है, अथवा भगवत्-कथा होती है, वहाँ स्वप्नमें भी मेरा मन चक्कर नहीं लगाता, भूलकर भी नहीं जाता। जो लोभ, अज्ञान, अहङ्कार, काम और क्रोधमें ही पगे रहते हैं, उन्हीं दुष्टोंसे वह

* पाठांतर 'सोइ।' † पाठान्तर 'बिबिध।' ‡ पाठान्तर 'प्रभाव'।

अधिक प्रेम करता है ॥३॥ दूसरोंके गुण सुनकर वह (डाहके मारे) जला जाता है, और जब दूसरोंकी बुराई सुनता है तब फूलकर कुप्पा हो जाता है ! आप तो स्वयं पापोंका नगर बसा रहा है, पर दूसरे के (पापोंके) खेड़ेको भी नहीं देख सकता। भाव यह, कि अपने बड़े-बड़े पापोपर भी कुछ ध्यान न देकर दूसरोंके ज़रासे पाप-पर दिल्लगी उड़ाता है ॥४॥ आपका नाम जो सर्वसाधनोंका फलस्वरूप है, वेदोंका सार है और संसाररूपी नदी पार करनेके लिए बेडा है, उसे दूसरेके हाथमें वह दुष्ट, कौड़ी-कौड़ीके लिए, बेंचता हुआ उनका गुलाम बनता फिरता है, एक-एक कौड़ीके लिए आपके नामको सुनाता फिरता है ॥५॥ यदि कभी सत्संगसे अथवा दैववश सन्मार्गके पास जाऊँ भी, तो इन्द्रियोंकी आसक्ति उस मनको कुमनोरथरूपी धक्का दे देती है। अर्थात् धर्माचारकी ओरसे हटाकर इन्द्रियाँ पुनः इस मनको संसारी वासनाओंमें फँसा देती हैं ॥६॥ एक तो मैं वैसे ही दीन, पापी और दुर्बुद्धि हूँ विपत्तियोंके जालमें फँसा पड़ा हूँ और तिसपर, हे करुणालय ! इस मनका असह्य धक्का लग रहा है। भला मै (निर्बल जीव) इस (सबल) मनका धक्का कैसे सह सकता हूँ ॥७॥ मैं अनेक यत्न कर-कर हार गया, इससे मैं पहले-से ही कहे देता हूँ, कि तुलसीदासका यह भय (जन्म-मरणका दुःख) तभी दूर होगा, जब आप उसके हृदयमें निवास करेंगे। अर्थात् आपके ही ध्यानसे मनकी वृत्तियोंका नाश सम्भव है, अन्यथा नहीं ॥८॥

टिप्पणी—(१) 'मानत नाहिं ··केरो'—वेदोक्त धर्मोंपर नहीं चलता और यह भी भय नहीं कि अधर्म करनेसे यम दण्ड देगा। न लोक को डरता है, न परलोक को। मनमुखी हो रहा है, निरंकुश होकर निश्शंक अधर्म-मार्ग पर चल रहा है।

(२) 'कौंकिनी' – मेदिनी कोषमें लिखा है—

'काकिणी पणतुर्यांशो'

अर्थात् पणके (पैसेके) चौथाई भागको काकिणी कहते हैं। छदामकी कौड़ियोंसे तात्पर्य है।

(३) 'जतन बहुव विधि'—ज्ञान, कर्म और भक्ति संबन्धी साधन।

(४) इस पदमें दंभका प्राबल्य, मनकी अधर्मासक्ति, विरक्तिका उद्दीपन-जीवकी असमर्थता और भगवत्कृपाका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

( १४४ )

सो धौं को जो नाम-लाज तें, नहि राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरहिं* सकल भव-भीर ॥१॥
बेद-बिदित, जग-बिदित अजामिल, बिप्रबंधु† अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवारयो सुत-हित सुमिरत नाम ॥२॥
पसु पामर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु, हरयो दुसह उर-दाह ॥३॥
ब्याध निषाध गीध गनिकादिक, अगनित औगुन-मूल।
नाम-ओट तें राम सबनि को दूरि करयो सब सूल ॥४॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन तें, रघुकुल-भूषन भूप।
सीदत तुलसिदास निसिबासर परयो भीम तम-कूप ॥५॥

भावार्थ—ऐसा कौन है, जिसे श्रीरघुनाथजीने अपने नामकी लाजसे अपनी शरणमें नहीं रखा, नहो अपनाया ? बिना ही किसी कारणके करुणा करनेवाले श्रीहरि संसारके समस्त भय दूर कर देते हैं ( नाम-स्मरण करनेवालोंको संसार–सागरसे मुक्त कर देते हैं ) ॥१॥ वेदमें प्रकट है और ससारमें भी प्रसिद्ध है, कि अजामेल था तो ब्राह्मण जातिका, पर पापोंका स्थान था, महान् पापकर्मा था । बेचारा जब यमलोक जाने लगा, तब उसने अपने पुत्रका नाम लिया, किन्तु भगवान्‌ने अपना नाम-स्मरण समझकर उसे यमलोक जानेसे रोक लिया (धोखेसे ही "नारायण" का स्मरण करनेसे वह मुक्त हो गया) । फिर भला, जो जानकर भगवत् नाम-स्मरण करेगा, उसकी सद्‌गति क्यों न होगी ? ॥२॥ जब मगरने पशु एवं पापी और महान् अभिमानी हाथीको पकड़ लिया, तब उसके एक ही बार स्मरण करनेपर, हे प्रभो ! आप तत्क्षण वहाँ आ गये और उसकी असह्य हार्दिक पीड़ा शान्त कर दी ( मगरसे छुड़ाकर उसे दिव्य शरीर प्रदान कर दिया ) ॥३॥ व्याध (वाल्मीकि), निषाद ( गुह ), गीध ( जटायु ), गणिका ( पिंगला ) इत्यादि अगणित दोषोंकी जड़ थे, किन्तु हे रामजी ! आपने

* पाठान्तर 'हरहु' "हरौ' । † नीच ब्राह्मण, जैसे 'क्षत्रबन्धु' ।

अपने नामकी ओटसे इन सबके सारे दुःखोंका नाश कर दिया ॥४॥ हे रघुवंशमें श्रेष्ठ ! हे महाराज ! कहिए, इन सबोंसे मैं किस आचरणमें कम हूँ ? फिर भी यह तुलसीदास रात-दिन भीषण अज्ञानरूपी कुएँमें पड़ा हुआ दुःख भोग रहा है ? भाव यह है, कि जब आपने बड़े-बड़े दुराचारी पापियोंका भी उद्धार कर दिया, तब मुझ पापीको क्यों भुलाये बैठे हो ? मुझे भी संसार-सागरसे पार कर दीजिये ॥ ५ ॥

टिप्पणी—(१) इस पदका, पद १४३ से सम्बन्ध है। उसके अन्तमें यह कहा गया है कि 'हृदय करहु तुम डेरो।' यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि जब हृदय अपवित्र है, तब उसमें डेरा कैसे हो सकेगा ? इसके समाधानमें यह पद लिखा जान पड़ता है, कि 'सो धौं को जो नाम-लाज तें नहीं राख्यो रघुबीर' इत्यादि।

(२) 'अजामिल'—पद ५७ की चौथी टिप्पणी देखिए।

(३) 'गज········ग्राह'—पद ५७ की टिप्पणी देखिए।

(४) 'व्याध' - वाल्मीकि; पद ६४ की चौथी टिप्पणी देखिए।

(५) 'निषाद'—गुह; पद १०६ की तीसरी टिप्पणी देखिए।

(६) 'गनिका'— पिंगला; पद ६४ की दूसरी टिप्पणी देखिए।

(७) 'तमकूप'—अज्ञान वा अविद्यारूपी कूप। सत्को असत् और असत्को सत् मान लेना, अथवा आत्मा-अनात्माका ठीक-ठीक ज्ञान न होना ही "अज्ञान-कूप" है।

( १४५ )

कृपासिन्धु, जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत, तब तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज, प्रह्लाद, पांडसुत, कपि सब को रिपु-संकट मेट्यो।
प्रनत बन्धु-भय-बिकल बिभीषण, उठि सो भरत ज्यों भेंट्यो ॥२॥
मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम* इक† उर आपने बसावों।
भजन, बिबेक, बिराग, लोग भले, मैं क्रम क्रम करि ल्यावों ॥३॥
सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक, करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गुसाईं ॥४॥

* पाठान्तर 'गाउँ'। † पाठान्तर 'एक, यक।'

सम-सेवा-छल-दान-दंड हौं, रचि उपाय पचि हार्‍यो।
बिनु कारन को कलह बड़ो दुख, प्रभु सों प्रगटि पुकार्‍यो ॥५॥
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ को बिपति-निवारक, भवतारक जग माहीं ? ॥६॥
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भक्ति-बाँह बारक* ज्यों सुबस बसै अब खेरो ॥७॥

शब्दार्थ—दादि = न्याय, इन्साफ़। दाहे = जला दिये, नष्ट किये। ल्यावो = ले आऊँ, बुन्देलखण्डी प्रयोग। उजारि=उजाड़ कर। अनीस = असमर्थ, निःशक्त। बारक = बार + एक, एकबार। यहाँ संस्कृतके नियमानुसार "बार + एक" ऐसा पदच्छेद नहीं हुआ है। खेरो = खेड़ा।

भावार्थ – हे कृपासागर ! यह तुम्हारा दीन दास तुम्हारे द्वारपर न्याय क्यो नहीं पाता ? इसका इन्साफ़ क्यों नहीं किया जाता ? जब, जहाँ पर, जिन्होंने आर्त्त हो तुम्हें याद किया, तब वहीं पर तुमने उनके दुःख दूर कर दिये ( ऐसा तुम्हारा स्वभाव है, पर मेरे लिए न जाने क्यों प्रकृति बदल दी ) ॥ १ ॥ हाथी, प्रह्लाद, पाडव, सुग्रीव आदि सबके शत्रुओंसे किये गये कष्ट तुमने नष्ट कर दिये। भाई रावणके भयसे व्याकुल और विनम्र विभीषणकों उठाकर तुमने, भरतकी नाईं छातीसे लगा लिया, बड़े प्रेमसे उसका आलिंगन किया ॥२॥ मै तुम्हारा नाम लेकर अपने हृदयमें एक गाँव बसाना चाहता हूँ। उसमें बसानेके लिए मैं धीरे-धीरे भजन, विवेक, वैराग्य प्रमुख सज्जनोको इधर-उधरसे लाता हूँ। भाव यह है, कि मैं हृदयमें जैसे-तैसे सद्भावोंको स्थान देता हूँ ॥ ३ ॥ यह सुन कर क्रोधित हो दुष्ट काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य जबरदस्ती करते हैं। उन बेचारे भले आदमियोंको उजाड़-उजाडकर, हे प्रभो ! उस गाँवमें ये दुष्ट स्त्री, शत्रु, धन-सम्पत्ति आदिको ला-लाकर बसातेहैं (अब बताओ, उन सद्भावोंका कैसे निर्वाह हो ?) ॥४॥ साम, दाम, दंड, भेद और सेवा खुशामद करके तथा और-और भी अनेक उपाय कर-कर मैं थक गया हूँ। पर ये नहीं मानते, बिना ही कारणके लड़ाई-झगड़े मचाये रहते हैं। इस महान् दुःखको आज मैंने उजागर हो स्वामीके सामने

* पाठान्तर 'बैरक।'

निवेदन किया है, उनके कानमें बात डाल दी है ।।५।। (यदि कहो, कि और-और देवताओंको क्यों नहीं अपना दुःख सुनाया, तो) वे देवता स्वार्थी, असमर्थ, अयोग्य और निष्ठुर हैं । उनका चित तनिक भी नहीं पिघलता । कहाँ जाऊँ ? कौन विपत्ति दूर करनेवाला है ? कौन इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है ? कोई भी तो नहीं दीख पड़ता ।।६।। तुलसी यद्यपि नीच है, पर है तो तुम्हारा ही, और किसीका गुलाम तो नहीं है । अपना जानकर एकबार भक्तिरूपी बाँह दे दो, हृदयमें अपनी भक्ति थाप दो, जिससे यह खेड़ा स्वतंत्रतापूर्वक आबाद हो जाय । भाव यह है, कि इस हृदयमें एक तुम्हारी भक्तिके प्रतापसे ही ज्ञान, विवेक, वैराग्य आदि सद्भावोंका उदय और काम-क्रोधादिका नाश होगा ।।७।।

टिप्पणी—( १ ) 'गज'—५७ पद की टिप्पणी देखिए ।

( २ ) 'प्रहलाद'—६३ पद की तीसरी टिप्पणी देखिए ।

( ३ ) 'पांडुसुत'—पांडव; पांडवोंका हित-साधन करनेके लिये भगवान् कृष्णने क्या-क्या नही किया । उनके लिए आप दूत बनकर दुर्योधनके पास गये, उससे भला-बुरा भी सुना । द्रौपदी की पुकार सुनकर उसकी सहायता की । महाभारतमें अर्जुनके रथके स्वयं सारथी बने । पांडवोंके हितार्थ कईबार अपनी प्रतिज्ञाएँ भी तोड़ डालीं ।

(४) 'कपि'—सुग्रीवसे तात्पर्य है ।

(५) 'विभीषन ·· ··भेंट्यो'—विभीषणने ज्योंही यह कहा, कि—

'दीनदयालु कहावत 'केसव' हो अति दीनदसा गह्यो गाढ़ो ।
रावन के अघ-ओघ मे केसव ! बूड़तहो कर ही गहि काढ़ो ।।
ज्यो गज की प्रहलाद की कीरति, त्योंही बिभीषन को जस बाढ़ो ।
आरत-बंधु ! पुकार सुनौ किन, आरत हौ तौ पुकारत ठाढ़ो ।।

( रामचन्द्रिका )

त्योंही श्रीरघुनाथजीने उसे हृदयसे लगा लिया । गोसाईंजी रामचरित-मानसमें लिखते हैं—

'अस कहि करत दंडवत देखी । तुरत उठे प्रभु हर्ष बिसेखी ।।
दीनबचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ।।'

( ६ ) यह पद वर्तमान भारतपर खूब घटता है । जबतक इसपर भगवत्-कृपा न होगी, तबतक यहाँसे खलमंडली नहीं जा सकती, और न स्वतंत्रतापूर्ण

स्वराज्यही हो सकता है। प्रत्येक स्वाधीनचेताको इस पदका हृदयसे पारायण करना चाहिये। आर्त भारतीयोंका अन्तर्नाद सुनकर प्रभु अवश्य कृपा करेंगे।

( १४६ )

हौं सब बिधि राम, रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहिबी होत है, ख्याल काल कलि केरो ॥१॥
काल-कर्म-इंद्रिय-विषय गाहकगन घेरो।
हौं न कबूलत बाँधि कै मोल करत करेरो* ॥२॥
बन्दि-छोर तेरो नाम है बिरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यो तब छल-प्रीति कै माँगै उर डेरो ॥३॥
नाम ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो।
अब गरीब जन पोषिये पायबो न हेरो ॥४॥
जेहि कौतुक बक † स्वान को प्रभु न्याव‡निबेरो।
तेहि कौतुक कहिये कृपालु 'तुलसी है मेरो'॥५॥

शब्दार्थ--करेरो = कड़ा। बिरुदैत = नामी, बाना। मलजुग = कलियुग। जेरो = जेर किये है। हेरो = ढूँढनेपर। बक = बगुला। निबेरो = फैसलाकर दिया।

भावार्थ—हे रामजी ! मै सब तरहसे आपका गुलाम बनना चाहता हूँ। पर यहाँ तो ठौर-ठौर पर साहबी दिखायी देती है। भाव यह है, कि मन अपनी प्रभुता जमा रहा है, इन्द्रियाँ अपना आधिपत्य दिखा रही हैं। अब मैं किस-किसकी गुलामी करता फिरूँ ? यह सब कौतुक कलिकालका है ॥१॥ काल, कर्म और इन्द्रियरूपी ग्राहकोंने मुझे घेर लिया है। जब मैं उनके हाथ बिकना कबूल नहीं करता, तब वे मुझे बाँधकर मुझपर कड़ा दाम चढ़ाते हैं, जैसे-तैसे लालच दिखा-दिखाकर अपने अधीन करना चाहते हैं ॥२॥ आपका नाम बंधनसे मुक्त कर देनेवाला है और आपका बाना भी बड़ा है; जब मैंने उन ( ग्राहकों ) से यह कहा, कि भाई ! मै तो रघुनाथजीके हाथ बिक चुका हूँ, तब वे ऊपरी प्रेम दिखाकर मुझसे मेरे हृदयमें बसनेके लिये स्थान माँगने लगे। (अब मै क्या करूँ ? यदि उन्हे स्थान दिये देता हूँ तो पहले तो वे दीनता दिखा रहे हैं, पर जगह मिल जानेपर धीरे-धीरे उसपर अपना अधिकार भी कर लेंगे, और मुझे भगा

---

* पाठान्तर 'ककेरो'। † पाठान्तर 'खग।' ‡ पाठान्तर 'न्याय।'

बता देंगे ) ॥३॥ अबतक मैं आपके नामके सहारेसे बचा हूँ ( नहीं तो कभीका इन ग्राहकों के हाथ बिक गया होता, इन्द्रिय-लोलुप हो गया होता ), पर अब यह कलियुग मुझे जेर किये है। अतएव अब इस गरीब गुलामका पालन कीजिए, नही तो फिर यह खोज करनेसे भी न मिलेगा ( क्योंकि कलियुग इसका नाम-निशान तक मिटा देगा, 'रामदास' से 'कामदास' बना लेगा ) ॥४॥ हे नाथ ! आपने जिस कौतुकसे बगुले और कुत्तेका फैसला कर दिया था, उसी लीलासे यह भी कह दीजिए, कि 'तुलसी मेरा है।' ( बस इतना कह देनेसे फिर कलियुगका इस पर कुछ भी वश न चलेगा, अपना-सा मुँह लिये चला जायगा ) ॥५॥

टिप्पणी--( १ ) 'हौं सब ' चेरो'--कविवर बिहारी भी यही चाहते है-

'हरि, तुम सो कीजत यहै, बिनती बार हजार।
जेहि-तेहि भाँति डरयो रहौ, परयो रहौ दरबार ॥'

( २ ) 'ठौर-ठौर साहिबी'--नाईकी बारातमें सभी ठाकुर हो रहे हैं !

( ३ ) 'बक'--वाल्मीकीय रामायणमें उल्लूका प्रसंग आया है, बगुलेका नही। श्रीबैजनाथजीने, इस विवादसे बचनेके लिए, बकके स्थानपर 'खग' पाठ लिखा है। संभव है, बक की कथा किसी अन्य रामायणमें हो। अस्तु, वाल्मीकीय रामायणमें उल्लू और गीधकी कथा इस प्रकार लिखी है--

एक वनमें उल्लू और गीध एक ही घरमें रहते थे। एक दिन गीधने ईर्ष्यावश, घरपर अपना अधिकार करना चाहा और उल्लूसे कहा—हमारा घर खाली कर दो, इसपर तुम्हारा कोई हक़ नहीं। दोनोंमें झगड़ा बढ़ गया। अंतमें श्रीरामचन्द्रजीसे अपना फैसला करानेको दोनों दरबारमें आये। रामचन्द्रजीने उल्लू से कहा--घर किसका है ? तू उसमें कबसे रहता है ? उल्लूने उत्तर दिया--महाराज ! जबसे वृक्षोंकी सृष्टि हुई, तबसे मै उसी घरमें रहता हूँ। गीधने कहा कि जबसे मनुष्यों की सृष्टि हुई, तबसे मैं रहता हूँ। भगवान्ने कहा कि मनुष्योंसे वृक्षोंकी सृष्टि पहले हुई है, अतः वह घर उल्लूका हो सकता है, गीधका नहीं। घर उल्लूको दिलाया गया।

( ४ ) 'स्वान'—एक दिन श्रीरामजीके राज्य-दरबारमें एक कुत्ता आया और रोता हुआ कहने लगा—महाराज, मुझे तीर्थसिद्ध ब्राह्मणने बिना किसी अपराधके मारा है। मेरा न्याय कर दीजिए। भगवान्ने उस ब्राह्मणको बुलाया और उससे पूछा, कि तुमने कुत्ते को क्यों निरपराध मारा है ? ब्राह्मणने कहा, कि मैं भीख माँगता फिरता था। इसे मैंने रास्तेसे हटाया, जब

यह न हटा, तब मैंने लकड़ी मार दी। "ब्राह्मण अदण्डनीय है" यह व्यवस्था सुनकर भगवान् बड़े संकोचमें पड़े। कुत्ते से आपने पूछा, कि इसे क्या दंड दिया जाय? कुत्ते ने कहा—

'मेरो भायो करहु जो, रामचंद्र हित मंडि।
कीजै द्विज यह मठपती, और दंड सब छंडि।।' (रामचंद्रिका)

लोग हँसने लगे, कि यह दण्ड हुआ या अनुग्रह! भिक्षुकसे मठाधिपति बनाना कहाँका न्याय है? कुत्ते ने कहा, कि मैं भी पूर्वजन्ममें एक मठपति था। भक्ष्याभक्ष्य खानेसे कुत्ता होना पड़ा। मठपति होना महान्‌पातकका उदय है। इसका दोष तो थोड़ा-सा ही है, पर मैंने क्रोधवश बड़ा दण्ड दे दिया—

'वाकौ थोरो दोष, मै दीन्हों दड अगाध।
राम चराचर ईस तुम, छमियों यह अपराध।
लोक करेउ अपवित्र वहि, लोक नरक कौ बास।
छुवै जो कोऊ मठपती, ताको पुन्य बिनास।।' (रामचंद्रिका)

निदान वह ब्राह्मण, कुत्तेके कहनेपर, बड़े समारोहसे कालिंजरका महंत बनाया गया। वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है—

'कालिजरे महाराज, कौलपत्यं प्रदीयताम्।
एतच्छ्रुत्वा तु रामेण, कौलपत्योऽभिषेचितः।।'

(५) इस पदमें गोसाईंजीने 'साहबी, ख्याल, कबूलत, करेरा' इन उर्दू शब्दोंका प्रयोग किया है। और ये प्रयोग, बोलचालकी भाषामें आनेसे, बड़े ही सुहावने जान पड़ते है,

( १४७ )

कृपासिंधु, ताते रहौं निसिदिन मन मारे।
महाराज, लाज आपुही निज जाँघ उघारे।।१।।
मिले रहैं, मारयो चहैं कामादि सँघाती।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती।।२।।
बसत हिये हित जानि मै सबकी रुचि पाली।
कियो कथिक को दंड हौं जड़ करम कुचाली।।३।।
देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी।
करहिं सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी।।४।।

बूड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं।
असमंजस में मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥ ५ ॥
बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—मनमारे=निराश, उदास। आपुही निज जाँघ उघारे=स्वयं अपने हाथों अपना परदा खोलनेसे, अपनेही मुखसे अपना भेद बतानेसे। सँघाती=साथी। कथिक=गानेवाला। दड=लकड़ी। अनैसी=अनिष्ट, बुराई। अलेखी=अन्यायी। बारक=बार+एक, एकबार।

**भावार्थ**—हे कृपासागर! इसीलिए मै रात-दिन मन मारे रहता हूँ, कि हे महाराज! अपनी जाँघ उघाड़नेसे अपनी ही लाज जाती है, अपने हाथों अपना परदा खोलनेसे खुद ही बेशर्म बनना पड़ता है ॥ १ ॥ यह काम आदि साथी मिले भी रहते हैं और मारना भी चाहते हैं, ऐसे कपटी हैं! वह बिना मेरे रह भी नहीं सकते, अर्थात् जबतक मुझमे "जीवत्व" भाव है, तभीतक काम, क्रोध आदिका अस्तित्व है। और मेरी ही छल कर-कर छाती जलाते हैं। भाव यह कि, जिस पत्तलमे खाते हैं, उसीमें छेद करते हैं! ॥ २ ॥ यह जानकर, कि ये मेरे हृदयमे बसते है, प्रेमपूर्वक मैंने इन सबकी रुचि भी पूरी कर दी है, अर्थात् सब विषय भोग चुका हूँ, फिर भी इन दुष्टो और कुचालियोने मुझे कत्थककी लकड़ी बना रखा है (लकड़ीके इशारेसे जैसे नाच नचाते है, वैसा मुझे नाचना पड़ता है) ॥ ३ ॥ आजतक मैंने ऐसी पराधीनता न तो देखी है और न सुनी ही है। कर्म तो करते हैं सब आप और जो कुछ बुराई होती है, वह मेरे मत्थे मढ़ी जाती है। अर्थात् इन्द्रियाँ भोग-विलास करती हैं, और कुफल भोगना पड़ता है अनेक जन्मोंतक बेचारे जीवको! कैसा अन्याय है! ॥ ४ ॥ ये सब बड़े अन्यायी है! देखनेमें तो आते नहीं (अज्ञानके मारे इनकी चाल समझमे नहीं आती) और दीख भी पड़ें, तो छोड़नेको जी नहीं चाहता। हे प्रभो! इसी दुबिधामें पड़ा रहता हूँ। बस, अब हाथ पकड़कर मुझे निकाल लीजिए (नहीं तो, इस संसार-सागरमे डूबने ही वाला हूँ) ॥५॥ आपकी बलैया लेता हूँ, कृपाकर एक बार अपने इस दासका कौतुक तो देखिए। आपके देखते ही तुलसीका दुःख दूर हो जायगा, (क्योंकि ब्रह्म-दर्शन-मात्रसे जन्म-मरण छूट जाता है) ॥ ६ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) इस पदमें विषयोंका प्राबल्य दिखाया गया है। काम आदि विषय बड़े धोखेबाज हैं। इनके मनपर चलें तो निबाह नहीं, और इनसे अलग रहें तो भी निबाह नहीं। यह नाच नचाकर भी नहीं छोड़ते। जीवको, इनके अधीन होकर, नाना कष्ट भोगने पड़ते हैं। बड़ी विडम्बना है। कुछ कहा नहीं जाता। भगवत्-कृपासे ही इन सबोंसे पिंड छूट सकता है, अन्यथा नहीं।

( १४८ )

कहौ कौन मुँह लाइ कै रघुबीर गुसाईं।
सकुचत समुझत आपनी सब साइँ दुहाई॥ १॥
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं।
गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं॥ २॥
कृपासिन्धु बन्धु दीन के आरत-हितकारी।
प्रनत-पाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी॥ ३॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद-प्रीति सुधारी।
पाइ सुसाहिब राम सों, भरि पेट बिगारी॥ ४॥
नाथ गरीबनिवाज हैं, मैं गही न गरीबी।
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी॥ ५॥

**शब्दार्थ**—हौ हौं=मैं हूँ। धेई=ध्यान करके। कीबी=कीजिये।

**भावार्थ**—हे रघुबीर! हे प्रभो! क्या मुँह लगाकर आपसे कुछ कहूँ? स्वामी की सौगन्ध है, जब मैं अपने करतबको समझता हूँ, तब संकोचके मारे कुछ कह नहीं सकता॥ १॥ आप सेवा करनेसे वशमें हो जाते हैं, स्मरण करनेसे मित्र बन जाते हैं और शरणमें आनेसे सामने प्रकट हो जाते हैं। ऐसे जो आपके गुण-समूह हैं, उनपर मैं ध्यान नहीं देता, आप-जैसे स्वामीको भुलाये बैठा हूँ॥ २॥ आप कृपाके समुद्र हैं, दीनोंके बन्धु हैं, दुखियोंके हितू हैं, और शरणागतोंके पालनेवाले हैं, ऐसी आपकी विरदावली सुनकर और जानते हुए भी मैं भूल गया हूँ॥ ३॥ न तो सेवा ही की और न ध्यान ही। स्मरण करके आपके चरणोंमे प्रेम भी तो नहीं किया। आप-जैसे श्रेष्ठ स्वामीको पाकर भी मुझसे जितना हो सका उतना बिगाड़ किया। भाव, अपने हाथों अपने पैरपर कुल्हाड़ी मारी॥ ४॥ आप दीनोंपर कृपा करनेवाले हैं, पर मैंने

दीनता धारण नहीं की। भाव यह है, कि देहाभिमानके कारण मुझमें कभी दैन्य-भाव नहीं आया, सदा ऐंठ ही बनी रही। अब दीन-वत्सल भगवान् कृपा करें तो कैसे? इसलिए हे नाथ! अब अपनी ओर देखकर जो आपसे बन पड़े सो कीजिए। साराश यह, कि आप बिगड़ीके बनानेवाले हैं। सो मुझपर भी अवश्य कृपा करेंगे॥ ६॥

**टिप्पणी**—(१) 'मैं गही न गरीबी'—स्वर्गीय भट्टजीने इसका अर्थ यों लिखा है—

"(मैं ऐसा नीच हूँ कि) मुझे गरीबी भी नहीं ग्रहण करती।" यह अर्थ खींचातानी से किया गया जान पड़ता है। इसका सीधा-ज्योंका त्यों-भाव तो यही हो सकता है, कि मैंने गरीबी नहीं गही, न कि यह, कि मुझे गरीबी भी नहीं ग्रहण करती।

(२) 'कीबी'—यह प्रयोग बुन्देलखंडी प्रयोग 'करबी' से मिलता-जुलता है। कविवर बिहारीलालने भी 'कीबी' का प्रयोग किया है।

(१४९)

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, और ठार न मेरो*।
जनम गँवायो तेरेहि द्वार मैं किंकर तेरो†॥ १॥
मैं तो बिगारी, नाथ सों आरति के लीन्हें।
तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें॥ २॥
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन।
जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस-बिभूषन॥ ३॥
दई पीठ बिनु डीठ मै‡ तुम बिस्व-बिलोचन।
तो सों तुही न दूसरो नत-सोच-बिमोचन॥ ४॥
पराधीन देव! दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।
बोलनिहारे सों करै बलि बिनय कि झाईं॥ ५॥
आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो।
बड़ी ओट रामनाम की जेहि लई सो बाँचो॥ ६॥

* पाठान्तर 'मेरे'। † पाठान्तर 'द्वार किंकर तेरे'। ‡ पाठान्तर' हो।

रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**—किंकर=सेवक । आरति के लीन्हें=क्लेशित होने के कारण । दिन=नित्यसे तात्पर्य है । डीठ=दृष्टि । नत=प्रणत, विनीत । बाँचो=बच गया ।

**भावार्थ**—कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ! मुझे कोई और ठौर ही नहीं । तेरे ही दरवाजे पर ( पड़े-पड़े ) ज़िन्दगी काटी है, और तेरा ही गुलाम रहा हूँ । मतलब यह है, कि मै सब तरहसे तेरा ही हूँ, दूसरेका नही ॥ १ ॥ दुःखोंसे सताये जानेके कारण, हे नाथ ! मैं तो अपनी सारी करनी बिगाड़ चुका हूँ । अब हे कृपानिधे ! यदि तूने भी जैसेके लिए तैसा किया, तो फिर हो चुका ! भाव यह है, कि मुझसे तो सब बिगाड़ ही हुआ है; अब तेरे हाथ है, तू सुधार ले, क्योंकि तू दयाका समुद्र है ॥ २ ॥ हे रघुकुलमें श्रेष्ठ ! जबतक तूने ( इस जीवकी ओर ) नहीं देखा ( कृपा नहीं की ) तबतक नित्य ही खोटे दिन, नित्य ही बुरी दशा, नित्य ही दुःख और नित्य ही दोष लगते रहेगे ॥ ३ ॥ मै तुझे पीठ दिये फिरता हूँ, तुझसे विमुख हो रहा हूँ, क्योंकि मैं दृष्टिहीन हूँ, अन्धा हूँ, पर तू तो संसारमात्रका द्रष्टा है न ? भाव यह, कि तू मुझसे विमुख न हो, मुझे शरणमे ले ले । तुझ-सा तू ही है । दूसरा कौन है, जिससे तेरी उपमा दूँ ? दीन-दुखियोंके संकटको दूर करनेवाला एक तू ही है ॥ ४ ॥ हे देव ! मै परतंत्र हूँ दीन हूँ, पर तू तो स्वतन्त्र है, स्वामी है । बलिहारी ! क्या छाया बोलनेवालेसे विनय कर सकती है ? अर्थात् यह जड़ जीव चैतन्य विभुसे विनती नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ अतएव तू पहले अपनी ओर देख, तब मेरी ओर देख, तभी इस दासको सच्चा मानना । राम-नामकी ओट बड़ी भारी है । जिस किसीने भी रामनामका सहारा लिया, वह ( मृत्यु-भयसे ) बच गया ॥ ६ ॥ हे राम ! तेरी रहन-सहन सदा मेरे हृदयमे फूली नहीं समाती, तेरा शील-स्वभाव विचारकर मै मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा हूँ, कि अब मेरी सारी करनी बन जायगी । बस, यह तुलसी तेरा है, जिस तरह हो, उस तरह इसपर कृपा कर, जैसे बने तैसे, इसे अपना ले ॥ ७ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'कृपा'—श्रीभगवद्गुणदर्पणमें 'कृपा' का लक्षण निम्नलिखित पाया जाता है—

'रक्षणे सर्वभूतानामहमेषपरो विभुः ।
इति सामर्थ्य संधानं कृपा सा परमेश्वरी ॥'

( २ ) 'पराधीन······गोसाईं'—ब्रह्मजीव के संबंध में गोसाईंजीने, रामचरितमानसमें, स्पष्ट लिखा है—

'परबस जीव, स्वबस भगवंता । जीव अनेक, एक श्रीकंता ।।'

यहाँ, सांख्य तत्वका प्रतिपादन किया गया है, न कि अद्वैत वेदान्तका। इसपर उन्हें विचार करना चाहिए, जो गोसाईंजीको अद्वैतवादी या मायावादी कहनेका दुःसाहस करते हैं। पराधीन शब्दसे ब्रह्म एवं माया दोनोंका ही पराधीनत्व सिद्ध होता है।

( १५० )

रामभद्र ! मोहि आपनो सोच है अरु नाहीं ।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं ।। १ ।।
नातो बड़े समर्थ सों इक ओर किधौं हूँ ।
तोको मोसे अति घने मोको एकै तू * ।। २ ।।
बड़ी गलानि हिय हानि है सर्वग्य गुसाईं ।
कर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं ।। ३ ।।
भलो पोच राम को कहै मोहि सब नरनारी ।
बिगरे सेवक स्वान ज्यो साहिब-सिर गारी ।। ४ ।।
असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै ।
दीनबन्धु, कीजै सोइ बनि परै जो बूझै ।। ५ ।।
बिरुदावली बिलोकिये तिन्हमें कोउ हौं हौं ।
तुलसी प्रभु को परिहरयो सरनागत सो हौं ।। ६ ।।

**शब्दार्थ**—भद्र=कल्याण । भाजन=पात्र । पोच=नीच । गारी=गाली । असमंजस=दुविधा । बिरुद=बाना । सोहौं=सामने ।

**भावार्थ**—हे कल्याण-स्वरूप रामचन्द्रजी ! मुझे अपना सोच है भी और नहीं भी है। जितने जीव हैं वे सभी इस संसारमे दुःखके पात्र हैं, सभी दुखी हैं। साराश यह है, कि मुझे सोच तो इस बातका है, कि हाय ! मै ससार-सागरमे ही डुबा पड़ा हूँ, अभीतक मुक्त नहीं हूआ। और निश्चिन्त इसलिए हूँ, कि जब

* पाठान्तर 'मोको इक तोहूँ ।'

सभी जीवोंकी मेरी-जैसी दशा है, तो मुझे कर्मफल भोगनेमें कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥१॥ पर यह तो बताओ कि, क्या आप-जैसे बड़े समर्थसे सिर्फ एक ही ओरसे सम्बन्ध है ? क्या, जिस प्रकार मैं आपको अपना मानता हूँ, वैसे आप मुझे न मानेंगे ? एकाङ्गी प्रेम रखेंगे क्या ? (संभव है, क्योंकि, आपको तो मेरे-जैसे अनेक हैं, किन्तु मुझे एक आपही है । भाव यह है, कि आप चाहें तो मुझसे निरपेक्ष हो जायँ, पर मैं आपसे विमुख होनेका नहीं ॥ २ ॥ हे नाथ ! आप तो घट-घटकी जानते हैं, मुझे बड़ी ग्लानि हो रही है और हृदयमें इसे मैं हानि भी समझता हूँ कि हूँ तो मैं दुष्ट और बुरा सेवक, बेईमान नौकर, पर बातें ऐसी कर रहा हूँ जैसे कोई सच्चा सेवक करे । भाव यह है, कि मेरा यह पाखंड आपके आगे कैसे छिप सकता है, क्योंकि आपतो सर्वज्ञ हैं ॥ ३ ॥ भला हूँ या बुरा, पर कहते तो सब स्त्री-पुरुष मुझे रामका ही हैं ! सेवक और कुत्तेके बिगड़नेसे स्वामीके मत्थे गालियाँ पड़ती हैं । तात्पर्य यह है, कि यदि मैं खोटाई करूँगा, तो लोग यही कहेंगे कि बुरा हो उस रामका, जिसके ऐसे-ऐसे नीच सेवक हैं ॥४॥ मुझे वह उपाय भी नहीं सूझ रहा है, कि जिससे चित्तकी यह दुविधा दूर हो जाय, अर्थात् मेरी नीचता दूर हो जाय और आपको भी कोई भला बुरा न कहे । अब हे दीनबन्धु ! जो आपको समझ पड़े और जो बन सके, सो (मेरे साथ ) कीजिए ॥ ५ ॥ तनिक अपनी विरुदावलीकी ओर तो देखिए ! क्या मैं कहीं उसमे स्थान पा सकता हूँ ? ( भाव यह है, कि आप दीनबन्धु हैं, तो क्या मैं दीन नहीं हूँ. आप पतित पावन हैं, तो क्या मैं पतित नहीं हूँ, आप प्रणतपाल हैं, तो क्या मैं प्रणत नहीं हूँ ? इनमेंसे कुछ भी तो हूँगा ) बस उसी सम्बन्धसे आपको दबना पड़ेगा । यदि स्वामी इस तुलसीको छोड़ भी देंगे, तो भी यह उन्हींके सामने शरणमे जाकर पड़ा रहेगा, धरना दिये रहेगा ॥६॥

**टिप्पणी—(१) 'जीव······जगमाहीं'—क्योंकि जैसा कर्म करेंगे, वैसा फल भोगेंगे इसमें किसीका क्या चारा है ?**

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'

**(२) 'असमञ्जस'—यह दुविधा, कि मैं खोटा हूँ, अतः मालिक पर भी बट्टा लगता है, खरा हो नहीं सकता, क्योंकि स्वभावसे ही मुझमें खोटाई भरी है । यह भी चाहता हूँ, कि मैं चाहे जैसा बना रहूँ पर मेरे कारण मालिककी बदनामी न हो, सो भी नहीं हो सकता, दिन-रात इसी असमञ्जसमें पड़ा सोचा करता हूँ ।**

( ३ ) 'कीजै सोई''''बूझै'—यही बन पड़ेगा, कि अपने सेवकपर कृपा कर देंगे, क्योंकि यदि दंड देंगे, तो संसार हँसेगा और कहेगा, कि यह कैसे राम हैं, जो अपने सेवककी ऐसी दुर्दशा देख रहे हैं। इसमें भी बदनामीका डर है। इसलिए कृपा ही करते बनेगी।

( ४ ) 'तुलसी'''''' सो हौं'—क्योंकि—

'चुंबक के पीछे लग्यो फिरत अचेतन लोह ।।'

( १५१ )

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो ।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर-कर न बिकातो ॥ १ ॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो ।
बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥ २ ॥
जौ तू मन, मेरे कहे राम-नाम कमातो ।
सीतापति सनमुख* सुखी सब ठाँव समातो ॥ ३ ॥
राम सोहाते ताहिं जौ तू सबहिं सोहातो ।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥ ४ ॥
राम-नाम अनुरागही जिय जो रति आतो ।
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो ॥ ५ ॥
सेइ साधु सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो ।
जनम कोटिको काँदलो † हृद-हृदय, थिरातो ॥ ६ ॥
भव मग अगम अनन्त है, बिनु स्रमहि सिरातो ।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥ ७ ॥
अमर-अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो ।
होतो मंगल-मूल तू, अनुकूल बिधातो ॥ ८ ॥
जो मन, प्रीति-प्रतीति सों राम-नामहिं रातो ।
तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँताप न तातो ॥ ९ ॥

---

* पाठान्तर 'सम्मुख ।' † पाठान्तर 'कँदेलो ।'

**शब्दार्थ**—चेराई=सेवा । खेह=धूल । कारनी=कारण, प्रेरक । कुल = सब । कोहातो=गुस्सा करता । रति आतो=प्रीति करता । पिरातो=दुखी होता। काँदलो=मैल । ह्रद=तालाब । थिरातो=बैठ जाता,साफ हो जाता ? सिरातो= पार कर जाता, तय कर लेता । किरातो=किरात, भील । जाय=व्यर्थ । रातो= प्रेम करना । तातो=तचता, जलता ।

**भावार्थ**—अरे ! जो तू श्रीरामचन्द्रजीकी गुलामी करनेमे शर्म न खाता तो तू खरा दाम होकर, खोटे दामकी नाईं हाथो-हाथ न बिकता फिरता । भाव यह है, कि तू है तो परमात्माका अंश,पर अपने स्वरूपको भुला देने तथा मायाहीन होनेसे अनेक योनियोंसे टकराता फिरता है, कहीं तेरा आदर नहीं होता ॥१॥ यदि तू जीभसे श्रीरघुनाथजीका नाम जपनेमें आलस्य न करता, तो आज तुझे बाजीगरके सूमके समान धूल न फाँकनी पड़ती। अर्थात् जैसे बाजीगर जब उसे कोई कंजूस खेल देखनेपर भी कुछ नही देता, उसके नामसे काठके पुतलेके मुँहमे धूल डालकर गालियाँ सुनाता है, उसी प्रकार यदि तू भगवन्नाम-स्मरण करनेमे कजूसी न करता, खुले दिलसे दिन-रात नाम जपता, तो तुझे गालियाँ न खानी पड़तीं, धूल न फाँकनी पड़तीं, तेरी ऐसी दुर्दशा न होती ॥२॥ अरे मन ! यदि तू मेरे कहने से राम-नाम कमाना,राम-नाम-रूपी धन संग्रह करता तो श्रीजानकी-वल्लभ रघुनाथजीं तुझे अपनी शरणमे लेलेते, तू सुखी हो जाता और सर्वत्र तेरा आदर होता; लोक भी बन जाता और पर-लोक भी ॥ ३ ॥ जो तुझे श्रीरामजी अच्छे लगे होते, तो तू भी सबको अच्छा लगता; काल, कर्म आदि जितने ( इस जीवके ) प्रेरक हैं, वे सब फिर क्रोध न करते, सभी तेरे अनुकूल हो जाते ॥ ४ ॥ यदि श्रीराम-नामसे ही तू अपनी लगन लगाता, प्रेम करता, तो स्वार्थ और परमार्थ इन दोनोंके ही बटोही तुझ पर विश्वास करते । अर्थात् संसार और परलोक दोनों ही बन जाते ॥५॥ जो तू सतोंकी सेवा करता, एवं दूसरोंकी पीड़ा सुन-समझकर दुखी होता, तो तेरे हृदय-रूपी तालाबमे जो अनेक जन्मोंका जमा मैल है, वह नीचे बैठ जाता, तेरा अंतःकरण निर्मल हो जाता ॥६॥ संसारका मार्ग अगम्य है, इसपर चलना महान् दुष्कर है, किन्तु ( उपर्युक्त आचरण करता हुआ ) तू बिना ही श्रमके उसे पार कर जाता । क्योकि श्रीरामका उलटा नाम भी लेनेकी महिमाने किरात ( वाल्मीकि ) को मुनि बना दिया था । भाव यह है, कि जब उलटे नामका

यह प्रभाव है, तब सीधा नाम जपनेसे क्या न सिद्ध हो जायगा ? ॥७॥ अरे जड़ ! तेरा यह देवताओंको भी दुर्लभ ( मानव ) शरीर यों ही न चला जाता। तू कल्याणका मूल हो जाता । अर्थात् "ब्राह्मी" अवस्थाको पहुँच जाता, और दैव भी तुझपर कृपा करता ॥८॥ अरे मन ! यदि तू प्रेम और विश्वाससे राम-नाममे लौ लगा देता, तो तुलसी, श्रीराम-कृपासे, तीनो तापोमे न जलता, ससारी बाधाओंसे बच जाता ॥९॥

**टिप्पणी—( १ ) 'राम सोहाते······सोहातो'—क्योंकि—**

'जापर कृपा राम कै होई । तापर कृपा करहि सब कोई ॥'

**( २ ) 'अनुराग'—श्रीबैजनाथजीने अनुरागकी बड़ी ही सुन्दर परिभाषा लिखी है; देखिए—**

'व्यापकता जो प्रीति की, जिमि सुठि बसन सुरङ्ग ।
द्रगन-द्वार दरसै चटक, सो अनुराग अभग ॥'

**( ३ ) 'पर-पीरपिरातो'—भक्तवर नरसीजी भी वैष्णव-लक्षणमें कह गये हैं कि—**

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाणे, रे ।

**( ४ ) 'उलटे नाम'—रामचरितमानस में लिखा है—**

'उलटा नाम जपत जग जाना । बाल्मीकि भे ब्रह्म-समाना ॥'

**( ५ ) 'अनुकूल विधातो'—ब्रह्मा इसलिए प्रसन्न हो जाता, कि इस जीवके बनानेसे मेरा श्रम सफल हो गया, अब इसे बार-बार न बनाना पड़ेगा। जीवका ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाना ही चरम फल है ।**

**( ६ ) 'तिहुँ ताप'—दैहिक, भौतिक और दैविक ।**

**( ७ ) 'प्रीति'—श्रीभगवद्गुणदर्पणमें प्रीतिका निम्नलिखित लक्षण पाया जाता है—**

"अत्यन्तयोग्यताबुद्धिरनुकूलादिशालिनी ।
अपरिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात् प्रीतिरनुत्तमा ॥"

( १५२ )

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ।
जुग जुग जानकिनाथ को जग जागत साको ॥ १ ॥

ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधा को।
रबिकुल कैरव-चन्द भो आनन्द-सुधा को ॥ २ ॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥ ३ ॥
हरयो पाप आप जाइकै संताप सिला को।
सोच-मगन काढ़यो सही साहिब मिथिला को ॥ ४ ॥
रोष-रासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को ॥ ५ ॥
मुदित मानि आयसु चले बन मातु-पिता को।
धरम-धुरन्धर धीरधुर गुन-सील जिता को ॥ ६ ॥
गुह गरीब गतग्याति हू जेहि जिउ न भखा को।
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को ॥ ७ ॥
सदगति सबरी गिद्ध की सादर करता को।
सोच-सींव सुग्रीव के संकट-हरता को ॥ ८ ॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल-गहा को।
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥ ९ ॥
बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि-मन थाको ॥१०॥
गति न लहै राम-नाम सों बिधि सो सिरजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै वल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल को कथा सानन्द न भा को।
नाम लेत कलिकाल हू हरिपुरहिं न गा को ॥१२॥
राम-नाम-महिमा करै काम-भूरुह आको।
साखी बेद पुरान है तुलसी-तन ताको ॥१३॥

**शब्दार्थ**—जागत = प्रसिद्ध है। साको=यश। कौसिक = विश्वामित्र। गरत = गलते हैं। तिया=स्त्री, यहाँ ताड़कासे तात्पर्य है। सिला=यहाँ अहल्यासे तात्पर्य है। अहमिति='मैं' ऐसा, अहंकार। भाजन=पात्र। उपसम = शान्ति। गतग्याति=जिसकी जातिका पता नहीं, अत्यन्त नीच। काल-गहा =

कालका ग्रास, मरण प्राय। बालिस=मूढ़। अकनि=सुनकर। भा=हुआ। गा=गया। आको=अकौवा। तन = ओर।

**भावार्थ**—श्रीरामजीने अपने भले स्वभावसे किसका भला नहीं किया? भाव, सबका भला किया। युग-युगसे श्रीजानकी-रमणजीका यश संसारमें प्रसिद्ध है ॥१॥ ब्रह्मा आदि देवताओंने पृथ्वीका दुःख कहकर विनय की थी, सो (पृथ्वीका भार रहनेके लिए, राक्षसोंको मारनेके लिए) सूर्यवंशरूपी कुमोदनी को प्रफुल्लित करनेवाले एवं अमृतोपम आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए, अर्थात् अवतार लिया ॥ २ ॥ विश्वामित्र ताड़काका तेज देखकर ओलेकी नाईं गले जाते थे। प्रभुने ताड़काको मारकर, शत्रुको मित्रका-सा फल दिया एवं क्रोधके बदले कृपा की। भाव यह है, कि दुष्ट ताड़काको स्वर्ग भेजकर उस-पर कृपा की ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर पाषाणी (अहल्या) का पाप-संताप दूर कर दिया, उसे दिव्य देह देकर पति-लोक भेज दिया, फिर, मिथिलाके महाराज जनकको शोक सागरमेंसे डुबते हुए निकाल लिया, अर्थात् धनुष तोड़कर उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर दी ॥४॥ परशुराम क्रोधके भंडार एवं अहंकार और ममत्वके धनी थे, उन्हें भी आपने देखते ही शान्ति और समताका पात्र बना लिया। अर्थात् वह क्रोधीसे शान्त और अहंकारीसे समद्रष्टा हो गये। यह सब श्रीरामजीके शील-स्वभावहीका प्रभाव है ॥५॥ माता (कैकेयी) और पिताकी आज्ञा मानकर प्रसन्नचित्तसे वन चले गये। ऐसा, भला, धर्मधुरंधर और धैर्य-पुंगव तथा सद्गुण और शीलका जीतनेवाला दूसरा कौन है? कोई भी नहीं ॥६॥ जिसकी जातिका कोई ठिकाना नहीं, जिसने सब प्रकारके जीवोंका भक्षण किया, जो ग़रीब था ऐसे गुह निषादने भी (जिस रघुनाथजीसे) पवित्र प्रेमके कारण सखा-जैसा आदर प्राप्त किया ॥७॥ शबरी और गीध (जटायु)-को मोक्ष देनेवाला कौन है? और शोककी सीमा अर्थात् महान् दुखी सुग्रीवका संकट दूर करनेवाला कौन है? (वही रघुनाथजी) ॥८॥ ऐसा कौन कालका ग्रास था, जो (रावणसे बहिष्कृत) बिभीषणको अपनी शरणमें रखता, जिस रावणके राज्य में आज भी बिभीषण राजा बना बैठा है (यह सब कृपा रघुनाथजीकी ही है) ॥९॥ अयोध्याका रहनेवाला मूर्ख धोबी, जिसमे खाक-बराबर भी बुद्धि न थी, अथवा जिसे कोई धूलके बराबर भी नहीं समझता था, वह पापी भी वहाँ पहुँच गया, जहाँ पहुँचनेमें मुनियोंका मनतक थक जाता है। भाव यह है, जिस

परमधामके सम्बन्धमें बड़े-बड़े मुनि विचारतक नहीं कर सकते, वहाँ वह धोबी सदेह चला गया ॥१०॥ ब्रह्माने ऐसा कौन बनाया, जो राम-नामके प्रभावसे मुक्तिका भागी न हो ? भाव, जीवमात्र राम-नामसे मुक्त हो सकते हैं। पार्वती-वल्लभ शिवजी ( जिस ) राम-नामका स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरोंको सुना सुनाकर उसका प्रचार करते हैं ॥११॥ अजामेलकी कथा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं हुआ ? और राम नाम स्मरण कर, इस कलिकालमें कौन ऐसा है जो विष्णुलोक न गया हो ? ॥१२॥ राम-नामका महत्त्व अकौवाको भी कल्पवृक्ष कर सकता है। इस बातके प्रमाण वेद और पुराण हैं। (इसपर भी विश्वास न हो, तो ) तुलसीकी ओर देखो। भाव यह है, कि मैं महानीच था, पर राम-नामके प्रभावसे ही आज रामभक्तोंमे गिना जाता हूँ ॥ १३ ॥

**टिप्पणी—( १ ) इस पदमें गोसाईंजीने क्रमशः रामायणका सक्षिप्त वर्णन किया है। इस पदको यदि 'विनय-रामायण' कहें, तो असंगत न होगा विनयपत्रिकामे ऐसे अनेक अमूल्य पद-रत्न भरे पड़े है।**

**(२) 'गुह······ सखाको'—निषादको कितना महत्त्व प्राप्त हो गया था, इसे निम्नलिखित पदोंमे देखिए—**

'प्रेम-पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दण्ड-प्रनामू ॥
राम-सखा रिषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे ॥
रघुपति भक्ति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरषहिं फूला ॥
इहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥
जेहि लखि लषनहु ते अधिक, मिले महामुनि-राव।
सो सीतापति-मिलन को, प्रगट प्रताप प्रभाव ॥'

**( ३ ) 'शबरी'—१०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**( ४ ) 'गिद्ध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**( ५ ) 'आज······जहाँको'—स्वर्गीय भट्टजीने इसका यह अर्थ किया है—"कि आज ( जिस समय ) जहाँ ( लंका ) का राजा रावण विराजमान् था !" किन्तु इससे यह अर्थ अधिक उपयुक्त जँचता है, कि "जिस रावणके राज्यमें आज भी विभीषण राजा बना बैठा है।" यही अर्थ श्रीबैजनाथजीने भी लिखा है। वह यह है—"जहाँको राजा रावण हो ताको परिवार सहित मारि तहाँको राजा विभीषणको किये, सो अजहूँ बिराजत है, भाव, अचल राज्य दिये।"**

(६) 'खाको'—स्वर्गीय भट्टजीने इस शब्दका अर्थ यों किया है—खा=रज+क=रजक', विचित्र अर्थ है ! 'खाको' का साधारणतः खाकसे तात्पर्य है। यहाँ धोबीसे तात्पर्य अवश्य है, पर वह स्पष्टतः व्यक्त नहीं किया गया है। संभव है, गोसाईंजीने उस दुष्टका नाम अपने मुखसे न लिया हो, क्योंकि उन्होंने श्रीसीता-परित्यागपर कुछ लिखा नहीं है।

(७) 'सुमिरत…… गिरिजाको'—अध्यात्म रामायणमें शिवजीने कहा है–

'अहो ! भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षुमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम-नाम ॥'

( ८ ) 'अजामिल'—२७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( १५३ )

मेरे रावरिये गति रघुपति है बलि जाउँ ।
निलज नीच निगुन निर्धन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥ १ ॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ ।
बानर-बंधु बिभीषन-हितु बिनु, कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥ २ ॥
प्रनतारति-भंजन जन-रंजन, सरनागत पबि-पंजर नाउँ ।
कीजै दास दासतुलसी अब, कृपासिंधु, बिनु मोल बिकाउँ ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**—ठाऊँ = ठाम, स्थान। पबि-पंजर = बज्रका पिंजड़ा।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी ! बलिहारी, मुझे तो केवल आपकी ही शरण है, मेरी दौड़ आपही तक है। क्योकि निर्लज्ज, नीच, मूर्ख और गरीबके लिए संसारमें (आपको छोड़कर) न तो कोई स्वामी है, और न ठिकाना ही। वह किसका होकर रहे और कहाँ जाय ॥१॥ वैसे तो घर-घर बहुतसे अच्छे-अच्छे मालिक हैं, किन्तु उन सबोको अपना ही दाँव दिखता है, वे अपना ही स्वार्थ साधना चाहते है। मैं तो बन्दरो के मित्र और बिभीषणके हितू कोशलेश श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और कहीं भी शरण नहीं पा सकता, मेरी पूछ और किसी साहबके यहाँ न होगी ॥२॥ आपका नाम भक्तोंके दुःखोका नाश करनेवाला, सेवक जनोंको सुख देनेवाला और शरणागतोंके लिए बज्र-निर्मित पिंजड़ेके समान है, ( अमोघ कवच है )। बस, अब तुलसीदासको अपना दास बना लीजिए। हे कृपासागर ! अब मैं बिना ही मोलके ( आपके हाथमें ) बिकना चाहता हूँ। भाव यह है, कि आपका निष्काम सेवक बनना चाहता हूँ, मुझे अपना कोई स्वार्थ नहीं साधना है ॥३॥

टिप्पणी—(१) 'बानर-बन्धू'—सामान्यतः सारे बन्दरों तथा विशेषतः सुग्रीवसे तात्पर्य है।

(२) 'पबि-पंजर'—महर्षि विश्वामित्रजीने 'वज्रपञ्जर' नामका एक कवच बनाया है। उसे राम-रक्षा स्तोत्र भी कहते हैं। उसकी फल-श्रुति इसका प्रमाण है—

'वज्रपंजर नामेदं यो राम-कवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमंगलम्॥'

( १५४ )

देव, दूसरो कौन दीन को दयालु।
सीलनिधान सुजान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय प्रनत-पालु॥१॥
को समरथ सर्बग्य सकल प्रभु, सिव-सनेह-मानस-मरालु।
को साहिब किये मीत प्रीतिबस खग निसिचर कपि भील भालु॥२॥
नाथ, हाथ माया-प्रपञ्च सब, जीव-दोष-गुन-करम-कालु।
तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजिय निहालु॥३॥

भावार्थ—हे देव! (आपको छोड़कर) दीनोंपर दया करनेवाला दूसरा और कौन है? आप ही एक शीलके स्थान, ज्ञानियोंमे श्रेष्ठ, शरणागतोंके प्यारे और भक्तोंके पालनेवाले हैं॥ १॥ कौन आपके समान सर्वशक्तिमान् है? हे नाथ! आप सब जाननेवाले हैं, सबके स्वामी हैं और शिवजीके प्रेम-रूपी मान-सरोवरमें (विहार करनेवाले) हंस हैं, सदैव शिवजीके प्रेमाधीन होकर उनके हृदयमें वास करते हैं। किस मालिकने प्रेमवश पक्षी (जटायु), राक्षस (विभीषण), बन्दर, भील (निषाद) और भालुओंको अपना मित्र बनाया है? भाव यह है, कि ऐसे एक श्रीरघुनाथजी ही हैं, दूसरा नहीं॥२॥ हे नाथ! आपके हाथ मायाका सारा प्रपंच एवं जीवोंके दोष, गुण, कर्म और काल हैं। यह तुलसीदास, भला हो वा बुरा, आपका ही है। तनिक इसकी ओर देखकर इसे निहाल कर दीजिए॥३॥

टिप्पणी—(१) 'शील'—श्रीभगवद्गुणदर्पणमें शीलका लक्षण यह लिखा है—

'हीनैर्दीनैर्मलीनैश्च वीभत्सैः कुत्सितैरपि।
महतोऽच्छिद्रसंश्लेषं सौशील्यं विदुरीश्वराः॥'

श्रीबैजनाथजीने इसका अनुवाद यह किया है—

'हीनरु दीन मलीन खल, घिन आवै जिहि देखि ।
सबनि आदरै मान दै, गुन सौशील्य बिसेखि ॥'

( २ ) 'प्रपंच'—प्रपंच दो प्रकारसे व्यक्त किया जा सकता है—

१. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पाँचों तत्त्वोंकी सृष्टि। पाँच-भौतिक प्रकृति ।

२. अविद्या, विद्या, संधिनी, संदीपिनी और आह्लादिनी यही पंचधा माया है ।

( ३ ) 'खग'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।

( ४ ) 'भील'—वाल्मीकि और निषाद; १४ पदकी चौथी एवं १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।

## राग सारंग

( १५५ )

बिस्वास एक राम-नाम को ।

मानत नहिं परतीति अनत ऐसोई सुभाव मन बाम को ॥१॥
पढ़िबो परयो न छठी, छ मत रिगु जजुर अथर्वन साम को ।
ब्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करै तन छाम को ॥२॥
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
ग्यान बिराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ॥३॥
सब दिन सब लायक भव*गायक रघुनायक गुन-ग्राम को ।
बैठे नाम-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ॥४॥
को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को ।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥५॥

**शब्दार्थ**—अनत=अन्यत्र, और कहीं। छठी न परयो=भाग्यमें नहीं लिखा। छ मत=छः शास्त्र अर्थात् वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा ( वेदान्त )। रिग=ऋग्वेद । जजुर=यजुर्वेद । सहमत=डरता है । छाम=क्षीण, दुर्बल । कोह=क्रोध । तर=तले, नीचे । परधाम=ब्रह्मलोक ।

* पाठान्तर 'गुन' 'भयो' ।

**भावार्थ**—मुझे एक राम-नामका ही विश्वास है। मेरे कुटिल मनकी कुछ ऐसी प्रकृति है, कि वह और कहीं प्रतीति ही नहीं करता ( चाहे कोई कितना ही लोभ क्यों न दिखाये) ॥१॥ छः शास्त्रोंके सिद्धान्तों तथा ऋक्, यजु, अथर्वण और साम वेदोका पढ़ना मेरे भाग्यहीमे नहीं लिखा गया है (मुझे काला अक्षर भैंस-बराबर है, अब रहे और उपाय, सो ) व्रत, तीर्थ, तप आदि सुनकर मन डर रहा है। कौन (इन साधनोंमे) पच-पचकर मरे, या शरीरको क्षीण करे ॥२॥ कर्म्म-काण्ड कलियुगमे कठिन है, और वह द्रव्याधीन भी है। भाव यह है, कि एक तो पासमे पैसा नहीं, कि जिससे यज्ञ आदि किया जाय, दूसरे कलियुगमे अनेक विघ्न-बाधाएँ हैं, जिनके मारे कभी पूरा नहीं पड़ सकता। और ज्ञान, वैराग्य, योग, जप और तपमे लोभ, अज्ञान, क्रोध और कामका भय लगा है (इनके मारे वे भी सधनेके नहीं) ॥३॥ इस संसारमें श्रीरघुनाथजी की गुणावली गानेवाले ही सदा सब प्रकारसे योग्य हैं। भाव, हरिकीर्त्तन करनेवाले ही सर्वगुण सम्पन्न हैं, उन्हे कोई विघ्न-बाधा नहीं सताती। जो रामनाम-रूपी कल्पवृक्षकी छायामे बैठे हैं, उन्हे घन-घोर घटा अथवा तेज धूपका क्या डर है? तात्पर्य यह है, कि उन्हें न तो संसारी विपत्तियाँ ही सता सकती है और न पाप सन्ताप ही, क्योंकि उनकी सारी मनस्कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥ ४ ॥ कौन जानता है, कि कौन नरक जायगा, कौन स्वर्ग जायगा और कौन ब्रह्म-लोक जायगा? तुलसीदासको तो इस संसारमे रामजीका गुलाम होकर जीना ही बहुत अच्छा लगता है ॥५॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'छ मत'—छः शास्त्रोंके सिद्धान्त; प्रत्येक सिद्धान्तके प्रतिपादक महर्षियोंके नाम ये हैं—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. वैशेषिकके प्रतिपादक | | कणाद हैं। | यह मत परमाणु प्रधान है। |
| २. न्याय ,, | ,, | गौतम हैं। | ,, ,, द्रव्य-प्रधान है। |
| ३. सांख्य ,, | ,, | कपिल हैं। | ,, ,, पुरुष-प्रकृति-प्रधान है। |
| ४. योग ,, | ,, | पतंजलि हैं। | ,, ,, ईश्वर-प्रधान है। |
| ५. पूर्वमीमांसा | ,, | जैमिनी हैं। | ,, ,, कर्म-प्रधान है। |
| ६. उत्तरमीमांसा | ,, | व्यास हैं। | ,, ,, ब्रह्म-प्रधान है। |

(२) 'भव गायक'—स्वर्गीय भट्टजीने इसको समस्त पद मानकर इसका यह अर्थ किया है—"और शिवजी भी जिसे गाते हैं।" श्रीबैजनाथजी यों लिख रहे

हैं—रघुनायक के कृपा, दया आदि जो समूह कल्याण गुण हैं तिनको ग्राम रामायणादि कथा ताको गायक होना।'' यहाँ, 'भव' का अर्थ शिवजी युक्ति-संगत नहीं समझ पड़ता। बैजनाथजी भी स्पष्टतया नहीं लिख रहे हैं। मेरी सम्मतिमें, 'भव' का अर्थ संसार ही होना चाहिए। अर्थात्, 'भव (में) रघुनायक-गुन-ग्रामको गायक सब दिन सब लायक' यह अन्वय मान लेनेसे सब झंझट दूर हो जाती है। 'भव' के स्थानपर किसी किसी प्रतिमें 'गुन-गायक' पाठ पाया जाता है। किन्तु आगे 'गुन-ग्राम' आ जानेसे इस पाठमें शैथिल्य आनेकी संभावना है। 'भव' पाठ ही अधिक उपयुक्त जँचता है। नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रतिमें 'भयो' पाठ पाया जाता है। ऐसा पाठ मान लेनेसे उसके सम्पादकगण इन सब आपत्तियोंसे बेलाग बच गये हैं।

(३) 'तुलसिहिं ...... गुलाम को'—यहाँ गोसाईंजी 'हरिमय जगत्' को वैकुण्ठ आदिसे भी बढ़कर समझ रहे हैं। संसारका महत्व इस युक्तिसे स्पष्ट हो जाता है। उनके लिए 'रामगुलाम' का जीवन स्वर्गीय जीवनसे अधिक महत्वका है। अहमद भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

'कहा करौं बैकुंठ लै, कलपबृच्छ की छाँह।
'अहमद' ढाक सराहिए, जो प्रीतम-गल-बाँह॥'

( १५६ )

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घाम को॥१॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम को।
कहत मुनीस महेश महातम, उलटे सूधे नाम को॥२॥
भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को॥३॥

**शब्दार्थ**—दुकाल=दुर्भिक्ष, अकाल। दाहिनो=अनुकूल। बाम प्रीतिकूल। मुनीस=वाल्मीकीसे तात्पर्य है। ललित ललाम=यह दोनों ही शब्द सुन्दरके बोधक हैं, सुन्दरसे भी सुन्दर। कूच=मृत्यु।

**भावार्थ**—कलियुगमें श्रीराम-नाम कल्पवृक्ष है। वह दारिद्रय, दुर्भिक्ष, दुःख, दोष और सांसारिक घनघटा (विपत्तियों) तथा कड़ी धुप (ताप-संताप)

का नाश करनेवाला है; अथवा संसारी कड़ी धूपसे बचानेके लिए मेघरूप है ॥१॥ रामनाम लेते ही प्रतिकूल विधाताका प्रतिकूल मन अनुकूल हो जाता है, रूठा हुआ दैव भी प्रसन्न हो जाता है । मुनीश्वर वाल्मीकिने उलटे अर्थात् 'मरा मरा' नामकी महिमा गाई है । और शिवजीने सीधे रामनामका महात्म्य बताया है । तात्पर्य यह है, कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि बहेलियासे ब्रह्मर्षि हो गये और शिवजी सीधा नाम जपनेसे हलाहल विषका पान कर गये तथा स्वयं भगवत्स्वरूप माने गये ॥ २ ॥ जिसे इस सुन्दरसे भी सुन्दर राम-नामका बल-भरोसा है, उसके लोक और परलोक दोनो ही बने बनाये हैं, दोनों ही हाथ लड्डु है । हे तुलसी ! रामनामसे इस ससारमें न तो मौतहीका सोच जाना जाता है और न गर्भवासहीका, आवा गमन दोनोंही हँसी-खेल हो जाते हैं ॥ ३ ॥

**टिप्पणी—( १ ) कलियुगमें केवल रामनाम ही मुख्य साधन है, इसे लक्ष्यमें रखते हुए गोसाईंजी, रामचरितमानसमे, लिखते हैं—**

'कलिजुग जोग जज्ञ नहिं ज्ञाना । एक अधार राम-गुन-गाना ॥
सब भरोस तजि जो भजु रामहिं । प्रेम समेत गाव गुन-ग्रामहिं ॥
सो भव तरु कछु सशय नाही । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥'

**( २ ) 'मुनीस'—बाल्मीकि; १४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।**

**( ३ ) 'सोच न कूच मुकाम को'—राम-नामके प्रभावसे यह जीव जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है, निर्वाण प्राप्त कर लेता है । पद्मपुराणमें लिखा है—**

'सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम् ।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥'

( १५७ )

सेइये सुसाहिब राम सो ।
सुखद सुसील सुजान सूर सुचि, सुन्दर कोटिक काम सो ॥१॥
सारद सेस साधु महिमा कहै, गुनगन-गायक साम सो ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति, चाहत चन्द्र-ललाम सो ॥ ॥
गमन बिदेस न लेस कलेस को, सकुचत सकृत प्रनाम सो ।
साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो है अबिचल धाम सो ॥३॥

टहल-सहज जन महल-महल, जागत चारो जुग जाम सो ।
देखत दोष न खीझत, रीझत सुनि सेवक गुन-ग्राम सो ।।४।।
जाके भजे तिलोक-तिलक भये, त्रिजग जोनि तनु तामसो ।
तुलसी ऐसे प्रभुहिं भजै जो न ताहि बिधाता बाम सो ।।५।।

**शब्दार्थ**—साम=साम वेद । चन्द्रललाम=चन्द्रमा ही जिनका भूषण है, अर्थात् शिवजी । सकृत=एकबार । टहल=सेवा । ग्राम=समूह । त्रिजग=तिर्यक्, पशु-पक्षी । तामसो= तमोगुणी । बाम=प्रतिकूल ।

**भावार्थ**—श्रीराम-जैसे सुन्दर स्वामीकी सेवा करनी चाहिए । वह सुख देनेवाले, सुशील, चतुर, वीर, पुण्यश्लोक और करोड़ों कामदेवोंके समान सुंदर है ।।१।। उनकी महिमाका बखान सरस्वती, शेषनाग और सन्तजन करते हैं । उनकी गुणावलीके गानेवाले सामवेद-सरीखे है । जिनका नाम प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए शिवजी सरीखे (महादेव) भी उनसे लगन लगाना चाहते हैं ।।२।। उन्हे विदेश अर्थात् वन जाते समय तनिक भी दुःख न हुआ । भाव यह है, कि वह ऐसे एकरस, सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं कि उन्हें वन जाते हुए कुछ भी कष्ट नहीं हुआ । उन्हें यदि कोई एकबार भी प्रणाम कर लेता है, तो वे संकोच के मारे दब जाते है (ऐसे शीलवान् है), इसका साक्षी विभीषण प्रसिद्ध है, कि जो आज भी (लंकामे) अटल राज्य कर रहा है ।।३।। उनकी चाकरी बड़ी सहल है ( चूक भी पड़ जाय, तो माफ़ कर देते है); वह अपने भक्तोंके घट-घटमे, चारों युगसे (रात्रिके अथवा अविद्यारूपी रात्रिके) चारों पहर, जागते रहते हैं । भाव, मोह या संकटके समय उनके हृदयमें बैठकर चौकसी किया करते हैं, रखवाली करते हैं । अपराध देखते हुए भी सेवकपर क्रोध नहीं करते । और जब अपने सेवककी गुणावली सुनते है, तब उसपर निहाल हो जाते है ।।४।। उन्हे भजनेसे, उनकी उपासना करनेसे, पशु-पक्षी एव तामसी शरीर-वाले ( राक्षस ) भी त्रिलोक-शिरोमणि माने गये । हे तुलसी ! ऐसे (सुशील, सुन्दर, जनवत्सल, पतितपावन एव शरण्य ) प्रभुको जो नहीं भजते उनपर विधाता ही प्रतिकूल है, यही समझना चाहिये ।।५।।

**टिप्पणी**—( १ ) 'गमन⋯कलेसको'— श्रीरघुनाथजीको इस एकरस-भावपर गोसाईंजीने, रामचरितमानसमें लिखा है—

'पितु-आयसु भूषन-बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे बल्कलचीर ॥'
'मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब बिधि किय परितोषू ॥'

(२) 'जन महल...... नाम सो'—गीतामें भी यही प्रतिज्ञा है—
'अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'

(३) 'त्रिजग जानि तनु तामसो'—जटायु, बन्दर, रीछ और विभीषणसे तात्पर्य है।

राग नट

( १५९ )

कैसे देउँ नाथहि खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि ॥ २ ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥ ३ ॥
करौं जो कछु धरौं सचिपचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि, दंभ लेत अँजोरि ॥ ४ ॥
लोभ मनहि नचाव कपि ज्यों, गरे आसा-डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥ ५ ॥
एतेहूँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—खोरि=दोष। सचि-पचि=यत्नपूर्वक रखकर, सेंत-सेंतकर। सिला=खेतमे पड़े हुए अनाजके कण। अँजोरि लेत=खोजकर छीन लेता है। अँचई=पी गया। घोरि=घोलकर।

**भावार्थ**—मै अपने स्वामीको कैसे दोष देता हूँ! हे हरे! तुम्हारी भक्तिको छोड़कर मेरा मन काममे फँसा हुआ इधर-उधर घूमता रहता है ( कभी क्षणभर भी निश्चल होकर तुम्हारा ध्यान नहीं करता ) ॥ १ ॥ अपने पुजानेमे तो मेरा बड़ा प्रेम है, सदा यही चाहता रहता हूँ, कि लोग मुझे सन्त-महन्त मानकर मेरी

प्रतिष्ठा करें; किन्तु तुम्हें पूजनेमे बहुत ही कम श्रद्धा है। दूसरोको तो उपदेश करता हूँ ( यह चाहता हूँ, कि लोग मेरे उपदेशपर चले ) पर स्वय किसीकी शिक्षा नही मानता—ऐसी मेरी मूर्खता है ॥ २ ॥ जिन-जिन पापोको मैने बड़े ही चावसे किया है, उन्हें तो हृदयमे छिपाकर रख लिया, पर कभी किसी सत्संग-में पड़कर मुझसे जो अच्छे काम बन गये है, उन्हे मै सारे ससारको निहोरा कर-कर सुनाता फिरता हूँ। भाव यह, कि मुझे सदा यही पडी रहती है, कि दुनियाँ मुझे महात्मा समझे ॥ ३ ॥ कभी जो-कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेतमे पड़े हुए अन्नके दानोकी तरह बटोर बटोरकर रखलेता हूँ, किन्तु हृदयमे जबरदस्ती पैठकर पाखड उसे भी खोज-खोजकर बाहर निकाल फेकता है। भाव यह है, कि पाखड सारे किये हुएको मिट्टीमे मिला देता है ॥ ४ ॥ लोभ मेरे मनको आशारूपी रस्सीसे इस तरह नचा रहा है, जैसे कोई बदरके गलेमे डोरी बाँधकर उसे मनमाना नचावे। ( और इसी लोभके वश हो ) मै वैराग्य और तत्त्वकी बातें, बड़े बड़े पंडितोकी नाईं, मारा करता हूँ ॥ ५ ॥ इतना सब ( पाखण्ड) होनेपर भी तुम्हारा ( दास ) कहाता हूँ। जो लाज थी, उसे भी घोलकर मानों पी गया हूँ। भाव, अब बेशर्म होकर जो चाहे सो किया करता हूँ। हे रघुनाथजी! ( और तो मेरे पास कुछ रहा नहीं ) बस, इस निर्लज्जतापर ही रीझकर, मेरा बंधन काट दो, मुझे ससार-जालसे मुक्त कर दो ॥ ६ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'दंभ'—दंभ वा पाखंड असत्यका रूपान्तर है। और असत्यके समान कोई दूसरा पाप नही। अतएव धर्मका घातक जैसा-कुछ दंभ है, वैसा दूसरा कुकर्म नही।**

( १५९ )

है प्रभु मेरोई सब दोसु।

सीलसिंधु, कृपालु, नाथ अनाथ, आरत-पोसु ॥१॥
बेप बचन बिराग मन अघ अवगुननि को कोसु।
राम, प्रीति-प्रतीति पोली, कपट-करतब ठोसु ॥२॥
राग-रङ्ग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥३॥

संभु-सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।
दंभहू कलि नाम कुम्भज सोच-सागर सोसु ॥४॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।
रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहूँ परम संतोसु ॥५॥

**शब्दार्थ**—कोसु=(कोष) खजाना । केहरि=सिंह । रसन=रसना, जीभ । घोसु=(घोष, शब्द) उच्चारण कर । कुम्भज=अगस्त्य ऋषि । सोसु=सोख ले । निरजोसु=निश्चय ।

**भावार्थ**—हे प्रभो ! सब मेरा ही दोष है । आपतो शीलके समुद्र, कृपालु, अनाथोंके नाथ और दीन-दुखियोंके पालने पोसनेवाले है ॥१॥ मेरे भेष और बचनोंमे तो वैराग्य झलक रहा है, किन्तु मन पापों और अवगुणोंका खजाना है । हे रामजी ! आपकी भक्ति और श्रद्धाके लिए मेरा मन खोखला है अर्थात् उसमे तनिक भी भक्ति और प्रतीति नहीं है; किन्तु छल-कपटके कामोके लिए ठोस है, कपट ही-कपट भरा है ॥२॥ जैसे खरगोश सियारकी सेवा करके सिंह-की कीर्ति चाहता है, वैसे हो मैं कुसंगतिसे तो प्रेम करता हूँ, आनन्द मनाता हूँ, और साधुओंके संगसे रूठा रहता हूँ । भाव यह है, कि जैसे खरगोश गीदड़-के बूते पर सिंहका-सा यशोलाभ करना चाहता है, गजेन्द्रके पछाड़नेकी बहादुरी दिखाना चाहता है, पर यह सब कैसे हो सकता है ? सियार तो उसे भक्षण करनेवाला है । यश दूर रहा, उसे प्राणोसे हाथ धोने पड़ेंगे । इसी प्रकार जो कुसंगमे पड़कर कीर्ति कमाना चाहता है, सो कीर्तिके बदले उसे अपकीर्ति ही मिलेगी और भी बदनाम हो जायगा ॥३॥ शिवजीका उपदेश यही है, कि "नित्य जीभसे रामनामका उच्चारण कर" । कलियुगमे पाखण्डसे भी लिया हुआ रामनाम, अगस्त्यकी तरह दुःख-सागरको सोख लेता है ( प्रायः ऊपरी तौरसे रामनाम रटनेपर लोग यह आक्षेप किया करते हैं, कि अन्तःकरण तो शुद्ध नहीं, ऊपरसे, पाखडसे, "रामनाम" जपनेसे क्या होता है ? इसपर यह कहा गया है, कि पाखडसे रटा हुआ नाम भी लोक-परलोक दोनोकी चिंताओको दूर कर देता है ) ॥४॥ वह (नाम) आनन्द और कल्याणकी जड़ है, कारणका भी कारण है । यह मेरा निश्चय है, कि अपने लिए एक रामनाम ही अत्यन्त अनुकूल है । रामनामका ऐसा प्रभाव सुनकर तुलसीको भी बड़ा सन्तोष है ( इसलिए, कि मेरा भी उद्धार हो जायगा ) ॥५॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'रसन हू नित राम-नामहिं घोसु'—भक्तवर प्रह्लादने भी रामनामका ऐसा ही माहात्म्य कहा है। सुनिए—

'रामनाम-जपता कुतो भय सर्वतापशमनैक भेषजम्।
पश्य तात मम गात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥'

( २ ) 'दम्भहू ......सोसु'—रामनाम किसी तरह भी जपा जाय, मंगलकारी है। रामचरितमानसमें भी लिखा है—

'भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मगल दिसि दसहूँ ॥'

( ३ ) 'निरजोसु'—श्रीबैजनाथजीने इस शब्दका अर्थ यों लिखा है—"निरयोसु जोख तौल-रहित, अतुल।"

( १६० )

मै हरि, पतित-पावन सुने।
मै * पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने ॥१॥
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक जमपुर मने।
दासतुलसी सरन आयो, राखिये आपने ॥३॥

**शब्दार्थ**—बानक=बानावाले, व्यापारी। भने=कहे हैं।

**भावार्थ**—हे हरे! मैंने तुम्हें पापियोको पवित्र करनेवाला सुना है। सो मैं तो पापी हूँ और तुम हो पापियोका उद्धार करनेवाले; बस, दानोके बाने बन गये, दोनोंका मेल मिल गया। भाव यह, कि मुझे पतित-पावनकी जरूरत थी और तुम्हें पतित की। मेरी भी कामना पूरी हो गयी और तुम्हारी भी ॥१॥ वेद साक्षी भर रहे हैं, कि तुमने व्याध ( वाल्मीकि ), गणिका ( पिंगला वेश्या ), गजेन्द्र और अजामेलको ससार-सागरसे पार कर दिया है, (इतनाही नहीं) तुमने और भी अनेक नीचोको तारा है। उनकी गिनती किससे हो सकती है? ॥२॥ जिन्होने जानकर या बिना जाने तुम्हारा नाम-स्मरण किया है, उन्हे नरक और

* पाठान्तर 'हम, हौं।'

यमपुर जानेकी मनाई कर दी गयी है ( ये सीधे वैकुंठ चले गये हैं। यह सब समझ बूझकर) तुलसी भी तुम्हारी शरणमें आया है। इसे भी अपना लो ॥३॥

**टिप्पणी—( १ ) 'मैं पतित...... बने'—एक और भक्तने, निम्न-लिखित कवित्तमे, स्वामी-सेवकके, इसी भावको सामने रखकर, क्या ही जोड़ी मिलाई है—**

'मैं तौ हूँ पतित, आप पावन पतितनाथ,
पावनपतित हौ तौ पातक हरोईगे।
मैं तौ महादीन आप दीनबधु दीनानाथ,
दीनबन्धु हौ तौ दया जीय मे धरोईगे।
मैं तौ हूँ गरीब आप तारक गरीबन के,
तारक गरीब हौ तौ बिरद बरोईगे।
मेरी करनी पै कछु मुकर न काज कान्ह,
करुना-निधान हौ तौ करुना करोईगे॥'

**( २ ) 'व्याध'—वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।**
**( ३ ) 'गनिका'—पिंगला, ६४ पद की दूसरी टिप्पणी देखिए।**
**( ४ ) 'गज'—६३ पदकी टिप्पणी देखिए।**
**( ५ ) 'अजामेल'—५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।**

## राग मलार

### ( १६१ )

तो सों प्रभु जो पै कहुँ कोउ होतो।
तौ सहि निपट निरादर निसिदिन, रटि लटि ऐसो घटि को तो ॥१॥
कृपा-सुधा-जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो।
स्वाति-सनेह-सलिल-सुख चाहत चित-चातक को पोतो ॥२॥
काल-करम-बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥३॥
जितो दुराव दासतुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दशरथ के, लयो बयो बिनु जोतो ॥४॥

**शब्दार्थ**—लटि=दुबला होकर। तो=था। निसोतो=सच्चा, असल, निराला। पोतो=बच्चा। भो=हुआ। दुराव=छल-कपट। ओतो=उतना।

**भावार्थ**—यदि तेरे जैसा कहीं कोई दूसरा मालिक होता, तो भला ऐसा कौन क्षुद्र था, जो बड़ा भारी अपमान सहकर एव दिन-रात तेरा नाम रट-रटकर दुर्बल होता? तात्पर्य यह है, कि तेरे सिवा और कोई कही समर्थ नहीं है। सब जगह भटककर ही तेरे द्वारपर धरना दिया है॥ १॥ जो मै तुझसे कृपारूपी अमृतजल माँग रहा हूँ, वह सचमुच ही निराला है। मेरा चित्तरूपी चातकका बच्चा प्रेमरूपी स्वातिनक्षत्रका आनन्दरूपी जल चाहता है। भाव, तेरे प्रेमानन्दके लिए मेरा चित्त तड़प रहा है, उसे पलभर भी कल नहीं पड़ता; बच्चा ही है, धीरज कैसे बँध सकता है॥ २। काल अथवा कर्मके कारण यदि कभी कभी मनमे कोई बुरी वासना आ भी जाती है, ( उस प्रेमानन्दसे चित्त हटने लगता है ) तो वह ऐसा ही है, जैसे मछली सुखसे जलमे रहती हुई कभी-कभी उछलकर फिर उसीमे घबराकर गोता लगा जाती है। साराश, उसे जैसे क्षण भरका भी जल-वियोग सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त-चातक तेरे प्रेमजलसे अलग होनेपर घबरा जाता है, और फिर उसीके लिए चेष्टा करता है॥ ३॥ जितना छल-कपट तुलसी-दासके हृदयमे है, उतना किस प्रकार कहा जा सकता है? ( पर इतना विश्वास है कि ) हे दशरथ-दुलारे! तेरे राज्यमे लोगोने बिना ही जोते-बोये पाया है। भाव यह, कि बिना ही सत्कर्म किये अनेक पापियोंने मोक्ष-लाभ किया है। मेरी भी, उसी प्रकार, बन जायगी, यही विश्वास है॥ ४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'स्वाति·······पोतो'—चातकका प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है उसकी अनन्यता अनुकरणीय है। देखिए, गोपियाँ क्या कह रही हैं।**

'बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारो।
बासर-रैनि नाम लै बोलत, भयो बिरह-ज्वर कारो॥
आप दुखित पर दुखित जानि जिय, चातक नाम तुम्हारो।
देखो, सकल बिचारि सखी जिय, बिछुरन कौ दुख न्यारो॥
जाहि लगै, सोई पै जानै, प्रेमबान अनियारो।
'सूरदास' प्रभु स्वाति-बूँद लगि, तज्यो सिंधु करि खारो॥' (सूरसागर)

( २ ) 'ज्यों······गोतो'—फिर बेचारी मछली जाय कहाँ ? उसके लिए तो एक जल ही सर्वस्व है । सूरदासजी भी कुछ ऐसा ही कह रहे है—

'मेरो मन अनत कहाँ सचुपावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पछी, पुनि जहाज पै आवै ॥'—इत्यादि ।

राग सोरठ

( १६२ )

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥ १ ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानि ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥ २ ॥
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ॥ ३ ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—द्रवै=कृपा करे ।

**भावार्थ**—संसारमे ऐसा और कौन उदार हृदय है, जो विना ही सेवा किये दीन-जनोंको निहाल कर देता हो ? ऐसे एक श्रीरामचन्द्र ही हैं, उनके समान दूसरा कोई नहीं ॥ १ ॥ जिस गतिको, जिस मुक्तिको, बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी मुनि भी, योग, वैराग्य आदि अनेक साधन कर-कर भी नहीं पाते उसे प्रभु रघुनाथजी गीध और शबरी तकको दे देते हैं, और उसे देनेपर अपने जीमे कुछ बहुत नहीं समझने, थोड़ा ही लेखते हैं ॥ २ ॥ रावणने शिवजीको अपने दसो सिर चढ़ाकर उनसे जो संपत्ति प्राप्त की थी, वह संपत्ति रघुनाथजीने बड़े ही संकोचके साथ विभीषणको दी (संकोच इसलिए हुआ, कि हमने इसे कुछ भी नहीं दिया, लंकाका राज्य तो इसका खान्दानी ही है, यह उसका उत्तराधिकारी कभी-न कभी होता ही) ॥३॥ तुलसीदास कहते हैं, कि अरे मेरे मन, जो तू सब तरहसे सब सुख चाहता है, तो श्रीरामजीका भजन कर । कृपा-सागर प्रभु तेरी सारी मनस्कामनाएँ पूरी कर देंगे, तेरे सब मनोरथ सफल हो जायँगे ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'उदार'-श्रीभगवद्गुणदर्पणमें उदारताका लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात् ।
वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्यवचसा हरे ॥'

( २ ) 'बिनु सेवा… … पर'—बिना किसी बदलेके जो कृपा की जाती है, वही सच्ची कृपा है, वही सच्चा प्रेम है। बदलेके लिए जो किया जाता है, वह कृपा नहीं, वाणिज्य है। निष्कारण कृपा करनेवाला, निर्हेतु प्रेम करनेवाला, एक परमात्माही है।

( ३ ) 'गीध'—जटायु; रामचरितमानसमें जटायुका बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन है। देखिए—

'कर-सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर ।
निरखि राम-छबिधाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥'

जटायुको मोक्ष देनेपर श्रीरामजी कहते है—

'जल भरि नयन कहा रघुराई । तात कर्म निज ते गति पाई ॥'

'अबिरल भक्ति माँगि बर, गृद्ध गयो हरि-धाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्हीं राम ॥'

( ४ ) 'सबरी'—शबरीसे श्रीरामजी कहते है—

'जोगिवृन्द दुरलभ गति जाई । तोकहँ आजु सुलभ भइ सोई ॥
मम दरसन-फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहजस्वरूपा ॥
सब प्रकार तव भाग बड़, मम चरनन अनुराग ।
तव महिमा जेहि उर बसहि, तासु परम बड़भाग ॥' (रामचरितमानस)।

( ५ ) 'जो संपति…… दीन्ही'—इसीसे मिलता जुलता दोहा, रामचरितमानस में पाया जाता है—

'जो संपति सिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ ।
सो संपदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥'

( १६३ )

एकै दानि-सिरोमनि साँचो ।
जेइ जाँच्यो सोइ जाचकताबस, फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥१॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिनु पाये ।
कोसलपालु कृपालु कलपतरु, द्रवत सकृत सिर नाये ॥२॥

हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद-बड़ाई।
लै चिउरा निधि दई सुदामहि, जद्यपि बाल-मिताई ॥३॥
कपि सबरी सुग्रीव बिभीषन, को नहिं कियो अजाची।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि, दारुन आस-पिसाची ॥४॥

**शब्दार्थ**—द्रवत=पिघल जाते है, प्रसन्न हो जाते हैं। सकृत=एकबार। चिउरा=चावल के कण। निधि=संपत्ति।

**भावार्थ**—सच्चा, दानियोंमे शिरोमणि एक ही है। जिस किसीने उससे माँगा, फिर उसे माँगनेके लिए बहुत नाच नहीं नाचना पड़ा, किसी तरहका स्वाँग नहीं रचना पड़ा ॥१॥ दैत्य, देवता, मनुष्य, मुनि, ये सभी मतलबी हैं। बिना कुछ लिये कोई कुछ नहीं देता। भाव, सभी घूसखोर हैं। किन्तु एक ऐसे कोशलेश कृपालु कल्पवृक्षके समान श्रीरघुनाथजी ही हैं, जो एक बारही प्रणाम करनेपर प्रसन्न हो जाते हैं ( यदि कोई निःस्वार्थ मित्र है, तो एक रामजी ही ) ॥२॥ भगवान्‌ने अपने और-और अवतारोंमे भी वेदोकी मर्यादा पाली है। किन्तु यद्यपि सुदामा बचपनका मित्र था, पर उससे जब चाँवलके कण ले लिये, तब श्रीकृष्णने उसे सम्पत्ति प्रदान की ( मुफ्तमे कुछ नहीं दिया) ॥३॥ हे नाथ! आपने सुग्रीव, शबरी, विभीषण और हनुमान् इनमेसे किस-किसको याचनारहित नहीं कर दिया अर्थात् इन सबके सभी मनोरथ पूरे कर दिये ( और बदलेमे इन लोगोसे कुछ लिया नही )। हे दयानिधे! यह भयंकर आशारूपी पिशाचिनी अब तुलसीको दुःख दे रही है। ध्वनि यह निकलती है, कि इससे मेरा पिंड छुड़ा दो, मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कर दो ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'सब स्वार्थी ·· मुनि'—कहा भी है—**

'सुर नर मुनि सबही की रीती। स्वारथ लागि करहिं ये प्रीती ॥'

**( २ ) 'द्रवत······नाये'— वाल्मीकि-रामायणमें लिखा है—**

'सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥'

**(३) 'लै चिउरा···मिताई'—वाह! इस पदमें क्याही मीठा व्यंग्य है! ऐसे व्यंग्य भक्तोंके ही मुँहसे अच्छे लगते हैं। बात तो सच है, चावलोंकी घूस देकर सुदामाने अपनी दरिद्रता दूर की थी। गोस्वामीजी! अगर श्रीकृष्णजी**

घुसखोर हैं, तो आपके रामजी भी इस इलजामसे बरी नहीं है। उन्होंने भी तो सुग्रीव और विभीषणसे किसी-न-किसी मतलबके साधनेके लिए ही दोस्ती की थी, आप चाहे इसे मंजूर न करें। सांप्रदायिक पक्षपातके कारण मुझे इतना लिखना पड़ा। क्षमा कीजिएगा।

( ४ ) 'सबरी'—१०६ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए।

( ५ ) 'आस'—आशा-पिशाचिनीके संबंधमें कबीरसाहब कहते हैं—

'आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यो तेली के बैल को, घर ही कोस पचास॥
आसा जीवै जग मरै, लोक मरै मन जाहि।
धन संचै सो भी मरै, उबरै सो धन खाहि॥'

( १६४ )

जानत प्रीति-रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई॥ १॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीधपर, ममता गुन गरुआई॥ २॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‌यो बंधु बिभीषन ही को, सोच हृदय अधिकाई॥ ३॥
घर गुरुग्रह प्रिय-सदन सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥ ४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई॥ ५॥
प्रेम-कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई।
'तेरो रिनी' कह्यौ हौं कपि सो ऐसी मानहि को सेवकाई॥ ६॥
तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई॥ ७॥

**शब्दार्थ**=हाते=दूर। गरुआई=बड़प्पन। माधुरी=मिठास। कनौड़ो=एहसानमद। रिनी=ऋणी। जाय=व्यर्थ।

**भावार्थ**—प्रेम की पद्धति एक रघुनाथजी ही जानते हैं। श्रीरामजी प्रेमीके

नातेसे सारे सम्बन्ध छोड़ देते हैं। अर्थात् सगे-सम्बन्धीको छोड़कर प्रेमीहीका मान रखते हैं ।।१।। महाराज दसरथने प्रेम निभाकर शरीर छोड़ दिया, जिससे उनकी कीर्ति अमर हो गई। किंतु ऐसे ( अपूर्व ) पिताको भी गीध जटायुके आगे कुछ अधिक महत्त्व नही दिया। गीधपर अधिक ममत्व और शील गंभीरता दिखाई, अथवा उसके करतबका बड़ा एहसान माना ( इस कारणसे, कि इसने परोपकारके लिए, सीताजीको रावणके हाथसे छुड़ानेके लिए, अपने प्राण तिनकेकी तरह त्याग दिये ) ।।२।। सुग्रीव मित्रको स्त्रीके विरह मे देखकर आपने अपनी प्राणाधिक प्यारी जानकीको भी भुला दिया ( जानकीजीका पता लगानेकी बात भुलाकर बालिके, मारनेके लिए व्याकुल हो उठे )। रणभूमिमें तो भ्राता लक्ष्मण (शक्तिके मारे) मूर्छित पड़े है, पर (उनका दुःख भूलकर) हृदयमे विभीषणहीकी चिंता लगी हुई है। तात्पर्य यह है, कि श्रीरामचन्द्रजी यह सोचने लगे, कि जब लक्ष्मण ही न बचेगे, तब मै रावणके साथ युद्ध करके क्या करूँगा ? मैं भी प्राण त्याग दूँगा। उस समय बेचारा विभीषण किसका होकर रहेगा ? रघुनाथजी ऐसे पर-दुःख-कातर हैं ।।३।। घरमे, गुरु वसिष्ठके आश्रममे, प्रिय मित्रोंके यहाँ, अथवा ससुरालमे, जब जहाँ मेहमानी हुई, आतिथ्यसत्कार हुआ, तब वहाँ यही कहा, कि मुझे जैसा शबरीके बेरोमे स्वाद और मिठास मिला था, वैसा अन्यत्र कही नही मिला ।।४।। जब मुनिलोग आपके सहजस्वरूप, अर्थात् निर्गुण परमात्मस्वरूपका बखान करने लगते हैं, तब आप लज्जाके मारे सिर नीचा कर लिया करते है। किन्तु जब केवट आपको अपना 'मित्र' एवं बन्दर अपना 'भाई' कहते है, तो अपनी बड़ाई समझते हैं ।।५।। प्रेमका एहसानमंद रघुनाथजीके समान, हे भाई! तीनों लोको और तीनो कालोमे कोई दूसरा नही है। अरे, जिन्होने हनुमानजीसे यह कहा, कि "मैं तेरा ऋणी हूँ" उनके आगे सेवाके लिए कृतज्ञता-प्रकाश करनेवाला और कौन है ? ।।६।। हे तुलसी ! श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा स्नेह और शील देखकर भी उनके प्रति यदि तेरे हृदयमे भक्तिका उदय न हुआ, तो तेरी माँने तुझे पैदा कर व्यर्थ ही अपनी युवावस्था खोई। भाव यह है, कि तुझे जननेसे तो वह बाँझ ही भली थी ।।७।।

**टिप्पणी—( १ ) 'ऐसेहु.......गरुआई—गीतावलीमें इस प्रसंगका निम्नलिखित पद क्याही भावमय है—**

'राघौ गीध गोद करि लीन्हो ।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हो ।।
सुनहु लषन, खगपतिहि मिले बन, मैं पितु-मरन न जान्यो ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता, बड़ो पछु आजुहि भान्यो ।।
बहुबिधि राम कह्यो तनु राखन, परम धीर नहिं डोल्यो ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु, बचन मनोहर बोल्यो ।।
तुलसी, प्रभु झूठे जीवन लगि, समय न धोखे लैहौं ।
जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ, तुमहिं कहाँ पुनि पैहौं ।।'

**(२) 'रन परयो''' अधिकाई'—इस प्रसङ्गको गोसाईंजीने निम्नलिखित कवितामें इस प्रकार व्यक्त किया है—**

'तात को सोच न मात को सोच न सोच नहीं मोहि औध-तजे को ।
सोच नही बनबास भयो, किन सोच नहीं मोहिं सीय-हरे को ।।
लछिमन भूमि परया नहिं सोच, न सोच कछू मोहि लक-जरे को ।
सोच भयो तुलसी इक मोकहँ भक्त बिभीषन-बाँह-गहे को ।।'

**(३) 'सेबरीके फलनि की'—शबरीके फलोंपर, रसिकबिहारीजी की, क्या ही यमकालकृत सूक्ति है—**

'बेर बेर बेर लै सराहै बेर बेर बहु, 'रसिकबिहारी' देत बन्धु कहँ फेर फेर ।
चाखि-चाखि भाषै यह वाहूते महान मीठो,लेहु तौ लषन यो बखानत है हेर-हेर ।।
बेर-बेर देवै बेर सबरी सु बेर बेर, तोऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर-टेर ।
बेर जनि लावौ बेर बेर जनि लावौ बेर, बेर जनि लावौ बेर लावै कहै बेर-बेर ।।'

**(४) 'सहज ''बरनत'—यथा—**

'रामस्वरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अगम अपार, 'नेति-नेति' नित निगम कह ।।' (रामचरितमानस)

**(५) 'तेरो रिनी ' सेवकाई'—श्रीरघुनाथजी हनुमानजीसे कहते हैं—**

'सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर-नर-मुनि-तनुधारी ।।
प्रत्युपकार करौ का तोरा । सनमुख होइ न सकै मन मोरा ।।
सुनु कपि तोहिं उरिन मै नाही । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।'

( १६५ )

रघुबर, रावरि यहै बड़ाई ।

निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ॥ १ ॥

थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई ।

केवट कुटिल भालु कपि कौनप*, कियो सकल-सँग भाई ॥ २ ॥

मिलि मुनिबृन्द फिरत दंडक बन, सो चरचौ न चलाई ।

बारहिं बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई ॥ ३ ॥

स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर, जती गयंद चढ़ाई ।

तिय-निन्दक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई॥ ४ ॥

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।

दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—गनी=धनी । चरचौ=चरचा भी । जती=( यती ) संन्यासी । रज=रजक, धोबी । नय=नीति । सुरति=याद ।

**भावार्थ**—हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी यही बड़ाई है, कि आप धनियोका, धनाधोका, अनादर कर गरीबोंका आदर करते है, उनपर बड़ी कृपा करते है ॥ १ ॥ देवता अनेक उपाय कर-कर हार गये, पर उन्हे आपने स्वप्नमे भी दर्शन न दिया । किन्तु निषाद एवं कपटी रीछ और बन्दरों को राजा बना दिया, उनके साथ भाई-चारा निबाहा, ( यह क्यों ? इसलिए, कि देवता अभिमानी थे, और रीछ-बन्दर निरभिमानी ) ॥२॥ मुनियोंके साथ हिलमिल-कर जो दण्डकारण्यमें घूमते फिरे, उसका तो जिक्र तक न किया, परन्तु जब देखो तब गीध ( जटायु ) और शबरीकी ही भक्तिका सुन्दर बखान करते रहे (यहाँ भी वही अभिमान-निरभिमानकी बात है) ॥३॥ कुत्तेके कहनेपर संन्यासी-को तो नगरके बाहर हाथीपर चढ़ाकर निकाल दिया और श्रीसीताजीकी बुराई करनेवाले मूर्ख धोबीको अपनी प्रजा समझकर, नीतिसे अपने नगर अयोध्या-मे बसा लिया ( यहाँ भी वही कारण है ) ॥ ४ ॥ ( इससे सिद्ध होता है कि इस दरबारमे, रामराज्यमें, सदासे गरीबोंके ही आदर करनेकी परि-

---

* राक्षस, यहाँ तात्पर्य विभीषणसे है ।

पाटी चली आ रही है। किन्तु, हे दीनदयालु! इस दीन तुलसीका ध्यान आपको (आज तक) किसीने नहीं दिलाया (बड़े आश्चर्यकी बात है!) ॥२॥

**टिप्पणी**—(१) इस पदमें दीनता या नम्रतापर अधिक जोर दिया गया है। कहा भी है, कि—

'ऊँचे-ऊँचे सब चलै, नीचौ चलै न कोय।
जो कदापि नीचौ चलै, (तौ) ध्रुव ते ऊँचो होय॥'

भक्ति-पक्षमें 'दैन्य' को बड़ा महत्त्व दिया गया है। यही कारण है, कि भक्त निरभिमान होकर परमेश्वरके समीप शीघ्र पहुँच जाते हैं। और ज्ञानी, अभिमानके रङ्गमें रङ्गे रहनेके कारण, मायाके ही चक्कर काटते रहते हैं।

(२) 'केवट'—गुह निषाद; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी तथा १५२ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(३) 'गीध'–४३ पदकी तीसरी तथा १६४ पदकी पहली टिप्पणी देखिए।

(४) 'सबरी'—१०६ पदकी पाँचवीं एवं १६४ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

(५) 'स्वान····चढ़ाई'—१४६ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(६) 'यहि····आदर'—दीनताकी महिमा कबीरसाहब यों गा रहे हैं—

'लघुता तें प्रभुता मिलै, प्रभुता तें प्रभु दूरि।
चींटी लै सक्कर चली, हाथी के सिर धूरि॥
सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥'

(७) 'काहु न सुरति कराई'—इसमें आपका कोई दोष नहीं है। आप दीनदयालु है, और मैं दीन हूँ। बात इतनी ही है, कि अभीतक किसीने आपको यह सुझाया नहीं, क्योंकि राज-दरबारमें कभी कभी अँधेर भी हो जाता है।

( १६६ )

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी॥१॥

साधन-हीन दीन निज-अघ-बस, सिला भई मुनि-नारी।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी ॥ २ ॥
हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु-समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल जाति बिचारी ॥ ३ ॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कहि न जाय अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी ॥ ४ ॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन व्रतधारी।
जनक-समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥ ५ ॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़*लोक बेद तें न्यारी।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-ब्याकुल, आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के, हत्यो बालि सहि गारी ॥ ७ ॥
रिपु को अनुज बिभीपन निसिचर, कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥ ८ ॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें, वानर रीछ बिकारी।
बेद-बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ, तुम्हारी ॥ ९ ॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ॥१०॥

**शब्दार्थ**—गवनि=जाकर। सुरपति-सुत=इन्द्रका पुत्र जयंत। आमिष=मांस। अहारपर=खानेवाला। जनक=पिता। जोषित=(योषित) स्त्री। जड़=मूर्ख। बिकारी=अधर्मी।

**भावार्थ**—दीनोंका ऐसा हित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। वह बड़े कोमल, करुणाके भाण्डार, दयामूर्त्ति और बिना किसी कारणके दूसरोंका भला करनेवाले है ॥१॥ साधनोंसे रहित, दीन गौतम ऋषिकी स्त्री अहल्या, अपने पापोंके कारण, पाषाणी हो गई थी। उसे आपने घरसे जाकर, अपने पवित्र चरणसे छूकर, शापसे मुक्त कर दिया ॥२॥ गुह निषाद सदा हिंसामें ही लगा रहता था। उसका शरीर तामसी था, जो पशुकी तरह वनमें फिरता रहता था। उसे आपने, वंश और

* पाठान्तर 'सठ'।

जातिका विचार किये बिना ही, प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिए
इन्द्रके पुत्र जयंतने इतना भारी अपराध किया था, कि कुछ कहा न.. कहना तो (जयतने कौएका रूप धरकर सीताजीके चरणोंमें चोंच मारी थी) तथापि जानता (रघुनाथजीके बाणके मारे व्याकुल हो बचनेके लिए) सारे लोकोंको देख सुख और फिर दुःखसे निराश होकर शरणमे आया, तब उसका सारा भय दूर क. दिया, उसका सारा अपराध भूलकर उसे निहाल कर दिया ।।४।। जटायु गीध पक्षीकी योनिका था, सदा माँस खाया करता था। उसने ऐसा कौन-सा व्रत साधा था, कि जिससे आपने अपने हाथसे, पिताके समान, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की ? उसकी करनी सब तरहसे बना दी ।।५।। शबरी नीच जातिकी मूर्खा स्त्री थी। वह लोक और वेद दोनोंसे ही बाहर थी, उसकी कहीं भी कुछ पूछ न थी। किन्तु उसका अपने ऊपर प्रेम समझकर कृपालु रघुनाथजीने उसे भी दर्शन दिया, उसका भी उद्धार कर दिया ।।६।। सुग्रीव बन्दर अपने भाई ( बालि ) के डरके मारे व्याकुल होकर जब पुकारता हुआ आपकी शरणमें आया, तब आप अपने दासका महान् दुःख न देख सके और गालियाँ खाकर भी बालिका बध कर डाला ( इसीसे तो आपकी जन वत्सलता सिद्ध होती है ) ।।७।। विभीषण, शत्रु ( रावण ) का तो भाई था और जातिका था राक्षस ! भला, वह किस भजनका अधिकारी था ? किन्तु जब वह (रावणसे तिरस्कृत और बहिष्कृत होकर) आपकी शरणमे आया, तब उसे आपने आगे बढ़कर लिया, स्वागत किया और बाहु फैलाकर उसे हृदयसे लगाया ।।८।। बन्दर और रीछ ऐसे अधर्मी हैं कि उनका नामतक लेनेसे अमंगल होता है, किन्तु हे नाथ ! उन्हें भी आपने पवित्र बना लिया। वेद इस बातके साक्षी हैं। यह सब आपकी महिमा है ।।९।। ऐसे अनेक दीन हैं, जिनकी विपत्तियाँ आपने दूर कर दी हैं, मैं कहाँतक कहूँ ! किन्तु, मालूम नहीं, इस तुलसीदासपर जो कलियुगके पापोंसे जकड़ा हुआ है, क्यों आपने कृपा करना भुला दिया, क्यों उसे अभी तक नहीं अपनाया ।। १० ।।

**टिप्पणी**—(१) 'मुनि-नारी'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'गृह तें गवनि'—इसका यह तात्पर्य है, कि रामचन्द्रजी घरसे केवल अहल्याके तारनेके लिए गये थे, ताड़काको मारने अथवा धनुष तोड़नेके अर्थ नहीं। यह बड़ी ही सुन्दर अर्थ ध्वनि है।

( ३ ) 'निषाद'—गुह; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।

( ४ ) 'द्रोह कियो सुरपति-सुत'—बाल्मीकि और कालिदासने यह लिखा है, कि जयन्तने श्रीसीताजीके स्तनोंपर चोंचसे आघात किया था और ऐसा उसने कामवश किया था, किन्तु गोसाईंजीने, मर्यादा-पालन करते हुए, ऐसा न लिखकर यह कहा है, कि उसने श्रीकिशोरीजीके चरणोंमें चोंच मारी थी । देखिए ४३ पदकी तीसरी टिप्पणी ।

( ५ ) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं एवं १६४ पदकी पहली टिप्पणी देखिए ।

( ६ ) 'सबरी'—१०६ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए ।

( ७ ) 'बिभीषन'—१४५ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।

( ८ ) 'असुभ…बिकारी'—कहा भी है—

'प्रात लेइ जो नाम हमारा । तादिन ताहि न मिलै अहारा ।'

( ९ ) 'कहँ लगि कहौं'—भाव, अगणित पापियोका उद्धार किया है—

'एते जन तारे जेते नभ में न तारे हैं ।'

( १६७ )

रघुपति-भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥ १ ॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल-प्रबाह सुरसरी बहै गज भारी ॥ २ ॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥ ३ ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी ॥ ४ ॥
सोक मोह भय हरप दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संशय निरमूल न जाहीं ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—सफरी=मछली । सर्करा=शक्कर । सिकता=धूल । पिपीलिका=चींटी । दृश्य=पंचभूतात्मक जगत् । द्वैत-बियोगी=जिनका भेदात्मक ज्ञान चला गया है । संशय=सदसत् विवेकका अभाव ।

**भावार्थ**—श्रीरघुनाथजीकी भक्तिके करनेमे बड़ी कठिनता है। कहना तो सहज है, पर उसका करना अपार है। जिससे वह करते बन गई, वही जानता है ॥१॥ जो जिस कलामे प्रवीण है, उसीके लिए वह सरल और सदा सुख देनेवाली है। जैसे मछली तो गंगाजीके जल-प्रवाहके सामने चली जाती है, पर इतना बडा हाथी बह जाता है ( क्योकि वह मछलीकी तरह उसमे तैरना नहीं जानता ) ॥२॥ ( दूसरा उदाहरण उपस्थित करते है ) जैसे, यदि धूलमे चीनी मिल जाय तो उसे कोई शक्ति लगाकर अलग नहीं कर सकता, किन्तु उसके रसको जाननेवाली एक छोटी-सी चींटी उसे सहज ही उठा लेती है, अलग-अलग कर देती है ॥ ३ ॥ जो योगी दृश्यमात्रको, सारे पंचभूतात्मक प्रपञ्चको,अपने पेटमे रख (चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा संसारका लय करके) निद्राको त्याग कर सोता है, अर्थात् अविद्या हटाकर ब्राह्म अवस्थामे तल्लीन हो जाता है और भेदात्मक ज्ञानका आत्यन्तिक त्याग कर देता है, वही वैष्णव-पदके परमानन्दको प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है, ब्रह्मानन्दका पूर्णाधिकारी वही हो सकता है ॥४॥ इस अवस्थामे शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन-रात और देश कालका नामतक नहीं है, इन सबसे वह परे पहुँच जाता है। हे तुलसीदास! जबतक ( यह जीव ) इस दशाको प्राप्त नहीं हुआ, तबतक संशय निर्मूल नहीं होते ( कुछ न-कुछ सन्देह बना ही रहता है, और जबतक सन्देहका लेश है, तबतक आत्माका श्रेय नहीं मिल सकता ) ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'रघुपति···कठिनाई'—काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाकी प्रतिमें 'रघुपति' शब्दके आगे सम्बोधन ( ! ) का चिह्न दिया गया है। किन्तु रघुपति और भक्तिको षष्ठी तत्पुरुष समास मानना अधिक संगत होगा,क्योंकि सारे पदमें सम्बोधनकी, कहीं भी आवश्यकता प्रतीत नही होती है। पद सिद्धान्तरूपसे लिखा जान पड़ता है।**

**( २ ) 'कहत सुगम'—जैसे कहनेमें निम्नलिखित चौपाइयाँ बड़ी सुगम हैं, जीभको तनिक भी कष्ट नहीं पहुँचता—**

'सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। जथालाभ-सन्तोष सदाई ॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोस दच्छ बिग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन-संसर्गा। तृनसम बिषय स्वर्ग-अपवर्गा ॥'

परन्तु इनके अनुकूल आचरण करना बड़ा कठिन है, तलवारकी धारपर चलना है। करनी-कथनीमें महान् अन्तर है।

( ३ ) 'सफरी....पावै'—इसी भावकी एक कुण्डलियाँ श्रीभगवत्-रसिकजीकी है। देखिए—

'भगवत स्यामा-स्याम कौ, पावकरूप बिहार।
नहिं समर्थ खगराज की, करत चकोर अहार॥
करत चकोर अहार, किलकिला जलचर लावै।
स्याह सीख मृगराज-बदन तें, आमिष पावै॥
ऐसे रसिक अनन्य, और सब जानहुँ खगवत।
तजौ पराई सैन, भजौ बिन माफिक भगवत॥'

( ४ ) 'द्वैत-बियोगी'—जीवत्व छोड़कर आत्मत्वमें रमनेवाला आत्मसमर्पण कर चुकनेवाला।

( ५ ) 'यहि दसा'—यह जीवन्मुक्ति-दशा है, विदेहावस्था भी इसीको कहते हैं। लिखा है—

'गुनागार ससार दुख-रहित बिगत संदेह।
तजि,मम चरनसरोज प्रिय,तिन कहँ देह न गेह॥'

( १६८ )

जो पै राम-चरन-रति होती।
तौ कत त्रिबिध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती॥ १॥
जो संतोष-सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै।
तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन-कुरंग ज्यों धावै॥ २॥
जो श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए॥ ३॥
जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे।
प्रभु-बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे॥ ४॥
नहिं एकौ आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ नाम के नाते॥ ५॥

शब्दार्थ—निसोती=खालिस। कुरङ्ग=हिरण। खलाए=लटकाए हुए, दिखाता हुआ।

**भावार्थ**—यदि कहीं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होता, तो रात-दिन तीनों प्रकारके कष्ट और विशुद्ध विपत्ति क्यो सहनी पड़ती ( सदा सुखी ही न रहता ? किंतु राम-चरणोमे तो भक्ति है ही नहीं, सुख कहाँ से हो ! साराश, राम-भक्ति ही सुख-रूपा है ) ।। १ ।। यदि यह मन दिन-रातमें, कभी सही, स्वप्नमें भी संतोषरूपी अमृत पा जाय, तो इसे विषयोंके पीछे-पीछे, जो झूठे मृगजलके समान हैं, क्यों हिरणकी तरह दौड़ना पड़े ? तात्पर्य यह है, कि सन्तोषके आगे सारे सासारिक विषय-भोग मिथ्या हैं ।।२।। यदि हम भगवान् लक्ष्मीकान्तकी महिमा मनमें विचारकर भाव-भक्तिसे उनका भजन करते, तो आज कुत्तेकी तरह द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्यों मारे-मारे फिरते ।।३।। जो लोभी आशाके दास बन गये हैं, वे सभीके गुलाम हैं और जिन्होंने भगवान्मे विश्वास करके आशाको जीत लिया है, वेही (सच्चे) भगवत्-सेवक हैं, तदीय जन है ।।४।। मैं आपसे इसलिए विनय कर रहा हूँ, कि मुझमे भजन-भावका एक भी साधन नहीं है (श्रवण, कीर्तन, वंदन आदि नवधा भक्तिकी ओरसे बिल्कुल कोरा हूँ) । हे नाथ ! तुलसीदासपर अपने नामके नातेसे ही कृपा कीजिए (क्योंकि आपके नाम दीनवत्सल, दीनबन्धु आदि हैं) ।।५।।

**टिप्पणी—( १ ) 'निसोती—श्रीयुत् भट्टजीने इसका अर्थ 'प्रवाह' लिखा है ।**

**( २ ) 'जो संतोष·······पावै'—क्योंकि,**

'सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।'

**( ३ ) 'जे लोलुप····केरे'—यही बात कबीरसाहब भी कहते हैं—**

'कबिरा जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस ।
जो जग की आसा करै, जगत गुरु वह दास ।।'

**हरिभक्तको किसी संसारी मनुष्यकी आशा करनीही न चाहिए, उसे चिन्ताही किस बातकी है ?**

'भोजने छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
योऽसौ विश्वंभरो देवो स भक्तं किमुपेक्षते ।।'

**(महाभारत)**

( १६६ )

जो मोहि राम लागते मीठे।

तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥ १ ॥

बंचक विषय बिबिध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे।

यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥ २ ॥

तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे।

नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**—नवरस=शृंगार, हास्य, करुणा, वीर, रुद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त वा सम। षट्रस=कटु, तीखा, मधुर, कषाय, अम्ल और लवण। सीठे=फीके। बचक=ठग। डीठे=देखे। उबीठे=ऊबे, मनसे उतर गये। चीठे=चिट्ठी, परवाना।

**भावार्थ**—यदि कहीं मुझे श्रीरामचन्द्रजी ही मीठे लगे होते, तो नवरस (साहित्यिक) एवं छः रस ( स्वादु सबंधी) नीरस और फीके वा कडुवे पड़ जाते (पर रामजी तो मीठे लगते ही नहीं, उनसे तो कुछ प्रेम है नहीं, इसीलिए भोग-विलास मधुर प्रतीत होते हैं) ॥१॥ मैने नाना प्रकारके शरीर धारणकर यह अनुभव किया है, सुना है और देखा है कि विषय ठग हैं (सत्कर्मोंके लुटेरे हैं)। यद्यपि यह मै अपने जीमे खूब समझता हूँ, तथापि ( समझते हुए भी ) कभी, स्वप्नमें भी, इनसे तृप्त होकर जी नहीं ऊबा, मन नहीं हटा (कैसे आश्चर्यका विषय है ! ) ॥२॥ तुलसीदास अपने स्वामी श्रीरघुनाथजीसे एक ही बल-भरोसेपर ढिठाई-भरे वचन कह रहा है। ( और वह बल यह है, कि ) हे नाथ ! आपने अपने नामकी लाज रखनेके लिए किस-किसके हाथमें दया कर परवाने नहीं दे दिये हैं ? किसे ससारसे मुक्त कर देनेका वचन नहीं दिया ? भाव यह है, कि आपके नाममे वह शक्ति है, जो जीवमात्रको भवसागरसे तार देनेको समर्थ है। उसीका मुझे भरोसा है ॥३॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'तौ ......सीठे'—क्योंकि—

'रमा-बिलास राम-अनुरागी। तजत बमन-इव जन बड़भागी ॥'

—(रामचरितमानस)

कबीरसाहब भी कहते हैं—

'पीया चाहै प्रेमरस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान॥'

( २ ) 'वंचक विषय'—सत्संग अथवा प्रारब्धवश यदि जीव ज्ञान-रत्नोंका सञ्चय करता है, तो इन्द्रियोंके विषय क्षणभरमें उन्हें लूटकर ले जाते हैं। गज़बके डाकू है।

'कामः क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्माज्जाग्रत जाग्रत॥' —श्रीशंकराचार्य्य

(३) 'नामकी लाज'—यदि, पतितपावन नाम रखकर, पापियोंका उद्धार न किया, तो नाम मुफ्तमें ही बदनाम हो जायगा। इसलिए जैसे तैसे, अपनी बात रखनेके लिए, पापियोंका उद्धार करना ही पड़ेगा। भला, निम्नलिखित भक्तोंका टेढ़ा-मेढ़ा वचन कैसे गवारा हो सकता था—

'एहो मुरारि पुकारि कहौं अब, मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥'

( १५० )

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरन्तर रहत विषय अनुराग्यो॥ १॥
ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपञ्च घर घर के।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निर्मल गुनगन रघुबर के॥ २॥
ज्यों नासा सुगन्धरस-बस, रसना षटरस-रति मानी।
राम-प्रसाद-माल जूँठनि लगि त्यो न ललकि ललचानी॥ ३॥
चन्दन चन्द्रबदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो।
त्यो रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो॥ ४॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हूँ।
त्यो न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ॥ ५॥
चञ्चल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे।
राम-सीय-आस्रमनि चलत त्यों भये न स्रमित अभागे॥ ६॥
सकल अंग पद-विमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥ ७॥

**शब्दार्थ**—रसना=जीभ। ललकि=उमंगमे आकर। पाँवर=( पामर ) पापी। सकृत=एकबार। बागे=फिरे, चले। ओट=भरोसा।

**भावार्थ**—मेरा मन इस प्रकार कभी भी आपसे नहीं लगा, जैसा कि वह कपट छोड़कर, सच्चे स्वभावसे विषयोंमे लौलीन रहता है, विषयोकी ओर उसकी सहज स्वाभाविक वासना रहती है ॥१॥ जैसे मै दूसरेकी स्त्रीका ताकता फिरता हूँ, घर घरके पाप-भरे प्रपञ्च सुनता रहता हूँ, वैसे न तो कभी साधुओके दर्शन करता हूँ और न गङ्गाजीकी निर्मल लहरोके समान श्रीरघुनाथजीकी गुणावली ही सुनता हूँ ॥२॥ जैसे नाक अच्छी-अच्छी सुगन्धके रसके अधीन रहती है, और जीभ छः रसोसे प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान्‌पर चढी हुई मालाके लिए और जीभ भगवत्-प्रसादके अर्थ ललक-ललककर लालायित नही होती ॥३॥ जैसे यह अधम शरीर चन्दन, चन्द्रवदनी कामिनी और अलंकार एवं वस्त्रोंको छूना चाहता है, वैसे कभी यह श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंका स्पर्श करनेके लिए उत्कण्ठित नहीं होता हैं ॥४॥ जिस प्रकार मैने शरीर, वचन और हृदयसे भली-भाँति, बुरे-बुरे देवों और दुष्ट स्वामियोकी सेवा की, उस प्रकार उन रघुनाथजीकी सेवा कभी नहीं की, जो सत्कर्मो के माननेवाले और एकबार प्रणाम करनेपर ही सकुचा जानेवाले है ( सौशील्यके कारण सिर नीचा कर लेते है ) ॥५॥ जैसे ये चञ्चल पैर लोभवश, लोभी बनकर, द्वार-द्वार भटकते फिरे हैं, वैसे ये अभागे श्रीसीतारामजीके ( पुण्य ) आश्रमोमे चलकर कभी भी नहीं थके। (यह तात्पर्य नहीं है, कि पुण्य आश्रमोमे चलते हुए ये थके नहीं है, किन्तु वहाँ गये ही नहीं, थकेंगे क्या ?) ॥६॥ हे प्रभो ! मेरे अङ्ग-प्रत्यंग आपके चरणोसे विमुख हैं ( किसी भी अंगसे चरणोंकी सेवा नहींकी )। केवल इस मुखसे आपके नामकी ओट ले ली है ( और यह इसलिए कि ) आपकी मूर्ति कृपाका रूप है। तुलसीको यही एक बल-भरोसा है ( कि आप कृपासागर होनेके कारण तथा नामकी बात रखनेके लिए मुझे अवश्य ससार-सागरसे पार कर देंगे ) ॥७॥

**टिप्पणी**—(१) इस पदमें शरीरके सारे अंगोंकी निरर्थकता और सार्थकताका दिग्दर्शन कराया गया है। एक ही वस्तु असार और सारमय हो सकती है। अन्तर केवल उसकी उपयोगितामें है। इसी प्रकार जगत् यदि 'हरिमय' है, तो वह सत्य है, आनन्दरूप है, श्रेयस्कर है, और यदि वह 'हरि-शून्य' हैं, तो मिथ्या है, दुःखरूप है, अनिष्टकर है। आत्माके अनुकूल प्रत्येक वस्तु सुखरूप है, उसके प्रतिकूल वह दुःखरूप है। यह ध्रुव सिद्धान्त है।

( २ ) 'चंदन……पट'—चंदन, चन्द्रवदनी, भूषन और पट इनका भिन्न-भिन्न अर्थ है, तथा, चंदन-चर्चित अंगवाली, चंद्रमुखी स्त्री जो भूषण और वस्त्र धारण किये हैं—यह भी अर्थ घट सकता है।

(३) 'कुदेव'—भूत-प्रेतसे अभिप्राय है। गोसाईंजीने भूतोंके माननेवालों-को यत्र-तत्र खूब फटकार बतलायी है; उनका यह विश्वास था कि छोटी छोटी कामनाओंकी पूर्तिके लिए ही लोग प्रायः भूतोंको माना करते है और फिर उनकी प्रकृति कुछ ऐसा रंग पकड़ जाती है, कि उनका विश्वास परमेश्वरसे सदाके लिए उठ जाता है। कुछ दिनों बाद वह नास्तिक हो जाते हैं।

( ४ ) 'रामसीय-आस्रमनि'—अयोध्या, चित्रकूट, दण्डकारण्य आदि।

( १७१ )

काजै मोको जम-❀जातनामई।

राम, तुमसे सुचि सुहृद साहिबहि मै सठ पीठि दई॥ १॥

गरभबास दस मास पालि पितु-मातु-रूप हित कीन्हों।

जड़हिं बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों॥ २॥

कपट करौं अंतरजामिहुँ सों, अघ व्यापकहिं दुरावौं।

ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं॥ ३॥

उदर भरौं किंकर कहाइ बेंच्यो विषयनि हाथ हियो है।

मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि कै छोह कियो है॥ ४॥

पल पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।

भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहु प्रेम सिय-पी के॥ ५॥

स्वामी की सेवक-हितता सब कछु निज साइँ-दोहाई।

मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरेहि दिसि गरुआई॥ ६॥

एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो अरु करिहैं।

तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं॥ ७॥

---

❀ पाठान्तर 'जय।'

**शब्दार्थ**—पीठि दई=विमुख हो गया। जड़हि=मूर्खको। बावौं=(बाम) प्रतिकूल। छोह=अनुग्रह। दोहाई=सपथ। तुला=तराजू। गरुआई=भारीपन। कनौड़ो=एहसानसे दबा हुआ।

**भावार्थ**—हे नाथ! मुझे तो आप यम-यातना (जन्म-मरण) मे ही स्थान दीजिए, संसारी प्रवृत्तियों में ही पड़ा रहने दीजिए। क्योंकि, हे श्रीरामजी! मै आप-जैसे पवित्र और हितू स्वामीसे विमुख हो गया हूँ (इसका दण्ड यम-यातना ही हो सकता है, सो मुझे दीजिए) ॥१॥ जब गर्भमे था, तब आपने माता-पिताके समान दस महीने तक मेरा पालन-पोषण कर हित किया। मुझ मूर्खको आपने शुद्ध ज्ञान, मुझ दुष्टको सुन्दर शील और मुझ अपराधीको आदर दिया, (मुझे आपका कृतज्ञ होना चाहिए था, सो तो न हुआ, उलटा आपको भुलाकर कृतघ्नताका भागी बन गया।) ॥२॥ (मेरी मूर्खता तो देखो) मै अन्तर्यामी प्रभुके साथ छल करता हूँ, सर्वव्यापी, घट-घटमे रमनेवालेसे अपने पाप छिपाता हूँ। ऐसे दुर्बुद्धि और नीच नौकर पर भी श्रीरघुनाथजीने अपना मन प्रतिकूल नहीं किया। भाव, अब भी उसपर कृपा कर रहे हैं (बलिहारी!) ॥३॥ आपका दास बनकर तो पेट भरा करता हूँ; किन्तु हृदय विषयोंके हाथमे बेंच दिया है (चाहिए तो यह था, कि जिसका खाना उसका गाना; पर मुझ अधमसे यह न हुआ)। मुझ सरीखे ठगपर भी कृपालु रघुनाथजीने निष्कपट भावसे कृपा ही की है (धन्य!) ॥४॥ आपके एक-एक क्षणके उपकार जानकर, समझकर और भली भाँति सुनकर भी मेरे कठोर चित्तमे कभी श्रीसीतावल्लभजीका प्रेम नहीं भिदा! मेरा चित्त बज्रके समान है ॥५॥ मैने जब अपनी बुद्धिरूपी तराजूपर एक ओर स्वामीकी सारी जन-वत्सलता और दूसरी ओर थोड़ी-सी अपनी करनी अर्थात् कुटिलता रखकर तौली, तब देखने पर मेरी ओरका ही पलड़ा भारी निकला। यह मै स्वामीकी सौगन्ध खाकर कह रहा हूँ (मिथ्या न समझना)। इसका तात्पर्य यह है, कि जीवकी क्षणभरकी भी भगवत्-विमुखता परमात्माकी समस्त कृपाकी अपेक्षा भारी है, उसके कर्म ऐसे पतित हैं, कि वह भगवत्कृपा होनेपर भी क्षणमात्रमे नरकगामी हो सकता है ॥६॥ किन्तु इतने पर भी मेरे कृपालु स्वामी मेरा भला करते चले आ रहे हैं करते हैं और करेंगे, वह सदासे मेरे हितू हैं। तुलसी अपनी ओरसे जानता है, कि इस कनौड़ेका, एहसानसे दबे हुएका, स्वामी ही

पालन करेंगे ( क्योंकि उनकी यह प्रतिज्ञा है, कि वह शरणागतका अवश्य पालन करते हैं) ॥७॥

**टिप्पणी**—(१) 'उदर भरौं किंकर कहाइ'—पाखण्ड-भेष धरकर, ऊपरसे तिलकमाला धारणकर, लोगोंको ठगता फिरता हूँ। दूसरोंकी दृष्टिमें अपनेको सन्त-महात्मा सिद्ध करना चाहता हूँ। पर, पाखण्डसे होता क्या है।

'तन को जोगी सब करैं, मन को बिरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥' —कबीरदास

(२) 'स्वामी की····गरुआई'—यह रूपक बड़ा ही गम्भीर और सच्चा है। सिवा गोसाइँजीके ऐसी-ऐसी सूक्तियोंके कहनेका और कौन अधिकारी है।

(३) 'प्रभुहिं कनौड़ी भरिहै'—क्योंकि भगवान्‌की निम्नलिखित प्रतिज्ञा परम प्रसिद्ध है—

'अहं भक्तपराधीनो, दारुयंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो, भक्तैर्भक्तजन-प्रियः ॥' (श्रीमद्भागवत)

( १७२ )

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥२॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो* ॥३॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो ॥४॥

**शब्दार्थ**—निरत=सलग्न, तत्पर। क्रम=कर्म। परुष=कठोर।

**भावार्थ**—क्या मैं कभी इस रहनीसे रहूँगा? क्या कृपालु श्रीरघुनाथजीकी कृपासे कभी मैं सन्तोंका-सा स्वभाव प्राप्त कर सकूँगा? ॥१॥ (सन्तोंका स्वभाव कैसा होता है सो सुनिए) जो कुछ मिल जायगा उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे

* पाठान्तर 'औगुन न कहौंगो।'

कुछ पानेकी इच्छा न करूँगा (वासनाओंका निग्रह कर लूँगा)। सदा दूसरोंकी भलाई करनेमें ही तत्पर रहूँगा। यह नियम ( परोपकारका ) मनसे, वचनसे और कर्मसे निबाहूँगा, अर्थात् सच्चे हृदयसे दूसरोंके साथ समवेदना प्रकट करूँगा ॥ २ ॥ कानोंसे कठोर और असह्य वचन सुनकर उसकी आगमें न जलूँगा। भाव, अपना अपमान समझकर क्रोधकी आगमें न जलूँगा। किसीसे मानकी इच्छा न करूँगा। मनको एकरस और शीतल रखूँगा। दूसरोंके गुणोंका तो बखान करूँगा, पर उनके दोष नहीं कहूँगा ( छिद्रोंको छिपा लूँगा ) ॥ ३ ॥ शारीरिक चिन्ताएँ छोड़कर और सुख और दुःखको एक-सा मानकर रहूँगा। हे नाथ ! क्या तुलसीदास इस मार्गपर चलकर (उपर्युक्त सन्त-स्वभावके अनुसार आचरण करता हुआ ) अटल भगवद्भक्तिको कभी प्राप्त करेगा ? ( क्या कभी यह मनोराज्य पूरा होगा ? ) ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) इस पदमें कवि अपने सच्चे मनोराज्यमें विचरण कर रहा है। यह राज्य कल्पनाके वायुमण्डलसे कोसों दूर है। यहाँ सचमुच सत्यकी पताका फहरा रही है। योगी इसे समाधि-गत राज्यमें प्राप्त करता, पर भक्त भगवान् के आगे आत्म-समर्पण करता हुआ इस राज्यका उत्तराधिकारी सहज ही बन बैठता है।**

**मनोराज्य-सम्बन्धी सूक्तियाँ हमारे यहाँके भक्तोंने अनेक प्रकारसे कही हैं। दो एक सूक्तियाँ सुनिए—**

'ऐसो कब करिहौ मन मेरौ।
कर करुवा, हरवा गुंजन कौ, कुञ्जन माहिं बसेरौ ॥
ब्रजबासिनके टूक जूँठ अरु, घर-घर छाँछ महेरौ ॥
भूख लगै तब माँगि खाइहौ, गिनौं न साँझ सबेरौ ॥
ऐसी आस 'व्यास' की पूजै, मेरे गाम न खेरौ ॥'—(व्यास)

**रसिकवर ललितकिशोरी कहते हैं—**

'जमुना पुलिन कुंज गहवर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद-पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुरे-मधुरे गुंज सुनाऊँ ॥
कूकर ह्वै बन-बीथिन डोलौं, बचे सीथ सन्तनके पाऊँ।
'ललितकिसोरी' आस यही मम, ब्रज-रज तजि छिन अनत न जाऊँ ॥'

**(२) 'जथालाभ सन्तोष'—फिर किसीसे कुछ चाहनेकी जरूरत ही क्या ? क्योंकि—**

'जब आवै सन्तोष-धन, सब धन धूरि समान।'

( ३ ) 'परहित-निरत'—क्योंकि—

'अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥'

( ४ ) 'यहि पथ'—सन्तोंका स्वभाव; सच्चा राम-भक्त, जिसका लक्षण संक्षेप में यों लिखा है—

'शान्तः समानमनसश्च सुशीलयुक्त-
स्तोषक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्तः ।
विज्ञानज्ञानविरतिः परमार्थवेत्ता
निर्धामकोऽभयमनः सच रामभक्तः ॥' (महारामायण)

( १७३ )

नाहिंन आवत आन भरोसो ।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो ॥ १ ॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो ।
पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि भरि बेद परोसो ॥ २ ॥
आगम-बिधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो ।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग-बियोग धरो सो ॥ ३ ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥ ४ ॥
बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो ॥ ५ ॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो ।
रामनाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—मख=यज्ञ । आगम=शास्त्र । सरत=पूरा होता है, सफल होता है । नावत=डालते हैं । आम=कच्चा । घरो=घड़ा । डगरो=मार्ग । बोहित=जहाज ।

**भावार्थ**—मुझे और दूसरा बल-भरोसा ही नहीं है, (केवल एक राम-नाम-का ही भरोसा है) । इस कलियुगमे जितने कुछ साधनरूपी वृक्ष हैं, उनमें केवल परिश्रमरूपी फल फल रहे हैं । अर्थात्, उन साधनोंके लिए चाहे जितना श्रम

किया जाय, पर हाथ कुछ नहीं आता, कलिकाल सबको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है ॥१॥ तपस्या, तीर्थाटन, व्रत, दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे-सो करे। किन्तु इन सब कर्मोंका फल पाने पर ही जान पड़ेगा, यद्यपि वेदोंने (पत्तल) भर-भरकर फलोंको परोसे हैं। तात्पर्य यह है कि वेदोंने तो प्रत्येक सत्कर्मकी फलश्रुति मनमानी बढ़ाकर लिख दी है, पर कलि महाराजके मारे जब कोई सत्क्रिया सफल हो, तभी न उसका फल मिले? पर, यह होनेका नहीं, इसलिए, सब निष्फल ही समझना चाहिये ॥२॥ शास्त्रोक्त विधिसे मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं, किंतु उनसे यथेष्ट काम पूरा नहीं होता। योग सिद्धियो के साधनमें सुख स्वप्नमें भी नहीं है। उसमे भी रोग और वियोग प्रस्तुत है। शरीर रोगी होनेसे अथवा प्रियजनोंके बिछुड़ जानेसे सारा किया-कराया योग-साधन मिट्टीमें मिल जाता है, इसलिए योगाभ्यासकी आशा करनी भी व्यर्थ ही है ॥ ३ ॥ काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और अज्ञानसे मिलकर ज्ञान-वैराग्यको हर सा लिया है (इन व्यसनों के मारे यह भो सधनेके नहीं)। और संन्यास ग्रहण करने पर यह मन ऐसा बिगड़ जाता है, जैसे पानीके डालनेसे कच्चा घड़ा। भाव, मन जब तक शुद्ध और शांत नहीं हुआ, तबतक संन्यास लेना और भी अनिष्टकारी है ॥४॥ शास्त्रोंके अनेक मत सुनकर और पुराणोंमें नाना प्रकारके पंथ देखकर जहाँ-तहाँ झगड़े ही जान पड़ते हैं (कहीं कोई निश्चित दृष्टि नहीं आता)। मेरे गुरुने तो मुझे राम–भजनका ही उपदेश किया है और यही मुझे राज-मार्गके समान पसंद भी है (इसमे कोई विघ्न-बाधा नहीं है) ॥५॥ हे तुलसी! विश्वास और श्रद्धाके बिना जिसे बार बार पच-पचकर मरना हो, वह भले ही मरे, किन्तु संसार-सागरसे पार होनेके लिए एक राम-नाम ही जहाज है। जिसे पार होना हो, वह ( इसपर चढ़कर ) पार हो जाय ॥६॥

**टिप्पणी—( १ )** इस पदमें गोसाईंजीने सिद्धान्तरूपसे, रामनामका सर्वश्रेष्ठत्व एवं अन्य साधनोंका वैफल्य बताया है। रामनाम पर उनकी कितनी ऊँची निष्ठा थी—यह इससे भली-भाँति प्रकट हो जाता है—

( २ ) 'तप'''मख'—इनमेंसे प्रत्येककी कठिनता नीचे लिखी जाती है:—

तप—पंचाग्नि तापना, जल-शयन करना, धोती, नेती आदि करना;

तीरथ—सारे तीर्थोंका पैदल, भूख-प्यास सहकर, पर्यटन करना;
उपवास—चांद्रायण, कृच्छ्र, महाकृच्छ्र आदि व्रत साधना;
दान—प्रसन्न चित्तसे, निष्काम बुद्धिसे, शास्त्रोक्त दान देना;
मख—अश्वमेधादि यज्ञ करना, जो महाकठिन है।

( ३ ) 'काम……हरो सो'—शिकार, जुआ, दिनका सोना, परदोष कहना, परस्त्रीगमन करना, मद्यपान करना, नृत्य, गान, वाद्य, वृथा घूमना यह दस व्यसन ज्ञान-वैराग्यको चौपट कर देते हैं। इनसे भी प्रबल जो अविद्या है, वह बड़े बड़े योगियोंकी नाकमे नकेल डालकर रहती है। उससे कोई भी अछूता नहीं बचा—

'रमैया की दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मची हाहाकार।।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार।
स्रिगी की मिंगी करि डारी, पारासर के उदर बिदार।।
कनफूँका चिदकासी लूटे, लूटे जोगेसुर करत विचार।
हम तो बचिगे साहब दयासे, सब्द-डोर गहि उतरे पार।।
कहत'कबीर'सुनो भई साधो,या ठगिनी से रहो हुसिआर।'—कबीरदास

( ४ ) 'बिगरत……घरो सो'—संन्यास-आश्रम सब आश्रमोमे कठिन है। जब मन सब विषयोंकी ओरसे तृप्त हो जाय, इंद्रियाँ जीत ली जायँ और शान्तिका अनुभव होने लगे, तब इस आश्रममे प्रवेश करना चाहिए। कर्म करते हुए भी, कर्म वासनाका पूर्णरूपेण त्यागकर देना सन्यासका मुख्य लक्ष्य है। ऊपरी तौरसे कुछ कर्मों का त्याग संन्यासके अनुकूल नहीं है। सो जबतक मन कच्चा है, विषयोंकी ओर दौड़ रहा है, शान्ति और वैराग्यका चसका नहीं लगा है तबतक संन्यास-जनित आनन्दकी आशा करनी व्यर्थ है। निर्विकल्प चित्तवाले ही इस आश्रमके अधिकारी हैं। यों तो जहाँ-तहाँ अनेक संन्यासी भगवा-वस्त्र पहिने और मूँड मुँड़ाये फिरा करते हैं,पर इनसे न तो लोक ही सधा है और न परलोक ही सधेगा, इन पेटार्थुओंसे कुछ भी होनेका नहीं।

'दाढ़ी-मूछ मुडाइ कै, हुआ जु घोटम घोट।
मन को क्यों नहि मूड़िए, जामे भरिया खोट।।
माला-तिलक लगाइ कै, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी-मूछ मुड़ाई कै, चलै दुनी के साथ।।'—कबीरदास

( ५ ) 'बहुमत ......झगरो-सो'—

मत—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा, इन छः शास्त्रोंके, तथा शैव वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, बौद्ध, जैन आदि अनेक संप्रदायोंके मत।

पंथ—दादूपंथी, कबीरपंथी, निरंजनी, आपा, तपी, उदासी, एकनामी, अकाली, राधास्वामी, स्वामी नारायण, आदि। कोई किसी मत या पंथ को सर्व-प्रधानता देता है, तो कोई किसी को। बेचारा साधक किसे माने, किसे छोड़े! दुविधामें पड़ जाता है। शब्दोंकी खटपटमें कुछ भी हाथ नहीं लगता—

'शब्दारण्य महाजालं चित्तभ्रमण-कारणं।'

( ६ ) 'गुरु......नीको'—गुरुदेवने इस बातको दृढ़तासे हृदयमें बैठा दिया है, कि—

'न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्या न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः, काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः॥' (पद्मपुराण)

( १७४ )

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
सो छाँड़िये* कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥१॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मुद† मंगलकारी॥२॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य‡ प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो§॥४॥

**शब्दार्थ**—कन्त=पति। मतो=मत, सिद्धान्त।

**भावार्थ**—जिसे श्रीराम-जानकी प्यारे नहीं, उसे करोड़ो शत्रुओंके समान

---

* पाठान्तर 'तजिये ताहि।' †पाठातर 'जग; सब।' ‡पाठान्तर 'पुंजी।'
§ इस पदमें, कतिपय प्रतियोंके अनुसार, ये दो चरण और पाये जाते हैं:—
'तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति बिमुख जानि लघु तृनइव तजत न सुकृत डेराहीं॥'

छोड़ देना चाहिए, चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्रिय क्यों न हो ॥१॥ (उदाहरण-के लिए देखिए) प्रह्लादने अपने पिता ( हिरण्यकशिपु ) को, विभीषणने अपने भाई (रावण) को, भरतजीने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलिने अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और व्रज-गोपियोने अपने-अपने पतिको (उन्हे भगवत्प्राप्ति मे बाधक समझकर) त्याग दिया, और ये सब ( स्वजन-त्यागी बुरे नहीं कहे जाते, वरन् ) आनन्द और कल्याणके करनेवाले माने जाते है ॥२॥ जहाँतक मित्र और भली-भाँति माननीय जन हो, उन सबको श्रीरघुनाथजीके ही सबंध और प्रेमसे मानना ठीक है। तात्पर्य यह है, कि यदि वे सब भगवत्-दर्शन और हरि-प्रेममे सहायक हैं, तो उन्हें मानना और पूजना चाहिए, नहीं तो नहीं। जिस अजनके लगानेसे आँख ही फूट जाय, वह अंजन ही किस अर्थका? बस, अब अधिक क्या कहूँ। (इतनेसे ही समझ लीजिए) ॥३॥ हे तुलसीदास ! जिसके कारण श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमे प्रेम हो, वही सब प्रकारसे परम हित-कारी, पूजनीय और प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है। बस यही हमारा सिद्धान्त है ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'प्रह्लाद'—९३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।**

**( २ ) 'विभीषण'—विभीषणको इस कारणसे अपना भाई त्याग देना पड़ा था, कि यह राक्षसोंके बीच में रहकर राम राम स्मरण नहीं कर सकते थे। "जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी" इस प्रकार बेचारे लकामें रहा करते थे। जब रावणने लात मारकर इनका भरी सभामें अपमान किया, तब यह श्रीरघुनाथजीकी शरणमें, रावणसे यह कहकर, चल गये—**

'राम सत्यसंकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मैं रघुनायक-सरन अब, जाउँ, देहु जनि खोरि।' (रामचरितमानस)

**( ३ ) 'बलि'—जब राजा बलिने वामन भगवान्को तीन पैर पृथ्वी देनेका वचन दिया, तब शुक्राचार्यने विष्णु भगवान्का छल समझकर बलिको दान देनेसे बहुत रोका, किन्तु सत्यसंकल्प बलि अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी न हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्यका सत्यकी हत्या होनेके कारण, परित्याग कर दिया।**

**( ४ ) 'व्रज-बनितनि'—महाभाग्यवती गोपियोंके विषयमें तो कुछ पूछिए ही नहीं, वे तो "प्रेमकी धुजा" थीं ! तनिक इनकी लगन तो देखिए—**

'घर तजौं बन तजौ, 'नागर' नगर तजौं,
बसीवट-तट तजौ, काहू पै न लजिहौं।

देह तजौ, गेह तजौं, नेह कहौं कैसे तजौ,
आज काज राम बीच ऐसे साज सजिहौ ॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोकों,
बावरी कहेतें मै हू काहू ना बरजिहौं ।
कहैया-सुनैया तजौ, बाप और भैया तजौ,
दैया ! तजौं मैया, पै कन्हैया नाहि तजिहौं ॥'-नागरीदास

बलिहारी ! बलिहारी !!

( ४ ) 'एतो मतो हमारो'—इस पदसे लोगोंकी यह धारणा हो गई है, कि यह पद मीराबाईके पत्रोत्तर रूप में लिखा गया है। जब मीराबाईको उनके कुटुम्बियोंने बहुत तंग किया, तब उन्होने गोसाईंजीके पास यह पद, पत्रमे लिखकर भेजा—

'स्वस्तिश्रीतुलसी गुनभूषन, दूषन-हरन गुसाईं ।
बारहिंबार प्रनाम करौ, अब हरहु सोक-समुदाई ॥
घर के सजन हमारे जेते, सबनि उपाधि बढाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्ही गिरिधरलाल-मिताई ।
सोता अब छूटत नहि क्योंहूँ, लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात-पिता के सम हो हरि-भक्तन सुखदाई ।
हम कों कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समुझाई ॥'

श्रीतुलसीचरितके अनुसार—

'सो पढ्यो गुसाईं समाचार । जिमि लिखी हुती निज गति बिचार ॥'

अस्तु, "जिनके प्रिय न राम-बैदेही" इत्यादि पद गोसाईंजीने मीराबाई-को लिख भेजा।

उपर्युक्त कथा मनगढ़ंत समझ पड़ती है। मीराबाईका गोलोक-प्रयाण संवत् १६०३ में हो चुका था। उस समय गोसाईंजी अधिक-से-अधिक १२ वर्षके होंगे ! उस समय इनकी प्रख्याति ही क्या होगी ? यह सब देखते हुए यह कथा असत्य जान पड़ती है यह पद साधारणतया सबके लिए लिखा गया है, न कि मीराबाईके लिए। इस युक्तिका पुष्टिकरण "तुलसी-ग्रन्थावली" के तीसरे खण्डमे श्रीयुत पण्डित रामचन्द्रजी शुक्लने भी किया है।

( १७५ )

जो पै रहनि*राम सों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर सम† बृथा ‡ जियत जग माहीं ॥१॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के ।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के ॥२॥
सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इँनारुन § के फल तजत नहीं करुआई ॥३॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥४॥

**शब्दार्थ**—रहनि=लगन । गरुआई=भारीपन, बड़प्पन । इँनारुन=इन्द्रायण, एक कड़ुआ फल । भूति=ऐश्वर्य । सलोने=लावण्यमय, सुन्दर ।

**भावार्थ**—जिसकी श्रीरामचन्द्रजीसे लगन नहीं है, वह इस संसारमें, गदहे, कुत्ते और सुअरके समान वृथा ही अपना जीवन बिता रहा है (मानव-जन्म रामभक्त होनेसे ही सार्थक हो सकता है, अन्यथा नहीं) ॥१॥ यों तो काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, निद्रा, भय, भूख और प्यासका सभीको अनुभव हुआ करता है, सभी इन विषयोंके अधीन है, पर जिस कारणसे देवता भी मनुष्य-शरीरकी प्रशंसा करते हैं, वह तो श्रीसीतारमण रघुनाथजीका प्रेम है, अर्थात् उसमे भगवत्प्रेमकी पवित्रता है ॥२॥ कोई शूरवीर, चतुर, माता-पिताकी आज्ञा पालन करने वाला सुपुत्र, सुन्दर लक्षणवाला तथा बड़े-बड़े गुणोंसे युक्त क्यों न हो, पर यदि वह हरिभजनसे विमुख है, भगवत्परायण नहीं है, तो वह इन्द्रायणके फलके समान है, जो (सब प्रकारसे देखनेमे सुदर होनेपर भी) अपना कड़वापन नहीं छोड़ता ॥३॥ यश, उच्चवंश, सत्कर्तव्य, सुदर ऐश्वर्य, शील और लावण्यमय स्वरूप होने पर भी यदि प्रभु रामचन्द्रजीके प्रति प्रेम नहीं है, तो ये सब गुण ऐसे हैं, जैसे बिना-नमककी साग-भाजी, यद्यपि वह बड़ी अच्छी तरहसे बनाई गई हो ॥४॥

---

* पाठान्तर 'लगन' । † पाठान्तर 'से, सा' । ‡ पाठान्तर 'जाय' ।
§ पाठान्तर 'इंदारुन ।'

टिप्पणी–(१) 'तौ नर… माहीं'–गोसाईंजीने यहाँ भगवद्विमुख जीवोंको बड़ी कड़ी फटकार दिखाई है। आवेश में आकर, सात्विक क्रोधवश उन्होंने ऐसे जीवको गधा, कुत्ता और सुअर तककी उपाधि दे डाली। 'गधा' इस-लिए कि वह जीवनका केवल भार ही ढो रहा है। उसे विद्या, बुद्धि आदिका कुछ भी स्वाद नहीं मिलता। यह सब उसे भारस्वरूप ही है। 'कुत्ता' इसलिए, कि बिना ही कारणके दिनरात भूँकता रहता है, वाद-विवादमें लगा रहता है, दूसरेके धनपर लार टपकाता है। 'सूअर' इस कारणसे कि विषयरूपी भक्ष्य-अभक्ष्य खाता रहता है।

( २ ) 'काम……पी के,'—यह निम्नलिखित श्लोकका छायानुवाद जान पड़ता है—

'आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः ॥'

( १७६ )

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो। एते अनादर हूँ तोहितें*नहातो१
जोरे नये नाते नेह फोकट फीके। देह के दाहक, गाहक जी के ॥२॥
अपने अपने को सब चाहत नीको। मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को ॥३॥
जीव को जीवन, प्रान को प्यारो। सुख हू को सुख राम सो बिसारो ॥४॥
कियो † करैगो तोसे खल को भलो। ऐसे सुसाहब सों तू कुचाल क्यों चलो५
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै। राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै ॥६॥

**शब्दार्थ**—हातो=हटा, अलग हुआ। फोकट=बेकाम। सी=सीताजी। राढ़उ=कायर भी। राउत=वीर।

**भावार्थ**—अरे नीच! तूने श्रीरामचंद्रजी-जैसे सुंदर स्वामीसे न तो प्रेमही रखा और न सम्बन्ध ही किया। यद्यपि तूने उनका इतना अपमान किया, तथापि वह तुझसे अलग नहीं हुए ( तूने उन्हें छोड़ दिया, भुला दिया, पर वह जन-वात्सल्यके नाते तुझसे विलग नहीं हुए, सदा साथ रहे) ॥१॥ तूने नये-नये नाते और नया-नया प्रेम जोड़ा, जो सब व्यर्थ और नीरस ही हैं (उन सबसे तेरा कल्याण होना तो दूर रहा, वरन्) वे (उलटे) तेरे शरीरके जलानेवाले और प्राणोंके गाहक अर्थात् तुझे मार डालनेवाले हैं (प्रिय जनोंके न मिलने अथवा मिलकर बिछुड़

* पाठान्तर 'होत हूँ ते न'। † पाठान्तर 'कियो, करै; करैगो'।

जानेसे प्राणान्त दुःख होता है, जीव उनके कारण और भी संसारमें दिनोंदिन जकड़ता जाता है ) ॥ २ ॥ अपना और अपनोंका सभी भला चाहते हैं, किन्तु दीनों के कल्याणके कारण एक श्रीजानकी-वल्लभ ही हैं ॥ ३ ॥ वह जीवोंके जीवन है, प्राणोंके प्यारे हैं और सुखके भी सुख है, अर्थात् जितने सुख माने जा सकते हैं, उनके मूल कारण हैं। ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको तूने भुला दिया ( आश्चर्य है ! ) ॥ ४ ॥ जिन्होंने तेरा सदा भला किया और जो आगे भी भलाही करेंगे, अरे ! ऐसे भले स्वामी के साथ तूने ऐसा बुरा बर्ताव किया क्यों ? भाव, उनसे विमुख होकर संसारी विषयोंमें क्यों फँसा ? तुझे ऐसा करना उचित नहीं था ॥५॥ हे तुलसी ! यदि तू समझ भर ले, तो मेरी अब बन सकती है, क्योंकि बारबार लड़नेसे कायर भी शूरवीर हो जाता है। साराश यह, अब भी चेत जा। पुरुषार्थ कर, तेरी सारी बिगड़ी करनी बन जायगी। निराश होनेका कोई कारण नहीं ॥ ६ ॥

**टिप्पणी—(१) 'जोरे''' फीके'—स्त्री-पुत्रादिके साथ सम्बन्ध जोड़ना व्यर्थ इसलिए है कि वे समुपस्थित मृत्युसे नहीं बचा सकते, प्रत्युत उनके लिए जितने सुकर्म-कुकर्म किये गये हैं, उन सबका फल भोगना पड़ेगा। अतएव उनके सम्बन्ध वृथा ही है। कहा भी है—**

'गुरुर्न स स्यात्, स्वजनो न स स्यात्, पिता न स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्नपतिर्न स स्यान्नमोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥'

**और फीके तो हई है, क्योंकि जो नित्य नहीं है, परिवर्तनशील है, उनमें सरसता और आनन्द कहाँ ?**

**( २ ) 'जीव''''प्यारो'—रामचरितमानसमें भी यही बात है—**

'प्रान प्रान को, जीवन जी को।'

**गीताके 'पुरुषस्त्वन्यस्तदुच्यते'के अनुसार आत्मा का नियन्ता कोई दूसरा ही है। वही जीवका जीव, आत्माका आत्मा, प्राणका प्राण है। यह वाक्य अद्वैत सिद्धान्तके अनुकूल नहीं कहा जा सकता। यहाँ जीव और ब्रह्मका भिन्नत्व सिद्ध होता है।**

**( ३ ) 'प्रान'—प्राण, मुख्यतः पाँच प्रकारके माने गये हैं, यथा—हृदयमें प्राण, गुदामें अपान, नाभिमें समान, कण्ठमें उदान और सर्व शरीरमें व्यान। इन सबका संचारक परमात्मा है।**

( १७७ )

जो तुम त्यागो राम हौं तौ नहिं त्यागों । परिहरि पाँय काहि अनुरागों ॥१॥
सुखद सुप्रभु तुम सों जग माहीं । स्रवन-नयन मन-गोचर नाहीं ॥२॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया । तुम मायापति, हौं बस माया ॥३॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता । हौं कुपूत, तुम ही पितु-माता ॥४॥
जो पै कहुँ कोउ पूछत बातो । तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥५॥

**शब्दार्थ**—गोचर=इन्द्रियोके विषय । बातो=बात ।

**भावार्थ**—हे रामजी ! यदि आप मुझे त्याग भी देंगे, तो भी मै आपको छोड़नेवाला नहीं । क्योंकि आपके चरणोको छोड़कर मैं और किसके साथ प्रेम करूँगा (संसारमे आपको छोड़कर और कोई प्रेम-पात्र है ही नहीं, क्योंकि सभी अनित्य है, अतएव उनके साथ वियोगका दुःख लगा हुआ है ) ॥१॥ आपके समान सुख देनेवाला सुन्दर स्वामी (आज तक) संसारमे न कानोंसे सुना है, और न आँखोसे देखा है, और न मनसे अनुमान ही किया है । भाव, आप सब प्रकार से अनुपम और अपूर्व हैं ॥२॥ हे रघुनाथजी ! मै तो जड़ जीव हूँ और आप विभु है, ईश्वर है, आप मायाके स्वामी हैं (माया आपके अधीन है) और मैं मायाके वश होकर रहता हूँ ( मायासे आच्छन्न रहता हूँ, अतएव विकारी हूँ ) ॥३॥ मैं तो एक बुरा भिखमंगा हूँ ( बुरा यो, कि जिससे कुछ पाता हूँ उसीके साथ कृतघ्नता किया करता हूँ और आप स्वामी है, बड़े उदार हैं (किसी भी वस्तुके देनेसे कभी आपने इन्कार नहीं किया ) । इसी प्रकार मैं आपका कुपूत हूँ और आप मेरे माता-पिता है । भाव यह है, कि मैं कभी आपकी आज्ञा नहीं मानता, तौ भी आप सदा मेरा पालन-पोषण किया करते है ॥४॥ यदि कहीं कोई भी मेरी बात पूछता ( मेरी ज़रा भी इज्ज़त करता) तो मैं बिनाही मोलका (उसके हाथमे) बिक जाता। (पर किसीने मुझे रखा ही नहीं, क्योंकि पौरुष-हीन हूँ, मुझे रखकर कोई करेगा ही क्या ? ।मेरा तो यदि कोई ग्राहक है, तो श्रीरामचन्द्रजी ही हैं, वही मुझे ख़रीदकर अपना गुलाम बनायँगे ) ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'हौं जड़·······बस माया'—यहाँ, स्पष्टरूपसे जीव और ब्रह्मका अनैक्य सिद्ध कर दिया गया है । जीव 'जड़' इसलिए कहा गया है,**

की उसमें, मायाकृत आवरणके कारण, सदसत् ज्ञानका पूर्ण अभाव रहता है। अणुत्व होनेसे उसका ज्ञान परिमित रहता है। वह स्वपुरुषार्थसे अनन्तके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सोच सकता, अतएव वह, चैतन्य होते भी, जड़ ही है। इसके विरुद्ध परमात्मा ईश है, विभु है, अपरिमित ज्ञानसंपन्न है। मायाके अधीन होनेसे जीवमें सुख-दुःख-प्रभृति द्वन्द्वोंकी संभावना है, किन्तु कैवल्य-रूप ब्रह्म, माया-अपरिच्छिन्न परमात्मा सदा द्वंद्वोंसे विमुक्त है। तत्त्वतः ब्रह्मका अंशस्वरूप ( 'ममैवांशो जीवलोके'—गीता ) होनेके कारण जीवका ब्रह्मके साथ तादात्म्य अवश्य है, किन्तु मायाके प्राबल्यसे, जो माया ब्रह्मके अधीन है, जीव अपना 'स्वरूप' भूल बैठा है। यदि माया मिथ्या होती, तो ब्रह्म-स्वरूप जीवपर उसका कुछ प्रभाव न पड़ता; किन्तु ऐसा नहीं है। उसकी भी कुछ सत्ता है, चाहे वह अज्ञानावस्थाहीकी क्यों न हो; वह जीवको भुलावेमें डालनेके लिए तो पर्याप्त है।

( २ ) 'कुजाचक'—परमात्मासे यह जीव ऐहिक वैभव माँगता रहता है। पुत्र-कलत्रादिके याचनेमें मग्न रहता है, कभी भूलकर भी, मुक्ति नहीं माँगता। अतएव यह 'कुयाचक' है।

( ३ ) 'हौं कपूत······माता'—सो तो ठीकही है, क्योंकि—

'कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति।' —शंकराचार्य

( ४ ) 'जो··· बिकातो'—जब दुनियाँभरमें घूम चुका और किसी भी काम का न निकला, तब आपके द्वारपर आया, क्योंकि यही एक बाजार ऐसा है, जहाँ रद्दीसे भी रद्दी चीज़ बिक जाती है। और 'यह दरबार दीनको आदरै' यह भी सुन चुका था, अतएव मुझे पूरा विश्वास हो गया, कि यहाँ अवश्य मेरा आदर होगा, अब इधर-उधर भटकनेकी जरूरत नहीं है।

( १७८ )

भयेहूँ उदास राम, मेरे आस रावरी।
आरत स्वारथी सब कहै बात बावरी ।। १ ।।
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए।
प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए ।। २ ।।
मीन तें न लाभ-लेस पानी पुन्य पीन को।
जल बिनु थल कहा मीच-बिनु मीन को ।। ३ ।।
बड़े ही की ओट, बलि, बांचि आये छोटे हैं।
चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ।। ४ ।।

यहि दरबार भलो दाहिनेहु-बाम को।
मोको सुभदायक भरोसो राम नाम को ॥ ५ ॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ, नीकी है।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—जीवन=पानी, जल। पीन=पुष्ट। मीच=मौत। बाँचि आये=बच आये हैं। खरा=चोखा, असली। दाहिना=अनुकूल। बाम=प्रतिकूल।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! आप भले ही मुझसे निरपेक्ष हो जायँ, पर मुझे तो आपहीकी आशा है (मैं आपसे उदासीन न हूँगा)। जो दुखी अथवा स्वार्थी होते हैं, उनका सब कहना-सुनना पागलोंका-सा प्रलाप है, वे सोच-विचारकर बात नहीं करते (वही दशा मेरी है) ॥ १ ॥ जो मेघ पानीका दान करता है, सारे प्राणियोंकी रक्षा करता है, उसे किस वस्तुकी कमी है? किन्तु प्रेमका (अटल) नियम निबाहनेके कारण पपीहेकी प्रशंसा होती है। भाव यह है, कि मेघ पपीहेको किसी स्वार्थवश स्वातिका जल नहीं देता, केवल उसका प्रेम नेम देखकर ही वह ऐसा करता है, किन्तु उसका प्रेम इतना बढ़ा-चढ़ा है, कि देनेवालेकी तो तारीफ नहीं होती, वरन् लेनेवाले पपीहेकी हुआ करती है ॥२॥ पवित्र और पुष्टिकारी जलको मछलीसे लेशमात्र भी लाभ नहीं है, पर (सोचिए तो) मछलीके लिये, जलको छोड़कर, कहीं कोई ऐसा भी स्थान है, जहाँ वह अपने प्राण बचा सके? तात्पर्य यह है, कि वह जलको छोड़-कर कहीं भी जीवित नहीं रह सकती, जलपर उसका अगाध प्रेम-नेम है, और इसी कारणसे उसकी प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥ मैं आपकी बलैया लेता हूँ, देखिए, बड़ोंके बल-भरोसे (सदा) छोटे बचते आये हैं, जहाँ-तहाँ खरे सिक्कोंके साथ खोटे भी चला करते हैं। भाव यह है, कि आपके सच्चे भक्त असली सिक्के हैं, और मैं हूँ एक पाखण्डी, नकली सिक्का, किन्तु वैष्णव-भेष धारण करने तथा सत्संगमें रहनेसे मैं भी उनके साथ संसार-सागर पार कर जाऊँगा ॥ ४ ॥ आपका यह दरबार ही कुछ ऐसा है, कि यहाँ भले-बुरे सभीका भला होता है, भले ही कोई आपके अनुकूल या प्रतिकूल हो। (जैसे बिभीषण सम्मुख होने से तथा रावण विमुख होनेसे मुक्त हुआ)। और हे रघुनाथजी! मुझे तो केवल आपके श्रेयस्कर नामका ही भरोसा है ॥५॥ हे नाथ! कह देनेसे सब बात बिगड़ जायगी, (क्योंकि बावला हूँ, आर्त्त हूँ,

स्वार्थी हूँ ) इससे मनकी मनहीमें भलीभाँति रखना अच्छा है; और तुलसीके जीकी, हे कृपानिधान, सब जानते ही हैं (क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं—आपसे कुछ छिपा नहीं है ) ॥६॥

**टिप्पणी**—(१) 'चातक सराहिए'—उदारता तो मेघकी है, पर प्रशंसा चातककी की जाती है। इसी प्रकार आप तो मुझे निहाल करेंगे और तारीफ मेरी होगी। यह आपकी अनन्य भक्तिकी महिमा है, और कुछ नहीं। और यह अनन्यता आपहीकी कृपासे मिलती है। अतएव जीवमें जो कुछ भी पौरुष हैं उसके मूलकारण, नाथ! आप ही हैं। चातकके अनन्य प्रेमके लिए १६१ पद की पहली टिप्पणी देखिए।

( २ ) 'जल बिनु·······मीन को'—क्योंकि—

'सर सूखे पंछी उड़ै, औरै सरनि समाहिं।
दीन मीन बिनुपंख के, कहु 'रहीम' कहँ जाहिं॥' —रहीम

इसी अनन्य निष्ठाके कारण दीन मीनकी प्रशंसा हुआ करती है। इसी प्रकार आपको छोड़कर मुझे कहीं ऐसा ठौर नहीं है, जहाँ मैं कराल-कालके गालमें न जाऊँ। रहता तो मैं अपने स्वार्थवश आपकी शरणमें हूँ, किन्तु लोग इसे अनन्यता कहते हैं और मेरी तारीफ करते हैं! यह आपही की कृपा है।

( ३ ) 'बड़े······छोटे हैं'—जैसे, अजामेल धोखेसे आपका नाम पुकारकर यम-यातनासे बच गया। ২৩ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ४ ) 'कहत नसानी ह्वै है'—क्योंकि "आरत स्वारथी सब कहै बात बावरी।" यही बात रामचरितमानसमें लिखी मिलती है—

'बात कहौं सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥'

महाकवि कालीदास भी लिख गये हैं—

'कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु। —(मेघदूत)

### राग बिलावल

( १७६ )

कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, को सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन* की॥१॥

---

* पाठान्तर 'संगहीन'।

जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार के अधार गुनगन तेरे हैं ।।२।।
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दोष-कोष पोसे, तोसे माय जायो को ।।३।।
मोसे क्रूर कायर कुपूत कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया गीध स्राध के ।।४।।
तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि, बनैगी।
प्रभु की बिलंब-अंब दोष-दुख जनैगी ।।५।।

**शब्दार्थ**—अंगहीन=निःसहाय। खगराज=गरुड़से तात्पर्य है। दोष-कोष=अपराधोंका भाण्डार,महान् अपराधी। पोसे=पोषण किया, पालन किया। जायो=जना, पैदा किया।

**भावार्थ**—कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? कौन इस गरीबकी सुनेगा ? जिसे कहीं ठौर-ठिकाना नहीं, जो सब तरह से निःसहाय है, उसकी गति, तीनो लोक मे एक तू ही है (केवल तूही उसे शरणमे ले सकता है) ।।१।। यों तो दुनियामें घर-घर "जगदीश" पाये जाते है (सभी अपनेको कहते हैं, कि दुनिया भरके जो कुछ हैं सो हमी हैं !, ) पर जिसे कोई सहारा नहीं उसके लिए एक तेरा ही गुणावली आधार है। भाव यह, तेरेही गुणोंका गान कर-कर संसार-सागरको पार करता है ।।२।। हाथी छुड़ानेके लिए गरुड़को छोड़कर कौन दौड़ा था ? और जिसने मुझ जैसे महान् अपराधीका भी पालन पोषण किया, ऐसा, तुझे छोड़कर, जननीने किसे जना है ? किसी माईके लालमें यह बूता न था, जो मुझ-सरीखे घोर पापीका उद्धार कर देता ।।३।। मुझ-जैसे दुष्ट, कायर, कुपूत और आधी कौड़ी की कीमतवालो को भी, हे जटायुके श्राद्ध करनेवाले ! तूने बहुमूल्य बना दिया, वेशक़ीमती कर दिया ( मुझे पहले कोई फूटी कौड़ीके बराबर भी नहीं समझता था, पर आज, तेरी कृपासे, मैं संसारमे पूज्य माना जाता हूँ) ।।४।। बलिहारी ! तुलसीकी (बिगड़ी हुई) करनी तेरेही बनाये बन सकती है, ( यदि तू तनिकही कृपा-दृष्टि करदे तो )। तेरी विलम्बरूपी माता दोष और दुःख उत्पन्न करेगी। भाव यह है, कि यदि तूने मुझे निहाल करनेमे देर लगाई, तो फिर मुझे दोष और दुःखके सिवाय मिलेगा ही क्या ? अतएव शीघ्रही मेरी करनी बना दे ।।५।।

**टिप्पणी—(१) 'अंगहीन'-अंगहीन पर यह दोहा बहुत ठीक घटता है-**

'नहिं विद्या, नहिं बाहुबल, नहिं खरचन को दाम ।
'तुलसी' मोसे पतित की, तुम पति राखो राम ।।'

**( २ ) 'गजराज.......धायो को'—निम्नलिखित कवित्त देखिए—**

'दीन भयो गजराज हीन भयो बल हू ते,
टूटि गयो मान, टेरयो 'हरी हरी' करिकै ।
पौढे प्रभु रमा—सग पीतपट राते रंग,
सोये उठि धाये नाथ नैन आये भरिकै ॥
आधीरात धाये नाथ चक्र सुदर्सन लिये,
काटि दीनो ग्राहफद जरी-जरी करिकै ।
'तुलसी' त्रिलोकी-नाथ, भक्तनिके सदा साथ,
गरुड़ छाड़ि धाये नाथ 'करी करी' करिकै ।।'

**( ३ ) 'करैया गीध-साधके'—४३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।**

**( ४ ) 'मोसे कूर...बहुमोल'—कवितावलीमें भी यही बात ज्यों-की-त्यों दोहराई गई है—**

'राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ।'

( १८० )

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो ।
राय दसरथ के तू उथपन-थापनो ।।१।।
साहिब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ।।२।।
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ।।३।।
कौन कियो समाधान सनमान सीला को ।
भृगुनाथ सो रिषी जितैया कौन लीला को ।।४।।

मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-बेदपाल को।
बोल को अचल, नत करत निहाल को ॥५॥
संग्रही सनेहबस अधम असाधु को।
गीध सबरी को कहौ करिहै सराधु को ॥६॥
निराधार को अधार, दीन को दयालु को।
मीत कपि-केवट रजनिचर-भालु को ॥७॥
रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे है।
महाराज सुजन, समाज ते बिराजे हैं ॥८॥
साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिंधु, ढील तुलसी की बार भई है ॥९॥

**भावार्थ**—बलिहारी! हे नाथ, एक बार मेरी ओर देखकर मुझे अपना लीजिए। हे श्रीदशरथ-किशोर! आप उखड़े हुए जीवोंको भी फिरसे जमानेवाले है, जिनका सर्वस्व हरण हो चुका है, उन्हें भी उनके पदपर स्थापित करनेवाले हैं ॥१॥ आपके समान कोई दूसरा शरणागतोका पालनेवाला एवं समर्थ स्वामी नहीं है। आपका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है। भाव, जिनके पूर्व संस्कारोंमे सुखका नाम भी नहीं था वह भी आपके नामके प्रभावसे भक्ति, आनन्द, ज्ञान आदि धान्यसे संपन्न हो जाते है ॥२॥ आपके वचन और कर्म मेरे मनमे जम गये हैं (मुझे यह दृढ़ विश्वास हो चुका है, कि शरणागतोंका उद्धार और दीनोपर दया करना आपका स्वभाव है)। और मैंने उन लोगोको भी सुन और समझ लिया है, जो दुनियामें बड़े कहे जाते हैं ॥३॥ उनमेसे किसने पाषाणी अहल्याको शान्ति प्रदानकी, और किसने सहज ही परशुराम-जैसे महाक्रोधी ऋषिपर विजय प्राप्त की? (किसीने नहीं) ॥४॥ माता, पिता और भाईके लिए किसने लोक और वेदकी मर्यादाका पालन किया? किसकी बात अटल रही? और प्रणाम करते ही प्रणतको किसने निहाल कर दिया? (केवल एक श्रीरघुनाथजीने ही) ॥५॥ प्रेम के अधीन होकर किसने नीचो और दुष्टोंको इकट्ठा किया, अपनाया? और गीध और शबरीका पिता-माताकी नाईं कौन श्राद्ध करेगा? ॥ ६ ॥ जिनका कि कहीं कोई आश्रय नहीं है; उनका आधार कौन है? दीनोपर कृपा करनेवाला कौन है? और

बन्दर, निषाद, राक्षस तथा रीछोंका मित्र कौन है ? ( सिवा रघुनाथजीके दूसरा कौन हो सकता है ) ॥७॥ हे महाराज ! आपने जितने ग़रीब, मूर्ख और नीचों पर कृपा कर दी है, वे सब साधुओंके समाजमें शोभित हो रहे हैं, सन्त समाजमें उनकी भी गणना हो रही है ॥८॥ यह आपकी सच्ची-सच्ची बड़ाई कही गयी है, ( एक अक्षर भी ) बढ़ाकर नहीं कहा है। किन्तु, हे शीलके समुद्र ! तुलसी दासके ही लिए इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ? ( यही एक आश्चर्य है ! आपकी विरुदावलीके अनुसार तो अबतक इसकी भी सुनाई हो जानी चाहिए थी ) ॥९॥

**टिप्पणी—(१) 'उथपन-थापनो'—जैसे, सुग्रीव और विभीषणको, जो अपने-अपने भाईके साथ द्रोह करनेसे जड़से उखड़ चुके थे, फिरसे स्थापित किया, उन्हें राज्यपद दिला दिया।**

**(२) 'सीला'—'सिला' का अपभ्रंश है। यह शब्द विकृत हो जाने से भ्रान्त-सा हो गया है। बस, आर्ष-प्रयोग ही मानना पड़ेगा।**

**(३) 'भृगुनाथ सो'—'सा' ( सारिखे ) से परशुरामजीके अपरिमेय बल, वीर्य और तेजकी ध्वनि निकलती है।**

**(४) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**(५) 'सबरी'—१०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**(६) 'न बढ़ि कहि गई है'—इस कथनमें अत्युक्ति या कवि-चमत्कारका लेशमात्र भी नहीं है, यह हृदयके सच्चे उद्गार हैं, चाटुकारिता नहीं है।**

( १८१ )

केहू भाँति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिए।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥ १ ॥
सहस सिला तें अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ॥ २ ॥
पद राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥ ३ ॥
करम-कपीस बालि-बली-त्रास-त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥ ४ ॥

महा मोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं ।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहुँ ताप तयो हौं ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—टेक—सहारा, बल । पद-राग=चरणोमे अनुराग । जाग=(याग)यज्ञ । कौसिक=विश्वामित्र । भियो हौं=डरगया हूँ । तयो हौं=जल रहा हूँ।

**भावार्थ**—हे कृपासागर ! किसी भी तरह मेरी ओर देखो । मुझे कोई और ठिकाना नहीं है, एक तुम्हारा ही आसरा है ( यदि तुम्हींने छोड़ दिया तो, फिर भला, किसका होकर रहूँगा ? ) ॥ १ ॥ मेरी बुद्धि हजार शिलाओसे भी अधिक जड हो गई है । (अब मैं उसे चैतन्य करनेके लिए तुम्हे छोड़कर) और किससे कहूँ ? पत्थरोंको किसने मुक्त किया है । ( तुम्हींने; बस इतने हीसे समझ-लो । जैसे तुमने एक पाषाणीका उद्धार कर दिया था, वैसे ही मेरी जड बुद्धिको भी शुद्ध बना दो, क्योकि जिससे जो काम बन पडता है, वही उसे कर सकता है । पत्थरोका तारना तुम्हारे ही हिस्से पड़ा है ) ॥२॥ जिस प्रकार महर्षि विश्वा-मित्रने ( तुम्हारे रक्षणमे निर्विघ्न ) यज्ञ किया था, उसी प्रकार मै भी एक यज्ञ करना चाहता हूँ । वह यज्ञ तुम्हारे चरणोमे भक्ति प्राप्त करना है । किन्तु कलिके पापरूपी दुष्टोको देखकर मै बहुत ही भयभीत हो रहा हूँ ( कि कही ये सारा किया कराया नष्ट-भ्रष्ट न कर दें, जैसे मारीच, ताड़का आदिने विश्वा-मित्रका यज्ञ विध्वस्त कर दिया था ) ॥ ३ ॥ कर्मरूपी बन्दरोके बलवान् राजा बालिसे मै बहुत डर रहा हूँ, सो हे अनाथोंके नाथ ! जैसे तुमने बालिको मार-कर सुग्रीवको अभय कर दिया था, उसी प्रकार मुझे भी अपनी बाहुकी छायामें बसा लो, मुझे भी कुटिल कर्मोसे बचाकर अपनालो ॥४॥ जैसे रावणने विभी-षणको प्रहार किया था, उसी प्रकार मुझे भी यह बडा भारी मोह मार रहा है;हे तुलसीके स्वामी ! मुझे बचालो, मै संसारके तीनों तापोसे जला जा रहा हूँ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'सिला'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए ।**

**(२) 'त्राहि'—संस्कृतमें 'त्रा' धातु आत्मनेपदी है, जिसका रूप लोट्में 'त्रायस्व' होता है । किन्तु हिन्दीमें यह धातु परस्मैपदी मान ली गयी है और प्रायः सभी कवियोंने 'त्राहि' रूप ही लिखा है ।**

**(३) 'तिहूँ ताप'—दैहिक, भौतिक और दैविक ।**

( १८२ )

नाथ, गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो ।
राम रीझिबे को जानो भगति न भाउ सो ॥ १ ॥
करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउँ सो ।
सुधन न सुतन न सुमन सुआउ सो ॥ २ ॥
जाँचो जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो ।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥ ३ ॥
बाप, बलि जाउँ, आपु करिये उपाउ सो ।
तेरेही निहारे परै हारेहू सुदाउ सो ॥ ४ ॥
तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो ।
तेरेही बुझाये बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥ ५ ॥
नाम-अवलंबु-अंबु दीन मीन राउ सो ।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥ ६ ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो ।
तुलसी सुसाहिबहिं दियो है जनाउ सो ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**—ठाकुर=मालिक । सुआउ=(सुआयु) बड़ी उम्र । अमिय=अमृत । हिआउ=साहस । अबुझ=जो समझमें न आवे । जीह=जीभ । जनाउ=सूचना ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! आपकी गुणावली सुनकर मेरे चित्तमें आनन्द-सा होता है, किन्तु हे रघुनाथजी ! जिस भक्ति और भावसे आप प्रसन्न होते हैं, उसे मै नहीं जानता (जो जानता होता,तो मुझे आपके सान्निध्यसे वह परमानंद प्राप्त ही न हो गया होता ? ) ॥१॥ कारण कि, न तो मेरी करनी अच्छी है, न प्रकृति अनुकूल है, और न समय अच्छा है (कलियुग है), न मालिक है, न कहीं कोई ठौर-ठिकाना है, न अधिक धन है, न नीरोग शरीर है ( कि जिससे योगाभ्यास आदि करूँ), न निश्चल चित्त है, और न बड़ी भारी आयु ही है । साराश,भगवत्प्राप्तिका एक भी साधन मेरे पास नहीं है । सब प्रकारसे पंगु हूँ ॥२॥ जिससे मैं ( प्यासके मारे ) पानी माँगता हूँ वह उलटा मुझसे अमृत पिलानेके

लिए कहता है। मैं अपनी बात किससे कहूँ? कहनेकी किसीसे भी हिम्मत नहीं पडती (मनकी मनहीमें है)॥३॥ हे पिताजी! बलिहारी! आप कुछ ऐसा उपाय करवा दीजिए (कि जिससे यह सारी असमंजस दूर हो जाय) क्योंकि आपके देख देने मात्रसे हारनेपर भी अच्छा दाँव हाथ लग जाता है। भाव, बड़े-बड़े पापी भी आपकी कृपासे स्वर्गके अधिकारी हो जाते हैं॥ ४॥ आप यदि सुझा दें तो अदृष्ट वस्तु भी दीखने लगती है, और आपके समझा देनेपर अगोचर पदार्थ अनुभवमे आ जाते हैं, इसलिए जो मेरी समझमे नही आ रहा है उसे समझा दीजिए॥ ५॥ देखिए, आपके नामका जो आधार है, वही तो पानी है और उसमे रहनेवाला मैं दीन मीनोका राजा हूँ, बडा भारी मत्स्य हूँ। जो मैं अपने स्वामीसे कपटभरी बात कहता होऊँ, तो जीभ जल जाय॥ ६॥ मेरी करनी सभी तरहसे बिगड़ चुकी है, केवल एक ही अच्छी बात रह गयी है, और वह यह, कि तुलसीदासने करनीकी इत्तिला अपने मालिकको वक्तपर दे दी है, नहीं तो फिर कोई आशा संसार-सागरसे बचनेकी नहीं थी॥ ७॥

**टिप्पणी—(१) 'करम····सुभाउ'—एक तो कुटिल कर्म, तिसपर नीच स्वभाव, तिसपर कलियुग। इतना ही नहीं, वरन् सब तरहसे अनाथ भी हूँ, कोई धनी-धोरी नहीं, ठौर-ठिकाना नहीं, महाकंगाल, आजन्म रोगी और चंचल चित्त! यह भी नहीं, कि आयु बड़ी हो जिससे कुछ-न कुछ साधन ही सध जाय। अब भला बताइये कि मेरा इलाज क्योंकर हो सकता है?**

'ग्रह-गृहीत पुनि बातबस, तापर बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहौ कौन उपचार॥' (रामचरितमानस)

**(२) 'जाँचो········पिआउ-सो'—इसका तात्पर्य यह है, कि जब मैं किसी से भूख-प्यासके मारे कुछ माँगता हूँ, तब वह मुझे सिद्ध समझकर मुझसे उलटा धन-संपत्ति, स्त्री-पुत्र आदि माँगा करता है! मैं इन लोगोंके कारण जैसे-तैसे अपना जीवन भी नहीं बिता सकता, सभी मेरे पीछे पड़े रहते हैं। यह लोकमान्यता मुझे बहुत खलती है, क्योंकि—**

'लोक-मान्यता अनल सम, कर तप-कानन-दाह।'

**(३) 'तेरे ही····सुदाउ सो'—क्योंकि भरतजीने भी यही कहा है—**

'हारेहु खेल जितायेहु मोहीं।' —(रामचरितमानस)

(४) 'मीन-राउ'—बड़ा मत्स्य तालाबमें नहीं रह सकता। उसका निवास-स्थान तो समुद्र ही है। इसी प्रकार मैं केवल राम-नामके ही सहारे जीवित हूँ, मुझे अन्य साधन कृतकृत्य नहीं कर सकते।

## राग आसावरी

( १८३ )

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै,
ऐसी बिरुदावली बलि बेद मनियत है ॥१॥
गीध को कियो सराध, भीलनी को खायो फल,
सोऊ साधु-सभा भली-भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत,
जोग ग्यान हूँ तें गरू[1] गनियत है ॥२॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलि हूँ काल,
महिमा समुझि उर अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबन्धु द्वारे हठ ठनियत है ॥३॥

**शब्दार्थ**—सराध=श्राद्ध। भनियत है=कहते हैं। रावरे आदरे=आपके द्वारा आदर किये गये (लोग)। गरू=बड़े।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! प्रीतिकी रीति आपही भलीभाँति समझते हैं। बलिहारी! वेद आपकी विरुदावलीको इस प्रकार मान रहे है कि आप बड़ोंका बड़प्पन, अभिमानियोंका गर्व एवं छोटेकी छोटाई अर्थात् अकिंचन दीन जनों-की दीनावस्था दूर कर देते हैं ॥ १ ॥ आपने जटायु गीधको पिंडदान दिया और शबरीके (जूठे) बेर खाये, यह बात भी सन्त-समाजमे अच्छी तरह बखानी जाती है जिस किसीने भी आपसे आदर पाया, उसे लोक और वेद दोनों ही आदरकी दृष्टिसे देखते है। और उसका भाव, योग और ज्ञानसे भी, बड़ा माना जाता है (बड़े-बड़े योगी और ज्ञानी भी उसके आगे तुच्छ हैं) ॥२॥ हे कृपालु! आपकी कृपासे इस कराल कलिकालमे भी आपकी महिमा समझकर

(१) भारी, गम्भीर। महत्त्वपूर्ण।

हृदयमें धारण करता हूँ। यद्यपि तुलसी पराधीन हो इससे अनरस अर्थात् आपके प्रेमानन्दसे विमुख हो रहा है, तथापि हे हरे! वह आपके द्वारपर सत्याग्रह किये बैठा है (बिना आपकी कृपा-दृष्टि पाये वह हटने का नहीं ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'प्रीति'—यह रीति छः प्रकारकी है—**

'ददाति, प्रतिगृह्णाति, गुह्यं वक्ति च पृच्छति ।
भुङ्क्ते, भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥'

**(२) 'बड़े····दूरि करै'—जो उचित अवस्थासे बढ़ गया है, उसे छोटा कर देते हैं और जो उचित अवस्थासे गिर गया है, उसे उठा देते हैं, सारांश, सबको एक दृष्टिसे देखते है, वैषम्य कहीं भी नहीं रहने पाता ।**

**(३) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।**

'दसरथ तें दसगुन भगति-सहित तासु करि काज ।
सोचत बधु समेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराज ।।'

**(४) 'भीलनी'—शबरी; १०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।**

'पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-विरहित भये ।
फल-फूल अंकुर-मूल धरे सुधारि भरि दौना नये ।।
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु लये ।
फल चारिहूँ फलचारि दहि परचारि फल सबरी दये ।।'

**(५) 'रावरे····आदरियत'—कहा भी है—**

'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करहिं सब कोई'—(रामचरितमानस)

**(६) 'योग·······गनियत है'—प्रमाण लीजिए—**

'योगिनामपि सर्वेषा, मद्गतेनातरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो माम्, स मे युक्ततमो मतः ।।'—(भगवद्गीता)

**(७) 'पराये-बस'—मन और इन्द्रियोंके अधीन ।**

## (१८४)

राम-नाम के जपे जाइ जिय की जरनि ।
कलिकाल अपार उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ॥१॥

करम-कलाप परिताप, पाप-साने सब,
ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दंभ, लोभ, लालच, उपासना बिनासि नीके,
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥२॥
जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ग्यान,
बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटि,
सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥३॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि।
राम-नाम को प्रताप, हर कहैं जपैं आपु,
जुग जुग जानैं जग बेदहूँ बरनि ॥४॥
मति राम-नाम ही सों, रति राम-नाम ही सों,
गति राम-नाम ही की बिपति-हरनि।
राम-नाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक,
तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥५॥

**शब्दार्थ**—अपाय=व्यर्थ, अनिष्टरूप। तरनि=सूर्य। कलाप=समूह। फोकट = वृथा, किसी कामका नहीं। करनि = करनी, कर्त्तव्य। ढरैंगे = कृपा करेंगे।

**भावार्थ**—मनकी जलन एक राम-नाम ही जपनेसे जायगी (मन शान्त होगा)। इस कलियुगमे और जितने-कुछ साधन हैं, वे सब व्यर्थसे जान पड़ते हैं। वे ऐसे हैं, जैसे अँधेरा दूर करनेके लिए चित्रांकित सूर्य! (जैसे चित्रमें लिखा सूर्य अंधकार नष्ट नहीं कर सकता, उसी प्रकार कलियुगमें किये गये साधन सिद्ध नहीं होते, फिर उनके बूतेपर संसारसे पार होना तो असंभव ही है) ॥१॥ कर्मोंका तो समूह-का-समूह है (कर्मकाण्ड शास्त्रोंमें अगाध भरा पड़ा है) परन्तु, वह सब दुःख और पापोंमे लिप्त हैं (पाप-संतापके कारण एक भी सत्कर्म विधि-विहित पूर्ण नहीं हो पाता)। कर्मोंका करना ऐसा है, जैसे किसी

वृक्षमे बड़े ही सुन्दर फूल फूले, पर फल किसी कामके न हो। भाव यह है, कि यज्ञ, योग प्रभृति साधन देखने-सुननेमे तो सुसाध्य और सरल समझ पड़ते हैं, पर दुःसाध्य और दुष्कर हो जाते हैं, बीचहीमे भ्रष्ट हो जाते हैं, फल कुछ भी हाथ नहीं आता। पाखण्ड, लोभ और लालचने उपासनाको चौपट कर दिया है। और, मोक्ष पेट भरनेका साधन हो गया है। (जिन कर्मोंसे मुक्ति प्राप्त की जानी चाहिए उनसे 'पेटराम' की पूजा की जाती है) ।।२।। न तो योग ही बनता है, न समाधि ही उपाधि-रहित है (उसमे भी संकल्प-विकल्प उठा करते है), वैराग्य और ज्ञान बड़ी-बड़ी बाते मारने और ऊपरी दिखावेके लिए ही रह गये हैं। करनी कुछ भी नहीं, कथनी है। कपट-भरे करोड़ों बुरे-बुरे मार्ग दिखाई देते हैं। कहना और रहन-सहन सभी खोटा हो गया है (न किसीकी बात ही मानने योग्य है और न आचरण ही अनुकरणीय है) सभी अपने-अपने आचरणकी तारीफ करते है, सभी अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझ रहे है ।।३।। मालूम है, शिवजी गगाके किनारे काशीकी पवित्र भूमिपर मरते समय जीवको क्या उपदेश देते है? वह श्रीराम-नामके प्रतापका वर्णन करते हैं। दूसरोंसे कहते हैं और स्वयं भी जपते हैं। अनेक युगोंसे इसे ससार जानता है और वेद भी कहते चले आये हैं। साराश, राम-नामकी महिमा जगत् उजागर है, किसीसे छिपी नहीं है ।।४।। राम-नामहीमे अपनी बुद्धिको लगाना चाहिए और राम-नामहीसे लगन लगानी चाहिए, क्योंकि एक राम-नामहीकी शरणागति जीवकी विपत्तियाँ दूर करनेवाली है (अन्य किसी साधनसे जन्म मरण नही छूट सकता)। हे तुलसी! यदि तू राम-नाम पर विश्वास किये रहेगा और सदा अपना प्रेम दृढ़ बनाये रहेगा, तो श्रीरघुनाथजी कभी-न-कभी अवश्य ही अपने दयालु स्वभावसे तुझपर कृपा करेंगे (इसमें लेशमात्र भी सदेह नहीं है) ।।५।।

**टिप्पणी—(१) 'बेष···करनि'—पाखण्ड ही पाखण्डका साम्राज्य है—**

'करनी बिनु कथनी कथै, अज्ञानी दिन-रात।
कूकर ज्यो भूकत फिरै, सुनी-सुनाई बात ।।' —कबीरदास

**(२) 'मरत·······बरनि'—ध्यानसे सुनिए—**

'पेयं-पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं,
ध्येयं-ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।

जल्पन्-जल्पन् प्रकृति-विकृतौ प्राणिना कर्णमूले,
वीथ्या-वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशी-निवासी ।।' (काशीखड)

(३) 'ढरनि'—सहज-स्वभाव, जिस स्वभाव से, जिस कारुणिक भावसे शबरी, गीध, अजामेल आदि पापी मुक्त कर दिये गये हैं।

( १८५ )

लाज न आवत * दास कहावत।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ।। १ ।।
सकल संग तजि भजत जाहि, मुनि जप तप जाग बनावत।
मो-सम मंद महाखल † पाँवर, कौन जतन तेहि पावत ।। २ ।।
हरि निरमल मलग्रसित हृदय, असमंजस मोहि जनावत।
जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥ ३ ।।
जकी सरन जाइ कोबिद दारुन त्रयताप बुझावत।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत ।। ४ ।।
भव-सरिता कहँ नाउ सन्त, यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिनसों हरि परम बैर करि, तुम सों भलो मनावत ॥ ५ ।।
नाहिंन और ठौर मो कहँ, ताते हठि नातो लावत।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि ! तुलसिदास गुन गावत ॥ ६ ।।

**शब्दार्थ**—भावत=अच्छा लगता है। सग=आसक्ति। जाग=याग, यज्ञ। असमंजस=दुविधा। कंक=गीध। सावत=ईर्ष्या। नाव=नौका।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी ! मुझे (आपका) दास कहलाये जाने मे शर्म भी नहीं आती। जो आचरण आपको अच्छा लगता है, उसे मैं सहर्ष छोड़ देता हूँ। ( संत-स्वभाव छोड़ देनेमें मुझे पश्चात्ताप भी नहीं होता है। किन्तु आश्चर्य है ! इतनेपर भी मै आपका दास बनता हूँ ) ।।१।। सब प्रकारकी विषयासक्ति छोड़कर जिसे मुनि भजते हैं, जिसके लिये जप, तप और यज्ञ करते हैं, उस प्रभुको भला मुझ-जैसा मूर्ख, बड़ा भारी दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है ? मुझे तो भगवत्प्राप्ति असम्भव ही है ।। २ ।। भगवान् तो विशुद्ध हैं और मेरा

* पाठान्तर 'लागत'। † पाठान्तर 'महाबल' इसका पदच्छेद 'महाप्रबल' किया गया है।

हृदय पापपूर्ण,महामलिन। मुझे यह असमंजस जान पड़ती है कि जिस तालाब मे कौए, गीध, बगुले और सूअर रहते हैं, वहाँ हंस क्यों आने लगे ? तात्पर्य यह, कि मेरे महामलिन हृदयमे भगवान् रामचन्द्र नहीं आवेंगे। वह तो उन्हीं मुनियोके हृदय-मन्दिरमे विहार करेंगे, जिन्होने ज्ञान,वैराग्य,भक्ति आदि साधनों द्वारा अपने हृदयको स्वच्छ कर रखा है ॥३॥ जिसकी शरणमे जाकर बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष सासारिक कठिन तीनों तापोंको शान्त कर देते हैं, दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखोंसे मुक्त हो जाते हैं, वहाँ भी जानेपर मुझे अहंकार, अज्ञान और लोभ और भी अधिक सतावेंगे, क्योंकि सौतियाडाह स्वर्गमें भी नहीं छूटता वहाँ भी साथ लगा फिरता है। भाव, मुझे कहीं शान्ति मिलनेकी नहीं ॥ ४ ॥ मैं यह दूसरोको कहकर समझाता फिरता हूँ, कि "देखो, संसाररूपी नदीके पार जानेके लिए सन्तजनही नौका हैं"—किंतु हे हरे ! मैं ( स्वयं ) उनसे शत्रुता करके आपसे कल्याणकी इच्छा रखता हूँ, ( यह सोचता हूँ, कि आप सन्त-द्रोह करनेसे मुझपर प्रसन्न होंगे ) ॥५॥ मैं सन्त-द्रोही होनेके कारण आपके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लायक तो नहीं हूँ, ( पर करूँ क्या, लाचारी है ) मुझे कहीं और ठौर-ठिकाना तो हई नहीं, इसीसे ज़बरदस्ती ही आपसे रिश्ता जोड़ता फिरता हूँ और आपका बनना चाहता हूँ। हे दाताओंमें श्रेष्ठ रघुनाथजी ! यह तुलसीदास आपके गुणोंका गान कर रहा है, इसे अपना लीजिए (मेरी भलाई-बुराईको ताकमें रख दीजिए और अपने सहज स्वभावसे कृपा कर दीजिये)॥६॥

**टिप्पणी—(१) 'सो आचरण'—जैसे, वैराग्य, विवेक, शान्ति, क्षमा, समता, श्रवण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति और जीवमात्रपर दया है।**

**(२) 'क्यों मराल''''आवत'—जिस सरोवरमें श्रीरामरूपी हस विहार करते हैं, उसका वर्णन श्री बैजनाथजीने यों किया है—**

**"जिनके हृदयरूप तड़ागमें प्रेमरूप पावन अमल जल भरा, समता, शान्ति, सन्तोष, ज्ञान, विराग, विवेक कमल फूले, राम-नाम स्मरणरूप मुक्तासमूह तहाँ रामरूप हंस विहार करते हैं। अरु मेरा हृदयरूप जो तड़ागतामें विषय-वासनारूप मैला जल भरा, परस्त्रीचाह विष्ठा है, ताते कामरूप-सूकर बसत, परधन चाह शंबुक भेक है, तहाँ लोभरूप बगुला है, परहानि अपवाद मृतक मांस है, ता हेतु क्रोध ईर्षा काक कंक बसत, तहाँ राघवरूप हंस कैसे आवहिंगे ?"**

उपर्युक्त सांगोपांग वर्णन श्रीबैजनाथजीने बड़ा ही सुन्दर किया है। आपने, यहाँ सोनेमें सुगन्ध भरनेका काम किया है।

( ३ ) 'मिटत न सावत'—जीवकी दो स्त्रियाँ हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। ये दोनों दिनरात कलह मचाये रहती है। स्थूल शरीर छूट जानेपर भी इनसे पिंड नहीं छूटता। सूक्ष्म शरीरमें भी इनका लड़ना-झगड़ना ज्यों-का-त्यों बना रहता है, जहाँ-जहाँ जीव जाता है तहाँ-तहाँ ये दोनों सौतिया-डाहसे उसके पीछे-पीछे लगी फिरती हैं। बेचारे को पल भर भी कल नहीं मिलता।

( १८६ )

कौन जतन बिनती करिये।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये॥ १॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये।
जाते बिपति-जाल निसिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये॥ २॥
जानत हूँ मन बचन करम पर-हित कीन्हें तरिये।
सो बिपरीत देखि पर-सुख, बिनु कारन ही जरिये॥ ३॥
स्रुति पुरान सबको मत यह सतसङ्ग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहिं न आदरिये॥ ४॥
संतत सोइ प्रिय मोहि सदा जातें भवनिधि परिये।
कहौ अब नाथ, कौन बल तें संसार-सोक हरिये॥ ५॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तौ निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहि, कत पचि पचि मरिये॥ ६॥

**शब्दार्थ**—द्रवहु=कृपा करते हो। अनुसरिये=चलते हैं। आदरिये=आदर करते हैं। सन्तत=सदा। निधि=समुद्रसे आशय है।

**भावार्थ**—हे नाथ! ऐसा उपाय ही क्या, कि जिससे मैं आपकी विनती करूँ? जब अपने आचरणोंकी ओर देखता हूँ, उनपर विचार करता हूँ, समझता हूँ, तब साहस छोड़कर मन-ही-मन दहल जाता हूँ ( कि, अरे! मैं तो आपके सामने आने ही योग्य नहीं, ऐसा घोर पापी हूँ ) ॥ १॥ हे हरे! जिस साधनसे आप कृपाकर इस जीवको अपना लेते हैं, उसे मैं हठपूर्वक छोड़ रहा

हूँ। और जहाँ दिन-रात विपत्तिका जाल फँसा-फँसा कर दुःख देता है, उसी मार्ग पर चला करता हूँ ( ऐसा अभागा और मूर्ख हूँ ! ) ॥२॥ यह जाननेपर भी, कि मन, बचन और कर्मसे दूसरे की भलाई करनेसे संसार-सागर पार कर जाऊँगा, मै उलटा ही आचरण करता हूँ, अर्थात् दूसरेके सुखको देखकर बिना ही कारणके जला जा रहा हूँ ( द्वेषाग्निमे भस्म होना चाहता हूँ ) ॥३॥ वेदों और पुराणो सभीका यह सिद्धान्त है कि सन्तोका संग खूब दृढ़तापूर्वक करना चाहिये, सत्संग किसी भी प्रकार न छोड़ना चाहिए, किन्तु मै अपने अहंकार, अज्ञान और ईर्षाके अधीन होकर कभी उनका आदर नहीं करता, सदा उनका द्रोह ही किया करता हूँ ॥४॥ (सौ बात की बात तो यह है, कि) मुझे सदा वही अच्छा लगता है, जिससे संसार-सागर हीमें पड़ा रहूँ। फिर, हे नाथ ! आपही कहिए, मै किस बूतेपर संसारी दुःख दूर करूँ ? ( मेरे पास एक भी साधन नहीं है ) ॥५॥ यदि कभी आप अपने कारुणिक स्वभावसे मुझपर प्रसन्न हो जायँ, तभी मेरा निस्तार होगा, नहीं तो नहीं। क्योंकि तुलसीदासको किसी औरका विश्वास ही नहीं, वह किसलिए ( इधर-उधर भटकता हुआ ) पच-पच कर मरे ॥ ६ ॥

**टिप्पणी—(१) 'निज आचरन'—राम-भक्तोंके आचरण, महारामायणमें लिखे हैं—**

'शान्तः समानमनसश्च सुशीलयुक्तस्तोषक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्तः ।
विज्ञान ज्ञान विरतिः परमार्थवेत्ता, निर्धामकोप्रभयमनः स च रामभक्त ॥'

**( २ ) 'सन्तत सोई प्रिय'—वह क्या ? विषयासक्ति, देहाभिमान, पुत्र-कलत्र, धनसंपत्ति को ही सर्वस्व मानना, परद्रोह, असद्व्यवहार आदि ।**

( १८७ )

ताहि ते आयो सरन सबेरे ।
ग्यान बिराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे ॥ १ ॥
लोभ मोह मद काम क्रोध*रिपु फिरत रैनि दिन घेरे ।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥ २ ॥

---

* पाठान्तर 'बोध ।'

दोष-निलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत स्रुति टेरे।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे॥ ३॥
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे॥ ४॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह बिपति बाँगुरो तुमहि सों बनै निबेरे॥ ५॥

**शब्दार्थ**—सबेरे=जल्दी। निलय=घर। बेरे=बेड़ा। बाँगुरो=जाल।

**भावार्थ**—हे नाथ! इसी कारणसे मै जल्दी आपकी शरणमे आया हूँ (जल्दी इसलिए, कि न जाने कब मौतके चगुलमें फँस जाना पड़े)। मेरे पास स्वप्नमे भी ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधन नहीं है (कि जिनके बलसे मै संसार-सागरसे पार हो जाता)॥ १॥ लोभ, अज्ञान, अहकार, काम और क्रोधरूपी शत्रु मुझे सदा घेरे रहते हैं, क्षणभर भी मेरा पिंड नहीं छोड़ते। इन सबके साथ मिलकर यह मन भी कुमार्गी हो गया है। अब यह आपके ही फेरनेसे फिरेगा, निश्चल होगा; अन्यथा नहीं॥ २॥ सन्तजन और वेद पुकार-पुकारकर कहते है, कि यह विषयासक्ति, विषय-वासना, दोषोकी खानि है, दुःखोंकी देनेवाली है, पर यह जानते हुए भी मै उसीमे अनुरक्त रहता हूँ। सो, हे हरे! आपकी ही प्रेरणा है; (नहीं तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो जानबूझ-कर कुएँमें गिरे?)॥ ३॥ आप (अपने सामर्थ्यसे) विषको अमृत एवं अग्निको बरफ बना सकते हैं, आप बिना ही बेड़ाके पार कर सकते हैं। आपके समान समर्थ, कृपालु और परमहितू ढूँढ़नेपर भी कहीं नहीं मिलेगा। (यदि इस जन्ममें आपको भूलकर चूक गया तो फिर अगले जन्मोंमे ऐसा दाँव मिलनेका नहीं)॥४॥ हृदयमे यह जानकर, हे रघुनाथजी! मैं सब छोड़-छाड़कर आपहीके भरोसे पड़ा हूँ। क्योंकि तुलसीदासका यह विपत्तिरूपी जाल आपके ही काटे कटेगा, अन्यथा नहीं॥ ५॥

**टिप्पणी**—(१) 'ताहि ते'—क्योंकि हे भगवन्! मैं आपकी यह प्रतिज्ञा सुन चुका हूँ, कि—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥'—(गीता)

(२) 'विषय'—शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध।

( ३ ) 'तुम्हरेहि प्रेरें'—जीवका प्रेरक परमात्मा है जो वह कराता है, सो यह करता है। यहाँ दुर्योधनका निम्नलिखित सिद्धान्त स्मरण आ जाता है—

'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥'

( ४ ) 'तुमहिं सों बनै निबेरे'—क्योंकि 'जो बाँधै सोइ छोरै।'

( १८८ )

मैं तोहिं*अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल, प्रगट कपट-आगार ॥ १ ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि कियो बिचार।
ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहूँ न निकसत§सार ॥ २ ॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोरयो हौं बारहिं बार ॥ ३ ॥
सुनु खल, छल बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥ ४ ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरै मरै रजु-अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार ॥ ५ ॥
निज हित सुनु सठ, हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभुके दासनि तजि भजहि जहाँ मद मार ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—आगार=स्थान। कमनीय=सुन्दर। विचार=ज्ञान। सार=गूदा। सहाय=सेना। रजु=रज्जु, रस्सी। मार=कामदेव।

**भावार्थ**—अरे संसार! आज मैंने तुझे जान लिया, तेरा ठीक-ठीक रहस्य आज मेरी समझमें आ गया। तू सोलहो आने कपटका घर है, पर अब तू मुझे ( अपने कपटजालमें ) नहीं बाँध सकता, क्योंकि मुझे भगवान्‌का बल मिल गया है ( परमात्माके सामने तेरा अस्तित्वतक नहीं रहता, छलबल पूछता ही कौन है ) ॥ १ ॥ देखने मात्रमें ही तू सुन्दर प्रतीत होता है, पर विचार करनेपर, विवेक बुद्धिसे सोचनेपर, तू कुछ भी नहीं है, वस्तुतः तेरा अस्तितत्व ही नहीं है। जैसे केलेके

* पाठान्तार'तू।' § पाठान्तर 'निकरत, निकसत।'

पेड़को देखो, उसमेंसे कभी गूदा नहीं निकलता ( कितना ही छीलो, छिलका-ही-छिलका निकलता आयगा, उसी प्रकार संसारपर जितनाही अधिक विचार करोगे, उसे अन्वयव्यतिरेकसे देखोगे, उतना ही निःसार प्रतीत होगा ) ॥२॥ अरे, तेरे लिए मैं अनेक जन्मोंसे भटकता हूँ, पर आजतक तेरा पार नहीं मिला था (यह ज्ञान नहीं हुआ था, कि तू क्या हैं, किसलिए है, मेरा तेरा क्या सम्बन्ध है) । तूने मुझे महामोहरूपी मृगतृष्णाकी नदीमें बार-बार डुबाया अर्थात् संसारकी झूठी विषयासक्तिमें मुझे अनेकबार पड़ना पड़ा ॥३॥ अरे शठ ! सुन, भले ही तू करोड़ों प्रकारके छल-बल किया करे, पर भगवान्का परम भक्त तेरे वशमे होनेका नहीं । तू तो अपनी सेना-समेत वहीं जाकर डेरा डाल, जिस हृदयमे श्रीनन्दनन्दन कृष्ण भगवान्का वास न हो (भगवत्-शून्य हृदयमे ही सासारिक प्रवृत्तियोंका साम्राज्य रहता है ) ॥४॥ जो तेरा भेद न समझता हो, उसीके साथ अपनी चाल चल, क्योंकि वही रस्सीरूपी साँपसे डर कर मरेगा, जो उसके भेदको न जानता होगा ॥५॥ अरे दुष्ट ! अपने हितकी बात सुन, जो तू अपने कुटुम्ब-समेत अपनी खैर मनाना चाहता है तो हठ न कर । तुलसीदासके स्वामी श्रीरघुनाथजीके सेवकोंको छोड़कर तू वहीं भाग जा जहाँ अहंकार और काम रहने हों ॥६॥

**टिप्पणी—(१) इस पदमें गोसाईंजीने संसारको, मायावादके अनुसार, मिथ्या माना है, पर साथ ही हमें उनका यह वाक्य—'कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै । तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै'—न भूल जाना चाहिए । भगवत्प्राप्तिके लिए विरतिका होना आवश्यक है, और प्रायः इसीलिए ससार तो क्या, संसारकी विषयासक्ति मिथ्या मानी गई है ।**

**( २ ) 'न पायो पार'—वस्तुतः जिस समुद्रका अस्तित्व ही नहीं, उसका पार क्या खाक मिलेगा ? पार पा लेना 'वन्ध्यापुत्रान्वेषण' ही है ।**

**( ३ ) 'नन्दकुमार'—गोसाईंजी श्रीराम-कृष्णको एक ही परात्पर परब्रह्म समझते थे । उनकी दृष्टिमें दोनों अवतार एक ही थे ।**

**( ४ ) 'सहित······नंदकुमार'—क्योंकि—**

'कहु रहीम का करि सकै, ज्वारी चोर लबार ।

जो पति-राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥'

**(५) 'सहाय'—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, संकल्प, विकल्प प्रवृत्ति, निवृत्ति आदि ।**

## राग गौरी

( १८६ )

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥१॥
बाँस पुरान साज सब अटखट* सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मन्द मोल बिनु डोला रे ॥२॥
बिपम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे।
मन्द बिलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥३॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाऊँ बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु, अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

**शब्दार्थ**—पुरान=पुराना। अटखट= अंटसंट, गड़बड़। सरल=सड़ा, जर्जर। दिहल=दिया। खटोला=पालकी, कंधोंपर ले जानेकी सवारी। मार=कामदेव। मन्द-बिलन्द=नीचा-ऊँचा। अभेरा=धक्का। दलकन=झटका। कुराय=कंकड़ी। लोटन=साँपसे आशय है, इसका झाड़ी भी अर्थ है। बझाऊ =उलझन। संबल=मार्ग व्यय, कलेवा।

**भावार्थ**—अरे भाई! राम-राम कहते चलो, नहीं तो संसारी बेगारमें पड़ जाओगे, जहाँसे छूटना बड़ा कठिन है। (अत्यन्त कठिन इसलिए है, कि न तो संसारका ही कभी अंत होगा और न तेरी प्रवृत्तियों ही का; जन्म-मरणका चक्र सदा चलता ही रहेगा। हाँ, यदि तू राम-राम जपता चला जायगा, तो यमदूत तुझे बेगारमे न पकड़ सकेंगे ( क्योंकि उनको इस कामकी मनाही है) ॥ १ ॥ हमारे कुटिल कर्मोंने चन्द्रडोलेका नाम लेकर ऐसा निकम्मा डोला, बिना ही दामका, मत्थे मढ़ दिया है, कि जिसका बाँस पुराना है, जिसमे बेतरकीब, अंटसंट, साज लगे हुए हैं, जो सड़ा-गला है, और तीन कोनेका खटोला

* पाठांतर 'अठकठ'।

है (यहाँ, इस तिकोने खटोलेसे शरीरकी उपमा दी गई है। कर्म बढ़ई है, उसने हमे यह शरीररूपी डोला बनाकर दे दिया है, मुफ्त ही दिया है। हमारी तो इसे लेनेकी इच्छा भी नहीं थी। अनेक जन्म-जन्मान्तरोसे जो विषय-प्रवृत्ति चली आ रही है, वही इसमें पुराना बाँस है। प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार, यह तीन पाटियाँ तथा सत्व, रज और तमोगुण, यह तीन पावे हैं। यही इसमे अट-संट साज लगे हुए हैं। वास्तवमें इसकी सारी सामग्री, ज्ञानदृष्टिसे, क्षणभंगुर है। इसीसे इसे सड़ा गला कहा है। जागर्ति, स्वप्न और सुषुप्ति, यह जो तीन अवस्थाएँ हैं, येही इस खटोलेके तीन कोने हैं। अज्ञानियोंके लिए तो यह चन्द्रडोला ही है,वह इसी शरीरको सर्वस्व मानकर, विषय-वासनाओंमे डूबे हुए सुख मान रहे है,पर ज्ञानियोंकी दृष्टिमे यह मन्द डोला है, यह स्वय उनके लिए भारस्वरूप हो रहा है, आवागमनका कारण बन रहा है। अब इस शरीररूपी डोलेके सम्बन्धमें और भी स्पष्टरीतिसे कहते हैं॥ २॥ इसको उठानेवाले कहार एक-से नहीं हैं (दो, चार या आठ कहार डोला उठाया करते हैं, पर इस शरीररूपी डोलेके उठानेवाले कहार पाँच है, और वे हैं जिह्वा, नेत्र, नासिका, कर्ण और त्वचा अथवा इनके विषय-रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श)। वे कामरूपी मद्यमे मतवाले हैं और इसीसे वह एक-से पैर रखते हुए नहीं चलते, कोई किधर जा रहा है, तो कोई किधर (नेत्र अपने विषयकी ओर दौड़ता है, तो कान अपने विषयकी ओर! नाक किधरको भागता है, तो जीभ किसी और ही तरफ! भला इस मनमानी घरजानी चाल चलनेसे डोला कबतक चल सकेगा!)। कभी नीचेकी ओर और कभी ऊँचेकी ओर चलनेसे धक्के और झटके लग रहे हैं और इस खींचतानमे बड़ा ही दुःख हो रहा है (इद्रियाँ कभी तो बुरी वासनाओंकी ओर दौड़ती हैं और कभी सद्‌वासनाओंकी ओर। किन्तु मनके सकल्प-विकल्पके कारण पूरा कुछ भी नहीं पड़ता, जीव बीचमे व्यर्थ ही धक्के खा रहा है, और इस ऐंचाऐंचीके झंझटमे पड़कर रो-रो कर दिन बिता रहा है; न दीन ही बनता है, न दुनिया ही)॥ ३॥ रास्तेमें काँटे बिछे हैं (अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित हैं), ककड़ पड़े हैं, साँप अलग लिपट जाते है। जगह-जगहपर उलझन है (शरीर-यात्राके मार्गमे अनेक बाधाएँ है; मोह ममता ही ककड़ है, विषैले विषय साँप हैं और कर्मों की विकट झंझट उलझन है। इन सब कारणोंसे कदम-कदमपर रुक जाना पडता है। शरीर-यात्रा

निर्विघ्न हो ही नहीं सकती )। और ज्यों-ज्यो आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यो ( लक्ष्य-स्थान) दूर होता चला जा रहा है (तात्पर्य यह है, कि आत्मानुभूति प्राप्त करनेके लिए जब जो-जो उपाय करते हैं, तब माया बीचमे पड़कर सारा किया-कराया मिट्टीमे मिला देती है। चाहते तो है, कि ब्रह्मानन्दका पीयूष पान करें, पर मिलता है विषय-सुखोंका ज़हरीला प्याला ! सुलझनेकी ज्यों-ज्यो चेष्टा करते हैं, त्यो-त्यो उलझते जाते है )। कोई सगी-साथी भी तो नहीं मिलता, कि उसके साथ-साथ जैसे-तैसे वहाँ तक पहुँच जायँ ( सब तरहसे आफत ही है ) ॥ ४ ॥ मार्ग बड़ा कठिन है (परमार्थपर चलना तलवारकी धारपर चलना है), साथमे राह-खर्च भी नहीं है ( ऐसे सत्कर्म भी नही किये है, कि जिनके बल-भरोसेपर मार्ग तय कर लिया जाय ), और जहाँ जाना है उस गाँवका नाम तक याद नहीं ( यह और भी कठिनता है। कहीं जैसे-तैसे चलते-चलते किसी और ही गाँवमे पहुँच जायँ तो बड़ी आफत हो ) इसलिए, हे श्री रामचन्द्रजी ! इस तुलसीदासके सासारिक भयको, जन्म-मरणके दुःखको, आप ही कृपा कर दूर कीजिए ( नहीं तो वह कभी निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच ही नहीं सकता ) ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'राम कहत⋯भाई रे'—यहाँ, 'राम कहत चलु' तीन बार लिखा गया है। सम्भव है, जीवका त्रिविध दुःख—दैहिक, दैविक, भौतिक दूर करनेके लिए तीन बार यह उपदेश दिया गया हो।**

**(२) 'विषम⋯बटोरा रे'—स्वर्गीय पण्डित रामेश्वर भट्टजीने इस चरणका अर्थ लिखते हुए इन्द्रियोंके वैषम्य और खींचतानपर बड़ा ही सुन्दर छप्पय दिया है। देखिए—**

'कान निरन्तर गान-तान सुनिबोही चाहत।
आँखें चाहति रूप रैनिदिन रहति सराहत॥
नासा अतर-सुगन्ध चहति फूलन की माला।
त्वचा चहति सुख-सेज संग कोमलतन बाला॥
रसना हू चाहति रहति नित खाटे, मीठे, चरपरे।
इन पंचन इहि परपंच सों भूपन को भिच्छुक करे॥'

**(३)'निज बास'—जीवका खास घर, जिसे कबीरसाहब 'हंसलोक' वा 'सत्य लोक' कहते हैं। यहाँ बरबस महात्मा कबीरका यह शब्द याद आ जाता है—**

'रस गगन-गुफा मे अजर झरै !
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै॥

बिना ताल जहँ कमल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहँ-तहँ हंसा नजर परै॥
दसवें द्वारे ताली लागी अलख पुरिख जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगन-जुगन की तृषा बुझाती करम-भरम अघ-व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय, कबहूँ न मरै॥'—कबीर

**( ४ ) यह पद जन-साधारणकी भाषामें लिखा गया है। इसमें कई प्रान्तीय शब्द आये हैं। मुहावरे भी ग्रामीण जड़े गये हैं। इतना ऊँचा सिद्धान्त सर्वसाधारणके हृदयंगम करानेके लिए ही गोसाईंजीने ऐसा किया है। कबीरदासजी के सिद्धान्तोंका प्रचार भी ऐसी ही सीधीसादी भाषाकी कविता द्वारा हुआ है।**

( १६० )

सहज सनेही राम सो तैं कियो न सहज सनेह।
तातें भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह॥१॥
ज्यो मुख मुकुर बिलोकिये अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यो सेवतहुँ न आपने, ये मातु पिता सुत नारि॥२॥
दै दै सुमन तिल बासि कें अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तनु सेत॥३॥
करि बीत्यो अब करतु है, करिबे हित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुबीर सो नेह निबाहनिहार॥४॥
जासो सब नातो फुरै, तासों न करी पहिचानि।
तातें कछू समुझयो नहीं कहा लाभ कह हानि॥५॥
साँचो जान्यो झूठ को, झूठे कहँ साँचो जानि।
को न गयो, को जात है, को न जैहै करि हितहानि॥६॥
बेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहु कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिये की आँखिन हेरि॥७॥

**शब्दार्थ**—भव-भाजन=संसारका पात्र; संसारमें बार-बार आने-जानेके

योग्य। मुकुर=दर्पण। अनुहारि=सूरत। खरि=खली; तेल निकाल लेनेके बाद तिलोमेसे जो फोक निकलता है। मेचक=काला। फुरै=सच्चा।साबित होता है। हौहुँ=मै भी।

**भावार्थ**—तूने निष्कारण ही स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे स्नेह नहीं किया। इसीसे तू संसारी हुआ है, बार-बार जन्म लेने और मरनेके योग्य हुआ है। ( फिर भी अभी कुछ बिगड़ा नहीं है ) अब भी यह शिक्षा सुन ॥ १ ॥ जैसे दर्पणमे मुखका प्रतिबिंब दीख पड़ता है, पर वह आकृति वस्तुतः उसके भीतर नहीं होती, उसी प्रकार ये माता, पिता, पुत्र और स्त्री, सेवा करते हुए भी, अपने नहीं है। तात्पर्य यह, कि इनके साथ जो सम्बन्ध मान लिया गया है, यह स्वार्थमात्रका है, वास्तवमे कोई किसीका सगा-सम्बन्धी नहीं है ॥ २ ॥ (अब तनिक इन स्वार्थियोंकी लीला तो देखिए जैसे फूलोके बीचमे तिल रखकर उन्हें सुगन्धमय बनाते हैं, किन्तु तेल निकाल लेनेपर उन्हे फोक समझकर फेंक देते हैं, वैसे ही सम्बन्धियोंकी दशा है ( अर्थात्, जबतक किसीमे सौन्दर्य रहता है, धन कमानेकी शक्ति रहती है, बल-पौरुष रहता है, तबतक उसकी बलैया ली जाती है, उसपर सर्वस्व निछावर किया जाता है, पर ज्योंही रूप चला गया, धन नष्ट हो गया, बल कम हो गया, त्योंही उसे कुत्तेकी नाई छोड़ देते हैं )। इस पृथिवीपर ऐसे कितने ही स्वार्थी भरे पड़े है, जिनका मन काला है, पर शरीर शुभ्र है, ऊपरसे तो बड़े ही सुन्दर दृष्टि आते हैं, पर मन महा-मलिन और कपटी है ॥३॥ तूने कितने मित्र बनाये, कितने बना रहा है और कितने अभी बनायेगा, किन्तु कभी त्रिकालमे भी श्रीरघुनाथजी-सरीखा प्रेमको (एकरस) निभानेवाला मित्र मिलनेका नहीं ॥४॥ अरे! जिसके कारण ही सारे सम्बन्ध सच्चे प्रमाणित हो, उसके साथ तूने (आजतक) पहचान तक नहीं की! और इसी कारणसे तूने अभीतक यह नहीं समझ पाया, कि क्या तो लाभ है और क्या हानि, अर्थात् अभीतक तुझे सदसत् वस्तुका विवेक प्राप्त नहीं हुआ ॥५॥ जिसने झूठको सच्चा (शरीरको आत्मा) और सच्चेको झूठ (आत्मा को शरीर) मान रखा है, ऐसा अपने हितको नष्ट करनेवाला कौन ( संसारसे ) नहीं चला गया, कौन नहीं जा रहा है, और कौन नहीं जायगा (साराश, ऐसे मूढ़ जीव सहस्रोंकी संख्यामे मरते-जीते रहते हैं,उनका जन्म लेना व्यर्थ है)॥६॥

वेदोंने कहा है, पण्डित कहते हैं और मैं भी पुकारकर कह रहा हूँ, कि तुलसीके स्वामी श्रीरघुनाथजी ही सच्चे हितू हैं। तनिक तू अपने हृदयके नेत्रोंसे देख तो, अन्तःकरणमे इस बातपर विचार तो कर ॥७॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'ज्यों मुख.......अनुहारि'—इसका यह अर्थ हो सकता है, कि जैसे दर्पणमें मुख देख चुकनेपर उसके प्रतिबिम्ब की चेष्टा चित्त में नहीं रहती है, निष्प्रयोजन होनेके कारण तत्काल ही भूल जाती है।

(२) 'दै दै... ...लेत'—यह दृष्टान्त बड़ा ही उपयुक्त और सुन्दर है। स्वार्थी मनुष्य, वास्तवमें, काम-वश सौन्दर्य आदिका उपभोग करते हैं, उपासना नहीं। यदि परमेश्वरीय विभूति समझकर वे उसकी उपासना करें, उसका उपभोग करना छोड़ दें, तो यह नरकोपम संसार उसी क्षण स्वर्ग हो जाय, मिथ्याजगत् सत्यरूप हो जाय।

( ३ ) 'मन........सेत'—अथवा यों कहना चाहिए कि—

'विषरस भरा कनकघट जैसे।'

( ४ ) 'नेह-निवाहनिहार'—प्रेम तो प्रायः एक क्षणमें ही हो जाता है, पर उसे एकसा निबाहना महाकठिन जान पड़ता है। बाह्य जगत्का प्रेम ऐसा-ही अस्थायी माना गया है। प्रेम तो आन्तर्जगत्का ही, ईश्वरीय ही, सच्चा सदा एक सा हुआ करता है। कहा है—

'भंग-पान अति सहज है, लहर कठिन पै होय।'

( ५ ) 'सांचो...... जानि'—आत्मको अनात्म और अनात्मको आत्म मानना ही हेर-फेरका ज्ञान अथवा अविद्या है। कुछ-का-कुछ मान लेनेसे किसी वस्तुका बिल्कुल ही न जानना अच्छा है। पाखण्डी आस्तिकसे तो नास्तिक ही भला है।

( ६ ) इस पदमें "एक परमात्मा ही इस जीवका सर्वस्व है"—यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है।

( १९१ )

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम कनौड़ो राम सों नहि दूसरो दयालु॥१॥

तन-साथी सब स्वारथी, सुर व्यवहार-सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान ।।२।।
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकर बड़े, पयद प्रेम-पथ कूर ।।३।।
जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ।
सरल सील साहिब सदा,सीतापति सरिस न कोइ ।।४।।
सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग बिसेखि ।।५।।
खग सबरी पितु मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत।
केवट भेंट्यो भरत ज्यों ऐसो को कहु पतित-पुनीत ।।६।।
देह अभागहिं भाग को, को राखै सरन सभीत।
बेद-बिदित बिरुदावली, कबि कोबिद गावत गीत ।।७।।
कैसेउ पाँवर पातकी जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो दाम तो परख्यो* न फेरि खर-खोट ।।८।।
मन मलीन,कलि किलविषी होत सुनत जासु कृत काज।
सो तुलसी कियो आपनो रघुबीर गरीब-निवाज ।।९।।

**शब्दार्थ**—कनोड़ो=कृतज्ञ। सुजान=चतुर। नाद=राग, स्वर। समचर=समद्रष्टा। सिखी=आग। पयद=मेघ। कूर=निष्ठुर। दिवान=दरबार। सभीत=डरा हुआ। कोविद=ज्ञानी। दाम=धन, पैसा। खर=खरा, असल। किलविषी=( किल्विषी ) पापी।

**भावार्थ**—केवल कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ही एक सच्चे स्नेही हैं (जीव-मात्रके कल्याण-कर्त्ता हैं)। प्रेम-प्रीतिका माननेवाला रामजीके समान कोई दूसरा दयालु नहीं है ।।१।। इस शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी हैं, वे सबके सब मतलबी यार हैं (स्वार्थ सधा कि चटसे अलग हो गये) और देवता व्यवहारमें कुशल हैं (जितनी उनकी सेवा करोगे, उतना वे फल दे देंगे। और यदि कुछ बिगड़ गया, तो सारा किया-कराया मिट्टीमे मिला देंगे)। दुखी नीच और अनाथका हित करनेवाला श्री रघुनाथजीके समान दूसरा कौन है?

* पाठान्तर 'परखो'।

( कोई भी नहीं ) ।।२।। (अब प्रेमियोंकी दशा देखिए) राग अथवा संगीतका स्वर निर्दय होता है ( वीणाके स्वर पर मोहित होकर हिरण उसके बजानेवाले-के पास खिंच कर चला आता है, थोड़ी देरमें बेचारा जालमे फँस जाता है और उसे प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते हैं । कसाई नादको तनिक भी दया नहीं आती, कि अपने प्रेमीके प्राण तो बचाले ) । अग्नि सबपर एक-सा व्यवहार करनेवाली होती है, जलानेसे किसीको भी नहीं छोड़ती ( बेचारे पतिंगे दीपक-की रूप-माधुरीपर मुग्ध होकर उसका चुम्बन करने आते हैं, पर यह जालिम उन्हें भूँज डालता है ! ) जल भी प्रेमके निबाहनेमें वीर नहीं है ( मछली तो उसके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रहती, पर वह ऐसा लापरवाह है कि उसके प्रेमका कुछ भी मूल्य नहीं समझता )। चन्द्रमा ( आजन्म ) रोगी है (पर उसका प्रेमी चकोर उसपर मरा जा रहा है । रातभर टक लगाये उसकी ओर देखा करता है । कभी-कभी तो अंगारको, चन्द्रमा समझकर, खा जाता है; किन्तु चन्द्रमा यद्यपि रोगी है, तथापि अपने रूपके ही घमंडमें चूर रहता है । चकोरपर जरा भी तर्स नहीं खाता ) । सूर्य्य बड़प्पनमें भूल रहे हैं, ( कमल उन्हे देख-देखकर फूला नहीं समाता, पर वह उसे नीच समझकर क्षणभरमे सुखा डालते हैं ! ) और मेघतो प्रेम-पथके लिए बड़ा ही क्रूर है (पपीहाका प्रेम आदर्श माना गया है । वह समुद्र तकको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता है । केवल स्वाति नक्षत्रकी बूँदके लिए ही प्यासा रहता है, पीउ-पीउ करता हुआ अपने प्यारे मेघके नामपर अलख जगाता है,पर उसका पीउ, निर्दय पीउ, उसपर ओले बरसाता है, महीनों तरसाता है, एक बूँद भी समय पर नहीं देता ) ।। ३ ।। बात तो यह है, कि जिसका मन जिसमे बँध गया, जो जिसपर मोहित हो गया उसे वही सुख देनेवाला होता है(दुखको भी सुख मान लेता है); किन्तु ( मेरी दृष्टिमे ) श्रीरघुनाथजीके समान सीधा-सादा सुशील स्वामी दूसरा नहीं है ।। ४ ।। सेवा सुनते ही उसपर 'सही' कर देनेवाला कौन है, सेवा मान लेनेवाला दूसरा कौन है ? और अपराध देखकर भी उन्हें कौन उपेक्ष-णीय समझता है ? किसके दरबारमें दोनोंका मान बड़े प्रेमसे किया जाता है ? ।। ५ ।। पक्षी जटायु और शबरीको किसने पिता और माताके समान माना, उन्हें पिता और माताके समान पिंड-दान किसने दिया ? किसने बन्दर (सुग्रीव) को अपना मित्र बनाया ? जिन रामचन्द्रजीने केवटको अपने सगे भाई भरतकी

तरह हृदयसे लगा लिया, उनके समान, कहो तो, पापियोका उद्धार करनेवाला और कौन है ? ( कोई नहीं ) ।। ६ ।। अभागेको कौन भाग्यवान् बनाता है ? और डरे हुएको कौन अपनी शरणमे लेता है ? वेदोमे किसकी कीर्ति जगमगा रही है, और कवि एवं विद्वान् किसके गीत गा रहे हैं ? ( भगवान् रामचन्द्र ही एक ऐसे दीनबन्धु भक्तवत्सल है, और कोई नहीं ) ।। ७ ।। जिसने भी उनके नाम (राम) का आश्रय लिया, चाहे वह कैसा ही नीच और पापी क्यो न हो, उसे उन्होने इस प्रकार अपनालिया, जैसे कोई बिनाही परखे हुए धन-को गाँठमें बाँध लेता है, भले ही वह खरा हो या खोटा ।।८।। जो ऐसा मलिन मनवाला है, घोर पापी है, कि कलियुगमे उसके किये हुए कर्मों को सुनकर दूसरे भी पापी हो जाते हैं, उसे भी, उस तुलसीदासको भी, उन्होने अपनी शरणमे ले लिया । श्रीरघुनाथजी दीनो पर इस प्रकार कृपा करनेवाले है।।६।।

**टिप्पणी—(१) 'प्रेम····दयालु'—धन्य । हनुमान्‌जीसे आप कहते हैं—**

'प्रतिउपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।'

**(२) 'तन-साथी'—शरीर जबतक है, तभी तक माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि संबंधी है । प्राणोंके साथ कोई भी नहीं जाता, सब यहीं रह जाते हैं—**

'फूला फूला फिरै जगत मे रे मन, कैसा नाता रे ।
मात कहै यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा रे ।।
कहै भाई यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा रे ।
पेट पकरि कै माता रोवै, बाँह पकरि कै भाई रे ।।
लपटि-झपटि कै तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई रे ।
घर की तिरिया रोवन लागी, ढूँढ़ फिरी चहुँ देसा रे ।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, छाड़ो जग की आसा रे ।'

**( ३ ) 'नाँद निठुर'—कुरंगका प्रेमरंग कितना पक्का है !**

'आपु व्याध को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग ।
'तुलसी' जो मृगमन मुरै, परै प्रेम-पट दाग ।।' ( दोहावली )

**( ४ ) 'सलिल सनेह'—मछलीकी भी प्रीति सराहनीय है । गोसाईंजी लिखते हैं—**

'मकर, उरग, दादुर, कमठ, जल-जीवन,जल गेह ।
'तुलसी' एकै मीन को, है साँचिलो सनेह ।।' (दोहावली)

(५) 'पयद प्रेमपथ कूर'—चातककी अनन्य निष्ठा तो देखिए—

'जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरि हू को बारि, मरत न माँगेउ अरघजल ।।
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक ।
'तुलसी' परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ।।' (दोहावली)

(६) 'खग'—जटायु; इसमें सन्देह नहीं कि श्रीरघुनाथजीने जटायुको पिता-तुल्य मान लिया था । गीतावलीमें लिखा है—

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नयन सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हों ।।
सुनहु लखन, खगपतिहिं मिले बन में पितु-मरन न जान्यो ।
सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यो ।।

(७) 'सबरी'—१०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।

(८) 'केवट'—गुह; १०६ पदकी टिप्पणी देखिए ।

( १९२ )

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेह न नीच ।
स्वारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ।। १ ।।
धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान ।
करतब बिनु बेष देखिये ज्यों सरीर बिनु प्रान ।। २ ।।
बेद-बिदित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
राम-प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनु बारि ।। ३ ।।
नाना पथ निरबान के नाना बिधान बहु भाँति ।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन राति ।। ४ ।।

**शब्दार्थ**—बिगोयो = ठग लिया । जानिबो = ज्ञान । बारि = जल । निरबान=मोक्ष ।

**भावार्थ**-अरे नीच ! यदि श्रीजानकीवल्लभ रामचन्द्रजीसे तूने प्रेम नहीं किया, उनसे नाता नहीं जोड़ा, तो स्वार्थ और परमार्थ तू कैसे सिद्ध कर सकेगा ? भाव यह है, कि बिना भगवत्प्रेमके न तो कोई अपना ही हित कर

सकता है और न दूसरोका ही; न उसका लोक बनता है, और न परलोकही ॥ १ ॥ वर्ण और आश्रमके धर्म केवल पोथियो और पुराणोंमे ही लिखे पाये जाते है। करनी कहीं नहीं दिखाई देती है, केवल भेप-ही भेप देख लो। जैसे बिना प्राणोंके शरीर हों, वैसे ही बिना धर्माचरणके यह कोरे भेप हैं, इनसे कोई लाभ नहीं ॥२॥ सुनते हैं, कि वेदोंमे जितने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध ( कर्मकाण्डके ) साधन हैं, वे सब अर्थ, धर्म, काम और मोक्षके देनेवाले हैं, किन्तु बिना श्रीराम-भक्तिके उन सबका मानना ऐसा है, जैसे बिना पानीके तालाब और नदियाँ। साराश यह है, कि भगवत्-प्रेम-विहीन समस्त वेद-वेदान्तका ज्ञान निस्सार और व्यर्थ है ॥ ३ ॥ मुक्तिके अनेक पंथ हैं और भाँति-भाँतिके उपाय हैं, किन्तु हे तुलसी ! तू तो, मेरे कथनानुसार, दिनरात केवल राम-नामका ही जप कियाकर ( अन्य साधनों और मत-मतान्तरोंसे कुछ भी प्रयोजन न रख ) ॥४॥

**टिप्पणी—'नातो'–सेव्य-सेवक-भावके नातेसे ही प्रयोजन हो सकता है, क्योंकि बिना इस सम्बन्धके मुक्ति दुर्लभ-सी जान पड़ती है। कहा भी है—**

'सेवक-सेव्य-भाव बिनु तरिय न भव उरगारि।' (रामचरितमानस)

**(२) 'करतब··· देखिए'—कबीरसाहबने सत्य ही कहा है—**

'साधू भया तो, क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥'

**(३) 'रामप्रेम····बारि'—यहाँ, सिद्धान्तरूपसे भक्ति ज्ञानसे बड़ी मानी है। केवल 'ज्ञान' श्रेयस्कर नहीं हो सकता। भक्ति के बिना वह निष्प्राण है। सानुराग ज्ञान ही मुक्ति का द्वार है।**

**(४) 'नाना पथ निरबानके'—दार्शनिकोंने मुक्तिकी अनेक परिभाषाएँ लिखी हैं। जैसे—'वस्तु' का सावयव ( सांगोपांग ) ज्ञान ही मोक्ष है;**

**शास्त्रोंके अर्थके अनुकूल निर्दिष्ट आचरण करना ही मोक्ष है;**

**दृश्य और अदृश्यके ज्ञानका जो अभाव है, वही मोक्ष है;**

**महावाक्यों ( तत्त्वमसि, सोऽहं आदि ) का विवरण ही मोक्ष है;**

**स्वात्मानन्दकी ज्ञानमयी अवस्था ही मोक्ष है;**

**'अस्ति' और 'नास्ति' इस उभयात्मक ज्ञानके विच्छेदको ही मोक्ष कहते हैं;**

**'शब्दब्रह्म'के यथेष्ट ज्ञानको ही मोक्ष मानना चाहिए;**

निर्विकल्प समाधिगत आनन्दको मोक्ष मानना चाहिए;

एकदेशिक सिद्धान्तसे सिद्ध जो भक्तिका विधान है, वही मोक्ष है;

आत्मसमर्पण करनेके अनन्तर भगवत्प्राप्तिके लिए परम विरहाकुलता होती है, उसेही मोक्ष कहना चाहिए, इत्यादि अनेक मतमतान्तर हैं ।

( ९ ) 'तू मेरे ......रीति'—केवल 'राम-नाम-स्मरण'से मुक्ति-प्राप्ति संभव है, यह निष्कर्ष निकलता है । गोसाईंजीका यही सर्वतोभद्र सिद्धान्त है ।

( १९३ )

अजहुँ आपने रामके करतब समुझत हित होइ ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ ॥ १ ॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू, कब खीझि दई तोहिं गारि ।
दरपन बदन निहारि कै, सुबिचारि * मान हिय हारि ॥ २ ॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरत पल लगै न आधु ।
'पाहि कृपानिधि' प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु ॥ ३ ॥
बाल्मीकि-केवट-कथा, † कपि-भील भालु-सनमान ।
सुनि सनमुख जो न राम सों तिहि को उपदेसहि ग्यान ॥ ४ ॥
का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति-रीति-निरबाहु ।
जासु बन्धु बध्यो ब्याध ज्यो सो सुनत सोहात न काहु ॥ ५ ॥
भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियो रघुराज ।
राम गरीब-निवाजके बड़ी बाँह-बोल की लाज ॥ ६ ॥
जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा दूसरी न चालु ।
सुमुख सुखद साहिब सुधी समरथ कृपालु नतपालु ॥ ७ ॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन पुलक सरीर ।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव-भीर ॥ ८ ॥
प्रभु कृतग्य सरबग्य हैं, परिहरु पाछिली गलानि ।
तुलसी तोसों राम सो कछु नई न जान पहिचानि ॥ ९ ॥

---

* पाठान्तर 'सो विचारि' । † पाठान्तर 'तथा' ।

**शब्दार्थ**—खीझि=रूठकर। पाहि=रक्षा करो। आधु=आधा। बाँह-बोल=रक्षा करनेका वचन। चालु=चलाकर। सुधी=बुद्धिमान्। नतपालु=दीनोको पालनेवाले। गहबर=प्रेमपूर्ण। भीर=कष्ट।

**भावार्थ**—अब भी, जो तू अपने श्रीरामचन्द्रजीके करतबको समझ ले तो, तेरा कल्याण हो सकता है। देख, कहाँ तो तू है और कहाँ कोशलेन्द्र महाराज रामचन्द्र! (पृथ्वी-आकाशका अन्तर है)। तुझे सब लोग क्या कहते है? ('तदीय' अर्थात् यह जीव भागवत है। 'तू भगवान्का है' क्या यह सम्बन्ध सुलभ है? अरे! यह सम्बन्ध बड़े-बड़े योगियोको भी प्राप्त नहीं होता, पर तुझे यह सौभाग्यसे मिल गया है)॥ १॥ तुझपर प्रसन्न होकर रघुनाथ-जीने कब कृपा की और अप्रसन्न होकर कब तुझे गालियाँ दीं? तनिक शीशेमे मुँह देखकर इसपर भलीभाँति विचार तो कर और फिर अपनी हार आप मान ले (विवेकरूपी दर्पणमें देखनेसे यह प्रकट हो जायगा, कि जो तूने भगवान्की कभी सेवा की होगी तो वह प्रसन्न हुए होंगे। यदि नहीं हुए तो समझ ले कि तूने कभी उनकी सेवा ही नहीं की और जो तुझे गालियाँ मिली हों, तो तुझसे अवश्य सेवामे कोई चूक पड़ गई होगी। अबसे ही सही, भविष्यमें भगवान्को सदा प्रसन्न रख, अप्रसन्नताका कभी अवसर ही न आने दे। अभी जो तू उन-पर वृथा दोषारोपण कर रहा है, वह सब विवेकपूर्वक विचार करने पर भ्रम मालूम होगा, क्योंकि भगवान् न्याय ही करते हैं, अन्याय नहीं)॥ २॥ इसकी कोई चिन्ता नहीं, कि तेरी सारी करनी बिगड़ी हुई है, क्योंकि अनेकों जन्मोंकी बिगड़ी हुई करनी सुधारनेमे उन्हें आधा पल भी नहीं लगता। "हे कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिए"—इस प्रकार प्रेमपूर्वक कहनेपर श्रीराम-चन्द्रजीने किसे असाधुसे साधु नहीं बना दिया? (सभीको, विनम्र होनेपर, साधु बना दिया)॥ ३॥ वाल्मीकि और गुह निषादकी कथा और सुग्रीव, शबरी, रीछ जाम्बवान् आदिका आदर-सत्कार सुनकर भी जो श्रीरामजीकी शरणमे नहीं गया, उसे कौन ज्ञानोपदेश करेगा? (अर्थात् वह इतना अभागा और मूर्ख है कि उसे बृहस्पति और ब्रह्मा भी कुमार्गसे हटाकर सन्मार्गपर नहीं ला सकते)॥४॥ सुग्रीवने कौन-सी सेवा की, और प्रीति की कौन-सी रीति निबाही (राज्य पाकर श्री-रामजीको, मदान्ध हो, भूल गया)? पर (यह सब भूलकर) उसके भाईको

(उसे राज्य दिलानेके लिए, अपने ऊपर कलंक लेकर ) व्याधकी नाईं मार डाला । यह (अनीतिपूर्ण कार्य किसीको भी पसंद नहीं आया) ।।५।। विभीषण ने क्या भजन किया था, कितनी भक्ति प्राप्त की थी ? ( बिलकुल ही थोड़ी) । किन्तु, हे रघुनाथजी ! आपने उसे, उसके बदले, क्या फल दिया ? (लंकाका महान् साम्राज्य ) । बात तो यह है, कि दीनबन्धु रामचन्द्रजीको रक्षा करनेके वचनकी बड़ी लाज है । (वह यह नहीं देखते, कि शरणागत दुष्ट है या साधु) ।।६।। इसलिए तू रघुनाथजीका ही नाम जपा कर, कोई संसारी चर्चा न चलाया कर, क्योंकि सुन्दर सुख देनेवाले, बुद्धिमान्, समर्थ, कृपासागर और दीनोंके पालनेवाले स्वामी एक वही हैं ।।७।। कहो तो ऐसा कौन है, जिसने आँखोंमें आँसू भरकर, गद्गद् वाणीसे, प्रेमपूर्ण चित्तसे, तथा पुलकित होकर श्रीराम-चन्द्रजीकी गुणावलिका गान किया हो, और उसका सांसारिक कष्ट ( जन्म-मरण ) दूर न हुआ हो ? ( ढूँढ़ने पर भी त्रिलोकमे ऐसा कोई न मिलेगा ) ।।८।। पश्चात्ताप करना छोड़ दे । प्रभु रामचन्द्रजी उपकार माननेवाले हैं । वह घट-घटकी बात जानते हैं (उनसे तेरी भलाई या खोटाई छिपी नहीं है)। तुलसी-दास ! रामजीसे तेरी कुछ नई जान-पहचान नहीं है । भाव, जीव-ब्रह्मका सदासे सम्बन्ध चला आता है ।।९।।

**टिप्पणी—(१) 'पाहि······साधु'—क्योंकि यह आपकी प्रतिज्ञा है—**

'सनमुख होइ जीव मोहि जबही । कोटिजनम-अघ नासौं तबहीं ।।
तजि मद मोह कपट छल नाना । करौं सद्य तेहि साधु-समाना ।।'

**(२) 'बाल्मीकि'—१४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।**

**(३) 'केवट'—गुहनिषाद; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।**

**(४) 'भील'—यहाँ, भीलनी शबरीसे तात्पर्य है। श्रीयुत् भट्टजीने 'निषाद' लिखा है, किन्तु 'केवट' पहले ही कह चुके हैं । अतएव 'शबरी' ही मानना युक्ति-युक्त होगा । १०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।**

**(५) 'जासु बंधु······काहु'—बालि ही स्वयं कह रहा है—**

'मै बैरी सुग्रीव पियारा । कारन कवन, नाथ मोहिं मारा ? ।।
धरम हेतु अवतरेउ गुसाईं । मारेउ मोहिं व्याध की नाईं ।।'

**(६) 'बिभीषण'—१४५ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए ।**

(७) 'तोसों पहिचानि'—क्योंकि—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।'—(भगवद्गीता)

( १९४ )

जो अनुराग न राम सनेही सों ।
तौ लह्यो लाहु कहा नर-देही सों ॥ १ ॥
जो तनु धरि, परिहरि सब सुख, भये सुमति राम-अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किये अघ, अवगुन-उदधि अभागी ॥२॥
ग्यान बिराग जोग जप तप मख जग मुद-मग नहि थोरे ।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि-हिलोरे ॥३॥
लोक बिलोकि, पुरान बेद सुनि, समुझि-बूझि गुरु ग्यानी ।
प्रीति-प्रतीति राम-पद-पंकज सकल-सुमंगल-खानी ॥४॥
अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय, होइ पलक महँ नीको ।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहि मानु मतो तुलसी को ॥५॥

**शब्दार्थ**—लाहु=लाभ । अघाइ=पेट भरकर, बहुत अधिक । उदधि=समुद्र । मख=यज्ञ । मुद-मग=आनन्दके उपाय । मृगजल-जलधि=मृगतृष्णाका समुद्र । नीको=भला । मतो=सिद्धान्त ।

**भावार्थ**—यदि परमस्नेही श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भी प्रेम नहीं है, तो नर-शरीर धारण कर लाभ ही क्या हुआ ? (भगवद्भक्तिके बिना जीना ही निरर्थक है) ॥ १ ॥ जिस शरीरको धारण कर ज्ञानी लोग सारे संसारी सुखोंकी तिलांजलि दे श्रीरामजीके प्रेमी बनते है, उस (दुर्लभ) शरीरको भी पाकर, अरे महा नीच और अभागे ! तूने पेट-भर भरकर पापही किये (धिक्कार!)॥२॥ संसारमें, ज्ञान, वैराग्य,योग, जप, तप, यज्ञ आदि अनेक आनन्दके उपाय हैं, परमानन्दके साधन है,किन्तु बिना श्रीरघुनाथजीके प्रेमके ये सारे साधन इस प्रकार व्यर्थ हैं,जैसे मृगतृष्णाके समुद्रकी लहरें ॥३॥ संसारको देखकर, पुराणो और वेदो को सुन-कर तथा ज्ञानी गुरुजनोसे समझ-बूझकर श्रीरामजीके चरणारविन्दोंमे लौ लगा, जो समस्त कल्याणोंकी आकर है; मूल कारण है (भगवत्प्रेम द्वारा ही ऐहिक और पारलौकिक कल्याण प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं) ॥४॥ यदि अब भी तूने मनमे समझ लिया और अपने दोष स्वीकार कर लिये, तो एक क्षणमें

ही तेरा कल्याण हो जायगा। प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर, क्योंकि वही ( सच्चे ) हितू हैं। तुलसीदासका यह सिद्धान्त मानले ( इसीमे तेरा श्रेय है ) ॥५॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'ज्ञान बिराग·······हिलोरे'—भाव-सादृश्य देखिए—

'श्रेयः श्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,<br>
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।<br>
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,<br>
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥'—(श्रीमद्भागवत)

( १९५ )

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं। कीजै कृपा आपनी नाईं ॥ १ ॥<br>
परमारथ सुरपुर-साधन सब स्वारथ सुखद भलाई।<br>
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥ २ ॥<br>
जहँ तहँ चित चितवत हित, तहँ नित नव बिषाद अधिकाई।<br>
रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई ॥ ३ ॥<br>
आधि-मगन मन- ब्याधि-बिकल तन, बचन मलीन झुठाई।<br>
एतेहुँ पर तुमसों तुलसी की, प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—लोपी=मेट डाली। भावती=मनोवाञ्छित। भभरि=डरकर। समुहाहिं=सामने आ जाती हैं। अनभाई=बुरी, अनिष्टकारिणी। आधि=चिंता, संकल्प-विकल्प। व्याधि=रोग।

**भावार्थ**—हे श्रीराम ! हे नाथ ! मैं अपने-आपको आपपर न्यौछावर करता हूँ। आप अपने स्वभावानुकूल (दीन-वत्सलताकी दृष्टिसे) मुझपर कृपा कीजिए ॥१॥ परमार्थके,स्वर्गके तथा स्वार्थके अर्थात् व्यवहारके जो-जो सुख देनेवाले और कल्याण-कारक उपाय हैं, उन सबकी रीतियाँ कलियुगने क्रोध करके लुप्त कर दी हैं, और अपनी दुखःदायक बुरी-बुरी चालोंका प्रचार किया है (पुण्यो और सत्कर्मोका लोप करके दम्भ, छल, कपट आदिका प्रचार किया है) ॥२॥ जहाँ-जहाँ यह मन अपना हित देखता है, तहाँ नित्य नूतन दुःख ही बढ़ता हुआ दिखाई देता है। रुचिको अच्छी लगनेवाली बाते दूरसे ही डरकर भाग जाती हैं, मनचाही एक भी बात पूरी नहीं होती, और सामने वेही चीजें आ

जाती है जो पसंद नहीं। भाव, इष्ट-साधन करते हुए अनिष्ट घेर लेते हैं ॥३॥ मन, संकल्प-विकल्पमे लीन हो रहा है, शरीर रोगोंके मारे व्याकुल है, और वाणी झूठके कारण मैली हो रही है (मन, तन और वचन तीनो ही अयोग्य और मलिन हो गये है)। किन्तु यह सब होते हुए, भी हे नाथ! आपके साथ इस तुलसीदासका सम्बन्ध और प्रेम पूरा-का-पूरा ही बना हुआ है। (इसीसे तो मैं आपकी बलैया लेता हूँ। धन्य!) ॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'कलि······चलाई'—कबीरसाहब इसे स्पष्ट करके कह गये हैं—**

'उर लागै औ हँसी आवै, अजब जमाना आया रे।
धन-दौलत ले माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे॥
मुट्ठी अन्न साधु कोई माँगै, कहै नाज नहिं आया रे।
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं, वक्ता मूँड़ पचाया रे॥
होय जहाँ कहिं स्वाँग तमासा, तनिक न नींद सताया रे।
भंग तमाखू सुलफा गाँजा, सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु-चरनामृत-नेम न धारै, मधुवा-चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनिया मे, ताते जिय घबराया रे।
कहत 'कबीर', सुनो भाई साधो, का पाछे पछताया रे॥'

**(२) 'समूहाहि···अनभाई'—स्वर्गीय भट्टजीने इसका यह अर्थ किया है—"····वे समुहाहिं कहिये सामने इतनी चली आती है, कि जिनका ठिकाना नहीं" 'जिनका ठिकाना नही' कदाचित् 'अनभाई' का अर्थ किया गया है। किन्तु 'अनभाई' 'रुचि-भावती' का उलटा शब्द है, जिसका अर्थ 'नापसन्द' होता है। 'अनभाई' शब्द कविताके लिए गढ़ा हुआ जान पड़ता है।**

**(३) 'सगाई'—सेव्य-सेवक-भावका संबन्ध।**

( १६६ )

काहे को फिरत मन, करत बहु जतन,
मिटै न दुख विमुख रघुकुल-बीर।
कीजै जो कोटि उपाइ त्रिबिध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर॥ १॥

सहज टेव बिसारि तुही धौं देखु विचारि,
मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर।
समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥ २ ॥
आगम निगम ग्रन्थ, रिषि मुनि सुर सन्त,
सबही को एक मत सुनु, मति धीर।
तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु,
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**—कीर=शुकदेवसे अभिप्राय है। टेव=आदत। बारि=पानी। जुगम=(युग्म) दोनो। आगम=शास्त्र। निगम=वेद। रिषि=ऋषि।

**भावार्थ**—अरे मन! तू किसलिए बहुत-से उपाय करता फिरता है? देख, (तू भलेही अनेक यत्न किया कर, पर) यो तेरे दुःख कभी दूर होनेके नहीं, क्योकि तू रघुवंश-शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीसे विमुख हो रहा है (अतएव तू कभी सुखी नहीं हो सकता)। भगवद्‌विमुख करोड़ो उपाय क्यो न करे, पर उसके तीनो ताप—दैहिक, दैविक, भौतिक-नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनि-श्रेष्ठ शुकदेवजीने हाथ उठाकर कही है। (इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है) ॥१॥ अपने सहज स्वभावको भूलकर अर्थात् चंचलता छोड़कर एकाग्रचित्तसे तूही विचारकर देख तो, कि कहीं पानीके मथनेसे, बिना दूधके घी मिल सकता है? कदापि नहीं (इसी प्रकार विषयोंमे तल्लीन रहकर कोई ब्रह्मानन्दका पीयूष पान नहीं कर सकता, वह सुधा तो विरक्ति और विवेकसे ही प्राप्त होगी अन्यथा नहीं)। सोच-समझकर भ्रमको छोड़ दे (जो तू शरीरहीको आत्मा मान रहा है, इस मिथ्या ज्ञानको अलग कर दे) और श्रीरामचन्द्रजीके उन युगल चरणोंका भजन कर, जो सेवासे सुलभ हैं और सद्‌गुणोंके गम्भीर वन हैं, अर्थात् जिन चरणोंकी सेवा करनेसे विवेक, वैराग्य, क्षमा, शान्ति आदि सद्‌गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥ बुद्धि स्थिर करके शास्त्रों, वेदो, अन्य ग्रन्थों, ऋषियो, मुनियो, देवताओं और संतोका जो एक निर्धारित सिद्धान्त है, उसे सुन (और वह सिद्धान्त यही है, कि विषयासक्ति छोड़कर भगवद्भजन करना चाहिए)। हे तुलसीदास! यद्यपि गंगाका तट निकट है, तो भी बिना स्वामीके पशु प्यासा

ही मरा जाता है ( इसी प्रकार यद्यपि मुक्तिके सारे साधन यहाँ विद्यमान हैं, तथापि बिना भगवत्-कृपाके यह जीव शान्तिके लिए तड़प-तड़पकर मर रहा है ) ॥ ३ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) **'कह्यो······कीर'**—**श्रीमद्भागवतमें मुनिश्रेष्ठ बाल-परमहंस शुकदेवजीने कहा है—**

'घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिताः ।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥'

( २ ) **'सहज टेव'—जैसे—**

"हरष-बिषाद, ग्यान-अग्याना । जीवधर्म अहमिति अभिमाना ॥"

( ३ ) **अन्य साधन छोड़कर, सच्चे भावसे, भगवच्चरणागति प्राप्त करना ही इस पदका सिद्धान्त है ।**

( १९७ )

नाहिन चरन-रति ताहि तें सहौं बिपति,
कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर ।
बसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग,
ताहि क्यो भ्रम निरखि रबिकर-नीर ॥ १ ॥
सुनिय नाना पुरान मिटत नाहि अग्यान,
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर ।
बझत बिनहि पास सेमर-सुमन-आस,
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥ २ ॥
कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम बिधि,
नहि जप तप बस मन न समीर ।
तुलसिदास भरोस परमकरुना-कोस,
प्रभु हरिहैं बिषम भवभीर ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**–उछंग=गोद । कुरंग=हिरण । रविकरनीर=मृगतृष्णाका जल। कीर=तोता । बझत=बँध जाता है । पास=(पाश) जाल । हीर=गूदा ।

**भावार्थ**–श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मेरा प्रेम नहीं है, इसीसे दुःख झेल रहा

हूँ, यह बात ( मैंने ही नहीं वरन् ) वेदों और समस्त बुद्धिमान् मुनियोंने भी कही है। क्योंकि जो हिरण चंद्रमाके अंकमे रहकर अमृतका आस्वादन करता है, उसे भला मृगतृष्णाके जलमे क्यो भ्रम होगा ? ( इसी प्रकार जिस जीवने ब्रह्मानन्दके रसका चसका पा लिया, उसे संसारी विषय धोखेमे नही डाल सकते। मैं विषयोंमें पड़ा हुआ हूँ, इसीसे दुःख भोग रहा हूँ। जो भगवत्-चरणारविन्दो का उपासक होता, तो यह दुःख ही क्यो सहने पड़ते ) ॥१॥ जैसे तोता पढ़ता तो सब है, पर समझता कुछ नहीं है, वैसेही मै अनेक पुराण सुनता तो हूँ, किन्तु मोह नहीं दूर होता, अज्ञान ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। ( अज्ञानी) तोता बिना ही फंदेके स्वयं फँस जाता है, आपही चौंगली पकड़कर लटक रहता है, और इतनेमें उसे बहेलिया पकड़ लेता है। (और भी मूर्खता देखिए) वह (तोता) सेमरके फूलकी आशा करता है, (देखता है, कि जब इसका फूल इतना सुंदर है, तो फल कितना मीठा न होगा, पर ) ज्योंही उसमे चोच मारता है, उसे बिना गूदेका, निःसार, फल मिलता है अर्थात् रुईको छोड़कर उसमे खानेके लिए कुछ भी नहीं मिलता, पछतावा ही रह जाता है ( इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चौंगली पकड़कर आनंद मना रहा है, उसे यह स्मरण नहीं, कि कालरूपी व्याधा आकर पकड़ लेगा। तोतेकी तरह वह भी स्त्री, पुत्र, धन आदि पर मोहित होकर उनका उपभोग करने जाता है, पर वहाँ भ्रमको छोड़ रखा ही क्या है ! उसकी सारी आशापर पानी पड़ जाता है ) ॥२॥ न तो मेरे पास कोई साधन है और न कोई सिद्धि ही जानता हूँ। मुझे वैदिक विधियाँ भी ज्ञात नहीं। जप-तप भी करना नहीं जानता और न प्राणायामसे मनही वशमें किया है (अतः समाधि लगाना असंभव है)। इस तुलसीदासको तो करुणाके भाण्डार भगवान् रामचन्द्रजीका ही एक मात्र आश्रय है। वही इसकी असह्य सांसारिक वेदना दूर करेंगे, जन्म-मरणसे मुक्त करेंगे ॥३॥

**टिप्पणी**—(१) 'सुनिय''''''''अग्यान'—महात्मा कबीर भी कहते हैं–

'पढ़े-गुने-सीखे-सुने, मिटी न संसय-सूल।
कह कबीर, कासों कहूँ, येही दुख का मूल ॥
साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल-मोह-नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ॥'

( २ ) 'सेमर·······हीर'—कबीरसाहब भी तोतेको चेतावनी दे रहे हैं—

'सेमर सुवना बेगि तजु, घनी बिगुर्चन पाँख ।
ऐसा सेमर जो सेवै, हृदया नाहीं आँख ॥'

( ३ ) 'साधन'—जैसे, शम दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, विवेक, विराग, मुमुक्षुत्व आदि ।

( ४ ) 'बिधि'—जैसे, सत्य, शौच, दान, यज्ञानुष्ठान, पुरश्चरण, यंत्र-मंत्र, पंचाग्नि, प्राणायाम, समाधि आदि ।

( ५ ) 'करुना'—भक्तवर बैजनाथजी 'करुणा' की परिभाषा इस प्रकार लिखते हैं—

'सेवक-दुख ते दुखित ह्वै, स्वामि विकल ह्वै जाय ।
दुख हरि सुख साजै तुरत, करुनागुन सो आय ॥'

## राग भैरवी

### ( १९८ )

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु ही ते ॥ १ ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ।
अंतहुँ तोहि तजैंगे पामर ! तू न तजै अबही ते ॥ ३ ॥
अब नाथहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—ही ते=हृदयसे । रीते=खाली हाथ । पामर=नीच ।

**भावार्थ**—अरे मन ! समय निकल जाने पर तुझे पछताना पड़ेगा । इसलिए कठिनतासे प्राप्त होनेवाला मनुष्य-शरीरको पाकर भगवच्चरणारविन्दोंका भजन, कर्म वचन और हृदयसे कर ( अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है ) ॥१॥ सहस्रबाहु और रावण-जैसे ( महाप्रतापी ) राजा भी बलवान् कालसे अछूते नहीं बचे, उन्हे भी कराल कालका ग्रास बनना पड़ा । जिन्होंने 'हम-हम' करते हुए धन और धाम सँभाल-सँभालकर रखे थे, वे भी अन्त समय, मरते समय,

यहाँसे खाली हाथ ही चले गये ( एक कौड़ी भी साथ न गई ) ।।२।। पुत्र, स्त्री आदिको मतलबी यार समझ, इन सबसे प्रेम न बढ़ा, क्योंकि ये तेरे सदाके साथी नहीं हैं, न पहले थे और न आगे होंगे। ( स्वार्थ सिद्ध हो जानेपर कोई किसीका नहीं रहता है )। अरे अधम ! जब ये सब तुझे अन्त समय छोड़ ही देंगे, तो तू इन्हें अभीसे क्यों नहीं छोड़ देता ? ( जैसे यह तेरे साथी न बनेंगे, वैसे तू भी इनका साथी न बन ) ।।३।। अरे मूर्ख ! ( अविद्या-रूपी निद्रासे ) जाग, अपने स्वामी ( श्रीरघुनाथजी ) से प्रेम कर और हृदयसे सांसारिक आशाएँ त्याग दे, विषयवासनाओंको तिलाञ्जलि दे दे। कारण कि हे तुलसीदास ! कहीं कामरूपी अग्नि बहुत-सा विषयरूपी घी डालनेसे बुझती है ? ( वह तो और भी प्रज्वलित होगी। शान्तिरूपी जलसे ही उसका बुझना संभव है)।।४।।

**टिप्पणी—( १ ) 'हम हम……रीते'—यहाँ, कबीरसाहबका निम्न-लिखित शब्द हठात् स्मरण आ जाता है—**

'हम कौं ओढ़ावै, चदरिया, चलती बिरिया।
प्रान-राम जब निकसन लागे, उलट गईं दोउ नैन पुतरिया ॥
भीतरसे जब बाहर लाये, छूट गई सब महल-अटरिया ॥
चारजने मिलि खाट उठाइन, रोवत लै चले डगर-डगरिया ॥
कहत कबीर, सुनो भाई साधो, संग चली वह सूखी लकरिया ॥'

और भी—

'पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥
आस-पास योधा खड़े, सबी बजावैं गाल।
माँझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥'

**(२) 'सुत बनितादि···स्वारथरत'—यहाँ वाल्मीकिका दृष्टान्त घटता है। नारदके कहनेपर जब उन्होंने अपने कुटुम्बियोंसे पूछा कि तुम लोग मेरे पुण्य-पापके साथी रहोगे या नहीं ? तब कुटुम्बियोंने उत्तर दिया, हमें पुण्य-पापसे क्या मतलब है ? हम तो खाने-पीने के साथी हैं। हम क्या जानें, कि तुम हमारे लिए भोजन कहाँसे, किस प्रकार, लाते हो ? उनका यह स्वार्थ देखकर वाल्मीकिके हृदयमें ज्ञानोदय हो गया।**

(३) 'बुझै......बहु घी तें'—भाव-सादृश्य देखिये—

'न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥' (मनुस्मृति)

( १९९ )

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरिचरन-सरोज सुधा-रस, रविकर-जल लय लायो ॥१॥
त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो ।
गृह बनिता सुत बंधु भये बहु, मातु पिता जिन्ह जायो ॥२॥
जाते निरय-निकाय निरन्तर सोइ इन्ह तोहि सिखायो ।
तुव हित होइ कटै भव-बंधन, सो मगु तोहि न बतायो ॥३॥
अजहुँ बिषय कहँ जतन करत जद्यपि बहुबिधि डहँकायो ।
पावक-काम, भोग-घृत तें सठ, कैसे परत बुझायो ॥४॥
बिषयहीन दुख मिले बिपति अति, सुख सपनेहुँ नहि पायो ।
उभय प्रकार प्रेत-पावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो ॥५॥
छिन छिन छीन होत जीवन दुरलभ तनु बृथा गँवायो ।
तुलसिदास, हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो ॥६॥

**शब्दार्थ**—रविकरजल=मृगतृष्णाका पानी, कोरा भ्रम । त्रिजग=(तिर्यक्) पशु, पक्षी, सर्प आदि । बनिता=स्त्री । निरय=नरक । निकाय=समूह । डहकायो=छला गया । प्रेतपावक=लुकको चमक, जिसे लोग भूतकी आग कहा करते है । यह जङ्गलोमे प्रायः दिखायी देती है, और चमक कर तुरन्त बुझ जाती है । उरग=साँप ।

**भावार्थ**—अरे मूर्ख मन ! किस लिए दौड़ा-दौड़ा फिरता है ? श्रीहरि-चरणारविन्दोका अमृत रस छोड़कर मृगतृष्णाके जलमे लौ लगा रहा है ! भाव, ब्रह्मानन्द छोड़कर संसारके झूठे विषयोंकी ओर मन-मृगको दौड़ाता है ॥ १ ॥ पशु-पक्षी, देवता, मनुष्य, राक्षस एवं और-और संसारी योनियोमे तू भटक आया । जहाँ-जहाँ तू गया, तहाँ-तहाँ बहुत से घर, स्त्री, पुत्र, भाई तथा तुझे उत्पन्न

करने-वाले माता-पिता हो चुके हैं ( न जाने, कितने बार तू सम्बन्ध जोड़ चुका है ) ।।२।। जिस कर्मके करनेसे तुझे सदा अनेक नरकोमे जाना पड़े, वही इन लोगोने तुझे सिखाया (स्वार्थवश, जैसे-तैसे काम-काचनके सग्रह करनेके उपाय बतलाये ) । पर कभी उन लोगोने ऐसा मार्ग नही सुझाया, जिसपर चलनेसे तेरा संसारी-बधन कट जाय, जन्म-मरणसे मुक्त हो जाय ।। ३ ।। यद्यपि कई तरह से तू छला जा चुका है, फिर भी आजतक तू विषयोके ही लिए उपाय कर रहा है ! ( इन्द्रिय-लोलुप होकर भोग-विलासोंके प्राप्त करने के साधन कर रहा है ) । अरे दुष्ट ! ( तनिक विचार तो कर ) कामरूपी अग्निमे भोगरूपी घी डालनेसे वह कैसे शान्त होगी ? ( जितना ही विषय-भोग करेगा, उतनी ही कामाग्नि प्रज्ज्वलित होगी, वह तो विरक्तिरूपी जलसे ही बुझेगी, अन्यथा नहीं ।। ४ ।। फिर, विषयोंकी पूर्त्ति न होनेके कारण भी तुझे दुःख भोगना पड़ा, स्वप्नमे भी सुख नहीं मिला, इसलिए वेदोने इस विषयरूपी सम्पत्तिको, दोनो ही प्रकारसे, भूत की आगके समान दुःखमय बतलाया है ( जैसे वनमे यात्री भ्रमकी आग देखकर मार्ग भूल जाते हैं, और उसके भ्रममें पड़कर उनसे न आगे ही बढ़ा जाता है और न लौटा ही जाता है, उसी प्रकार विषयोंके मिथ्या प्रलोभनमे पडकर, मनुष्य लोक और परलोक दोनोसे ही हाथ धो बैठता है । न तो उसे यथेष्ट विषय-साधन ही मिलते हैं और न उनकी ओरसे अरुचि ही होती है) ॥५।। अरे ! तेरा जीवन पल-पल पर क्षीण होता जा रहा है और इस दुर्लभ शरीरको तूने योंही गँवा दिया ( दुर्लभ इसलिए कि मनुष्य-शरीर द्वारा मुक्ति अत्यन्त सुलभ है, यह सब साधनोका मुख्य द्वार है) । अतएव, हे तुलसीदास ! तू ससारी आशा छोड़कर केवल भगवद्भजन कर, कारण कि, कालरूपी साँप संसारको ग्रसे जा रहा है ( न जाने, कब किस घड़ी तू भी काल-कलेवा हो जाय ) ॥६॥

**टिप्पणी--'जाते ......सिखायो'-संक्षेपमें, प्रायः माता-पिता अपनी सतान को यही शिक्षा देते हैं—**

**"बेटा, जब कुछ बड़े हो जाओ, तब ऐसा काम करना, जिससे चार पैसे हाथ में आ जायँ, विद्या ऐसी पढ़ना (आजकल अंग्रेजी !) जिससे बड़ा ओहदा मिले, खूब रुपया इकट्ठा हो ( भले ही कुल-मर्यादा पर पानी पड़ जाय), लोग तुम्हें बड़ा समझकर तुमसे डरें । जहाँतक हो, दूसरो से लेना सीखो, देना तो कभी किसीको एक पैसा भी नहीं । गीता भागवत न पढ़ना, क्योंकि ये ग्रन्थ**

तो बुढ़ापेमें पढ़ने सुननेके हैं और घर-गृहस्थीवालोंको तो यह बाबा वैरागियोंकी पुस्तकें पढ़नी ही न चाहिएँ, तुम्हे तो चालाकी, जालसाजी सिखानेवाली किताबे ही दिन-रात पढ़नी चाहिएँ। (सारांश जिन-जिन कर्मोंसे स्वार्थ-साधन हो, वही करना)।"

(२) 'तुव····बतायो'—जिन्होने अपनी संततिको बचपनसे ही परमार्थका उपदेश दिया है, ऐसे माता-पिता इने-गिने ही मिलेंगे। उदाहरणार्थ, सुनीति (ध्रुवकी माता) और महारानी मदालसा।

(३) 'पावक·· बुझायो'—क्योंकि जबतक विषयोंमें आसक्ति रहेगी तब-तक वे कभी शान्त होनेके नहीं। अनासक्त कर्म बन्धनका हेतु नहीं है, पर अनासक्त होना बड़ा कठिन है। अतएव वैराग्य का अभ्यास डालना ही श्रेयस्कर है। यह मन अभ्यास और वैराग्यसे ही वशमें हो सकता है, जैसा कि गीतामें कहा गया है—

'असशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ॥'

(४) 'छिन-छिन····तनु'—कबीरसाहब इस क्षण-भंगुरता पर लिखते हैं—

'पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष का जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥'

( २०० )

तॉबे सो पीठि मनहुँ तनु पायो!
नीच, मीचु जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो ॥ १ ॥
अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत को न इन्हहि अपनायो?
काके भये, गये सँग काके, सब सनेह छल-छायो ॥ २ ॥
जिन्ह भूपनि जग-जीति बॉधि जम, अपनी बॉह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हें, तू गिनती कब आयो ॥ ३ ॥
देखु बिचारि सार का सॉचो, कहा निगम निजु गायो।
भजहिं न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि जेहि महेस मन लायो ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—मीचु=मौत। रवनि=(रमणी) स्त्री। कलेऊ=कलेवा, भोजन। निगम=वेद। निजु=सिद्धान्तरूपसे। लायो=लगाया।

**भावार्थ**—अरे जीव ! ( क्या कहना ! ) मानो तूने तो बेसे मढा हुआ शरीर पाया है ! भाव यह है, कि तू इस पानीके बुलबुलेके समान, नश्वर शरीर-को ऐसा मज़बूत समझ बैठा है, मानों वह सदा अजर अमर रहेगा, न गलेगा न सड़ेगा । हे नीच ! तू यह नहीं जानता, कि मौत तेरे सिरपर नाच रही है ? (जब चाहेगी तब तुझे झटककर पकड़ लेगी ) । तूने परमात्माको बिलकुल ही भुला दिया ( शरीरका भरण-पोषण ही जीवनका सर्वस्व समझ लिया है ! छिः छिः !! ) ॥१॥ पृथ्वी, स्त्री, धन, बड़े-बड़े मकान, मित्र और पुत्रको किसने नहीं अपनाया, अपना नहीं माना ? ( सभी मेरे-तेरेके फन्देमें फँसे है ) । किंतु (तनिक विचार तो कर ) यह किसके हुए ? किसके साथ (मरते समय) गये ? इन सबके प्रेममें केवल कपट भरा है, स्वार्थके मीत हैं ॥ २ ॥ जिन राजोंने संसार भरको जीतकर, दिग्विजय कर, कालको भी कैद कर अपने अधीन कर लिया था, उन्हें भी जब एकदिन मृत्यु भक्षण कर गयी, तब तेरी गिनती ही क्या है ? ॥३॥ विचारपूर्वक ( ज्ञान-दृष्टिसे ) देख, सच्चा सार क्या है ? और वेदोने सिद्धातरूपसे किसका निरूपण किया है ? हे तुलसी ! अब भी तू उसे समझकर नहीं भजता है, जिसके प्रति शिवजीने प्रेम किया है ! (भाव, श्रीरघु-नाथजी के चरणोंमें प्रेम कर, क्योंकि तेरा यह नश्वर शरीर एक-न-एक दिन नष्ट होनेको है । अतएव 'शुभस्य शीघ्रम्' विचारकर तुरन्त, विषयोकी ओरसे चित्त हटाकर, भगवान्मे लगा दे, नहीं तो अन्तकालमे केवल पछतावा ही हाथ रहेगा ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—(१) 'नीच······सीस पर' —कबीरसाहबकी साखी सुनिए–

'माली आवत देखिकै, कलियाँ करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि लईं कालिह हमारी बार ॥'

(२) 'गये संग काके'—इसपर भी कबीरसाहबकी अनूठी साखी है—

'इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥'

(३) 'जिन्ह भूपनि'—जैसे रावण, हिरण्यकशिपु, सहस्रबाहु, दुर्योधन, सिकन्दर आदि ।

(४) 'जेहि महेस मन लायो'—शिवजीने पार्वतीसे कहा था—

'अहं जपामि देवेशि, रामनामाक्षरद्वयम् ।
श्रीरामस्य स्वरूपस्य ध्यान कृत्वा हृदिस्थले ॥'

( २०१ )

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।

काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥ १ ॥

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहि बुलाये ।

तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहि समुझाये ॥ २ ॥

पर-दारा, पर-द्रोह मोहबस किये मूढ़, मन भाये ।

गरभवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये ॥ ३ ॥

भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये ।

सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गँवाये ॥ ४ ॥

गई न निज-पर-बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये ।

तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—काय=(काया) शरीर । घटत=करता है, आता है । मैथुन=स्त्री-प्रसंग । निज-पर-बुद्धि=अपने-परायेका भेद । लय=प्रेम, ध्यान ।

**भावार्थ**—मनुष्य-शरीर पानेसे क्या लाभ हुआ, यदि वह कभी, स्वप्नमे भी, मनसा, वाचा, कर्मणा ( तन, मन और वाणीसे अर्थात् निष्कपट भावसे ) पराये काम नहीं आया । उससे कोई परोपकार नही बना ॥१॥ विषय-सम्बन्धी जो सुख बिना ही बुलाये, आप-से-आप, स्वर्ग, नरक, घर और बनमें आ जाता है, प्राप्त हो जाता है, उस सुखके लिए अरे मन! तू अनेक प्रकारके उपाय कर रहा है! समझाने पर भी नहीं समझता ॥२॥ हे मूढ़! तूने पराई स्त्रीके लिए और दूसरोंसे वैर करनेके लिए अज्ञानवश जो मनमे आया सो किया ( विवेकसे काम नहीं लिया) । पूर्वजन्ममे तुझे गर्भमे जो बहुतसे दुःख मिले,उनका दारुण कष्ट भूल गया ? (पहले जन्ममे जो पाप किये थे,उनके कारण गर्भमें आना पड़ा और अब फिर यदि वैसे ही दुष्कर्म करेगा, तो फिर गर्भमे जाकर असह्य कष्ट भोगने होंगे,इसलिए, अब विवेक-द्वारा सदसत्का विचारकर परोपकार और परमार्थमे चित्त लगा) ॥३॥ यो तो जिस-जिसने संसारमे जन्म लिया है,उस-उसमें डर, नीद, काम-केलि, आहार आदि सब एकही-से पाये जाते है, किंतु जो देवताओं को भी दुर्लभ मनुष्य-शरीर है,उसे पाकर यदि तूने अहंकार किया,तो तेरा जीना

व्यर्थ है (क्योंकि, पशु और मनुष्यमें अन्तर ही क्या रहा ?) ॥४॥ जिन्होने अपने-परायेका भेद नही छोडा और निर्मल अन्तःकरणसे श्रीरघुनाथजीके प्रति प्रेम नहीं किया है, उन्हे, हे तुलसीदास ! ऐसा सुअवसर निकल जानेपर फिर पछतानेसे क्या मिलेगा ? (पछताना ही साथ रहेगा, हाथ कुछ भी न लगेगा ) ॥५॥

**टिप्पणी—( १ ) 'घटत न काज पराये'—पिछले कई पदोंमें वैराग्यका प्रतिपादन किया गया है। कच्चे दिलवालोंपर वैराग्य बड़ी जल्दी चढ़ जाता है और उतर भी तुरन्त जाता है। ये अज्ञानवश संसारका ठीक-ठीक रहस्य नहीं समझ पाते, उसे दूरसे ही देखकर डर जाते हैं और कायरकी तरह पूँछ दबाकर भागते हैं। 'वैराग्यका' प्रायः यही अर्थ किया जाता है कि संसारी पदार्थोंको, जिस रूपमे वे हैं उसी रूपमें, छोड़ देना चाहिए, भलेही उसमें आसक्ति बनी रहे ! इस पदमे गोसाईंजी स्वार्थसे विरक्त कराकर जीवको पुनः परोपकार-लोक-संग्रहके कर्मोंमें प्रवृत्त करा रहे हैं। वह विरक्तका अर्थ 'वीर' करते हैं, 'कायर' नही। परोपकार अर्थात् लोकोपकारके लिए स्वार्थत्यागकी बड़ी आवश्यकता है, और इसी कारण विषयोंकी ओरसे घृणा कराकर विरक्तिका उपदेश किया गया है। यह पद गीताके कर्मयोगकी ओर हठात् मनको आकृष्टकरता है।**

**(२) 'भय ·· जाये'—भाव-सादृश्य देखिए—**

'आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।' —भर्तृहरि

**(३) 'यह अवसर ·· पछितायें'—सत्य है,**

'आछे दिन पाछे गये, हरि से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करे, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥' —कबीरदास

( २०२ )

काज कहा नरतनु धरि सारयो ।
पर-उपकार सार स्रुति को जो सो धोखेहु न बिचारयो ॥ १ ॥
द्वैत मूल, भय सूल, सोक फल, भवतरु टरै न टारयो ।
रामभजन-तीछनकुठार लै सो नहिं काटि निवारयो ॥ २ ॥
संसय-सिंधु नाम-बोहित भजि निज आतमा न तारयो ।
जनम अनेक बिबेकहीन बहु जोनि भ्रमत नहि हारयो ॥ ३ ॥
देखि आन की सहज संपदा द्वेष-अनल मन जारयो ।
सम दम दया दीन-पालन सीतल हिय हरि न सँभारयो ॥ ४ ॥

प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम बचन बिसार्यो ।
तुलसिदास यहि आस सरन राखिहि जेहि गीध उधार्यो ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—सार्यो=पूरा किया,बनाया । बोहित=नौका । दम=जितेन्द्रियता।

**भावार्थ**—तूने मनुष्य शरीर धारण कर आखिर किया क्या ? जो परोपकार वेदोंका सार है,उसे तूने भूलकर भी नहीं विचारा (उसपर विचार तक नहीं किया, करना तो दूर रहा) ॥१॥ यह संसार मानो एक वृक्ष है, द्वैतभाव अर्थात् भेदबुद्धि तो इसकी जड़े हैं, भय काटे है और दुःख इसके फल है । यह वृक्ष हटाने पर भी नहीं हटता। क्योकि इसकी जड़ बड़ी मज़बूत है, अर्थात् भेदबुद्धि बड़ी ही कठिनतासे दूर होती है ) । यह वृक्ष तो केवल रामनामरूपी पैनी कुल्हाडीसे ही कटता है, सो तूने ऐसा किया नहीं ( रामनाम स्मरण कर जन्म-मरणसे छूटनेका उपाय नहीं किया ) ॥२॥ संशयरूपी समुद्र पार होनेके लिए राम-नाम नौकारूप है, सो उसका सेवन कर, भजन कर, तूने अपनी आत्माको ( अविद्यासे ) मुक्त नहीं किया । अनेक जन्मतक, अज्ञानवश, नाना योनियोंमें घूमता हुआ भी आजतक नहीं थका ( आश्चर्य है ! ) ॥ ३ ॥ दूसरोकी सहज सम्पत्ति देखकर ईर्ष्यारूपी आगमे मनको जलाता रहा ( यह देखकर जल-भुन गया, कि हाय ! अमुक मनुष्यके पास इतना धन क्यो आगया, मेरे पास क्यो नही है ) । शम, दम, दया और दीनोंका पालन करते हुए हृदयको शान्त कर भगवत्सेवा नहीं की । तूने मनसे, कर्मसे, और वचनसे, अर्थात् ध्यान-धारणासे, पूजा-सेवासे और भजन-स्तवनसे उन श्रीरघुनाथजीकों भुला दिया है, जो तेरे ( सच्चे ) स्वामी हैं, गुरु हैं, पिता हैं और मित्र है । हे तुलसीदास ! इतनी तो आशा फिर भी बनी है, कि जिसने जटायु गीधको तार दिया, वही तुझे अपनावेंगे ॥५॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'पर-उपकार सारस्रुति को'—प्रमाण लीजिए—

'अष्टादश पुराणाना व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम् ॥'

**विशेष, पद २०१ की पहली टिप्पणीमें देखिए ।**

**(२) 'भवतरु'—निम्नलिखित पद्यमें 'संसार-वृक्ष' का सांगोपांग-वर्णन मिलता है । देखिए—**

'अव्यक्त मूलनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कन्ध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने ॥

फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवित फूलति नवल नित संसार-बिटप नमामहे ॥'
(रामचरितमानस)

'संसार-वृक्ष' का रूपक बहुत प्राचीन है। वेदमें भी लिखा है—

'पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदोंमें भी यह रूपक मिलता है।

( ३ ) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

( २०३ )

श्रीहरि-गुरु-पदकमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान ॥ १ ॥
परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम-मिलन अति दूरि।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥ २ ॥
दुइज द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि मंडल धीर।
बिगत मोह-माया-मद हृदय बसत रघुबीर ॥ ३ ॥
तीज त्रिगुन-पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुन्द।
गुन सुभाव त्यागे बिनु दुरलभ परमानन्द ॥ ४ ॥
चौथि चारि परिहरहु बुद्धि–मन–चित-अहँकार।
बिमल बिचार परमपद निज सुख सहज उदार ॥ ५ ॥
पाँचइ पाँच परस, रस, सब्द, गन्ध अरु रूप।
इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-कूप ॥ ६ ॥
छठि षड्बर्ग करिय जय जनकसुता-पति लागि।
रघुपति-कृपा-बारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि ॥ ७ ॥
सातैं सप्तधातु निर्मित तनु करिय बिचार।
तेहि तनु केर एक फल कीजै पर-उपकार ॥ ८ ॥
आठइँ आठ प्रकृति-पर निर्बिकार श्रीराम।
केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहि बहु काम ॥ ९ ॥

नवमी नवद्वार-पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख दीन्ह ॥१०॥

दसइँ दसहु कर संजम जो न करिय जिय जानि।
साधन बृथा होइँ सब मिलहि न सारँगपानि ॥११॥

एकादसी एक मन बस कै सेवहु जाइ।
सोइ ब्रत कर फल पावै आवागमन नसाइ ॥१२॥

द्वादसि दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक।
परहित-निरत सो पारन बहुरि न ब्यापत सोक ॥१३॥

तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत।
मन-क्रम-बचन-अगोचर,ब्यापक, ब्याप्य, अनन्त ॥१४॥

चौदसि चौदह भुवन अचरचर रूप गोपाल।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जग-जाल ॥१५॥

पूनो प्रेम-भगति-रस हरिरस जानहि दास।
सम सीतल गत-मान ग्यानरत विषय-उदास ॥१६॥

त्रिबिध सूल होलिय जरै, खेलिय अब फागु।
जो जिय चहसि परमसुख तो यहि मारग लागु ॥१७॥

स्रुति-पुरान-बुध-सम्मत चाँचरि चरित मुरारि।
करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥१८॥

संसय-समन, दमन-दुख सुखनिधान हरि एक।
साधु-कृपा बिनु मिलहि न करिय उपाय अनेक ॥१९॥

भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन।
तुलसिदास प्रयासबिनु मिलहि राम दुखहरन ॥२०॥

**शब्दार्थ**—द्वैतमति=भेद-बुद्धि। चरहि=विचरण कर। त्रिगुन=सत्त्व, रज और तम। श्रीरमन=लक्ष्मीकांत, विष्णु भगवान्। परस=स्पर्श। षड्वर्ग=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। सप्तधातु=अस्थि, चर्म,रक्त, मांस

मज्जा, मेद और वीर्य। नौ द्वारपुर=नौ छेदवाला शरीर। सारंगपानि=धनुष धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी। पारन=व्रतके उपरान्तका भोजन। अति=जड़से। उदास=विरक्त। लागु=आरूढ़ हो। चाँचरि=फागके गीत। मुरारि=मुर दैत्यके शत्रु, विष्णु भगवान्।

**भावार्थ**—हे मन! तू भगवत्स्वरूप श्रीगुरुके चरणारविन्दोका, निरभिमान होकर, भजन कर। उनकी सेवा करनेसे आनन्दघन नारायणसे साक्षात्कार हो जाता है ॥१॥ जैसे प्रतिपदा (पक्षमे) सबसे पहला दिन है, उसी प्रकार (सर्व साधनो मे प्रथम) प्रेम है। बिना प्रेमके श्रीरघुनाथजीका मिलना अत्यन्त दुष्कर है, अर्थात् भगवत्प्राप्तिका मुख्य साधन एक प्रेम ही है। यद्यपि सर्वव्यापी श्री-रामचन्द्र सम्पूर्ण कलाओके सहित अपने हृदयमे वास करते है तथापि बिना प्रेम के उनसे साक्षात्कार कर लेना असम्भव-सा है ॥२॥ द्वितीयाके समान दूसरा साधन यह है, कि भेद-बुद्धि (अपने-परायेका भेद) छोड़कर (समदृष्टिसे) धैर्य धारण करके समस्त पृथ्वी-मण्डलमे (निश्चिन्त होकर) विचरण करना चाहिए। अज्ञान, माया और अहङ्कारको हटाकर हृदयमे सदा श्रीरघुनाथजीका चिन्तवन करना चाहिए (जबतक हृदयमे माया-मोहका निवास है तबतक भगवत् ध्यान करना सम्भव नहीं, क्योंकि काम और राम एकसाथ नहीं रह सकते) ॥ ३ ॥ तृतीयाके समान तीसरा उपाय यह है, कि पुरुषोत्तम, लक्ष्मीकांत मुकुन्द भगवान् (मायात्मक) तीन गुणोसे परे हैं। अतएव त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज और तम) प्रकृतिका त्याग कर देना चाहिये। बिना ऐसा किये ब्रह्मानन्द-प्राप्ति महाकठिन है (सगुण, सगुणको प्राप्त करता है और निर्गुण, निर्गुणको। इस सिद्धान्तसे जीवको यदि ब्रह्म-साक्षात्कार करना है, तो उसे गुणोका त्याग कर देना ही श्रेयष्कर है) ॥४॥ चतुर्थीके समान (भगवत्प्राप्तिका) चौथा साधन यह है कि बुद्धि, मन, चित्त और अहङ्कार-इनका जो "अन्तःकरण-चतुष्टय" है, उसे त्याग देना चाहिए (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारको अपने अधीन कर लेना चाहिए, क्योंकि जो इनके वशमे चलता है, उसका सर्वनाश अनिवार्य्य है)। इस त्यागके अनन्तर शुद्धविवेकका उदय होगा और तब स्वाभाविक (एकरस) आत्मानन्द-रूपी परमपदकी प्राप्ति हो सकेगी, जो बड़ा ही विशाल है ॥५॥ पंचमीके अनुसार पाँचवाँ साधन यह है, कि शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप, ये जो पंचेद्रियोंके विषय हैं, इनके अनुकूल, इनके अधीन होकर, कभी न चलना चाहिए, क्योंकि

इनमें फँसकर (निश्चय) जीवको संसाररूपी कुएँमें गिरना पड़ेगा ( आवागमनके चक्रमें पडना होगा ) ॥ ६ ॥ षष्ठीके समान छठा उपाय यह है कि श्रीजानकी-वल्लभ रघुनाथजीकी प्राप्तिके अर्थ काम, क्रोध, लोभ मोह, मद और मात्सर्यपर विजयलाभ करना चाहिए और लोभरूपी अग्नि तो बिना भगवत्कृपाके शान्त हो ही नहीं सकती। लोभ सबसे अधिक प्रबल कहा गया है। ( यहाँ लोभका नाश श्रीहरि-कृपासे ही सम्भव है। अतः सदा 'तदीय' कृपाका आश्रय किये रहना चाहिए) ॥७॥ सप्तमीके समान, भगवत्प्राप्तिका सातवाँ उपाय यह है, कि इस सात धातुओं ( त्वचा, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद और शुक्र ) से बने हुए शरीरपर विचार करना चाहिए (सदा यह विचार करना चाहिए कि यह शरीर नाशवान् है, नर्कका रूप है, इसे भोग-विलासोंमें लिप्त न करना चाहिए)। इस शरीरका केवल एक यही फल है, कि इससे परोपकार ही करना चाहिए। (परोपकारमें ही नर-शरीरकी सार्थकता है) ॥८॥ अष्टमीके समान आठवाँ उपाय यह है, कि श्रीरामचन्द्रजी अष्टप्रकृति (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ) से परे शुद्धस्वरूप हैं। जबतक हृदयसे नाना प्रकारकी कामनाएँ दूर नहीं हुईं, तबतक वह कैसे मिल सकते हैं ( शुद्ध आनन्दघन भगवान्‌का निवास निष्काम, निर्विकार और पवित्र हृदयमें ही होता है ) ॥९॥ नवमीके समान नवाँ साधन यह है, कि जिसने इस नौ दरवाजेकी नगरी अर्थात् नौ छेदवाले शरीरमें रहकर अपनी आत्माका भला नहीं किया, वह अनेक योनियोंमें भटकता फिरेगा और अपनी आत्माको दुःख देगा ( क्योंकि विषयोंमें फँसकर वह कभी भी जन्म-मरणसे छुटकारा न पा सकेगा और सदा आत्मघाती कहा जायगा ) ॥१०॥ दशमीके समान दसवाँ साधन यह है, कि संयम करना चाहिए, क्योंकि जिसने दसों इन्द्रियोंका संयम करना नहीं जाना, दसों इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया, उसके सारे साधन निष्फल हो जाते हैं और उस असंयत जीवको धनुषधारी रघुनाथजीकी प्राप्ति नहीं होती ( इन्द्रिय-लोलुपको भगवत्-रसास्वादन स्वप्नके समान है ) ॥११॥ एकादशीके समान ग्यारहवाँ साधन यह है, कि एकवृत्त चित्त करके (सब ओरसे हटाकर, एक लक्ष्यमें लगाकर ) भगवत्सेवा करनी चाहिए। इसी आराधनासे (परमार्थ-रूपी एकादशी ) व्रतका फल मिलता है, और वह फल है जन्म-मरणसे मुक्त हो जाना ॥१२॥ द्वादशीके दिन जैसे दान दिया जाता है, वैसे बारहवाँ साधन यह है, कि ऐसा दान देना चाहिए

कि जिससे तीनों लोकोमे कोई भय न रहे। उस द्वादशीरूपी बारहवें साधनका पारण यही है, कि सदा परोपकारमें लगा रहना चाहिए। (इस दान और पारण-से) फिर शोक नहीं व्यापता है ॥१३॥ त्रयोदशीके समान तेरहवाँ साधन यह है, कि जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंको त्यागकर भगवान्‌का भजन करना चाहिए ( सदा एकरस, निरबाधित रूपसे; भगवद्‌भजन करना चाहिए)। नारायण मन, कर्म और वाणीसे परे हैं, सबमे व्याप रहे है, स्वयं व्याप्य हैं अर्थात् दृश्यरूप हैं और अनन्त अपरिमित हैं। (अतएव उनका भजन इन अवस्थाओंको त्याग देने परही सम्भव हो सकता है, क्योंकि जबतक जीव अवस्था-भेदमे रहेगा, तबतक वह अनन्त, सर्वव्यापी परमात्माका पूर्णरूपेण चिंतवन कर ही नहीं सकता) ॥१४॥ चतुर्दशीके समान गोपाल ( इन्द्रियोंके नियन्ता) भगवान् चौदहो लोकोंमें रम रहे हैं। जड़ और चैतन्य सब उन्हींका रूप है। जबतब जीवकी भेद-बुद्धि दूर नहीं हुई, 'मेरे-तेरे' का भाव सर्वथा नाश नहीं हुआ, तबतक श्रीरघुनाथजी संसाररूपी जाल छिन्न-भिन्न नहीं करते, जन्म-मरणसे नहीं छुड़ाते ॥१५॥ अब पूर्णमासी के समान पन्द्रहवाँ साधन, जो सर्वोत्कृष्ट, पूर्ण साधन है, वह यह है कि शान्त, शीतल, अभिमान-रहित, ज्ञानमय और विषयोंसे विरक्त हो जाना चाहिए। तभी परमानन्दका सुधारस प्राप्त होगा। इस रसको केवल भगवान्‌के सेवक ही जानते हैं ( विषयी क्या समझ सकेंगे ! ) ॥१६॥ (यहाँ गोसाईंजीने फाल्गुन मासकी पूर्णमासीका वर्णन किया है। यह पूर्णमासी और महीनेकी पूर्णमासीसे कहीं अधिक आनन्दमयी समझी जाती है)। होलीमे दैहिक, भौतिक, दैविक—इन तीनों तापोंको भस्म कर देना चाहिए। तब फिर फाग खेलनी चाहिए ( आनन्द मनाना चाहिए, जबतक संसारी दुःखोंका लेस भी रहेगा, तबतक जीव निश्चिन्त होकर परमानन्दका उत्सव नहीं मना सकता )। जो तू अपने मनमे परमानन्दकी इच्छा करता है, तो इस मार्गपर चल ( उपर्युक्त पन्द्रह साधनोंको क्रम-क्रमसे साध) ॥१७॥ वेद, पुराण और पण्डितोंका यही एक मत है कि भगवान्‌की लीलाओंका गान ही होलीमे गानेके गीत है। भाव,हरिकीर्तन करना ही सर्वप्रधान है। इन सब साधनों पर विचार करके संसार सागरको पार कर जाना चाहिए और फिर कभी ( भूल-कर भी) यम-सेनाके फन्देमे न पड़ना चाहिए। (जन्म-मरणके चक्रमे न फँसना

चाहिए) ॥१८॥ अविद्याके नाश करनेवाले, दुःखोंके दूर करनेवाले और आनन्दकी राशि केवल एक नारायण ही हैं। भले ही अनेक उपाय करो, पर वह संतोंकी कृपाके बिना नही मिल सकते (संत कृपा सर्वसाधनोंमे प्रधान है) ॥१६॥ संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिए सन्तोंके पवित्र चरण ही नौका हैं। हे तुलसीदास ! ( इस नौकापर चढ़कर अर्थात् संतोंकी चरणोंकी सेवा करके ) दुःखोंके नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही परिश्रमके मिल जाते हैं ॥२०॥

**टिप्पणी-(१) 'श्रीहरि-गुरु'-यहाँ गुरु और हरिमे अभेदत्वका प्रतिपादन किया गया है! गुरुकी सेवा करनेसे हरिकी प्राप्ति होती है। कबीरदासजी कहते हैं-**

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पॉय।
बलिहारि गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥'

**(२) 'परिवा'—चन्द्रमाकी षोडश कलाएँ हैं। एक-एक तिथिमें एक-एक कलाकी वृद्धि होती है। 'शारदातिलक' में षोडश कलाओंके नाम इस प्रकार दिये हैं-**

'अमृता, मानदा तुष्टिम्पुष्टिम्प्रीति रतिं तथा।
लज्जा, श्रियं, स्वधा, रात्रि, ज्योत्स्ना, हंसवतीन्ततः ॥
छाया च पूरणीं वामाममाचन्द्रकला इमाः ॥'

**श्रीबैजनाथजीने इसी प्रकार, जीवकी भी षोडश कलाएँ लिखी हैं—**

**'निराशा' सद्वासना, कीर्ति, जिज्ञासा, करुणा, मुदिता, स्थिरता, सुसङ्ग उदासीनता, श्रद्धा, लज्जा, साधुता, तृप्ति, क्षमा, विवेक, विद्या।'**

**(३) 'प्रेम....दूरि'-रामचरितमानसमें लिखा है—**

'जद्यपि प्रभु सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगटि होत भगवाना ॥'

**(४) 'सप्त...विचार'—इस क्षणभंगुर शरीरके सम्बन्धमें कबीरदासजी कहते है—**

'जारे देह भसम ह्वै जाई, गाड़े माटी खाई।
कॉचे कुम्भ उदक ज्यो भरिया तन की यहै बड़ाई ॥'

**(५) 'नवद्वारपुर'—इस नगरीपर निम्नलिखित शब्द बड़ा ही उत्तम है**

'ऐसी नगरिया मे काहै बिधि रहना। नित उठ कलंक लगावै सहना।
एकै कुवाँ पाँच पनिहारी। एकै लैजुर भरै नौ नारी ॥
फट गया कुवाँ बिनस गई बारी। बिलग भई पाँचों पनिहारी।
कहैं 'कबीर' नाम बिनु बेरा। उठ गया हाकिम लुट गया डेरा ॥'

( ६ ) 'सारंगपानि'—यहाँ यह शब्द बड़ा ही सार्थक प्रयुक्त हुआ है। इन्द्रियोंपर विजय लाभ करनेके लिए धनुर्धारी रामका स्मरण किया गया है।

( ७ ) 'परहित'—२०१ पदकी पहली टिप्पणी देखिए।

( ८ ) 'चौदह भुवन'—भूः, भुवः, स्वः, जन, तप, सत्य, ब्रह्म, तल, अतल, सुतल, वितल, तलातल, रसातल और पाताल।

( ९ ) 'प्रेम······दास'—प्रेमपरा भक्तिका आनन्दरस दासभावके भक्त ही जानते हैं। सर्व साधनोंके अनंतर प्रेम-भक्ति मिलती है। दासभावमें जीव सब तरहसे परख लिया जाता है, उसे सभी साधनोंको धीरजके साथ पार करना पड़ता है, और तब कहीं प्रेम-परा भक्तिकी प्राप्ति होती है।

( १० ) 'संतनके चरन'—क्योंकि—

'मथुरा भावै द्वारिका, भावै ना जगनाथ।
साधु-चरन-सेवन बिना, कछु ना आवै हाथ॥' —कबीरदास

( ११ ) यह पद साहित्य, भक्ति एवं तत्वज्ञानकी दृष्टिसे बड़ा ही सुन्दर, सारमय और भावपूर्ण है। साधकजनोंके तो हृदयका हार ही है। क्रमशः इस पदके सिद्धान्तपर चलता हुआ साधक पूर्ण अवस्थाको प्राप्त कर सकेगा, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है।

## राग कान्हरा

( २०४ )

जो मन लागै रामचरन अस।
देह गेह सुत बित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस॥१॥
द्वन्द्वरहित गतमान ग्यानरत बिषय-बिरत खटाइ नाना कस।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होंहि बस॥२॥
सर्बभूत-हित निर्ब्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एकरस।
तुलसिदास यह होइ तबहि जब द्रवै ईस जेहि हतो सीसदस॥३॥

**शब्दार्थ**—कलत्र=स्त्री। खटाई=निभा जाये, परख मे ठीक-ठीक उतरे। कस=परीक्षा। निर्ब्यलीक=निर्मल, निष्कपट। एकरस=त्रिकालाबाधित दशा। सीसदस=दशशिरवाला रावण।

**भावार्थ**—जो यह मन श्रीरघुनाथजीके चरणोंमे इस प्रकार लग जाय, जैसे

कि वह शरीर, गृह, पुत्र, धन और स्त्रीमें, सहज रीतिसे, मग्न हो जाता है, स्वभावसे ही उनके मोहमें फँस जाता है, ॥१॥ तो वह द्वन्द्वों (सुख-दुःख आदि) से रहित हो जाय, उसका अभिमान दूर हो जाय, ज्ञानमें तल्लीन हो जाय तथा अनेक परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो जाय, कसौटीपर खरा उतरे और आनन्दघन, सुचतुर कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न होकर उसके अधीन हो जायँ (यदि यह मन समस्त सांसारिक वासनाओंको छोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें प्रीति करे, तो अवश्य ही परमात्मा उसके वशमें हो जायँगे; जैसा वह कहेगा, वैसा उन्हें करना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है)॥२॥ (जो जीव भगवच्चरणारविन्दोंमें इस प्रकार प्रेम करेगा) वह सब प्राणियोंके हितमें अपनेको लगा देगा, उसका चित्त शुद्ध हो जायगा, भक्ति और प्रेम दृढ़ हो जायँगे और उसके नियम त्रिकालाबाधित, सदा एक-से रहेंगे; अर्थात् वह सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति आदि द्वन्द्वोंमें सम्पन्न या विपन्न न होगा। हे तुलसीदास! यह दशा तभी प्राप्त हो सकेगी, जब रावणके मारनेवाले समर्थ स्वामी (श्रीरामजी) कृपा करें, (अन्यथा नहीं)॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'जो मन····अस'—इस प्रकार भगवत्सेवा करनी चाहिए, जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा है—**

'स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम्।
घ्राणं च तत्पाद-सरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः॥'

**(२) 'खटाई नाना कस'—श्रीबैजनाथजीके अनुसार स्वर्गीय भट्टजीने इसका यह अर्थ किया है—"वह (संसारके) विषयोंसे ऐसे अलग हो जाता है कि जैसे कस (काँसा) के पात्रोंमें धरी अनेक खट्टी वस्तुओंसे मन फिर जाता है।" यह अर्थ भी घट सकता है, किन्तु कुछ खींचतान करने पर ही यह अर्थ ठीक-ठीक बैठता है। श्रीबैजनाथजीने इसे खूब विस्तारके साथ लिखा है।**

**(३) 'जेहि····सीसदस'—जिसने दश शिरवाले रावणको मारा है, वही दशों इन्द्रियोंपर विजयलाभ कराकर इस परमहंस अवस्थाको पहुँचावेगा।**

(४) सहज स्वभावसे, निष्कपट भावसे, भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रेम करना चाहिए—यही इस पदका निचोड़ है।

( २०५ )

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु।
तौ तजि बिषय-बिकार, सार भजु, अजहूँ जो मै कहौं सोइ करु ॥१॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥
स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अगजगरूप भूप सीताबरु ॥३॥
इहै भगति बैराग्य ग्यान यह हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥४॥

**शब्दार्थ**–सम=(शम) शान्ति, समभाव। निसेष=(निःशेष) पूर्णरूपसे। अग=जड़। जग=चैतन्य। तोषन=प्रसन्न करनेवाला। सिवमत=शिवजीका बतलाया हुआ सिद्धांत, कल्याणकारी मत।

**भावार्थ**—हे मन! जो तू भगवत्‌रूपी कल्पवृक्षका सेवन करना चाहता है, तो विषयोंके विकारको, काम-लिप्साको, छोड़कर साररूप श्रीराम-नामका भजन कर और जो मैं कहता हूँ उसे अब भी कर (अभी तक कुछ बिगड़ा नहीं) ॥१॥ समता, संतोष, निर्मल ज्ञान और सत्संग, इन चारोंको दृढ़तापूर्वक (हृदयमे) रख ले, इन्हे हृदयंगम करके इनपर अनुसरण कर। और काम, क्रोध, लोभ, अज्ञान, अहकार एवं राग और द्वेषको बिलकुल ही छोड़ दे, हृदयमे इनका लेशमात्र भी न रहे (क्योंकि जबतक इन दुर्गुणोका निवास रहेगा, तबतक उपर्युक्त सद्‌गुणोंकी वहाँ दाल गलनेकी नहीं, काम-कांचनके आगे धर्म-कर्मका निर्वाह नहीं हो सकता) ॥ २ ॥ कानोंसे भगवत्कथा सुनाकर मुखसे (राम) नाम स्मरण किया कर, हृदयमे भगवद्‌ध्यान किया कर, मस्तकसे प्रणाम तथा हाथोसे भगवान्‌की सेवा किया कर। नेत्रोंसे कृपा सागर, जड़-चैतन्यमय महाराज जानकीवल्लभ रामचन्द्रजीका दर्शन किया कर (इन्हीं कर्मोंमे तेरे शरीरकी सार्थकता है, नहीं तो विषयोंका अनुसरण करता हुआ तू मनुष्य-शरीरको योंही व्यर्थ खो देगा, न लोक बनेगा, न परलोकही) ॥३॥ यही

भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है और इसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शुभ-कल्याणकारी व्रतका साधन कर। हे तुलसीदास ! यह मार्ग शिवजीका बतलाया हुआ है। इस (कल्याणयुक्त) मार्गपर चलनेसे स्वप्नमें भी भय नहीं रहता (वह जीव, जो इस मार्गपर चलता हैं, जन्म-मरणके भयसे मुक्त हो जाता है ) ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—(१) 'विषय-बिकार'—शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श मैथुनादि इन्द्रियोंके भोगविलास, जो नितान्त निस्सार हैं। विवेकद्वारा इन विषयोंकी निःसारता देखकर सारस्वरूप आत्माकी उपासना करनी चाहिए। जब अन्तः-करणचतुष्टय निःशेषरूपसे विशुद्ध हो जाय, तब भगवद्‌भक्तिका, हरि-कैंकर्यका अधिकार प्राप्त होता है।

( २ ) 'अगजगरूप'—सर्वव्यापी परमात्मा;

'सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी ॥'

—(रामचरितमानस)

( ३ ) 'हरि तोषन'—भगवान् एक अनन्य भक्ति द्वारा ही प्रसन्न होते हैं। अनन्य उपासकका लक्षण यह मिलता है—

'न विधिर्न निषेधश्च प्रेमयुक्तं रघूत्तमे।
इन्द्रियाणामभावः स्यात् सोनन्योपासकः स्मृतः॥'—( श्रीमहारामायण )

( ४ ) 'सपनेहुँ नाहिंन डर'—क्योंकि प्रमाण मिलता है—

'निर्भय वैष्णवं पदं।'

शरणागत जीव, वास्तवमें, निर्भय हो जाता है। भगवान् ने स्वयं उसे निर्भय कर देनेका वचन दिया है। देखिए—

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥'—(वाल्मीकि-रामायण)

( २०६ )

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति-सम बिपति-निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवकबस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत-चिन्तामनि, बिरद पुनीत पतितजन-तारन ॥२॥
सुमिरत सुलभ दास-दुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सँभार न।
साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपद-सुता अरु बारन ॥३॥

जाको जस गावत कबि कोबिद, जिन्हके लोभ मोह मद मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु, कोसलपति मुनिबधू-उधारन ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—प्रनत=नम्र सेवक। निगम=वेद। आगम=शास्त्र। द्रुपद-सुता=द्रौपदी। बारन=हाथी। कोविद=ज्ञानी, विद्वान्। मार=काम।

**भावार्थ**—श्रीरघुनाथजीके समान विपत्तियोंका दूर करनेवाला तथा शरणमें लेने योग्य कोई दूसरा नहीं है (शरणमें तो उसीके जाना चाहिए जो निर्भय होकर अपनी रक्षा कर सके; सो परमात्माको छोड़कर ऐसा कोई भी समर्थ नहीं है। सभी किसी-न-किसी भयसे पीड़ित हो रहे हैं)। किसका ऐसा निष्कपट स्वभाव है, जो अपने सेवकोंके वशमें होकर रहता हो ? दीन भक्तोंपर, बिनाही किसी कारणके, किसका प्रेम है ? (किसीका नहीं, सभी अभिमानी और स्वार्थी दिखाई देते हैं। ऐसे तो एक श्रीरामजी ही हैं) ॥ १ ॥ जब श्रीरघुनाथजी अपने दासके ज़रासे गुणको देखते हैं, तब वह उसे सुमेरु पर्वतके सदृश महान् मानते हैं और उसके करोड़ों दोषोंको कुछ भी नहीं लेखते, भूल ही जाते हैं। वास्तवमें, वह बड़े ही दयालु, भक्तोंके चिन्तामणिस्वरूप (जो-जो भक्त माँगते हैं, सो-सो पाते हैं) और पवित्र यशवाले तथा पापी लोगोंको (संसार-सागरसे) पार कर देनेवाले हैं ॥२॥ स्मरण करते ही, बिना किसी कठिनाईके, प्राप्त हो जाते हैं। और अपने दासका कष्ट सुनकर इतनी शीघ्रतासे (दुःख दूर करनेको उसके पास) दौड़ आते हैं, कि वह अपने पीताम्बर तकको नहीं सँभालते (जहाँ जैसे बैठे होते हैं, तहाँसे वैसे ही दौड़कर चले आते हैं)। इस बातके साक्षी पुराण, वेद, शास्त्र, द्रौपदी और गजेन्द्र, ये सब हैं (मैं कवि-कल्पनासे काम नहीं ले रहा हूँ, इसके उदाहरण भी पाये जाते हैं) ॥३॥ जिन्होंने लोभ, मोह, अहंङ्कार और कामको छोड़ दिया है, ऐसे कवि और ज्ञानी-पुरुष जिनकी कीर्तिका गान करते हैं, हे तुलसीदास ! सारी (सांसारिक) आशाओंको छोड़कर, अहल्याके उद्धार करनेवाले उन प्रभुका ही तू भजन कर ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—(१) 'प्रीति अकारन'—निष्कारण और निष्काम प्रेम ही, वास्तवमें, प्रेम है। किसी वस्तुकी इच्छा करके जो प्रेम किया जाता है वह व्यापार है, प्रेम नहीं। और ऐसा सकाम प्रेम स्थिर भी नहीं रहता। प्रेम तो स्थायी, निष्काम और श्रेयस्कर होना चाहिए। सो ऐसा उत्कृष्ट प्रेम भगवान् ही जीवोंपर कर सकते हैं, औरकी सामर्थ्य नहीं है।**

(२) 'पतितजन'—जैसे, अजामेल, अहल्या, केवट, श्वपच, म्लेच्छ आदि।
(३) 'द्रुपदसुता'—द्रौपदी; १३ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।
(४) 'बारन'—गजेन्द्र; ८३ पदकी टिप्पणी देखिए।
(५) 'पटपीत सम्हार न'—श्रीयुत् भट्टजीने यह अर्थ किया है—"दासके दुःखको सुनते ही वे तुरत अपने पीताम्बरको संभाल कर चलते हैं, अर्थात् भक्तका दुःख दूर करनेके लिए पीताम्बर पहन तुरन्त जानेको तैयार हो जाते हैं।" पर, यदि पीताम्बर पहनने लगेंगे, तो देर न हो जायगी ? पीताम्बर तो पहलेसे ही पहिने हैं। बात यह है कि पीताम्बर यदि कुछ खुला सा पड़ा है तो उसे वैसा ही रहने देते हैं और तुरन्त दौड़कर बिना उसे सँभाले ही अपने भक्तके पास चले जाते है। पाठ 'संभार न' है, न कि 'सम्हारन'।
(६) 'मुनिबधू'—अहल्या; ४३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( २०७ )

भजिबे लायक, सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिंन।
आनन्दभवन, दुखदमन, सोकसमन रमारमन गुन गनत सिराहि न ॥१॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूँ जे समाहि न।
सुमिरत नाम बिबसहूँ बारक पावत सो पद जहाँ सुर जाहि न ॥२॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहि न।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस, कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥३॥

**शब्दार्थ**—दवन=(दमन) दूर करनेवाला। समन=( शमन ) शान्ति करनेवाला। सिराहिं न=पूरे नहीं होते है। बारक=एक बार। लुब्ध=लोभी। बिरत=विरक्त। सुगति=मोक्ष। कारुनीक=करुणामय, कृपालु।

**भावार्थ**—भजन करने योग्य, आनन्द देनेवाले और शरणमे रखनेवाले स्वामी श्रीरघुनाथजीके समान कोई दूसरा नहीं है। उन आनन्दधाम (आनन्द-राशि), दुःखोंके नाश करनेवाले, शोकके हरनेवाले, लक्ष्मीकान्त भगवान्के गुण गिनते-गिनते भी समाप्त नहीं होते हैं। भाव, वह अनंतगुणविशिष्ट है ॥१॥ जो दुखी, नीच, अत्यज, कपटी, दुष्ट, पापी और भयभीत कहीं भी नहीं बच सकते हैं (जिन्हे कोई शरणमे रखनेको तैयार नहीं है) वे भी एक बार ही श्रीरामनाम-स्मरण कर उस पदपर पहुँच जाते है, जहाँ देवता भी नहीं जाने पाते, अर्थात् वह निर्वाण पद प्राप्त कर, जन्म-मरणसे सदाके लिए मुक्त हो जाते हैं॥२॥ जिनके

चरणस्वरूपी कमलोंमें वे विरक्त मुनि-मधुप लुब्ध हो रहे हैं (रसलोलुप बने बैठे हैं), जिन्हे मोक्षतकका लोभ नहीं है (भाव, जो मोक्ष-सुखको भी तुच्छ समझकर भगवत्-चरणारविन्दोंका पराग पान कर रहे हैं) हे तुलसीदास ! जो अनाथों-पर भी अनुकूल रहता है, हे शठ ! उस करुणामय—दयामूर्ति-प्रभुका भजन क्यों नहीं करता है ? (आश्चर्य है, कि ऐसे करुणामय स्वामीको छोड़कर तू संसारके द्वार द्वारपर भटकता फिरता है ! कल्पवृक्षको छोड़कर एरण्डका सेवन करता है !) ॥ ३ ॥

**टिप्पणी**—(१) **'सुमिरत ··· जाहिं न'–प्रमाण लीजिए**—

'सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम् ।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥'—(पद्मपुराण)

(२) **'सुगतिहु लुभाहिं न'—क्योंकि**—

'सगुन-उपासक मोच्छ न लेहीं'—( रामचरितमानस )
'चारौ मुक्ति भरैं तहँ पानी, घर छावैं ब्रह्मग्यानी !'—( व्यासजी )

राग कल्याण

( २०८ )

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ।
त्रिबिध*अनगिनत अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥ १ ॥
बिरचि हरिभगति को बेष बर टाटिका,
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं ।
नामलगि लाइ लासा-ललित-बचन कहि,
ब्याध ज्यों विषय-विहँगनि बझावौं ॥ २ ॥
कुटिल सतकोटि मेरे रोम पर वारियहि,
साधुगनती मे पहलेहिं गनावौं ।
परम बर्बर खर्ब गर्व-पर्वत चढ़्यो,
अग्य सर्बग्य जन-मनि जनावौं ॥ ३ ॥

---

* पाठान्तर 'बिबिध' ।

साँच किधौं झूठ मोको कहत, कोउ-
कोउ राम ! रावरो हौं तुम्हरो कहावौं।
बिरद की लाज करि दासतुलसिहि, देव,
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—टाटिका=टट्टी। लगि=लग्गी। लाइ=लगाकर। लासा=चेप। बझावौं=फँसाता हूँ। बर्बर=मूर्ख। खर्ब=नीच। जनमनि=भक्तोंमें शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ। बावौं=बायाँ, पीठ।

**भावार्थ**-हे प्रभो! आपको मैं किस प्रकार अपनी बिनती कहकर सुनाऊँ? तीन प्रकारके (मन, वचन और कर्मसे उत्पन्न) अगणित अपने पापोंकी ओर देखकर जब मै आपकी शरण मे आता हूँ, तब सामना होते ही लज्जाके कारण सिर नीचा कर लेता हूँ (आँखसे आँख नहीं मिला सकता, क्योंकि मेरे पास एक भी पुन्यका बल नहीं है, कि जिससे आपकी शरण प्राप्त कर सकूँ) ॥१॥ भगवद्भक्तोंका भेष धारणकर मानो सुन्दर (धोखेकी) टट्टी बनाता हूँ। और कपटरूपी हरे हरे पत्तोंसे उसे छा देता हूँ! (तिलक लगाकर, कण्ठीमाला पहिनकर, राम-राम जपता हूँ और इस धोखेसे दूसरोंकी आँखोंमे धूल डालता हूँ। 'मुखमे राम-राम बगलमें कसाईके काम' इस लोकोक्तिका स्वरूप हूँ, पर पाखण्ड कर-कर लोगोंको ठगना मेरा कर्त्तव्य हो गया है)। आपके (राम) नामकी लग्गी लगाकर, मधुर वचनोंका लासा लगा देता हूँ! (राम-राम जपता हुआ ऐसी मधुर वाणी बोलता हूँ कि लोग सचमुच ही मुझे महात्मा समझने लगें) और फिर बहेलिया की तरह विषयरूपी पक्षियोंको फँसा लेता हूँ। (लोगोंकी दृष्टिमें तो वैष्णव बना हुआ राम-राम जपता फिरता हूँ, पर करता क्या-क्या हूँ, सो सुनिए—रूपवती स्त्रियोंको काम-दृष्टिसे देखता हूँ, काम वार्त्ता सुनता हूँ, सुगंध-मय माला धारण करता हूँ और जितने कुछ भोग-विलास हैं, उनमे इन्द्रियोंको फँसाता हूँ) ॥२॥ मेरे एक रोम पर सौ करोड़ पापी निछावर किये जा सकते हैं, पर तो भी अपनेको साधुओंकी गणनामें सर्वप्रथम गिनवाना चाहता हूँ, संत-शिरोमणि बननेका दावा रखता हूँ। मैं बड़ा ही मूर्ख हूँ, नीच हूँ और अभिमानरूपी पहाड़पर चढ़ा बैठा हूँ, अर्थात् बड़ा भारी अभिमानी हूँ। (इतना ही नहीं, वरन्) महामूर्ख भी हूँ, किन्तु सर्वज्ञ और भक्त-श्रेष्ठ बनता हूँ। भाव, जानता तो कुछ भी नहीं, पर बकवाद कर-कर

लोगोंकी दृष्टिमें षट्शास्त्रो एवं पहुँचा हुआ अनन्य भक्त हो रहा हूँ ॥ ३ ॥ हे भगवन्! कह नहीं सकता, कि झूठ है या सच, पर कोई-कोई मुझे यह कहते हैं कि 'यह रामजीका है' और मैं भी 'आपहीका' कहलाया चाहता हूँ। हे नाथ! अपने बानेकी बात रखकर इस तुलसीदासको अपना ही लीजिए ( क्योंकि यदि आपने मुझे न अपनाया तो फिर मैं किसका होकर रहूँगा? मेरे पाखंडकी कलई खुल जानेपर कोई भी मुझपर विश्वास न करेगा और न अपनी शरणमें ही लेगा ) इसलिए आपही अपनाइए। अब और कहाँ जाऊँ? ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—(१) 'नाथ सों ···नावौं'—कबीरदासजी भी यही बात कह रहे हैं—**

'क्या मुख लै बिनती करौं, लाज जु आवत मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौ तोहिं॥'

**(२) 'हरि-भक्तको वेष'—सच्चा भेष तो यह है—**

'तत्त्व-तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी-कंठी कंठमे, परसा पद निर्वान॥' —कबीरदास

**(३) 'लेहु अपनाइ'—अपनाकर मेरे दंभों और पाखण्डोंको दूर कर दीजिए, जिससे मैं शुद्ध अन्तःकरणसे आत्मस्वरूप पहिचान सकूँ।**

( २०६ )

नाहिनै नाथ! अवलम्ब मोहिं आन की।
करम मन बचन पन सत्य करुनानिधे,
एक गति राम, भवदीय पदत्रान की ॥१॥
कोह मद मोह ममतायतन जानि मन,
बात नहिं जाति कहि ग्यान-बिग्यान की।
काम-संकल्प उर निरखि बहु बासनहिं,
आस नहिं एकहू आँक निरबान की ॥२॥
बेद-बोधित करम धरम बिनु अगम अति,
जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन,
द्रवहिं हठ जोग दिये भोग बलि प्रान की ॥३॥

भगति दुरलभ परम, संभु-सुक-मुनि-मधुप,
प्यास पदकंज–मकरन्द–मधुपान की।
पतित-पावन सुनत नाम बिस्रामकृत,
भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रन्थि अभिमान की॥४॥
नरक-अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहि,
भूप, मोहि सक्ति आपान की।
दासतुलसी सोउ त्रास नहि गनत मन,
सुमिरि गुह गीध गज ग्याति हनुमान की॥५॥

**शब्दार्थ**—पन=प्रतिज्ञा। भवदीय=आपके। पदत्रान=जूता। कोह=क्रोध। ममतायतन=(ममता+आयतन) ममताका घर। आँक=अंश। निरबान=(निर्वाण) मोक्ष। बोधित=समझाये हुए। लालसा=इच्छा। अमरपुर=स्वर्ग। द्रवहिं=कृपा करते है। मकरंद=पराग। बिस्राम=शान्ति। ग्रन्थि=गाँठ। कूपक=कुआँ। आपान की=आपकी। ग्याति=(ज्ञाति) जाति।

**भावार्थ**–हे नाथ! मुझे किसी औरका सहारा नहीं है। हे करुणानिधान! मन, वचन और कर्मसे मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा है, कि मुझे केवल आपकी जूतियों का ही भरोसा है (मै अनन्यव्रतसे आपकी जूतियोंकी शरणमें रहता हूँ)॥१॥ मेरा मन क्रोध, अज्ञान और ममताका स्थान है, इसलिए ज्ञान-विज्ञानकी बात कहना उसके लिए असभव है, अथवा ज्ञान-विज्ञानके बलपर उसका निस्तार नही हो सकता। और हृदयमे अनेक कामनाओ के संकल्प उठ रहे है। वहाँ नाना प्रकारकी (विषय) वासनाएँ देखकर मोक्षकी तो एक अंश भी आशा नही है, (क्योंकि वासनाओके आत्यन्तिक लयको ही मोक्ष कहते है, सो बिना वासनाएँ दूर हुए मोक्षकी आशा करना 'ख-पुष्पवत्' ही है)॥२॥ यद्यपि मैं स्वर्ग जानेके लिए लालायित हो रहा हूँ, पर वेद-विहित कर्म-धर्म किये बिना वहाँ जाना अत्यन्त कठिन है (इसपर भी पानी फिर गया!) और सिद्ध, देवता, मनुष्य एवं राक्षसोकी सेवा बड़ी कठिन है। ये लोग तभी प्रसन्न होंगे, जब इनके अर्थ हठयोग किया जाय, यज्ञका भाग दिया जाय और प्राणोका बलि चढ़ाया जाय (यह कुछ भी मुझसे नहीं हो सकता, अतएव इन लोगोंकी कृपा-

की आशा करना भी व्यर्थ है, अब शेष क्या रहा, सो सुनिए) ॥३॥ भक्ति कैसी है, बड़ी कठिन; क्योंकि शिव, शुकदेव तथा मुनिरूप भौंरे आपके चरणारविन्दका मधुर पराग पीनेके अर्थ प्यासे बने रहते है (इस रसको पीते-पीते उन्हें भी तृप्ति नहीं होती, फिर मुझ जैसे नीचके लिए वह सौभाग्य कहाँ है?)। हाँ, आपका नाम निःसन्देह पापियोंका उद्धार करनेवाला तथा शान्ति देनेवाला सुना जाता है, किन्तु चित्तमे अहंकारकी गाठें पड़ जानेके कारण मन फिर भ्रम जाता है। भाव, सशयात्मा होनेसे मैं विषयोंकी ही ओर दौड़ता हूँ ॥४॥ हे महाराज! मेरा तो बस, नरकमे ही जानेका अधिकार है, क्योंकि मैंने कर्म ही ऐसे घोर किये हैं, कि जिनसे संसाररूपी अँधेरे कुएँमें पड़ा रहूँ, किन्तु मुझे फिर भी आपका बल है। और इसीसे गुह, जटायु, गजेन्द्र और हनुमान्‌की जाति याद करके यह तुलसीदास उस भयको, संसारके जन्म-भयको, कुछ भी नहीं समझता (क्योंकि जब बड़े-बड़े पापियोंके तर जानेके उदाहरण उपस्थित हैं तब मुझे भी हे दीन-वत्सल! आपके हाथसे मुक्त हो जानेकी आशा है) ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'अवलम्ब'—यह शब्द पुल्लिंग है, किन्तु गोसाईंजीने कविस्वातंत्र्यके अधिकार से इसे यहाँ, स्त्रीलिंग माना है।**

**(२) 'काम''''निरबानकी'—अविद्याका मूल कारण वासना है। विषयोंका चिन्तवन करते-करते उनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे कामना और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे मोह और मोहसे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति नष्ट होते ही बुद्धि-नाश और फिर बुद्धि-नाशसे आत्मोन्नतिकी आशा कहाँ? लिखा है—**

'ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः, कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥' (श्रीमद्भगवद्गीता)

**(३) 'बेद-बोधित कर्म'—नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन प्रकारके कर्म हैं। भेदोपभेदसे यज्ञ, दान, तप, होम, व्रत, स्वाध्याय, सयम, जप, तप, स्नान, तीर्थाटन, चाँद्रायण आदि उपवास, चातुर्मास, तर्पण आदि सहस्रों प्रकारके सत्कर्म हैं।**

**(४) 'हठ जोग'—चौरासी आसन, धोती नेती, पंचाग्नि-तप, जल-शयन,**

समाधि आदि हठयोगके अनेक अंग हैं। 'हठयोग-प्रदीपिका' एवं 'शिव-संहिता' में हठयोगका विस्तृत विवरण मिलता है।

( ५ ) 'भगवान्‌की शरण ही जीवके लिए श्रेयस्कर है'—यही इस पदका सिद्धान्त है।

( २१० )

और कहँ ठौर रघुबंस-मनि, मेरे।
पतित-पावन प्रनत-पाल असरन-सरन,
बाँकुरो बिरद बिरुदैत केहि केरे॥ १॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम जो,
करत नहिं कान बिनती बदन फेरे।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं करुना-सिन्धु,
क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिन हेरे॥ २॥
मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे,
राम, तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे।
अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,
नाम-बल क्यों बसौं जम नगर नेरे॥ ३॥
कतहुँ नहिं ठाउँ, कहँ जाउँ कोसलनाथ!
दीन बितहीन हौं बिकल बिनु डेरे।
दास तुलसिहिं बास देहु अब करि कृपा,
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे॥ ४॥

**शब्दार्थ**—बाँकुरो=बाँका, निराला। बिरुदैत=बानावाला। करत नहि कान=सुनते नहीं हैं। क्योंऽब=क्यों+अब। अपवर्ग=मोक्ष। सुकृतैक=सुकृत (पुण्य)+एक। नेरे=पास। खेरे=खेड़ेमें, गाँवमें।

**भावार्थ**—हे रघुवंश-शिरोमणे! मेरे लिए और कहाँ स्थान है? (आपको छोड़कर, बताओ कहाँ जाऊँ?) पापियोंको पवित्र करनेवाले, दीनोंको पालनेवाले एवं अनाथोंको शरण देनेवाले एक आपही हैं। आपका-सा निराला बाना किस बाने-

वालेका है ? ( किसीका भी नहीं ) ॥१॥ हे रघुनाथजी ! अपने मनमें मेरे अपराध समझकर, क्रोधपूर्वक यद्यपि आप मेरी विनतीपर ध्यान नहीं देते हो और मेरी ओरसे अपना मुँह फेरे हुए हो, तो भी मै निर्भय होकर, हे कृपामूर्ते ! कहता ही जाता हूँ । मेरी बात सुनकर उसपर ध्यान दिये बिना आपसे कैसे रहा जाता है ! (क्योंकि जब आप किसी दीनकी पुकार सुनते हैं, तो तुरन्त ही उसपर ध्यान देते हैं, किन्तु मेरी बार टाल-टूल कर रहे हो, इसीसे आश्चर्य होता है ) ॥२॥ ( यदि आप मेरी इच्छा पूछते हैं, तो सुनिए ) सबसे प्रधान कामना तो मेरी यह है, कि मै आपके धाम ( साकेत लोक ) में जाकर रहूँ, किन्तु हे नाथ ! उस रुचिको काम, क्रोध, लोभ और मोह घेरे हुए हैं ( ये दुष्ट उस इच्छाको दबा देते हैं ) । और मोक्ष दुर्लभ है ( क्योकि कामनाओंका नाश नहीं हुआ ) । स्वर्ग मिलना भी कठिन है, क्योंकि वह केवल पुण्योंके फलसे प्राप्त होता है ( मैंने कोई सत्कर्म तो किया नहीं, फिर स्वर्ग कैसे जा सकता हूँ ? ) । अब रहा नर्क, सो आपके नामके बल-भरोसे पर वहाँ भी नहीं जा सकता हूँ (क्योंकि जो राम-नाम स्मरण करता है वह नर्क-यातनासे छूट जाता है ) ॥३॥ अब मुझे कहीं रहनेके लिए स्थान नहीं रहा, कहाँ जाऊँ ? हे कोशलेश ! मैं निर्धन और दीन हूँ ( धनाढ्य होता, तो कहीं रहनेका स्थान बनवा लेता ) । निवास-स्थानके न होनेसे व्याकुल हो रहा हूँ। इससे हे नाथ ! इस तुलसीदासको कृपाकर उस गाँवमें रहनेकी जगह दे दीजिए, जहाँ गजेन्द्र, जटायु, व्याध ( वाल्मीकि ) आदि रहा करते हैं । साराश, जैसे आपने इन पापियोंको अपना लिया है, वैसे मुझे भी शरणमे ले लीजिए ॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'करत नहिं······फेरे'—ऐसा न कीजिए, क्योंकि—**

'सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भव जल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहि पकरौ बाहिं ॥'

**(२) 'स्वर्ग···नेरे'—स्वर्ग जानेके लिए मेरे पाप बाधक हो रहे हैं और नर्क जानेके लिए आपका राम-नाम! साधक कहींका कोई नहीं दिखायी देता। अब कहिए कहाँ जाऊँ ?**

**(३) 'गज'—गजेन्द्र; ८३ पदकी टिप्पणी देखिए।**

(४) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।

(५) 'व्याध'—वाल्मीकि; १४ पदकी टिप्पणी देखिए ।

( २११ )

कबहुँ रघुबंसमनि, सो कृपा करहुगे ।
जेहि कृपा व्याध गज बिप्र खल नर तरे,
तिन्हहि सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥ १ ॥
जोनि बहु जनमि किये करम खल बिविध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहि धरहुगे ।
दीनहित अजित सर्बग्य समरथ प्रनतपाल,
चित्त मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥ २ ॥
मोह मद मान कामादि खल-मंडली
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ।
जोग जप जग्य बिग्यान ते अधिक अति,
अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥ ३ ॥
मन्दजन-मौलिमनि सकल-साधन-हीन,
कुटिल मन मलिन जिय जानि जो डरहुगे ।
दासतुलसी बेद-बिदित बिरुदावली
बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—अमल=निर्विकार, शुद्ध, निष्काम । मौलि=शिर । बिरुदावली=कीर्ति कलाप । बिस्तरहुगे=फैलाओगे ।

**भावार्थ**-हे रघुवंश-शिरोमणे ! क्या कभी आप मुझपर वैसी कृपा करेंगे, जैसी व्याध ( वाल्मीकि ), गजेन्द्र, ब्राह्मण अजामेल और अनेक दुष्टोंपर करके उन्हें संसार-सागरसे पार कर दिया ? हे नाथ ! क्या आप उन्ही पापियोके समान मुझे भी मानकर मेरा उद्धार करेंगे ? ॥१॥ अनेक योनियोमे जन्म ले लेकर मैंने नाना प्रकारके दुष्ट कर्म किये हैं । क्या आप मेरे नीच आचरणको तो मनमे न लायेंगे ? ( यदि आपका ध्यान मेरी कुटिल करनीपर गया, तो फिर हो चुका ! इस तरह मेरा कभी उद्धार होनेका नहीं । भला तो यह है, कि आप मेरे कर्मोंपरसे आँख ही हटा लें ) क्या आप, दीनोंका भला करना, किसीसे भी न

छारना, घट-घटकी बात जानना, समर्थ होकर सेवकोका पालन करना आदि गुणोंका, अपने कोमल स्वभाव से, अनुसरण करेंगे ? अर्थात् जैसे आपके नाम हैं, उन्हींके अनुसार मेरे साथ बर्त्ताव करेंगे। ( क्या आप मेरा भला करेंगे ? मुझे निर्भय बना देंगे ? मेरे अन्तःकरणके कर्मो और विचारोको समझकर दूर कर देंगे ? मेरी रक्षा करेंगे ? और मुझ दीनपर दया-भाव रखेंगे ? ) ॥ २ ॥ मेरे हृदयमे अज्ञान, अहकार, मान, काम आदि दुष्टोकी जो मडली बस रही है, उसे समूल नष्ट करके क्या आप मेरे दुःखोंको दूर करेंगे। और क्या आप अपनी उस भक्तिको देकर मेरे हृदयमें परमानन्द भर देंगे, जो योग, जप, यज्ञ, और विज्ञानसे भी निर्मल और बढ़कर हैं। (भाव यह है, कि मुझे अन्य साधनो एवं तज्जन्य फलो वा सुखोंकी कामना नहीं है, मुझे तो एक आपकी निष्काम भक्ति ही चाहिए ) ॥३॥ यदि आप इस तुलसीदासको अधमजनोंका शिरोमणि सब साधनोसे रहित, पापी एवं विकारी मनवाला समझकर अपने मनमें कुछ शंका करेंगे ( यह विचार करेंगे, कि इतने भारी पापीका उद्धार करनेसे कदाचित् हमपर लोग यह न दोषारोपण करें, कि परमात्मा अन्यायी है ) तो हे प्रभो ! आप वेद-विख्यात अपनी विरुदावली तथा उज्ज्वल कीर्तिका विस्तार कैसे करेंगे ? ( यदि आपको अपनी कीर्तिका प्रचार कराना है, तो मेरा उद्धार अवश्यमेव करना होगा ) ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—(१) 'ब्याध'—वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(२) 'गज'—५७ पदकी टिप्पणी देखिए।

(३) 'बिप्र'—अजामेल; ५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(४) 'विज्ञान'—आत्मज्ञानसे तात्पर्य है, न कि पदार्थ-विज्ञानसे। आत्म-ज्ञान वा स्वरूपज्ञानका प्राप्त हो जाना ही सर्वस्व नहीं है। इसके आगे भी कुछ है, और वह है परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान। यह ज्ञान पराभक्ति द्वारा प्राप्त होता है। अतः पराभक्ति, साधना होती हुई भी, साध्या वा लक्ष्यरूपा मानी गई है।

(५) 'बिरुदावली······बिस्तरहुगे'—मुझे त्याग देनेसे वर्तमानमें अयश फैल जायगा और पूर्व यश भी मलिन पड़ जायगा। भविष्यमें भी कोई विश्वास न करेगा। अतः हम दीन जनोंका त्याग ठीक नहीं है, क्योंकि—

'हम ग़रीबों से है सारी बादशाही आपकी।'

## राग केदारा

( २१२ )

रघुपति बिपति-दवन ।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन ॥ १ ॥
कूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन ॥ २ ॥
गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**—दवन=(दमन) नाश करनेवाले। जवन=यवन। रवन=(रमण) रमनेवाले। पवन=पवित्र करनेवाले; शुद्ध शब्द 'पावन' है।

**भावार्थ**—श्रीरघुनाथजी विपत्तियों के हरनेवाले हैं। आप बड़े ही कृपालु, दीनोंके, पालनेवाले और पापियोको पुनीत करनेवाले है ॥१॥ निर्दयी लोगोंको, दुष्टोको, नीच शूद्रोंको, गरीबोको और बड़े ही अपवित्र म्लेच्छो तकको, उनके नाम लेते ही, राम-नाम स्मरण करते ही, श्रीरामचन्द्रजीने अपने साकेतलोकको भेज दिया (ऊँच नीचका विचार न कर, सबको एक-सी ही गति दे दी) ॥२॥ गजेन्द्र ( जो बड़ा ही मदोन्मत्त था ), पिंगला वेश्या, अजामेल ( जो महान् पापी था ) आदि दुष्टोकी गणना कौन करे ( इनके समान और भी असंख्य पापी हैं) ! हे तुलसीदास ! श्रीजानकी-वल्लभ प्रभु रामचन्द्रजीने किस किसको मुक्त नहीं कर दिया ( कैसा भी पापी हो, जिसने उनकी शरण ली, वह संसार-सागरसे पार हो ही गया ! ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'पवन'—पावन, यह आर्ष प्रयोग है।**

**(२) 'जवन'—एक विशेष यवनसे अभिप्राय हो सकता है, जिसे मरते दम, 'हराम' (फ़ारसी भाषामें शूकर) कहने पर, भगवान्‌ने मुक्त कर दिया था। कवितावलीमें लिखा है—**

'आँधरो, अधम, जड़, जाजरोजरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग मैं।
गिरयौ हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो-'
हाय हाय करत परिगो कालफंद मैं ॥'

'तुलसी' बिसोक है त्रिलोकपति-लोक गयो,
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग मैं।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन,
महिमा सु ताकी क्यों कही है जाति अगमैं ॥'

(३) 'गज'—८७ पदकी टिप्पणी देखिए।
(४) 'पिंगला'—६४ पदकी टिप्पणी देखिए।
(५) 'अजामिल'—५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( २१३ )

हरि-सम आपदा-हरन।
नहि कोउ सहज कृपालु दुसह-दुखसागर-तरन ॥ १ ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन ॥ २ ॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन।
'हा हरि पाहि!' कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥ ३ ॥
इहै जानि सुर नर मुनि कोविद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—सुनाभ=चक्र। पाहि=रक्षा करो। पट=वस्त्र। बरन=रंग। कोविद=ज्ञानी। नृग=एक राजा का नाम।

**भावार्थ**—श्रीहरि भगवान्‌के समान विपदाओंका हरनेवाला, स्वभावसे ही निष्कारण कृपा करनेवाला और असहनीय दुःखरूपी समुद्रसे पार उतार देनेवाला दूसरा और कौन है ॥ १ ॥ जब गजेन्द्र अपना बल देखकर (हार गया) और (भेंटस्वरूप) कमलका फूल लेकर आपकी शरणमें गया, तब उसके दीन वचन सुनकर चक्रसुदर्शन लेकर आप गरुड़को वहीं छोड़ तुरंत (दौड़ते हुए) चले आये (अर्द्ध क्षण भी उसके आर्त्तवचन न सुन सके। धन्य!) ॥२॥ जब (भरी सभामें) दुष्ट दुःशासन द्रौपदीके वस्त्र उतारने लगा, तब केवल उसके इतना कहने पर ही, कि 'हाय! भगवन्, मेरी लाज रखिए' आपने विविध रंगोंके वस्त्रोंका ढेर लगा दिया (उसकी साड़ीको इतनी लम्बी-चौड़ी बना दिया, कि

खींचते-खींचते दुःशासन हार गया, पर उसे उसका छोर न मिला) ॥३॥ यह समझ-बूझकर देवता, मनुष्य, मुनि और विद्वज्जन आपके चरणोंकी सेवा करते हैं। राजा नृगका उद्धार करनेवाले समर्थ भगवान्‌ने किस-किसको अभय नहीं किया ? भाव, जो उनकी शरणमें गया, उसे मृत्युसे अभय कर दिया ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) 'सुनाभ'—श्रीयुत् भट्टजीने इसका अर्थ 'नाभि' लिखा है, अर्थात् नाभिको धारण करनेवाले भगवान्। इस अर्थमें शैथिल्य है। 'सुनाभ' का अर्थ चक्र होता है। यही अर्थ नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित 'तुलसीग्रन्थावली'में भी माना गया है।

(२) 'द्रौपदी'—९३ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(३) 'नृग'—राजा नृग महान् दानी था। वह नित्य एक करोड़ गायोंका दान करता था। एक बार उसने एक ब्राह्मणको एक गाय दानमें दी। वह गाय किसी तरह भागकर राजाकी गायोंमें मिल गई। दूसरे दिन राजाने उसे न पहिचानकर दूसरे ब्राह्मणको दान दे दिया। पहला ब्राह्मण अपनी गायकी तलाशमें फिर ही रहा था। उसने इस ब्राह्मणके पास गाय देखकर इसे चोर समझा और दोनोंमें झगड़ा होने लगा। दोनों राजाके पास न्याय कराने पहुँचे। राजाने उन्हें राजी करना चाहा, पर वे राजी न हुए। गाय छोड़कर चले गये और यह शाप दे गये, कि हे राजन्! तूने हमें धोखा दिया है। जा, गिरगिटकी योनिको प्राप्त हो। राजा गिरगिट हो गया, बेचारा एक सहस्र वर्ष तक द्वारिका-पुरीके एक कुएँमें पड़ा रहा। श्रीकृष्णने उसे निकालकर उसका उद्धार कर दिया और दिव्य शरीर पाकर वह वैकुंठ चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवत-में लिखी है।

राग कल्याण

( २१४ )

ऐसी कौन प्रभु की रीति ?

बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति ॥ १ ॥

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।

मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥ २ ॥

काम-मोहित गोपकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह।

जगत-पिता बिरञ्चि जिन्हके चरन की रज लीन्ह ॥ ३ ॥

नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि-गनि गारि।
कियो लीन सु आपु में हरि राज-सभा मँझारि॥ ४ ॥
ब्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़मति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि॥ ५ ॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—कालकूट=विष। जादवराइ=यादवोंके राजा, श्रीकृष्ण। बिरंचि =ब्रह्मा। बानि=स्वभाव। सुकृत=पुण्य। पातक=पाप।

**भावार्थ**—(भगवान्‌को छोड़कर) और किस स्वामीका ऐसा स्वभाव है, जो अपने बानेका लाज रखनेके लिए पवित्रात्माओंको त्यागकर नीचोंपर प्रेम करता हो ? (किसीका नहीं)॥१॥ पूतना स्तनोंमे विष लगाकर उन्हें (भगवान् कृष्णको) मारने गई थी, किन्तु कृपामूर्ति यादवेन्द्र श्रीकृष्णने उसे वह गति दी, जो माताको दी जाती है (उसे माता मानकर स्वर्ग भेज दिया)॥२॥ आपने कामान्ध गोपियों-पर तो अपूर्व ही कृपा की। ऐसी कृपा की कि, उनके चरणोंकी धूलि जगत्पिता ब्रह्माने भी अपने मस्तकपर चढ़ायी (क्योंकि प्रेमस्वरूपा गोपियोंको आपने अपना ही स्वरूप दे दिया था) ॥३॥ जो शिशुपाल नियम बाँधकर नित्य गिन-गिनकर गालियाँ देता था ( नित्य श्रीकृष्णको सौ गालियाँ देनेका उसका संकल्प था ), उसे भगवान्‌ने राजाओंकी सभामे देखते-देखते अपनेमें लीन कर लिया, अपने ही में मिला लिया ॥ ४ ॥ मूर्ख बहेलियेने तो मृग समझकर आपके चरणमें निशाना लगाकर (बाण) मारा, पर उसे आपने, अपने दयालु स्वभावसे, सदेह गोलोक भेज दिया। (धन्य !) ॥५॥ जिन्होंने पुण्य और पाप दोनो ही किये हैं, उनके सम्बन्धमें क्या कहा जाय ? (क्योंकि उनका सद्‌गति पानेका कुछ-न कुछ तो अवश्य ही अधिकार था) किन्तु उन्होने प्रत्यक्ष पापमूर्त्ति तुलसीको जो शरणमें रख लिया है, यही आश्चर्य है ॥६॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'पूतना'—यह किसी जन्ममें अप्सरा थी। भगवान् वामनका बाल-स्वरूप देखकर, वात्सल्य स्नेहवश, इसके मनमें यह आया, कि मैं इस बालकको पुत्र मानकर अपने स्तनोंका दूध पिलाऊँ। अन्तर्यामी भगवान्

उसकी मनोवांछा जान गये। वह अप्सरा पूतनाके नामसे, किसी घोर पापके कारण, राक्षसी हुई। भगवान्‌ने मातृ-भक्ति दिखाकर उसे स्वर्ग भेज दिया।

( २ ) 'काम-मोहित गोपिकनि पर'—महाभाग्यवती गोपिकाएँ 'काम-मोहित' तो नहीं कही जा सकतीं। श्रीमद्भागवतमें महाराज परीक्षितने ब्रह्मर्षि शुकदेवजीसे जब यह प्रश्न किया, कि गोपियाँ तो काम-मोहित थीं, उन्हें परम-पद कैसे मिला, तब महर्षिने यह उत्तर दिया, कि जिन्होंने समस्त संसारको, यहाँ तक कि अपने जीवनको भी श्रीनन्दनन्दनपर न्यौछावर कर दिया और उनसे निष्काम प्रीति जोड़ी, भला वे काम मोहित हो सकती हैं ? अहा! गोपियाँ तो गोपियाँ ही थीं। त्रिलोकमें, त्रिकालमें, उनकी उपमा किसीके साथ नहीं दी जा सकती। देखिए, इस गोपीकी लगन कितनी ऊँची है—

'तौक पहिरावौ, पाँव बेडी लै भरावौ,
गाढे बंधन बँधावौ औ खिचावौ काची खाल सो।
बिष लै पिलावौ तापै मूठ भी चलावौ, माँझ
धारमे बहावौ बाँधि पत्थर 'कमाल' सो॥
बिच्छू लै बिछावौ तापै मोहि लै सुलावौ, फेरि
आग भी लगावौ बाँधि कापड़ दुसाल सो।
गिरि से गिरावौ, काले नाग से डसावौ,
हा हा, प्रीति ना छुड़ावौ गिरिधारी नदलाल सो॥'

और भी—

'कोउ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोउ कहौ रंकिनी, कलंकिनि कुनारी हौं॥
कैसो देवलोक परलोक नरलोक, मै तौ,
लीनी है अलीक, लोक-लीकन ते न्यारी हौं॥
तन जावौ, धन जावौ, 'देव' गुरुजन जावौ,
जीव क्यों न जावौ, टेक टरति न टारी हौं॥
बृन्दावनवारी गिरिधारी की मुकुटवारी,
पीतपटवारी वाँकी मूरति पै वारी हौं॥'—देव

धन्य! तभी तो गोपीजनोंके सम्बन्धमें यह पद प्रसिद्ध है—

'गोपी प्रेमकी धुजा।
जिन गुपाल कीनें बस अपने, उर धरि स्याम-भुजा॥

सुक मुनि ब्यास प्रसंसा कीनी उद्धव संत सराहीं।
भूरि भाग्य गोकुल की बनिता, अति पुनीत जगमाहीं॥
कहा भयो जु बिप्र-कुल जनम्यो, सेवा-सुमिरन नाहीं।
स्वपच पुनीत दास परमानंद जो हरि-सनमुख जाहीं॥'

—अष्टछापके परमानन्ददास

(३) 'सिसुपाल'—यह चेदिका राजा था। आजकल चेदि नगरको चँदेरी कहते हैं, जो ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत है। शिशुपाल बड़ा ही पराक्रमी राजा था। कहते हैं, पूर्व जन्म में यह रावण था। यह नित्य श्रीकृष्ण को सौ गालियाँ दिया करता था। भगवान् कृष्ण सौ गालियाँ सुन लेते थे, इससे कुछ भी न कहते थे, क्योंकि इसकी माताने, जो श्रीकृष्णकी बुआ थीं; भगवान्से यह वचन ले लिया था, कि अपने छोटे भाई को सौ गालियाँ देने तक क्षमा कर दिया करो। एक दिन यह पाँडवोंको राज्य-सभामें सौसे भी अधिक गालियाँ दे उठा। भगवान्ने चक्रसुदर्शनसे इसका सिर काट डाला। देखते-देखते इसकी आत्म-ज्योति भगवान् के श्रीमुखमें प्रवेश कर गई। यह कथा श्रीमद्भागवत्में है।

(४) 'ब्याध'—पूर्व जन्ममें यह बालि बन्दर था। अपना बदला चुकानेके लिए इसने भी, धोखेसे, भगवान् कृष्णके चरणमें प्रहार किया। चरणमें पद्म के चिह्नसे, मृगके नेत्रका भय हो जानेसे इसने तीर चला दिया। पीछे, समीप आनेपर इसे बड़ा दुःख और पश्चात्ताप हुआ, किन्तु भगवान्ने इसे सदेह स्वर्ग भेज दिया।

(५) उदार हृदय गोसाईंजीने इस पदमें श्रीकृष्ण भगवान्का ही गुणानुवाद गाया है। भेद-बुद्धिका तो उनमे लेशमात्र भी नहीं था। किन्तु अनन्य (?) रामभक्त, बैजनाथजीने, अपनी टीकामें, यह सिद्ध करनेके लिए, कि इस पदमें श्रीकृष्णका महत्त्व गौण है और ध्वनिसे श्रीरामजीका ही प्राधान्य सिद्ध होता है, व्यर्थ ही पृष्ठ रंग डाले हैं। इस पद में तो कहीं भी ऐसे विचित्र अर्थकी संभावना नहीं दीख पड़ती है। 'श्रीकृष्ण-गीतावली' के रचयिता गोसाईंजीके उदार हृदयमें कभी भी ऐसी संकीर्णताके भावोंका उदय न हुआ होगा। इस विचित्र चित्रकारी के अधिकारी टीकाकार महोदय ही हैं।

## (२१५)

श्रीरघुबीर की यह बानि।
नीचहू सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि॥१॥
परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकि कानि?
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि॥२॥

गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि ?
जनक ज्यों रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥ ३ ॥
प्रकृति-मलिन कुजाति सबरी सकल-अवगुन-खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥ ४ ॥
रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥ ५ ॥
कौन सुभग सुसील बानर, जिनहि सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥ ६ ॥
राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दीनदानि ।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**—कानि=आदर । जनक = पिता । पानि=हाथ । रजनिचर= राक्षस । दिन = नित्य ।

**भावार्थ**—श्रीरघुनाथजी की ऐसी प्रकृति है, कि वह मनमें निष्कपट प्रेम समझकर नीचके साथ भी स्नेह करते है ।।१।। ( विश्वास न हो, तो उदाहरण लीजिए, ) गुह निषाद महान् नीच और पापी था; उसका आदर कौन करता था ? किन्तु, रघुनाथजीने उसका प्रेम पहचानकर उसे पुत्रकी तरह हृदयसे लगा लिया ( वात्सल्य-भावसे उसका स्नेहालिंगन किया ) ॥२॥ जटायु गीध, जिसे ब्रह्माने हिंसामय बनाया था, कौन बड़ा भारी दयालु था ? किन्तु रघुनाथजीने, अपने पिताके समान, उसे अपने हाथसे जलाजलि दी । तात्पर्य यह है, कि एक महान् हिंसक जीवको भी, उसका सच्चा प्रेम देखकर, परम धार्मिकको प्राप्य सद्‌गति प्रदान कर दी ॥३॥ शबरी स्वभावसे ही मैली कुचैली थी, नीच जातिकी थी और सभी दोषोकी खानि थी, एक भी सद्‌गुण उसमे न था, परन्तु ( उसकी सच्ची प्रीति देखकर ) उसके हाथके फल आपने स्वाद बखान-बखानकर बड़े प्रेमसे खाये ( सूरदासने तो यहाँतक लिखा है कि उसके जूठे बेर खाये, क्योकि वह चख-चख कर मीठे बेर देती थी, और खट्टे फेंक देती थी ) ॥ ४ ॥ राक्षस एवं शत्रु विभीषणको शरणमे आया जानकर आपने उठकर उसे भरतके समान छाती से लगा लिया, और उस समय प्रेमाधिक्यके कारण अपने शरीरकी भी सुध-बुध भूल गए॥५॥

बन्दर कहाँके सीधे-साधे और शील-स्वभाववाले थे ? जिनका नाम भी लेनेसे अनिष्ट हुआ करता है, उन्हें भी आपने अपना मित्र बना लिया। (इतना ही नहीं, वरन्) जब अपने घरपर, अयोध्यामें, आये, तब उनका आदर सत्कार भी किया। (बलिहारी!) ॥६॥ (इन सब उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जाता है, कि) श्री-रामचन्द्रजी स्वभावसे ही दयावान्, कोमल स्वभाववाले (करुणाशील), गरीबों-के हितू और सदा दान देनेवाले है। इसलिए, हे तुलसी! तू तो छल-कपट छोड़कर ऐसे ही स्वामीका भजनकर (निष्कपट भावसे, निष्काम होकर, सदा प्रेमपूर्वक भजन किया कर) ॥ ७ ॥

**टिप्पणी—(१) 'निषाद'—१०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।**

**(२) 'गीध'—वास्तवमें, भगवान् रामचन्द्रजीने जटायुके साथ पिता-जैसा बर्ताव किया। गोदमें जटायुको लिये आप कहते है—**

'मेरे जान, तात! कछु दिन जीजै।
देखिय आपु सुवन सेवा-सुख, मोहि पितु कौ सुख दीजै ॥
दिव्य देह इच्छा जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरिहर सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै ॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीजै।
बोल्यो बिहँग बिहँसि, 'रघुबर, बलि, कहौं सुभाय पतीजै ॥
मेरे-मरिबे-सम न चारि फल होहिं तौ क्यो न कहीजै।'
तुलसी, प्रभु दियो उतरु मौन ही, परी मनु प्रेम सहीजै ॥'

**४३ पद की पाँचवीं टिप्पणी देखिए—**

**(३) 'सबरी'—१०६ पद की पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**(४) 'बिभीषण'—१४५ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**(५) 'जिनहिं सुमिरत हानि'—स्वयं हनुमान्जीने कहा है—**

'प्रात लेइ जो नाम हमारा। तादिन ताहि मीलै न अहारा ॥'

**(६) 'दिनदानि'—महान् उदार, 'श्रीभगवद्गुणदर्पण' में 'औदार्य' का यह लक्षण लिखा है—**

'पात्रापात्रविवेकेन, देशकालाद्युपेक्षणात्।
वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्य्यं वचसा हरे ॥'

( ७ ) इस पदमें गोसाईंजीने रघुनाथजीके सौशील्य, औदार्य्य, पतित-पावनता, वात्सल्य, गांभीर्य आदि सद्गुणोंका वर्णन किया है।

( २१६ )

हरि तजि और भजिये काहि ?
नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ॥ १ ॥
कनककसिपु बिरंचि को जन करम, मन अरु बात।
सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो, काल के घर जात ॥ २ ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिये दस सीस।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥ ३ ॥
और देवन की कहा कहौं, स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥ ४ ॥
को न सेवत देत संपति ? लोक हूँ यह रीति।
दासतुलसी दीन पर इक राम ही की प्रीति ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—कनककसिपु=हिरण्यकशिपु नामक दैत्य। जन=भक्त। बात=वचन। बरज्यो=रोका। ईस=शिवजी। सभीत= डरा हुआ।

**भावार्थ**—श्रीहरि भगवान्‌को छोड़कर, कहो, किसका भजन करें ? श्रीरघुनाथजीके समान ऐसा कोई भी नहीं है, जिसकी दीन शरणागतोंपर ममता हो, जिसने उन्हे प्रेमसे अपनाया हो ॥ १ ॥ ( उदाहरण लीजिए ) हिरण्यकशिपु ब्रह्माका भक्त था। वह कर्म, मन और वचनसे उनकी भक्ति करता था। किन्तु ब्रह्माने उसे, पुत्रको ताड़ना देते हुए, न रोका। ( फल यह हुआ, कि ) वह यमलोक चला गया ( और ब्रह्मा खड़े-खड़े देखते ही रह गये ! यदि वह पहलेसे उसे रोक देते और उसे उसका हित सुझा देते, तो क्यो बेचारा कालका ग्रास बनता। यह तो हुई ब्रह्माकी करतूत, अब शिवजीको देखिए) ॥ २ ॥ संसार जानता है, कि रावण शिवजीका भक्त था, और उसने कई बार अपने सिर काट-काटकर शिवजीको अर्पित किये थे, किन्तु जब उसने श्रीरघुनाथजीके साथ बैर बिसाहा, तब आपने उसे स्वप्नमे भी न रोका ( चुप बैठे-बैठे देखते रहे और उसे अपने सामने यमधाम भेजवा दिया ) ॥ ३ ॥ ( ब्रह्मा और शिवका जब यह हाल है, तब ) और देवताओंके

संबंधमें क्या कहा जाय ? वे भी सब मतलबी यार है । कभी किसीने भयभीत शरणागतकी रक्षा नहीं की ( जब स्वयं ही बेचारे निर्भय नहीं है, तब दूसरोंकी क्या रक्षा करेंगे ? उनकी शरणमे जाना ही व्यर्थ है ) ॥४॥ खुशामद करनेसे कौन धन नहीं देता है ? ( सभी देते हैं ) । यह दुनियाका चलन ही है ( जो सेवा करेगा, वह मेवा पायगा ) । किन्तु, हे तुलसीदास ! दीनोंपर तो एक श्रीरघुनाथजीका ही स्नेह है । ( निष्काम या निष्कारण प्रेमी यदि कोई है, तो केवल हरि भगवान् ही है ) ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—(१) 'कनककसिपु'—१३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।**

(२) 'देवन······भीत'—**रामचरितमानसमें भी कहा है—**

"सुर नर मुनि सब ही की रीति । स्वारथ लागि करहिं ये प्रीति ॥"

**(३) 'सरन गये सभीत'—'सभीत' शब्दका अर्थ मृत्युके भयसे डरे हुए जीवका है । मृत्यु-भयसे बचानेवाला भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई नहीं है ।**

( २१७ )

जो प दूसरो कोउ होइ ।
तौ हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ॥ १ ॥
काहि ममता दीन पर, को पतितपावन नाम ।
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ॥ २ ॥
रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।
सोक-सरि बूड़त करीसहिं दई काहु न टेक ॥ ३ ॥
बिपुल-भूपति-सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि' ।
सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥ ४ ॥
एक मुख क्यों कहौं करुनासिंधु के गुन गाथ ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ॥ ५ ॥
आपसे कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात ।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—बिपुल=बहुतसे । सदसि=सभामें । नर-नारि=अर्जुनकी स्त्री, द्रौपदी । पाहि=रक्षा करो । करीस=गजेन्द्र । गाथ=कथा ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! यदि कोई दूसरा ही होता, तो मैं बार बार रोकर अपना दुःख आपको क्यो सुनाता ? ( मैं उसीके आगे अपना रोना रोता, आपको तनिक भी कष्ट न देता । पर क्या करूँ, आपको छोड़कर ऐसा कोई मिलता ही नहीं, जो दीनोके कष्ट दूर करे) ।।१।। (आपको छोड़कर) दीनोंपर किसकी ममता है, कौन गरीबों को अपनाता है ? पापियोंमें उद्धार करनेवाला नाम किसका है ? और महापापी अजामेलको ( धोखेमे अपने पुत्र नारायणका नाम लेनेपर ), किसने अपना गोलोक-धाम दिया ? साराश यह है, कि ऐसे एक आप ही हैं और कोई नहीं है ।। २ ।। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल तो थे, पर दुःखरूपी नदीमे डूबते हुए गजेन्द्रको किसीने भी सहारा न दिया ( आपहीको पैदल दौडना पडा ) ।। ३ ।। जब बहुतसे राजाओंकी सभामें अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीने ( दुःशासन द्वारा लाज जाते समय ) कहा कि 'हे नाथ ! मेरी रक्षा कीजिए'—तब सभी तो समर्थ थे, पर किसने उसे वस्त्र-दान दिया ( सब लोग बैठे-बैठे देखते ही रहे न, किसीने भी उस अबलाकी लाज न रखी ) ।। ४ ।। हे करुणासागर ! आपके चरित्रोंकी कथा एक मुँहसे कैसे कह सकता हूँ ( अर्थात् , आपके अनन्त गुणोंका वर्णन अनन्त मुखोंसे ही हो सकता है, एक मुखसे नही ) ? हे कोशलाधीश ! आपने नर-शरीर धरकर भक्तोंका क्या-क्या हितसाधन नही किया ? ( भक्तोंके हितके लिए आपने सभी कुछ तो किया ) ।। ५ ।। यदि आप मुझसे बहुत ही घिनाते हैं, तो मुझे किसी ऐसेके हाथ सौप दिजिए, जो आपके ही समान हो ( पर, यह असंभव है, क्योंकि आपके समान तो संसारमे कोई हई नहीं ) । तुलसीदास किसी और भाँति आपके चरणोंको त्यागकर क्यों जाने लगा । साराश यह है, कि मैं आपहीके चरणों की शरणमे रहूँगा, अन्यकी नहीं ।। ६ ।।

**टिप्पणी**—(१) 'अजामिल'—५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।
(२) 'करीस'—गजेन्द्र; ५७ पदकी टिप्पणी देखिए ।
(३) 'नरनारि'—द्रौपदी; १३ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।
'श्रीकृष्णगीतावली' में द्रौपदी-वस्त्रहरणका यह पद प्रसिद्ध है—

'कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?
समरधीर महाबीर पाँच पति, क्यो दैहैं मोहिं होन उघारी ॥
राजसमाज सभासद समरथ भीषम द्रोन धर्मधुरधारी ।

अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहै रखवारी ॥
यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी ।
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों, हहरी हृदय, बिकल भई भारी ॥
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी ।
हाथ उठाइ अनाथ नाथ सो 'पाहि पाहि प्रभु, पाहि ?' पुकारी ॥
'तुलसी' परखि प्रतीति प्रीतिगति, आरतपाल कृपालु मुरारी ।
बसन बेष राखी बिसेखि लखि बिरदावलि मूरति नर-नारी ॥'

**( ४ ) 'जोपै अतिहि घिनात'—नहीं नहीं, घिन क्यों लगेगी ? घिन तो तब नहीं लगी जब केवटको हृदयसे लगा लिया । रुधिरमें सने हुए जटायुको गोदमें रख लिया, तब भी घिन नहीं लगी । शबरीके जूठे बेर खाते समय भी घिन नहीं लगी । फिर गोसाईं जी महाराज ! आपको देखकर क्यों घिन लगेगी ? घिनका तो कोई भी कारण नहीं दिखाई देता । टाल-टूलका कोई और ही कारण होगा, सो वे ही जानते होंगे ।**

( २१८ )

कबहिं देखाइहौ हरि, चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल, सकल-मंगल-करन ॥ १ ॥
सरद-भव सुन्दर तरुनतर अरुन बारिज बरन ।
लच्छि-लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥ २ ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपटु बटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख-दोप-दारुन-दरन ॥ ३ ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन ॥ ४ ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—तरुनतर=बहुत ही तरुण, अत्यन्त नवीन । लच्छि=(लक्ष्मी)। लालित=प्यार किये गये । जनक=पिता, उत्पत्तिकर्त्ता । अनंग-अरि=कामदेवके शत्रु शिवजी । बटु=ब्रह्मचारी । छरन=छलनेवाले । बिप्रतिय=अहल्यासे तात्पर्य है । दरन = दलनेवाले, नाशकर्त्ता । सकृत=एकबार । आरति=दुःख।

**भावार्थ**—हे हरे! क्या कभी आप अपने उन चरणोंका दर्शन करायँगे, जो कलिकालके समस्त दुःखोंके दूर करनेवाले और सर्व कल्याण मंगलके कारण हैं ? ॥१॥ जिनका रंग शरद् ऋतुमें उत्पन्न, सुन्दर और अत्यन्त नवीन लाल लाल कमलोंके समान है, जिन्हें लक्ष्मी अपनी सुन्दर हथेलियोंसे दाबा करती हैं, और जो ऐसे लावण्यमय हैं, कि उपमा ही नहीं दी जा सकती ॥२॥ जो गंगाके पिता हैं, (अर्थात् जिन चरणोंसे गंगाकी उत्पत्ति हुई है), कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीके प्यारे हैं तथा जिन्होंने, कपट ब्रह्मचारीका वेश धारण कर, राजा बलिको छला है। जिन्होंने (गौतम) ब्राह्मणकी स्त्री अहल्याको शाप-विमुक्त कर दिया, राजा नृगको दिव्य देह प्रदान की और हिंसक निषादके सारे दुःख और घोर पाप दूर कर दिये ॥३॥ सिद्ध, देवता और मुनियोंके समूह जिनकी सदा वंदना किया करते हैं, जो सभीको सुख और शरण देनेवाले हैं, और एकबार भी जिनका हृदयमे ध्यान करनेसे जीव स्वयं तर जाता है तथा दूसरोंको भी तार देता है (भक्तोंके दर्शनमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है) ॥४॥ हे कृपासागर सुचतुर रघुनाथजी! आप अपने भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले हैं। यह तुलसीदास आपके उन चरणोंके दर्शनकी आशारूपी प्यासके मारे मरनेवाला ही है। तात्पर्य यह, कि अब आप शीघ्र ही अपने चरण-कमल दिखाइए ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—(१) २१७ पदके अन्तिम चरणके 'क्यो चरन परिहरि जात' और इस पद्के 'कबहिं देखाइहौ हरि चरन' में सिंहावलोकन-सम्बन्ध है। यहाँ गोसाईंजी प्रेमाधीर होकर चरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।**

**(२) 'लच्छि····करतल'—यहाँ क्याही स्वाभाविक और सुन्दर अनुप्रासकी छबि-छटा है। भाव भी बड़ा कोमल और मनोहर है।**

**(३) 'विप्रतिय'—अहल्या, ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।**

**(४) 'नृग'—२१३ पदकी टिप्पणी देखिए।**

**(५) 'बधिक'—गुह निषाद, १०६ पदकी टिप्पणी देखिए।**

**(६) भक्त शिरोमणि गोसाईंजी भगवच्चरणारविंदोंके कैसे सुदृढ उपासक थे, यह इस पदसे भलीभाँति सिद्ध हो जाता है। जो सज्जन गोसाईंजीको 'मायावादी' कहते हैं, उन्हें अवश्य ऐसे-ऐसे पदोंका अवलोकन कर अपना भ्रम निवारण कर लेना चाहिए। ऐसे चरणोंको छोड़कर जो 'ब्रह्मवाद' अथवा 'मायावाद' के नीरस बखेड़ेमें पड़ते हैं, उनके समान अभागा और कौन होगा?**

( २१९ )

द्वार हौं भोर ही को आज ।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥ १ ॥
कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ मे की खाज ॥ २ ॥
हहरि हिय में सदय बूझ्यो जाइ साधु-समाज ।
मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज ॥ ३ ॥
दीनता दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाज ।
दानि दसरथराय के तुम बानइत-सिरताज ॥ ४ ॥
जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब-निवाज ।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**–रिरिहा=रें-रें करके या गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला । आरि=अड़, हठ । हहरि=डरकर । बाज=छोड़कर, बिना । बानइत=बना ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! आज मैं सबेरेसे ही आपके द्वारपर अड़कर बैठा हूँ । रें-रें करके रट रहा हूँ, गिड़गिड़ाकर माँग रहा हूँ । मुझे और किसी वस्तुके लिए हठ नहीं है । बस, एक कौर टुकड़ेसे काम बन जायगा । भाव, ज़रासी कृपादृष्टि कर देनेसे ही मेरी सारी करनी सुधर जायगी ॥ १ ॥ ( यदि आप यह कहे कि कोई उद्यम क्यों नहीं करता ? भीख माँगना तो एकदम निषिद्ध कर्म है, तो इसका उत्तर यही है, कि ) इस भयंकर कलियुगमें बड़ा ही विकराल दुर्भिक्ष पड़ा है, जितने उद्यम या साधन है, वे सभी बुरे है । साराश, इस युगमें धर्म-कर्म कुछ भी निर्विघ्न पूरा नहीं होता, इससे आपसे भीख माँगना ही मैंने उचित समझा है । हूँ तो मैं अधम, पर इच्छा कर रहा हूँ पुण्यात्मा-जैसी ! यह तो वही बात हुई, जैसे कोढ़में खाज हो जाय । एक तो वैसे ही पापोंके मारे निस्तार नहीं है, तिसपर स्वर्ग जानेकी इच्छा कर रहा हूँ ! ॥२॥ (जो-जो पाप कर चुका था, उनके भोगने का दुःख तो बिल्कुल ही भूल गया और नये-नये विषयोके क्षणिक सुखोंमे मगन हो गया; इसकी भी कुछ खबर नहीं रही, कि इस "कोढ़मे खाज"से होनेवाला परिणामरूप दुःख अभी और क्या-क्या भोगना पड़ेगा । जब मैं इन कष्टोसे व्याकुल हो गया, तब ) हृदयमे भड़भड़ा-

कर कृपालु संत-समाजसे पूछा, कि कहिए, मुझसरीखे पापीको भी कोई शरण में लेगा ? सतोंने तब यही उत्तर दिया, कि एक कोशलेन्द्र महाराज रामचन्द्रजी ही तुझे शरणमे रख सकते है ॥ ३ ॥ कृपासिंधु रघुनाथजीको छोड़कर और कौन दीनता और दरिद्रताको दूर कर सकता है ? (कोई भी नही, क्योकि संसारके यावत् जीव स्वयं ही दीन और दरिद्र है) महाराज दशरथके पुत्र राम-राजा ही ( सच्चे ) दानी और बान। रखनेवालोंमे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥ ( सत-समाजके मुखसे श्रीरामजीका यश इस भॉति सुनकर ) मै आजन्मका भूखा भिखमङ्गा, आपके द्वारपर, आया हूँ। आप गरीबोंको निहाल कर देनेवाले हैं। बस, अब इस तुलसीको भक्तिरूपी अमृतके समान सुन्दर भोजन पेटभर खिला दीजिए ( अपने चरणोमे इतनी अधिक भक्ति दे दीजिए, कि फिर मुझे कभी संसारी विषयोंकी ओर न दौड़ना पड़े, सर्वस्व त्यागकर आपमे ही लव लगा दूँ ) ॥५॥

**टिप्पणी— ( १ ) 'भोर'—जीवके चैतन्य होनेका समय, विरक्तिके उदयका समय। जो 'भोर' ही से सावधान हो गया, वही चैतन्य है, क्योंकि—**

'पाव पलक की सुधि नही, करै काल्ह का साज !
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥' —कबीरदास

**( २ ) 'कलि कराल······ कुसाज'—पूर्णरूपक इस प्रकार हो सकता है। कलि=अवृष्टि। धर्म=क्षेत्र। सत्कर्म = कृषि। अधर्म = दुर्भिक्ष। अश्रद्धा = उद्यम का अभाव।**

**( ३ ) 'कोढ़···खाज'—यह लोकोक्ति यहाँ पर खूब घटती है।**

**( ४ ) 'कृपा-बारिधि बाज'—श्रीबैजनाथजीका अनुसरण करते हुए स्वर्गीय भट्टजी इसका यह अर्थ करते हैं—**

**"वे ग़रीबों और दरिद्र ( रूपी पक्षियों ) के नाश करनेको बाजरूप हैं। ( जो कहो कि बाज तो निर्दई होता है, सो नहीं ) वे दयाके समुद्र हैं ( अर्थात् जीवमात्र पर दया करते हैं )।"**

**कैसा खींचतानका अर्थ है ! इतने पर भी "बाज"का स्वाभाविक तात्पर्य सिद्ध नहीं होता है ! "बाज" का अर्थ बाज़ चिड़िया नहीं, किन्तु 'छोड़कर, बिना, बग़ैर' है।**

**( ५ ) कहते हैं कि—**

**'उत्तम खेती, मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी, भीख निदान ॥'**

पर, यहाँ गोसाईंजीने 'भीख' को उत्तम सिद्ध कर दिया है। इस भीख-पर सारे उद्यम न्यौछावर है! वास्तवमें, इस भीखके भिखारी महाभाग हैं, सच्चे पुरुषार्थी और परमार्थी हैं।

( २२० )

करिय सँभार, कोसलराय।
और ठौर न और गति, अवलंब नाम बिहाय॥ १॥
बूझि अपनी, आपनो हित, आप बाप न माय।
राम राउर नाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय॥ २॥
रामराज न चले मानस-मलिन के छल-छाय।
कोप तेहि कलिकाल कायर, मुएहि घालत घाय॥ ३॥
लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय।
त्योंहि राम-गुलाम जानि निकाम देत कुदाय॥ ४॥
अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय॥ ५॥
कृपासिंधु, बिलोकिये जन-मन की साँसति साय।
सरन आयो, देव दीनदयालु! देखन पाय॥ ६॥
निकट बोलि न बरजिये, बलि जाउँ, हनिय न हाय।
देखिहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय॥ ७॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय॥ ८॥
बिनय सुनि बिहँसे अनुज सों बचन के कहि भाय।
भली कही कह्यो लषन हूँ हँसि, बने सकल बनाय॥ ९॥
दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय।
मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय॥१०॥
पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय।
दासतुलसी कहत मुनिगन, 'जयति जय उरुगाय'॥११॥

**शब्दार्थ**—सँभार = रक्षा । बिहाय= छोड़कर । मुएहि = मरे हुए को । घालक=मारता है । बयर=बैर, शत्रुता । भेक = मेढक । गोमाय = गीदड़ । कुदाय=घात । साय=शात हो । श्रकनि=सुनकर । श्रपाय=विघ्न । साँसति= कष्ट । गोमुख नाहरका न्याय = देखनेमे तो गायके समान सीधा, पर वास्तवमे शेरके समान निर्दय । पिंगल=पीला । कषाय=लाल । दादि=इन्साफ़ । श्रमाय =निष्कपट । उरुगाय=विष्णु भगवान्‌का एक नाम ।

**भावार्थ**—हे कोशलेन्द्र ! मेरी रक्षा कीजिए । आपके नामको छोडकर मुझे न तो कहीं और ठौर-ठिकाना है, न दूसरे तक पहुँच है और न किसीका सहारा ही है ( मेरी तो आपके नाम तक ही दौड़ है, सो आप नामके नाते मुझे बचाइए) ।।१।। आप स्वयं समझ बूझकर अपने सेवकोका ऐसा भला कर देते है, जैसा (सगे) माता पिता भी नही करते । भाव, आप माँ बापसे भी अधिक स्नेह करनेवाले है। हे रघुनाथ जी ! आपका नाम ही मेरा गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और बल है (आपका नाम मेरे लिए जीवन सर्वस्व है) ।।२।। हे नाथ ! आपके 'रामराज्य'मे मलिन मनवाले कलिकालके कपटकी छाया भी नहीं पड़ती; किन्तु यह कायर कलिकाल क्रोध करके मुझ मरे हुएको भी अपनी चोटोंसे घायल कर रहा है । (एक तो योंही मै अपने दुष्कर्मोंके मारे मर रहा हूँ, दूसरे यह दुष्ट विषय-वासनारूपी आघातोंसे मुझे असह्य पीड़ा पहुँचा रहा है । इसे इतना भी तो भय नहीं, कि मै 'राम-राज्य'मे बस रहा हूँ) ।। ३ ।। जैसे गीदड़ मेढ़कको मारकर शेरके बैरका बदला चुकाता है, उसी प्रकार यह मेरे साथ बर्ताव कर रहा है, अर्थात् जब इसकी दाल रामजीके सामने न गली, तब उनके छोटे-छोटे दासोको सताने लगा ! यह निकम्मा घात करने लगा ।।४।। यद्यपि महाराज परीक्षित आनन्दपूर्वक बैकुण्ठमे बास कर रहे हैं, पर इसके कपट-भरे काम, अनीति और अनेक विघ्न बाधाएँ सुनकर उन्हे भी पछतावा हो रहा है ( इसलिए पछतावा हो रहा है कि इसे पकड़कर हमने क्यो जीता छोड़ दिया ! मार डालते तो अच्छा होता ) ।। ५ ।। हे कृपासागर ! तनिक इस ओर कृपादृष्टि कीजिए, जिससे इस दासके चित्तकी पीडा मानसिक यातना, शान्त हो जाय । हे दीनदयालो ! हे देव ! मै आपके चरणों का दर्शन करने आया हूँ ( तात्पर्य यह, कि आपके चरणोके दर्शनमात्रसे मेरी मानसिक यातना दूर हो जायगी, आपको और कुछ भी न करना

होगा ) ॥६॥ यदि आप (दयावश) उसे ( कलियुगको ) पास बुलाकर रोकना नहीं चाहते हैं, या उसकी 'हाय हाय' सुनकर उसे मारना नहीं चाहते हैं, तो हनुमान्जी को संकेत कर दीजिए। वे इसे ताड़ जायँगे, जो ऊपरसे गायकी तरह सीधे, पर असलमें शेरके समान क्रूर हैं ( आपको दया आ जायगी, पर उन्हे, भेद समझ लेनेपर, दया वया कुछ न आयगी ) ॥७॥ जब हनुमान्जी लाल मुँहसे, टेढ़ी भौंहें करके और पीली आँखोंको क्रोधसे लाल करके देखेंगे, तब पवन-कुमार वीर हनुमान्का स्मरण कर इस चंचल चित्तवाले कलिका सारा चाव कम हो जायगा (अपना सब पौरुष भूल जायगा) ॥८॥ मेरा यह विनय सुनकर श्रीरघुनाथजी मुस्कराये और अपने छोटे भाई लक्ष्मणको इन बातोका भावार्थ समझाया ( कि, देखो, तुलसी कैसा चतुर है ! कैसी-कैसी बात बना रहा है ! ) । लक्ष्मणजीने हँसकर कहा, कि ठीक तो कहा है । बस, अब मेरी सारी बात बन जायगी ( क्योंकि वहाँ सिफारिश भी पहुँच चुकी है, और सिफ़ा-रिश किसकी, सगे भाईकी ॥९॥ भगवान् रामचन्द्रजीने इस गरीबका न्याय कर दिया । ( कलियुगको डाँट-डपटकर सामनेसे दूर कर दिया और अपने भक्तको अपनी शरणमे रख लिया ), यह सुनकर सन्तोंके यहाँ बधाई बजने लगी ( कलिकी बाधाओंसे मुक्त हो सब लोग आनन्द मनाने लगे ) । दुःख, चिन्ता, छल-कपट और पाप-पुञ्ज नष्ट हो गये ॥१०॥ निर्गुण ( मायात्मक तीन गुणोंसे परे) पवित्र और निष्कपट प्रेम और विश्वास अपने सेवकपर देखकर, हे तुलसी-दास ! मुनि लोग कहने लगे कि 'भगवान्की जय हो, जय हो' ॥११॥

**टिप्पणी—( १ ) 'आप······माय'—कहा भी है—**

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेवं ॥'

**(२) 'कांप······घाय'—आजकल यह दृश्य प्रत्यक्ष सामने उपस्थित हो रहा है । यहाँ के राजे-महाराजे ब्रिटिश-सिंहके सामनेसे तो दुम दबाकर भागते हैं, और बेचारे दीन किसानोंका खून चूसते हैं ! इसपर भी इन गीदड़ोंको वीर बनने का हौसला है ! धिक्कार !!**

**(३) 'परीछित'—एकबार महाराज परीक्षित शिकार खेलते-खेलते एक ऐसे बनमें जा पहुँचे, जहाँ एक काला पुरुष एक गाय और एक लँगड़े बैलको मारता हुआ खदेड़ रहा था । पूछने पर मालूम हुआ कि गाय पृथ्वी है लँगड़ा बैल धर्म है और काला पुरुष कलियुग । राजाने ज्योंही कलिको**

मारनेके लिए तलवार निकाली, त्योंही वह गिड़गिड़ाकर पैरोंपर गिर पड़ा। शरणागत समझकर उसे राजाने छोड़ दिया, किन्तु उसने रहनेके लिए राजासे १४ स्थान माँग लिए, जिसमें एक सुवर्ण भी था। राजा, जब कि लौट रहे थे, प्यासके मारे व्याकुल होकर एक ध्यानावस्थित ऋषिके पास गये। जब ऋषिने कुछ उत्तर न दिया, तब राजाने उन्हें पाखण्डी समझकर, उनके गलेमें एक मरा हुआ साँप डाल दिया और चले गये। जब मुनिके पुत्रने यह बात सुनी, तब उसने यह शाप दिया, कि वह मदांध राजा साँपके काटनेसे सातवें दिन मर जाय। उस दिन राजा परीक्षित सिरपर सोनेका मुकुट धारण किये थे, और सोनेमें था कलिका वास। इसीसे उनकी बुद्धि मारी गयी। अस्तु, श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायण सुनकर महाराज सातवें दिन स्वर्गस्थ हो गये। यह कथा श्रीमद्भागवतमें प्रसिद्ध है।

( ४ ) 'गोमुख......न्याय'—श्रीमान् भट्टजी यह अर्थ कर रहे हैं—

"जब हनुमानजी शेरकी तरह भयकर मुँह करके उसकी ओर देखेंगे।"

इससे 'गोमुख' शब्द स्पष्ट नहीं होता।

( ५ ) 'उरुगाय'—इसका 'उर गाय' पाठ मानकर, श्री बैजनाथजी तथा अन्य कई टीकाकारोंने यह अर्थ किया है, कि "हृदयमें रामके गुण गाकर।" यह अर्थ असंगत-सा है। "उरुगाय" पाठ ठीक है, न कि "उर गाय।" "उरुगाय, अर्थात् विष्णु भगवानकी जय हो, जय हो—" ऐसा मुनिजन कह रहे है। उरगाय पाठ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावलीकी विनयपत्रिकामें पाया जाता है। यही पाठ शुद्ध है।

( ६ ) इस पदमें गोसाईंजीने उच्च पाण्डित्य, चातुर्य और काव्यकलासे काम लिया है। इसमें उनके मनोराज्यका बड़ा ही सुंदर चित्र दिखायी देता है।

( २२१ )

नाथ, कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिनराति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति॥ १॥
सुगुन, ग्यान, बिराग, भगति सुसाधननि की पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ अवगुननि की थाति॥ २॥
अति अनीति कुरीति भई भुइँ तरनि हूँ ते ताति।
जाउँ कहँ? बलि जाउँ, कहूँ न ठाउ, मति अकुलाति॥ ३॥
आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिये तुलसी सालि सफल सुखाति॥ ४॥

**शब्दार्थ**—थाति=जमा की हुई सम्पत्ति। भुइँ=भूमि। तरनि=सूर्य। ताति=गरम। सालि=धनि। सुखाति=सूखती है।

**भावार्थ**—हे नाथ! मैं दिनरात, ग़रीब की भाँति, आपकी कृपाकी ही बाट देखता रहता हूँ (यही टक लगाये बैठा रहता हूँ, कि कब इस दीन पर कृपा कर दें)। हे दीनदयालो! यह समझमे नहीं आता, कि किस घड़ी आपकी वह कृपा-दृष्टि मुझपर होगी ॥१॥ सद्‌गुण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तथा अच्छे-अच्छे साधनोंके समूह कलिको देखते ही, व्याकुल हो, चम्पत हो गये। और रह क्या गये, पापो और दुर्गुणोके समूह ॥२॥ बड़े-बड़े अन्यायो और अनिष्टोंसे पृथ्वी, सूर्यसे भी अधिक, गरम हो गई है। (भला ऐसी अंगारके समान पृथ्वीपर कोई कैसे रह सकता है?) अब मैं कहाँ जाऊँ? मै आपकी बलैयाँ ले रहा हूँ। मुझे और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं रहा। इस समय मेरी बुद्धि व्याकुल हो रही है (कहीं भागते भी नहीं बनता, कि इस पापमयी अग्निके समान पृथ्वीकी असह्य ज्वालासे बच जाऊँ) ॥३॥ हे पिता! जब अपनी देह ही अपनी नहीं है (अन्त-काल यह भी आत्माको छोड़ देती है) तब दूसरे क्यों अपने होंगे? सारांश, अपना सगा संबधो यहाँ कोई भी नहीं है। सब कठोर दुराचारी ही दिखाई देते हैं। (न तो किसीमें दया है और न सदाचार ही)। हे घनश्याम! तुलसी रूपी फूली-फली धानकी खेती सूखनेवाली है, अब भी उसे मेघ बनकर (भक्ति-जलसे) सींच दीजिए ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) **'पंथ चितवत'—कबीरदासजी भी इसी तरह बाट जोह रहे हैं—**

> 'अँखियाँ तो झाईं परीं, पथ निहारि-निहारि।
> जीहड़ियाँ छाला परा, नाम पुकारि-पुकारि॥
> बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम।
> जिउ तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिश्राम॥
> नैननि तो झरि लाइया, रटत बहै निसिबास।
> पपिहा ज्यों पिउ-पिउ रटै, पिया-मिलन की आस॥'

**(२) 'अति······ताति'—तब चाहे यह बात कवि-कल्पनाकी सीमाके अंतर्गत हो, पर आज यह दृश्य इतना सच्चा है, जितना कि प्रातःकाल सूर्यका उदय। वस्तुतः आज भारत-भूमि विदेशियोंके स्वेच्छाचार एवं अत्याचारसे तप्तांगारके समान जल रही हैं। देखें घनश्याम कब कृपा-वृष्टि करते हैं।**

( ३ ) 'जाऊँ कहँ······अकुलाति'—इसी प्रकार घबराकर भक्तवर ललितकिशोरीजी भी मन-ही-मन कह रहे हैं—

'वृन्दाबन अब रमते है, दिल दुनिया से घबराया है।
मानुष गंध न भाती है, सग मरकट मोर सुहाता है ॥'

( ४ ) 'आप सहित न आपनो'—सत्य है—

'इक दिन ऐसो होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारि का कहै, तन की नारी जाहिं ॥'—कबीरदास

( २२२ )

बलि जाऊँ, और कासों कहौं ?
सद्‌गुनसिंधु स्वामि सेवक-हितु कहुँ न कृपानिधि सो लहौं ॥ १ ॥
जहँ जहँ लोभ लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥ २ ॥
काल सुभाव करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।
मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥ ३ ॥
उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ, किंकर न हौं।
अब रावरो कहाइ न बूझिये सरनपाल ! साँसति सहौं ॥ ४ ॥
महाराज राजीवविलोचन ! मगन - पाप - संताप हौं।
तुलसी प्रभु जब तब जेहि तेहि बिधि राम निबाहे निरबहौं ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**-लोल=चंचल। तरनि=सूर्य। कोटर=पेड़की पोल। साँसति=कष्ट। राजीव=कमल। बिलोचन=नेत्र।

**भावार्थ**—बलिहारी! और किसे सुनाऊँ! ( अपना दुःख और किसके आगे रोऊँ ! ) आपके समान सद्‌गुणों का समुद्र, सेवकोंकी भलाई करनेवाला और कृपानिधान स्वामी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता ( जो आपके समान कहीं कोई दूसरा मालिक मिल जाता, तो मैं उसीको सब अपनी राम-कहानी सुना देता, आपको कष्ट न देता, पर ऐसा कोई मिलता ही नहीं। लाचार हूँ ) ॥ १ ॥ जहाँ-जहाँ लोभ और लालचसे चञ्चल चित्तमें अपने श्रेयकी इच्छा करता हूँ तहाँ-तहाँ से मैं इस तरह निराश हो लौट आता हूँ, जैसे सूर्यको देखते ही उल्लू भटकता हुआ पेड़के खोडरेमें घुस

जाता है ( जैसे उल्लू किसी उद्यमके लिए बाहर तो निकलता है, पर सूर्यको देखते ही फिर उसी कोटरमे घुस जाता है, वैसे ही मै इधर-उधर संसारमे अपना भला तो चाहता फिरता हूँ, किन्तु प्रचण्ड कलिकालको देखते ही फिर पिछड़ जाता हूँ, पौरुषहीन हो जाता हूँ ) ॥२॥ जब यह सुनता हूँ, कि काल, स्वभाव और कर्म विचित्र-विचित्र फल देनेवाले है, तब सिर पटक-पटककर, मन मसोसकर, रह जाता हूँ (कुछ उद्यम करनेका साहस नहीं बँधता। इसलिए, कि कहीं कुछ-का-कुछ फल न भोगना पड़े, क्योकि कर्मों की गति बड़ी विचित्र हैं )। मुझे तो सदा एक-सी असहनीय और कठिन जलन जलाया करती है। भाव, काल, कर्म आदि मेरे कभी अनुकूल नही हुए है, सदा प्रतिकूल ही रहे है ॥ ३ ॥ मै दुःखोका पात्र रहा, सो ठीक ही है, क्योकि हे नाथ! मै अनाथ था, मेरा कोई धनी धोरी नहीं था और न मै आपका सेवक ही बना था, किन्तु हे शरणागत रक्षक! अब आपका कहाकर भी मै, न जाने क्यो, दुःख भोग रहा हूँ, यह समझमें नहीं आ रहा है ॥४॥ हे महाराज! हे कमलनेत्र! मैं पाप सन्तापमे डूबा जा रहा हूँ। हे नाथ! तुलसीदासका तभी निर्वाह हो सकता हैं, जब आप जैसे-तैसे उसका निस्तार कर देगे। भाव, आज उसका बनना-बिगड़ना सब आपके ही हाथ है ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—(१) तहँ-तहँ '''कोटर गहौ'—इसका यह भी अर्थ हो सकता है—'मैं असार संसाररूपी वृक्षमें रहनेवाला हूँ। अनीति-रात्रिमें घूमता फिरता हूँ। सत्संग-वश कभी बाहर भी निकलता हूँ, तो ज्ञानरूपी प्रचण्ड सूर्यके सामने नहीं जा सकता। चकाचौंध लगनेके कारण फिर अपने उसी विषय-वासनारूपी कोटरमें आ घुसता हूँ।'**

( २२३ )

आपनो कबहुँ करि जानिहौ।

राम गरीबनिवाज राज-मनि, बिरद-लाज उर आनिहौ ॥ १ ॥
सील-सिंधु सुन्दर सब लायक समरथ सद्‌गुन-खानि हौ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत-प्रेम पहिचानिहौ ॥ २ ॥
बेद पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन-दानि हौ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ ॥ ३ ॥
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत-भय भानि हौ ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—प्रनत=शरणागत, नम्र भक्त । दिन-दानी=नित्य दान करनेवाले । बानि=आदत । कानि=लज्जा । भानिहौ=नष्ट करोगे ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! क्या कभी आप मुझे अपना समझेंगे ? हे राम ! आप दीनोंको निहाल करनेवाले और राजाधिराज हैं । क्या कभी आप अपने विरदकी लाज मनमें विचारेंगे ? (यह समझकर, कि हमारे नाम 'गरीबनिवाज' 'पतितपावन' आदि हैं, आप क्या कभी मुझ गरीब और पापी पर कृपा करेंगे ? ) ॥ १ ॥ आप शीलके तो समुद्र ही हैं ; सुन्दर हैं, सब कुछ करने योग्य हैं, समर्थ हैं ( सर्वशक्तिमान् है ) और अच्छे-अच्छे गुणोंकी खान है । आपने अपनी शरणमें आये हुए भक्तोंकी रक्षा की है, कर रहे हैं और करेंगे । तो क्या आप मेरे तुच्छ प्रेमको न पहिचानेंगे ? (अवश्य मेरे भावको पहिचानकर मेरा पालन करेंगे) ॥ २ ॥ वेद और पुराण कह रहे हैं तथा संसार भी जानता है कि आप दीनोंपर दया करनेवाले और सदा दान देनेवाले हैं (कभी किसीको, बिना कुछ दिये, नहीं लौटाते)। कहते ही बनता है (मन मारे कबतक बैठा रहूँ), आपकी बलैयाँ लेता हूँ, आप तो मानो मेरी बार अपनी आदत ही भूल गये ( यद्यपि यह ढिठाई है, पर क्या करूँ ? आपका मौन-व्रत देखकर मुझे इतना कहना पड़ा) ॥३॥ आप, दीन, दुखियों और अनाथोंके हितू होने पर भी क्या संसारका भय मान रहे हैं ? (कदाचित् आपके मनमें यह शंका हो, कि कोई हमें अन्यायी न कहे, समदर्शितामें कुछ अन्तर न आ जाय ! ) जो भी हो, तुलसीदासका तो अन्तमें अच्छा ही होगा, क्योंकि आप शरणमें आये हुए के भयको (अवश्यमेव) नष्ट करेंगे ॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'कहि आवत····बानि हौ'—इस चरणमें क्या ही प्रौढ़ता गांभीर्य और चातुर्य्य है ! ढिठाई भी हो रही है, न्यौछावर भी हो रहा है, मीठा व्यंग्य भी है, उपालंभ भी खासा है । वाह ! शब्द-योजना हो तो ऐसी ।**

**( २ ) इस पदको पढ़कर कबीरसाहबका यह दोहा याद आ जाता है—**

'सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाँह ।
अपना कर बैठावहीं, चरन-कमल की छाँह ॥'

**इस मनोराज्यमें क्या ही भीगा हुआ भाव है, हलका-हलका नशा है, अनिर्वचनीय आनन्दकी झीनी झलक है !**

( २२४ )

रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै ?
कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै ।।१।।
जानत गरल अमिय बिमोहवस, अमिय गनत करि आगि है ।
उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै ।।२।।
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम-प्रेम-पाग पागिहै ।
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह माँगिहै ।।३।।
तू यहि बिधि सुख-सयन सोइहै, जिय की जरनि भूरि भागिहै ।
राम-प्रसाद दासतुलसी उर राम-भगति-जोग जागिहै † ।।४।।

**शब्दार्थ**—गरल=ज़हर । अमिय=अमृत । आखर=अक्षर । मञ्जु=सुन्दर । सयन=शैय्या, सेज । भूरि=बहुत । जागिहै=सिद्ध हो जायगा ।

**भावार्थ**—अरे मन ! क्या कभी तू श्रीरघुनाथजीसे भी लगेगा, प्रेम करेगा ? तू कुमार्ग, बुरी चाल, दुर्बुद्धि, बुरी कामनाएँ और छल-कपट कब छोड़ेगा ? (अपना सहज स्वभाव छोड़कर कब भगवान्के चरणोंमें प्रीति लगायगा) ।।१।। तुझे इतना अधिक अज्ञान हो गया है, कि उसके मारे तू विषको तो अमृत मान रहा है ( ससारी विषय-वासनाओंको सर्वस्व मानता है) और अमृतको आगके समान समझ रहा है ! ( परमार्थमे ऐसा दूर रहता है, जैसे कोई आगसे बच रहा हो ) । अपनी इस उलटी रीति और विषयोंमें प्रीति त्यागकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे तू कब प्रेम करेगा ? ।। २ ।। क्या तू कभी राम-नामके सुन्दर अक्षर और कोमल अर्थ-रूपी लड्डूओंको श्रीरघुनाथजीके प्रेमरूपी शीरेमे पागेगा ? भाव यह, कि क्या तू अनुराग-सहित श्रीराम-नाम स्मरण करेगा ? जो तू इस तरह अपने स्वामीके गुणोका गान करेगा और उन्हें प्रसन्न रखेगा, तो जो-जो तू माँगेगा, वह-वह तुझे मिलेगा ( प्रभु तेरी सारी मनस्कामनाएँ पूरी कर देंगे ) ।। ३ ।। इस प्रकार ( प्रेमपूर्वक, निष्कपट भावसे भगवद्-भजन और भगवदर्च्चन करता हुआ ) आनन्दरूपी सेजपर (बेखटके) सोयगा और तेरे हृदयमे जो ( रागद्वेषादि द्वन्दोका) बड़ा भारी दाह

---

†नागरीप्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रन्थावलीकी विनय-पत्रिका में, कदाचित् छपनेकी असावधानीसे, यह चरण छूट गया है ।

रहता है, वह शान्त हो जायगा ( सन्तोष प्राप्त हो जायगा )। तुलसीदास! श्रीरामचन्द्रके अनुग्रहसे तेरे हृदयमें भगवद्भक्तिरूपी योग सिद्ध हो जायगा, तुझे प्रेमपरा भक्ति अनायास प्राप्त हो जायगी ।।४।।

**टिप्पणी—( १ ) 'रघुबरहि‥‥‥लागिहै'—निम्नलिखित दोहेमें, इसी भावसे प्रेरित होकर, गोसाईंजीने मनको शिक्षा दी है—**

'रे मन, सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निसिदिन तुलसी तोहि ।।'

**( २ ) 'आखर‥‥‥पागिहै'—श्रीबैजनाथजीने इन लड्डुओंका पूरा-पूरा रूपक इस प्रकार लिखा है ।**

**"प्रथम बेसन रवा आदि मैदा चाहिये सो राम-यश-वर्णनमें जो आखर वर्ण शब्दादि है सोई मंजु उज्ज्वल मैदा है, पुनः घृत चाहिये सो मंजु आखरनमें जो मृदु कोमल अर्थ है सोई घृत है, सुथल सत्सग चूल्हा, विराग अग्नि, शुभाशुभ कर्म ईंधन लगाइ श्रवण-कीर्तनादिमें जो रघुनाथजामें प्रेम होता है सोई पाग शक्करको जलाव सरीखे है तामें पागिहै। भाव, जब प्रेम सहित श्रवण-कीर्तन-रूप रामयशरूप मोदक पाइ जीव पुष्ट होयगा ।"**

**भक्तवर बैजनाथजी को, पूरा-पूरा रूपक लिखनेकी खूब सूझती थी।**

**( ३ ) 'भगति जोग'—भक्तियोग सिद्ध हो जाने पर भक्त इस दशाको पहुँच जाते हैं—**

'अन्ये विहाय सकल सदसच्चकार्यं,
श्रीरामपंकजपदं सततं स्मरन्ति ।
श्रीरामनामरसनाग्र पठन्ति भक्त्या,
प्रेम्णा च गद्गद्गिरोऽप्यथ हृष्टलोमाः।।'–(महारामायण)

कबीरसाहब कहते हैं—

'कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
रोम-रोम मे रमि रहा, और अमल क्या खाय ।।
सोओं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं ।
लोयन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ।।'

( २२५ )

भरोसो और आइहै उर ताके ।
कै कहुँ लहै जो रामहिं सो साहिब, कै आपनो बल जाके ।। १ ।।

कै कलिकाल कराल न सूझत मोह-मार-मद-छाके।
कै सुनि स्वामि-सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अँग थाके ॥ २ ॥
हौं जानत भलि भाँति अपनपौ, प्रभु सो सुन्यो न साके।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर भले भये करतब काके ॥ ३ ॥
मोको भलो रामनाम, सुरतरु सो रामप्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—सब अंग=सब प्रकारसे। साका=यश, कीर्ति। उपल=पत्थर, यहाँ अहल्यासे तात्पर्य है। निसोच=निश्चिन्त। बबा=बाप।

**भावार्थ**—उसीके मनमे किसी दूसरेका बल-भरोसा होगा, जिसे या तो कहीं श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई मालिक मिल गया हो, या जिसे अपने पुरुषार्थपर विश्वास हो (मुझे तो न कोई मालिक ही ऐसा मिला है जो श्रीरघुनाथजीके समान समर्थ हो और न अपने ही पुरुषार्थपर रत्तीभर भरोसा है। इसलिए मेरी दौड़ तो एक रामजी तक ही है) ॥१॥ अथवा अज्ञान, काम और अहंकारमें मतवाला हो जानेके कारण भीषण कलिकाल न सूझता हो (क्योंकि मदान्धोंको सामने उपस्थित मृत्यु भी नहीं दिखायी देती है। मुझपर मोह आदि मादक पदार्थोंकी इतनी कृपा है, कि उन्होने अन्धा नही किया, कलिकाल मुझे बराबर सूझ रहा है, और उसके विकराल भयसे डरकर मै भगवान्‌की शरण स्वीकार कर चुका हूँ), अथवा जिसके चित्तपर सब प्रकारसे थके हुए लोगोको हितकारी प्रभु रामचन्द्रजीका स्वभाव सुननेपर भी ठीक-ठीक न जमा हो (भगवान्‌की पतित-पावनता, जन-वत्सलता आदि जिसके हृदयमे न अंकित हुई हो। किन्तु भगवत्कृपासे मेरे संबंधमे यह बात भी नहीं कही जा सकती। मुझे सदा उनके दीनदयालु स्वभावका ध्यान बना रहता है) ॥२॥ मै अपना पुरुषार्थ, अपना बल भलीभाँति जानता हूँ (यह मुझे अच्छी प्रकार ज्ञात है कि मै अपने परिमित पुरुषार्थसे अपरिमित भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता हूँ)। और मैने, श्रीरघुनाथजीके अतिरिक्त, और किसी स्वामीकी ऐसी कीर्ति नही सुनी है (जो पापियों और नीचोका उद्धार करता हो) पाषाणी (अहल्या), भील, पक्षी (जटायु), मृग (मारीच) और राक्षस (विभीषण) इन सबोंमें किसने सुकृत किये थे ? (किसीने भी नहीं। ये सभी घोर पापी थे, किन्तु भगवान्‌ने इन सबका उद्धार कर दिया)

॥३॥ मुझे तो एक रामनाम ही कल्पवृक्षके समान सुख देनेवाला हो गया है, और वह कृपालु रामचन्द्रजीकी कृपासे हुआ है। (इसमें भी मेरा कोई पुरुषार्थ नही है, कि रामनामपर कल्पवृक्षके समान मेरी श्रद्धा हो गई है। यह भी भगवत्कृपासे ही हुआ है)। अब तुलसी इस अनुग्रहके कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त है, जैसे कोई बालक अपने माता-पिताके राज्यमें होता है ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) इस पदमें गोसाईंजीने स्पष्टतया जीवकी पौरुषहीनता और भगवदनुग्रहका प्राधान्य प्रतिपादित किया है। भक्तिवादमें यही तो सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त है। इस 'पौरुष-हीनता' में निराशावाद अथवा कादरताका लेशमात्र भी नहीं है, प्रत्युत आशावाद और वीरताकी झलक दिखायी देती है।

( २ ) 'उपल'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( ३ ) 'भील'—निषाद; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

( ४ ) 'खग'—जटायु, ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

( ५ ) 'मृग'—मारीच; यह रावणका मामा था। रावणकी आज्ञासे यह माया-मृग बनकर पंचवटीमें गया। वहाँ इसका अलौकिक मनोहर रूप देखकर सीताजीने इसका चर्म लानेको श्रीरामजीसे कहा, जब भगवान् इसे मारनेको गये, और पीछे इसके मरण-समयका आर्त्तनाद सुनकर सीताजीने लक्ष्मणको वहाँ भेज दिया, उसी समय अवसर पाकर रावण आश्रममें आया, और सीताजीको रथपर बिठाकर लंकामें ले गया। मारीच स्वयं भगवान्का भक्त था; किन्तु रावणकी प्रेरणासे उसे ऐसा करना पड़ा। मायामृगके प्रसंगका गीतावलीमें निम्नलिखित पद बड़ा ही सुन्दर और भावमय है।

'बैठे हैं राम लषन अरु सीता।
पंचवटी बर परनकुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता॥
कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला।
पाये पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहि चाप सर लीन्हे।
चल्यो भाजि फिरि-फिरि चितवत-मुनि-मख रखवारे चीन्हे॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै 'तुलसी' उर आछे॥'

( ६ ) 'रजनीचर'—विभीषण; १४५ पद की पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

( २७६ )

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥ १ ॥
करम, उपासन, ग्यान, बेदमत सो सब भाँति खरो ।
मोहिं तो "सावन के अंधहि" ज्यों सूझत रंग हरो ॥ २ ॥
चाटत रह्यों स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो ॥ ३ ॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं "कुंजरो नरो ।"
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो ॥ ४ ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो ।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो ॥ ५ ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम-नामहिं तें तुलसिहिं समुझि परो ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**=फरो=फला है । पातरि=पत्तल । परुसि=परोसा हुआ । परमारथ=परमपद, मोक्ष । नहिं कुञ्जरो नरो='नरो वा कुञ्जरो वा' अर्थात् हाथी है या मनुष्य, ऐसी दुबिधा इसमें नहीं है । कटक=फौज । सरो=पूरा हुआ । आखर=अक्षर । अरनि=हठ । अरो=अड़ गया हूँ, जिद पकड़ गया हूँ । जीह=जीभ । गरो=गल जाय । अपनो=आत्मा का ।

**भावार्थ**—जिसे किसी दूसरेका भरोसा हो, सो करे । मुझे तो इस कलियुगमे कल्याणरूपी फलोसे फला हुआ एक राम-नाम ही कल्पवृक्ष है । तात्पर्य यह, कि मुझे जितने कल्याण प्राप्त हो सकते हैं, वे राम-नाम-द्वारा ही संभव है, अन्यथा नहीं ( हाँ, किसीको यदि दूसरे साधनका बल हो, तो वह भले ही उसे साधे, मुझे उससे कोई मतलब नहीं ) ॥१॥ यद्यपि कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड एव वैदिक सिद्धान्त ये सभी सब प्रकारसे खरे है, सच्चे हैं, किन्तु मुझे तो सावनके अन्धेकी तरह, जहाँ देखता हूँ, तहाँ हरा-ही-हरा रङ्ग दीखता है । भाव यह है, कि जैसे कोई यदि सावनके महीनेमे हरी-हरी घास देखता हुआ अन्धा हो जाय, तो उसे सदा उसी हरियालीका भास रहेगा, उसी प्रकार मुझे सदा सर्वत्र श्रीराम-नाम ही सूझ रहा है । ज्ञान, कर्म आदि मेरे

ध्यानमे ही नहीं आते, यद्यपि वे भी सच्चे है, उनका भी अस्तित्व है ॥२॥ पहले मै कुत्तेकी नाई पत्तलोंको चाटता फिरता था, तो भी कभी मेरा पेट नही भरा। आज मै नाम-स्मरण करनेसे अमृतरस परोसा हुआ देखता हूँ। भाव यह है, कि पहले मैंने अनेक साधन किये, किन्तु किसीसे भी परमानन्द-प्राप्ति नहीं हुई। अब राम-नामके प्रभावसे मुझे ब्रह्मानन्द का रस पीनेको मिल गया है, पूर्ण सन्तोष प्राप्त हो गया है ॥३॥ मेरे लिए राम-नाम स्वार्थ और परमार्थ दोनोंका ही साधक है, संसारके काम भी सध जाते है और परलोक भी बन जायगा। यह बात 'हाथी है या मनुष्य' की-सी दुबिधा भरी नही है (त्रिकालाबाधित सत्य है)। मैंने सुना है, कि इस नामके प्रभावसे बन्दरोंकी सेना पत्थरोंका पुल बनाकर समुद्रको पार कर गयी थी ॥४॥ जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वहीं उसका काम पूरा हुआ है (यह अमिट सिद्धान्त है) मेरे माँ बाप तो ये दोनों अक्षर—'र' और 'म'—है। इन्हींके आगे मै बालहठसे अड़ रहा हूँ, मचल रहा हूँ (जो मै माँगूँगा, सो ये दोनों अक्षर मुझे दे देंगे, इसमे सन्देह नही) ॥ ५ ॥ जो मै कुछ छिपाकर कहता होऊँ, तो शिव साक्षी हैं, और मेरी जीभ गल जाय। अर्थात् मैंने यहाँ 'कवि-कल्पना' से काम नहीं लिया है, सच-सच सुनाया है। बस, तुलसीदासको तो अपना कल्याण एक रामनामसे ही समझ पड़ा है ॥६॥

**टिप्पणी—(१) 'मोहि तो······ हरो'—कदाचित् आजकलके कतिपय धुरंधर विद्वान् इसे 'अंधविश्वास' कहें ! पर, किया क्या जाय, प्रेमान्ध लोगोंके लिए तो यही 'अंधविश्वास' श्रेयस्कर है। 'रुचिर्भिन्नाहि लोके' के अनुसार उन सज्जनोंको अपनी शंकाका समाधान कर लेना चाहिए।**

**( २ ) 'नहि कुञ्जरो नरो'—महाभारतमें जब द्रोणाचार्य, कौरवों का पक्ष लेकर, पांडवोंकी सेनाका संहार करने लगे, तब कृष्ण भगवान्ने अर्जुनसे कहा, कि अब द्रोणाचार्य्यका वध करना ही ठीक होगा। गुरु-हत्या करनेमे अर्जुन हिचक गये। जब यह न हो सका, तब भगवान्की सलाहसे भीमसेनने अश्वत्थामा नामके हाथीको मार गिराया। अश्वत्थामा द्रोणाचार्यके पुत्रका भी नाम था और वह इन्हें बड़ा ही प्यारा था। समाचार सुनते ही द्रोणाचार्य ने धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा, कि कौन अश्वत्थामा मारा गया है ? धर्मराज ने**

दबी ज़बानसे उत्तर दिया 'अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो वा' अर्थात् अश्वत्थामा मनुष्य मारा गया वा हाथी। 'मनुष्य मारा गया' तो खूब जोरसे कह दिया, और 'वा हाथी' धीरेसे। नीतिका पालन करते हुए धर्मराजने सत्यकी रक्षा करनी चाही, किन्तु यह न हो सका। राजनीति और धर्ममें बड़ा अन्तर है। असत्य बोलनेका कलंक उन्हें लग ही गया। अस्तु, पुत्रमरण सुनकर ज्योंही द्रोणाचार्य मूर्च्छित-से हुए, त्योंही धृष्टद्युम्नने उनका मस्तक काट लिया। 'नरो वा कुंजरो वा' तबसे लोकोक्तिके रूपमें प्रयुक्त होने लगा है।

(३) 'दोउ आखर'—रकार और मकार; श्रीरामानुजाचार्यजीने राममंत्रका इस प्रकार अर्थ किया है—

'रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधि—
मकारार्थो जीवः सकलविधि कैंकर्यनिपुणः।
तयोर्मध्याकारो युगलमथसंबंधमनयो—
रनन्यार्ह ब्रूते त्रिनिगमसुसारोऽयमतुलः॥'

( २२७ )

नाम राम, रावरोई हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सो भुज उठाइ कहौं टेरे॥ १॥
जननी-जनक तज्यो जनमि, करम विनु विधिहु सज्यो अवडेरे।
मोहुँ सों कोउ कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे॥ २॥
फिर्‌यौ ललात विनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे।
नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बबुर बहेरे॥ ३॥
साधत साधु लोक परलोकहिं, मुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलंब नाम को, एक गाँठि कई फेरे॥ ४॥

**शब्दार्थ**—रावरोई=आपका ही। अवडेरे=चक्करदार। ललात फिर्‌यौ=माँगता हुआ दीन-सा फिरता रहा। बबुर=बबूल। बहेरे=बहेड़ा। रसाल=आम। फेरे=लपेट।

**भावार्थ**-हे रामजी! आपका नाम ही मेरा भला करनेवाला है। यह बात मै हाथ उठाकर स्वार्थके और परमार्थके सगी-साथियों से पुकार-पुकारकर कहता हूँ (इसकी मैं घोषणा कर रहा हूँ)॥ १॥ माता-पिताने तो मुझे उत्पन्न करके

ही छोड़ दिया था, ब्रह्माने भी और अभागा और कुछ बेढब-सा बनाया था। फिर भी कोई-कोई मुझे "रामका" कहते हैं, सो यह किसके नातेसे कहते हैं? (कदाचित् इसी राम नामके प्रतापसे, क्योंकि राम-नाम-स्मरण करनेसे ही 'भागवत' का पद मिलता है, अन्यथा नहीं) ॥२॥ बिना राम-नाम लिये, पेट भरनेको मैं (द्वार-द्वार पर) ललचाता फिरता था। मेरी ओर देखकर दुःखको भी दुःख होता था (मेरी बड़ी ही करुणोत्पादिनी दशा थी)। पहले मुझे बबूल और बहेड़ेके वृक्षोंके साथ रहना पड़ता था, पर आज उन्हीं पेड़ोंसे आमके फल मिल रहे हैं। अभिप्राय यह, कि जो लोग पहले मेरा निरादर करते थे, वे ही आज, राम-नाम के प्रभावसे, मेरा आदर कर रहे हैं ॥३॥ संतजन तो सुनकर और मनन कर अनेक साधनोंसे, अपना लोक और परलोक बनाते हैं (शास्त्रोंको सुनते हैं, उनपर विचार करते हैं, अनुशीलन करते हैं और तदनुसार चलते हैं, तब कहीं वे अपना लोक-परलोक सुधार सकते हैं), किन्तु तुलसीके लिए एक राम-नामका ही सहारा है। यह ऐसा है जैसे गाँठ तो एक ही होती है, लपेटे चाहे जितने हों (साधन चाहे अनेक हों, पर सबका लक्ष्य एक राम-नाम ही है) ॥४॥

टिप्पणी—( १ ) 'जननी···अवडेरे'—यह किंवदन्ती बहुत-कुछ प्रसिद्ध है, कि गोसाईंजीकी जन्म-पत्रीमें कुछ ऐसे अनिष्टकारी ग्रह थे, कि उन माता-पिताने, ज्योतिषीकी रायसे, उन्हें बचपनमें ही त्याग दिया था। 'अनिष्ट ग्रहोंके कारण त्याग देना' यह मत ज्योतिषके किसी प्राचीन ग्रंथमें नहीं पाया जाता; केवल 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामक ग्रन्थमें इसकी चर्चा है। मुहूर्तचिन्तामणि गोसाईंजीके बाद बना है। इस पद तथा कतिपय ऐसे ही पद्योंसे लोगोंने यह ध्वनि निकाल ली, कि गोसाईंजी उनके माता-पिता द्वारा त्याग दिये गये थे। सोचनेकी बात है, कि वात्सल्य-प्रेम कितना ऊँचा होता है। कैसे ही अनिष्ट ग्रह क्यों न हों, कोई मा-बाप अपनी सन्तानको यों नहीं छोड़ देता है। यह संभव है, कि इन्हें छोड़कर इनके माता-पिता बचपनमें ही परलोकगामी हो गये हों और यह ला-वारिशकी तरह निराश्रय हो इधर-उधर भटकते फिरे हों। और 'बिधिहु सृज्यो अवडेरे' इसका अर्थ साधारणतया यही है कि, ब्रह्माने भी मुझे ऊटपटाँग-सा बनाया, भाग्यहीन रचा।

(२) 'फिरयौ···हेरे—इसी प्रसंगका कवितावलीमें, निम्नलिखित कवित्त मिलता है। देखिए—

'जायो कुल मंगल, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारफल चार ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को ।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गुरु तृन तें तनक को ॥'

(३) 'लहत रसाल····बहेरे'—श्रीबैजनाथजी इसका यह अर्थ लिखते हैं, "बबुर बहेरा के वृक्ष तें रसाल फल पाश्रो । भाव, पूर्व पिशाचै सिद्धि द्वारा राम-भक्ति लाभ भई, यह भक्तमालमे प्रसिद्ध है ।"

(४) 'एक गाँठि कई फेरे'—सारांश, राम-नामके आधारपर ही सारे साधन दृढ़तासे अवलम्बित हैं ।

( २२८ )

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो ।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो ॥ १ ॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो ।
राम-नाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥ २ ॥
नाम-प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृतसील भील-भामो ॥ ३ ॥
बाल्मीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ।
उलटे-पलटे-नाम महातम गुञ्जनि जितो ललामो ॥ ४ ॥
राम तें अधिक नाम-करतब जेहि किये नगर-गत गामो ।
भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—परिनामो=(परिणाम) अन्त । कोह=क्रोध । सिला=पत्थर । सरोरुह=कमल । जामो=जम उठा, अंकुरित हुआ । भाग-भाजन=भाग्यवती । भीलभामो=भीलकी स्त्री, शबरी । सामो=सामान । जितो=प्राप्तकर लिया । ललामो=(ललाम) यहाँ रत्नसे तात्पर्य है । नगर-गत=नागर; शहरमें रहनेवाले चतुर मनुष्य । गामो=ग्रामीण । बजाइ=डंका बजाकर । बामो=बुरा ।

**भावार्थ**–जिसे राम-नामकी अपेक्षा श्रीरामचन्द्रजी भी प्यारे नहीं हैं (जिसे स्वयं श्रीरामचन्द्रजीसे उनका नाम अधिक प्रिय है),उसका इस कराल कलिकाल-में, आदि, मध्य और अन्तमे, भला होगा (क्योंकि कलियुगमे मुक्तिका देनेवाला भगवन्नाम स्मरण ही है। जो नामानन्य होगा, वह सदा सर्वथा सुखी रहेगा) ॥ १ ॥ नामकी महिमा समझकर अहंकार, लोभ, अज्ञान, क्रोध और काम भी लज्जित हो जाते हैं, सामने नहीं आ सकते। जो सज्जन सदा राम-नाम स्मरण करते रहते हैं, उनपर कड़ी धूप भी छाया कर देती है (कठिन-से कठिन अनिष्ट भी इष्ट हो जाते हैं, बड़े-बड़े दुःख भी सुखमे परिणत हो जाते हैं) ॥ २ ॥ यदि कोई कहे, कि नामके प्रभावसे पत्थरपर कमल अंकुरित हुआ है, तो मिथ्या नही है, सच है। भाव, नामके प्रभावसे असम्भव बातें भी सम्भव हो जाती हैं। जिस नामको सुनकर भीलनी शबरी भी जपते-जपते भाग्य और पुण्यकी पात्र हो गई (फिर 'शिला-कमल' वाली असम्भव घटना क्या सम्भव नहीं हो सकती? अवश्य हो सकती है) ॥ ३ ॥ वाल्मीकि और अजामेलके पास न तो कोई साधन ही था और न कोई सामग्री ही (न योगाभ्यास ही किया था, न यज्ञ-योगादिक ही), किन्तु उन्होंने भी उलटे-पुलटे नामके माहात्म्यसे, घुँघचियोमे जवाहरात जीत लिए (बहेलियाके तो कर्म किये, पर नामके प्रभावसे,'मरा मरा' जपनेसे, 'महर्षि' पद प्राप्त कर लिया) ॥४॥ नामका पुरुषार्थ श्रीरघुनाथजीसे भी अधिक है, क्योंकि उसने ग्रामीण मनुष्योंको चतुर नागर बना दिया (जिनको बोलने, रहने, उठने, बैठनेकी भी योग्यता नहीं थी, वे शिष्ट, कवि, महात्मा आदि हो गये); अधिक क्या, जिसे जपकर तुलसीदास-सरीखे बुरे जीव भी, डंकेकी चोटसे, अच्छे हो गये (कौड़ियाँ भी अशर्फियाँ हो गयी) ॥५॥

**टिप्पणी**—(१) **'प्रिय······ रामो'**–भक्तपुंगव हनुमान्‌जीने भी यही बात कही है—

'राम त्वत्तोऽधिकं नाम, इति मे निश्चला गतिः।
त्वया तु तारिताऽयोध्या, नाम्ना तु भुवनत्रयम् ॥'

रामचरितमानस मे—

'निर्गुन ते इहि भाँति बड़, नाम-प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार ॥

राम भक्तहित नरतनु धारी । सहि संकट किय साधु सुखारी ।।
नाम सप्रेम जपत अनयासा । भक्त होहिं मुद-मंगल-बासा ।।
राम एक तापस-तिय तारी । नाम कोटिखल-कुमति सुधारी ।।
रिषिहित राम सुकेतु सुता की । सहित सेन सुत कीन बिबाकी ।।
सहित दोष दुख दास दुरासा । दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा।।
भँजेउ राम आप भव-चापू । भवभयभंजन नाम-प्रतापू ।।
दंडक-बन प्रभु कीन सुहावन । जनमन अमित नाम किय पावन ।।
निशिचर-निकर दले रघुनन्दन । नाम सकल कलि-कलुष-निकंदन।।

सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेदबिदित गुनगाथ ।।

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ । राखे सरन जान सब कोऊ ।।
नाम अनेक गरीब निवाजे । लोक बेद बर बिरद बिराजे ।।
राम भालु-कपि-कपट बटोरा । सेतुहेतु स्रम कीन न थोरा ।।
नाम लेत भव-सिन्धु सुखाहीं । करहु बिचार सुजन मन माहीं ।।
राम सकुल रन रावन मारा । सीय सहित निजपुर पगु धारा ।।
राजा राम अवध रजधानी । गावत गुन सुर मुनि बरबानी ।।
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती । बिनुस्रम प्रबल मोह-दल जीती।।
फिरत सनेह मगन सुख अपने । नाम-प्रसाद सोच नहिं सपने ।।'

धन्य गोस्वामीजी ! आपने नाम-महिमाके बहाने पूरी रामकथा ही कह डाली ! यह 'राम-नाम-रामायण' नित्य पारायण करने योग्य है । किसी-किसी सज्जन के दृष्टि-कोणमें यह 'नाम-माहात्म्य' कवि-कल्पना की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है, अत्युक्तिका बढ़िया उदाहरण कहा जाता है, पर यह उनका भ्रम है । गोसाईंजीने ही नहीं, अनेक अनुभवी पारदर्शी महात्माओंने नामका ऐसा ही प्रभाव कहा है । महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव नाम-कीर्तन ही को महत्ता दिया करते थे । कबीरदासजीने भी नामकी बड़ी महिमा गायी है देखिए—

'राम का नाम संसार में सार है, राम का नाम है अमृत बानी ।
राम के नाम ते कोटि पातक टरैं, राम का नाम बिस्वास मानी ।।

* * *

कहाँलौं कहौं अगाध लीला रची, राम का नाम काहू न जानी ।

राम का नाम लै कृष्णगीता कथी, बाँधिया सेत तत्र मर्म जानी ॥
ब्रह्म सनकादि कोई पार पावै नहीं, तासु का नाम कह राम राया ।
कहैं कबीर वह शख्स तहक़ीक कर, राम का नाम जो पृथ्वी लाया ॥'

अन्यत्र—

'शून्य मरै अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय ।
नाम सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय ॥' —कबीरदास

( २ ) 'करत छाँह घोर घामो'—प्रमाण लीजिए—

'किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहै बर बात ।
तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥' ( रामचरितमानस )

( ३ ) 'भील-भामो'—शबरी; १०६ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए ।

( ४ ) 'बाल्मीकि'—१४ पद की चौथी टिप्पणी देखिए ।

( ५ ) 'अजामिल'—५७ पद की चौथी टिप्पणी देखिए ।

( ६ ) 'उलटे…ललामो'—रामचरितमानस में भी लिखा है—

'उलटा नाम जपत जग जाना । बाल्मीकि भे ब्रह्म समाना ॥'

'उलटे नाम' की कथा संस्कृतके किसी प्राचीन ग्रन्थमें नहीं है । संस्कृतके अनुसार 'मरा मरा' का कुछ अर्थ भी नहीं होता है । भाषामें भी 'मारो, मारो' होता है, 'मरा मरा नहीं । किन्तु जो भी हो, इस उक्तिमें काव्य-सौंदर्य अवश्य है ।

( ७ ) 'दाहिने….बामो'—देखिए कवितावलीमें अपने विषयमें स्वयं गोसाईंजीने एक स्थलपर कहा है—

'राम-नाम को प्रभाव, पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो ।
अति ही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ ऐतो बड़ो अचरजु देखि सुनी सो ॥'

( २२९ )

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं ।
जानकी जीवन ! जनम जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥ १ ॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं ।
तुम सों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वै हौं नरक घोर को हौं ॥ २ ॥

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा* भौंर को हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठेकाना ठौर को हौं ॥३॥

**शब्दार्थ**—गरैगी=गल जायगी। जीह=जीभ। ज्यायो=जिलाया हुआ। जोर=(जोड़) बराबरी। कृमि=कीड़ा। भौंतुवा=छोटा-सा काला कीड़ा, जो प्रायः जल में नावों के पास रहा करता है। शीतल=सन्तुष्ट, प्रसन्न।

**भावार्थ**—जो मैं यह कहूँ, कि मैं रामजीको छोड़कर किसी औरका हूँ, तो मेरी यह जीभ गल जाय (नष्ट हो जाय)। हे जानकी-वल्लभ ! मै तो इस संसार में आपके ही टुकड़ोंसे (जूँठनसे) जी रहा हूँ। भाव, सदा से आपहीका गुलाम हूँ ॥१॥ तीनो लोकोंमें, तथा तीनो कालोंमें (पृथ्वी, पाताल और स्वर्गमें एव भूत, वर्तमान और भविष्यत् मे) आपकी बराबरका हितू दूसरा नहीं दिखायी दिया। यदि मैं आपके साथ छल कपट करूँगा, तो मुझे घोर नर्कका, कल्प-कल्पमे, कीड़ा होना पड़ेगा (क्योकि आप, सर्वव्यापी, के आगे कपट कबतक चल सकता है ?) ॥२॥ क्या हुआ, जो कलियुगने मिलकर मेरे मनको भौंतुवा बना दिया ? तात्पर्य यह है, कि भौं तुवा जैसे जल मे रहता हुआ भी जलके ऊपर ही तैरता रहता है, उसमें डूब नहीं सकता, वैसे ही कलिकालने यद्यपि मुझे भव-नदीमें डाल दिया है, तथापि मैं रामजीके प्रतापसे, उसमें डूबूँगा नहीं, उतराता ही रहूँगा। संसार मुझपर अपना अधिकार न कर सकेगा। इसी बल-भरोसेपर तुलसीदास सदा प्रसन्न रहता है, कि वह बड़े ठौर-ठिकानेका रहनेवाला है। (श्री रघुनाथजीके राजदरबारका सेवक है। कलियुग उसका क्या कर सकता है ॥३॥

**टिप्पणी**—(१) 'जानकी····को हौं'—यदि यह जीव श्रीजानकीजीवनका गुलाम होकर नहीं रहा, तो उसका जीना न जीना बराबर है, कहा भी है—

"तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़ताबस जे न कहैं कछुवै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं, सो सही पसु पूँछ विषान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दसमास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ ! जियै जग मे तुम्हरो बिन ह्वै ॥'—(कवितावली)

* पाठान्तर 'भुरुह।'

देखिए, भक्तवर प्रह्लाद क्या करते हैं—

'नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वा सुरात्मजाः ।
प्राणनाथ मुकुन्दस्य न यत्नं न बहुज्ञता ॥
न दानं न तपो नेज्या, न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलयाभक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥'—( श्रीमद्भागवत )

(२) 'सुहृद'—वास्तवमें, श्रीरघुनाथजीके समान-कोई-दूसरा सखा और हितू नहीं हैं । हनुमान्‌जीने कहा है—

'कहँ हम पसु साखामृग चचल, बात कहौ मैं विद्यमान की ।
कहँ हरि सिव-अज पूज्य ग्यानघन कहि बिसरत वह लगनि बान की ॥'–(गीतावली)

( २३० )

अकारन को हितु, और को है ।
बिरद 'गरीब-निवाज' कौन को, भौंह जासु जन जोहै ॥ १ ॥
छोटो-बड़ो चहत सब स्वारथ जो बिरंचि बिरचो है ।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ॥ २ ॥
काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै ।
को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**—जोहै=देखे । कोल=भील । सोहै=शोभा देता है । अनख=क्रोध ।

**भावार्थ**—बिना किसी कारण के हित करने वाला (श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर ) और कौन है ? गरीबोंको निहाल कर देनेका बाना किसका है, कि जिसकी भृकुटीकी ओर यह जीव देखा करे ? ( श्रीरामजी ही दीनबन्धु दीनानाथ है, उन्हींकी भौंहको बेचारे भक्त देखते रहते हैं, उन्हींकी कृपा के आधारपर जीते हैं ) ॥ १ ॥ छोटे या बड़े जो भी ब्रह्माके रचे हुए हैं वे सब मतलब गाँठना चाहते हैं, सभी मतलबी यार है ( बिना स्वार्थके कोई किसीका भला नहीं करता ) कहिए तो, भील, बन्दर और रीछ आदि पापियों का पालन-पोषण करना और किस कृपालु स्वामीको शोभा देता है ? ( रामचन्द्रजीके अतिरिक्त किसीको नहीं, इतनी दया किसीके हृदयमे नहीं हैं, जो निःस्वार्थ कपटी और पापी जीवोंका उद्धार करता हो) ॥ २ ॥ ऐसा

किसका नाम है जिसे, आलस्य या क्रोधके साथ भी, लेनेसे पाप और दोष दूर हो जाते हो? (श्रीराम-नाम ही ऐसा है)। जिसने सदा मूर्खतावश अपने स्वामीसे द्रोह किया है, ऐसे तुलसी सरीखे नीच सेवकको किसने अपनाया? (श्रीरघुनाथजीको छोड़कर और कौन अशरण-शरण है, कोई भी नहीं ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'भौंह .......जोहै'.... 'भौंह जोहने' का अर्थ कृपा-कटाक्षको प्रतीक्षा करना है, अनुग्रहीत होने की आशा करनी है।**

**(२) 'छोटो........बिरचो है'—कहा भी है—**

'सुर नर मुनि सब ही की रीती। स्वारथ लागि करहिं ये प्रीती॥'

**तथा—**

'जगत में झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुख सों सब लागे, क्या दारा क्या मीत॥
मेरो मेरो सभी कहत हैं, हित सों बाँध्यो चीत।
अंतकाल सगी नहिं कोऊ, यह अचरज की रीत॥
मन मूरख अजहूँ नहिं समुझत सिख दै हारयो नीत।
'नानक' भव जल पार परै जो गावै प्रभु के गीत॥' —नानक

**(३) 'कोल'—भील, यहाँ निषाद और शबरी दोनोंसे ही तात्पर्य है। १०६ पद की तीसरी और पाँचवीं टिप्पणी देखिए।**

**(४) 'अनख आलस'—कहा भी है—**

'भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥'
—(रामचरितमानस)

## (२३१)

और मोहि को है, काहि कहिहौं?
रंकराज ज्यों मन को मनोरथ, केही सुनाइ सुख लहिहौं॥१॥
जम-जातना जोनि-संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं।
मोको अगम, सुगम तुमको प्रभु! तउ फलचारि न चहिहौं॥२॥
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं॥३॥

इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं।
दीजै बचन कि हृदय आनिये 'तुलसी को पन निर्बहिहौं' ॥४॥

**शब्दार्थ**—सचु=सुख, विश्राम। पानही=जूती। पन=प्रतिज्ञा, हठ।

**भावार्थ**—हे नाथ! मेरा और कौन है, और ( तुम्हे छोड़कर ) मैं किससे (अपना दुःख) कहूँगा? मेरी इच्छा तो ऐसी है जैसी गरीबकी राजा बनने की होती है, अथवा हूँ तो मैं कंगाल, पर मंसूबे राजाओंके ऐसे बाँधता हूँ। तात्पर्य यह है, कि साधन तो एक भी नहीं किये, पर बनना चाहता हूँ संत-शिरोमणि! सो यह मनोर्थ किसे सुनाकर आनन्द पाऊँगा, कौन मेरी बात सुनकर पूरी करेगा? (सिवा रघुनाथजीके कोई भी नहीं) ॥ १ ॥ यम-यातना अर्थात् नारकीय क्लेश एवं अनेक योनियोंमे दारुण दुःख भोगे है और भोगूँगा। हे प्रभो! मुझे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी लालसा नही है, यद्यपि मेरे लिए ये दुर्लभ हैं, पर तुम चाहो तो सहजमें दे सकते हो ॥ २ ॥ ( फिर मुझे चाहिए क्या, सो सुनिए ) हे रामजी! मैं तो तुम्हारे विहार करनेका पक्षी, पशु, वृक्ष और किंकर होकर ही रहना चाहता हूँ। इस नातेसे मुझे नर्कमे भी सुख मिलेगा और यदि यह मनस्कामना पूरी न हुई तो मुझे मोक्षकी भी इच्छा नहीं, क्योकि बिना इस सुखके मुझे मोक्ष-पद भी दुःखदायी हो जायगा ॥ ३ ॥ इस दासके मनमे बस यही एक कामना है, कि वह सदा तुम्हारी जूती पकड़े रहे, शरणमें रहे। या तो मुझे वचन दे दो ( कि हम तेरी यह कामना पूरी कर देंगे ) अथवा इस बातको मनमें ही रखे रहो, कि हम तुलसी का हठ पूरा कर देंगे ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'खेलिबे……रहिहौं'—हे नाथ! मुझे जो पक्षी-योनिमें जन्म लेना पड़े, तो तुम्हारे खेलनेका शुक, सारिका, मोर आदि होऊँ, जो पशु-योनिमें जाना पड़े तो तुम्हारा घोड़ा, हाथी, हिरणी आदि होऊँ, और यदि वृक्षका जन्म लेना पड़े तो तुम्हारे विहार स्थलका कदम्ब, रसाल, तमाल आदि बनूँ। इस मनोराज्यपर भक्तवर ललितकिशोरीजीकी क्याही सूक्ति है—**

'जमुना पुलिन कुंज गहवर की, कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद-पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै, मधुरे मधुरे गुञ्ज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बन-बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के पाऊँ।
'ललितकिसोरी' आस यही, ब्रज-रज तज अनत न जाऊँ॥'

**अन्यत्र**

'कब हौ सेवा-कुञ्ज में, ह्वैहौं स्याम तमाल ।
लतिका कर गहि बिरमिहैं, ललित लड़ैती लाल ।
मिलिहै कब अँग छार ह्वै, श्रीबन-बीथिन धूर ।
परिहैं पद पंकज जुगल, मेरी जीवनमूर ॥'

**रसिक रसखानिकी भी कुछ ऐसी ही भावना है—**

'मानुष हौं तौ वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरो, चरों नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ, जो धरयो कर छत्र पुरन्दर-धारन ।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन ॥'

**(२) 'यहि नाते.........दहिहौं'—कविवर बिहारीने भी इसी भावपर एक दोहा रचा है । देखिए—**

'जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति-मुख दीन ।
जो लहिये सँग सजन तौ, धरक नरक हू की न ॥'

**सहृदय 'प्रीतम' ने इसे क्या ही बढ़िया लिबास पहिनाया हैं—**

'नहीं गर यार जिन्नत में तो वह नारे जहन्नुम है;
अगर दोज़ख में है प्यारा, तो वह जिन्नत से क्या कम है ?'(गुलदस्तए-बिहारी)

**अहमदने भी इसी भाव पर एक दोहा लिखा है—**

'अहमद ढाक सराहिये, जो प्रीतम गल बाँह ।
कहा करौं बैकुण्ठ लै, कलपवृच्छ की छाँह ॥'

( २३२ )

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावो ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावों ॥ १ ॥
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहि डोलावों ।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहा गँवावों ॥ २ ॥
गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों ।
अति लालची काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावों ॥ ३ ॥

तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावों।
सो कीजै जेहि भाँति छाँड़ि छल, द्वार परो गुन गावों॥ ४॥

**शब्दार्थ**—पाइहै=समझ सकेगा। अलायक=अयोग्य। भ्रम=भेद।

**भावार्थ**—दीनोंका हितू दूसरा और कहाँ मिलेगा? हे नाथ! आपको छोड़कर पराई पीर समझनेवाला और कौन है? किसके आगे मैं अपना दुःख रोता फिरूँ? (भाव, सिवा श्रीरामजीके न कोई परोपकार ही करनेवाला है, न दूसरेका दुःख ही जाननेवाला है और न उसे सांत्वना देनेवाला है)॥ १॥ जहाँ-जहाँ मैं अपने मनको दौड़ाता हूँ, वहाँ-वहाँ कहीं तो ऐसे स्वामी मिलते हैं जिनके दया नहीं है, और कहीं ऐसे मिलते हैं जो दयावान् तो हैं, पर साथ ही नालायक भी हैं? मूर्खोंकी कृपासे क्या लाभ? यह सुन समझकर चुप ही रहता हूँ, क्योंकि ऐसोके आगे कुछ कहना अपना भेद खोलना है। (भेद-का-भेद खुल जायगा और कुछ होगा भी नहीं, इससे मौन धारण किये बैठा रहता हूँ)॥ २॥ कर्म तो ऐसे-ऐसे किया करता हूँ कि गायके खुरमें डूब जाऊँ (चुल्लूभर पानीमें डूब मरूँ), पर बातें बना-बनाकर समुद्रकी थाह ले रहा हूँ! कोरी कथनी ही कथनी है, करनी रत्तीभर भी नहीं है। मेरा मन बड़ा लोलुप है और कामका दास है, किन्तु मुखसे आपका सेवक बनता फिरता हूँ (हृदयमें कामदास हूँ और ऊपरसे रामदास, भला इस पाखंडका भी कोई ठिकाना है!)॥ ३॥ हे नाथ! आप तुलसीके मनकी तो सभी बातें जानते हैं, तो भी मैं कुछ अपनी बात और बतलाना चाहता हूँ। वह यह, कि—कुछ ऐसा उपाय कीजिए, जिससे कपट छोड़कर सच्चे हृदयसे आपके द्वारपर पड़ा-पड़ा आपके गुण गाता रहूँ (इधर-उधर न भटकना पड़े)॥ ४॥

**टिप्पणी—'केहि······सुनावों'—बस आप ही एक ऐसे दीन-वत्सल हैं, जिनके आगे मैं कुछ अर्ज कर सकता हूँ, क्योंकि—**

'गरज़ी बिचारे को तो अरज़ी किये ही बनै,
मानिए, न मानिए—सो मरज़ी हुजूर की।'

**(२) 'अति लालची······कहावों'—कबीरसाहब कहते हैं—**

'साधु भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार॥'

(३) 'द्वार........गावों'—कविवर बिहारी भी यही भीख माँगते हैं—

'हरि, कीजत तुमसों यहै, बिनती बार हजार।
जेहि तेहि भाँति डरयो रहौं, परयो रहौं दरबार ॥' —बिहारी

( २३३ )

मनोरथ मन को एकै भाँति।
चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करमभूमि कलि जनम कुसंगति, मति बिमोह-मद-माति।
करत कुजोग कोटि क्यों पैयत परमारथ-पद साँति ॥२॥
सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुख-काँति ॥३॥

**शब्दार्थ**—सुकृत=पुण्य। माति=मतवाली। साँति=शान्ति। काँति=काति, सौन्दर्य।

**भावार्थ**—मनकी अभिलाषा भी एक ही प्रकारकी है। वह ऐसे पुण्योंके फलकी इच्छा करता है, जो मुनियोंके मनको भी दुर्लभ है, अर्थात् जिस परमपद को मुनि जन मनसे विचार भी नहीं सकते हैं। किन्तु पाप करनेसे तृप्ति नहीं हो रही है (अब दोनों काम एकसाथ कैसे हो सकते हैं? पाप भी कमाता जाय और पुण्य-फलकी इच्छा भी करे!) ॥१॥ इस कर्मभूमि भारतवर्षमें जन्म भो लिया तो क्या हुआ? क्योंकि कलियुगमें जन्म, नीचोंका संग, और अहंकार तथा अज्ञानसे मतवाली बुद्धि एवं करोड़ों बुरे-बुरे कर्म—इन कुयोगोंसे भला मुक्ति-पद और शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? (इन अनिष्टोंके कारण शान्ति पद दुर्लभ-सा दीखता है) ॥२॥ संतों और गुरुकी सेवा करने तथा वेद और पुराणों के पारायणसे मुक्तिका ऐसा निश्चय हो जाता है, जैसे सारंगी बजते ही राग पहिचान लिया जाता है। (अर्थात् जैसे सारंगी छेड़ते ही गानेवाला रागका स्वरूप पहिचान लेता है, उसमें तनिक भी संदेह नहीं रहता है, उसी प्रकार गुरुजनोंकी सेवासे तथा वेद पुराणोंके सुननेसे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है, कि मुझे परम-पद मिलेगा)। हे तुलसी! प्रभु रामचन्द्रजीकी प्रकृति कल्पवृक्षके समान तो अवश्य है (जो उनसे माँगा जाता है, वह मिल जाता है) किन्तु, साथ ही वह ऐसी है, जैसे शीशेमें चेहरेकी आकृति। भाव यह है, कि जैसा मुँह बनाकर या

बिगाड़कर दर्पणमें देखोगे वैसा ही दिखायी देगा। इसी प्रकार भगवान् कल्प-वृक्ष तो अवश्य हैं, किन्तु उस वृक्षके नीचे बैठ कर जैसी इच्छा करोगे वैसा फल मिलेगा। और, इच्छा करना अपने कर्मोंपर निर्भर है ॥३॥

**टिप्पणी**—इस पदमें भगवत्कृपा और जीवके पुरुषार्थका बड़ा ही सुन्दर सम्मेलन हुआ है। एक ओर कर्मोंका विवेचन है तो दूसरी ओर भगवत्कृपाका सुदृढ़ विश्वास। भक्तिवादमें यह सिद्धान्त बड़ा ऊँचा माना गया है। पहले अंतःकरण शुद्ध कर लेना चाहिए, तब भगवान्‌के सम्मुख जाना ठीक होगा। भगवत्स्वरूपी दिव्य दर्पणमें स्वच्छ मुखको देखना चाहिए। पाखंडियोंको तो उस दर्पणसे दूर रहना ही अच्छा है। कबीरदासजीने कहा भी है—

'मुखड़ा क्या देखे दरपन मे, तेरे दया धरम नहिं मन में।'

( २३४ )

जनम गयो बादिहि बर बीति।
परमारथ पाले न परथो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥ १ ॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौवन जुवतिन लियो जीति।
रोग-वियोग-सोग स्रम-संकुल बड़ि वय बृथहि अतीति ॥ २ ॥
राग-रोष-इर्षा-बिमोह-बस रुची न साधु-समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति ॥ ३ ॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब, सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—बादिहिं=व्यर्थ ही। पाले न परयो=हाथ न लगा। अनुदिन=नित्य प्रति। सोग=शोक। संकुल=पूर्ण। अतीति=बीत गयी। समीति=( समिति ) सभा। पछिताय=पश्चात्ताप। भीति=भय। बिरद=बाना, यश।

**भावार्थ**—ऐसा अच्छा जीवन व्यर्थ ही बीत गया। परमार्थ जरा भी हाथ नहीं लगा। नित्यप्रति—दिन दूनी रात चौगुनी—अनीति ही बढ़ती गयी ॥१॥ लड़कपन तो खेलते-खाते बीत गया और जवानीको स्त्रियोंने जीत लिया। ( जिस यौवनमें प्रतिभा और बुद्धिका विकाश होता है, इन्द्रियाँ चैतन्य रहती हैं, चित्तमें उमंग और उत्साह बढ़ता है, उसे स्त्रियोंने नयन-बाणसे छिन्न-भिन्न कर दिया,

सौन्दर्य पाशमें बाँधकर गुलाम बना लिया, मदान्ध कर दिया । ) । अब रहा बुढ़ापा, वह रोग, वियोग और शोक तथा परिश्रमसे परिपूर्ण होनेके कारण वृथा बीत गया ( इस प्रकार व्यर्थ ही तीनों पन नष्ट हो गये, हाथ कुछ भी नहीं आया ) ॥ २ ॥ राग, द्वेष, ईर्ष्या और अज्ञानके पाले पड़कर न तो संतोंकी सभा अच्छी लगी और न रघुनाथजीकी गुणावलीहीको कहा और न सुना। श्रीरामजीके चरणोंमे प्रेम भी नहीं हुआ ( साराश, आत्म कल्याणके जितने मार्ग हो सकते हैं, वे सभी विफल रहे । सफल हुए तो नारकीय पंथ ) ॥ ३ ॥ अब यह हृदय पश्चात्ताप-रूपी आगमे जला जा रहा है, क्योंकि असहनीय संसारके भयको सुन रहा हूँ ( विषय वासना पूरी नहीं हुई, अतएव बारबार जन्म लेना होगा, अनेक योनियोमें भटकना पड़ेगा ) । अब इस तुलसीके लिए अपने बानेकी लाज रखनेके अर्थ जो कुछ भी प्रभुसे बन पड़े, सो करें । भाव यह है, कि मुझसे तो कोई साधन बना नहीं है, पर सुना है, कि भगवान् पतित पावन है, सो वह अपने इस नामके नाते मुझ पापीका भी उद्धार कर देंगे ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जनम गयो····बीति'—यहाँ कबीरसाहबकी यह साखियाँ याद आ जाती हैं—**

'रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछितावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥'

**( २ ) 'खेलत········अतीति'—श्रीशंकराचार्य जी भी यही कह रहे हैं । देखिए—**

'बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धास्तावच्चिंतामग्नः पारेब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥'

**( ३ ) 'समीति'—शुद्ध शब्द 'समिति' है । यह आर्ष प्रयोग मानना चाहिए ।**

**( ४ ) 'प्रभु·······कीजिय'—बस, यही कीजिए—**

'अवगुन मेरे बापजी; बकस गरीबनिवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥
तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़ करि पकरौ बाँह ।
धुरहीलौ पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माँह ॥' —कबीरदास

( २३५ )

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥ १ ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलि मल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने ॥ २ ॥
सुख हित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाँय पिराने।
सदा मलीन पंथ के मल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने ॥ ३ ॥
यह दीनता दूर करिबे को अमित जतन उर आने।
तुलसी चित-चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—सिराने=बीत गये। बिराने=पराये, दूसरेके। साने=लिप्त। पिराने=पीड़ा हुई। थिराने=स्थिर हुए। चिंतामनि=एक स्वर्गीय रत्न, जिसे प्राप्त कर सारी चिंताएँ दूर हो जाती हैं।

**भावार्थ**—इसी तरह अनेक जन्म बीत गये। प्राणनाथ रघुनाथजीके समान स्वामी छोड़कर दूसरोके चरणोंकी सेवा करता रहा ( द्वार-द्वारपर सभी लोगोंकी चापलूसी करता फिरा, उनसे याचना की, लात-फटकार सही, पर कभी निर्लज्जताके कारण वैराग्यका उदय न हुआ। धिक्कार! ) ॥ १ ॥ जो मूर्ख जीव हैं, कपटी, कायर और दुष्ट हैं और जो केवल कलिके पापोंमे लिप्त हो रहे हैं, ऐसोंकी प्रशंसा करते-करते मुँह सूख गया है। भाव, दिन रात निरन्तर उनकी प्रशंसा की है। उन्हें भगवान् से भी बड़ा समझ रखा है। ( भला, इस मूर्खताका भी कोई ठिकाना है! ) ॥ २ ॥ सुख पानेके लिए सदा करोड़ों यत्न करते-करते पैर भी नहीं दुखे ( दिन-रात झूठे विषयों के सुखोंके लिए दौड़ता फिरा, कभी शान्त नहीं हुआ )। रास्तेके जलकी तरह हृदय सदा मैला ही बना रहा, कभी निर्मल अथवा शान्त नहीं हुआ ( जैसे रास्तेका जल, सदा उसपर चलते रहनेके कारण, कभी स्थिर नहीं होता, वैसे ही निरन्तर विषय-वासनाओंकी उथल-पुथलसे हृदय भी निर्विकार और स्वच्छ नहीं हो पाता ) ॥ ३ ॥ जीवकी यह दीनता दूर करनेके लिए हृदयमे अगणित उपाय सोचे, पर हे तुलसी! चित्तकी चिन्ता, बिना चिन्तामणि श्रीरघुनाथजी ) पहिचाने, दूर होनेकी नहीं (जिन परमात्माके आगे एक चिन्ता उपस्थित नहीं रह सकती, उन्हींके परिचयसे, शरणागतिसे, इस जीवकी सारी चिन्ताएँ दूर होंगी, अन्यथा नहीं ॥४॥

**टिप्पणी-(१) 'ऐसेहि···सिराने'—कैसे बीत गये ? सुनिये इस प्रकार—**

'सब दिन गये विषय के हेत ।
तीनौं पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत ॥
रूँधी साँस, मुख बैन न आवत, चन्द्र ग्रस्यौ जिमि केत ।
तजि गङ्गोदक पियत कूपजल, हरि तजि पूजत प्रेत ॥
करि प्रमाद गोबिन्द बिसारयौ बूडयौ कुटुम-समेत ।
'सूरदास' कछु खरच न लागत, रामनाम मुख लेत ॥' —सूरदास

**हाय ! कुछ भी तो न बन पड़ा—**

'रचिकैं सँवारे नाहि अंग-अंग स्यामा-स्याम,
एरी धिक्कार और नाना कर्म कीबे पै ।
पाँयन को धोय निज कर तें न पान कियौ,
आली, अँगार परै सीतल पय पीबे पै ।
बिचरे न बृन्दाबन-कुंजन-लतान तरे,
गाज गिरै अन्य फुलवारी-सुख लीबे पै ।
'ललितकिसोरी' बीते बरस अनेक, दृग,
देखे नाहिं प्रानप्यारे छार ऐसे जीबे पै ।'—ललितकिशोरी

**(२) 'यह दीनता'—तबतक कैसे दूर होगी जबतक आशा-पिशाचिनी साथ लगी-लगी फिरती है । कहा भी है—**

'आशा-पाशस्य ये दासास्ते दासा जगतामपि ।
आशा दासीकृता येन तस्य दासायते जगत् ॥'

**और भी—**

'आसन मारे का भया, मुई न मन की आस ।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥' —कबीरदास

( २३६ )

जो पै जिय जानकी-नाथ न जाने ।
**तौ सब करम धरम स्रमदायक ऐसेइ कहत सयाने ॥ १ ॥**
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद पुरान बखाने ।
पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने ॥ २ ॥

काको नाम धोखेहू सुमिरत पातकपुञ्ज सिराने * ।
बिप्र, बधिक, गज, गीध कोटि खल कौन के पेट समाने ।।३।।
मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने ।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयाने ।।४।।

**शब्दार्थ**—जोगबिद=योगक्रिया जाननेवाले । सिराने=शान्त हुए, नष्ट हुए । बिप्र=ब्राह्मण ; यहाँ अजामेलसे तात्पर्य है । बधिक = बहेलिया, यहाँ वाल्मीकिसे तात्पर्य है । कौन के पेट समाने = किसने शरणमें लिया । मेरु = सुमेरु पर्वत । रेनु=रजका कण । अयाने=मूर्ख ।

**भावार्थ**—अरे जीव ! यदि तूने श्रीजानकी-जीवन रघुनाथजीको नहीं पहिचाना तो तेरे सब कर्म, धर्म केवल परिश्रम ही देनेवाले हैं, अर्थात् उनके करनेमें तुझे परिश्रम छोड़कर कुछ भी न मिलेगा, सब व्यर्थ जायगा, ऐसा ज्ञानी मनुष्योंने कहा है ( श्रीरामचन्द्रजीको जान लेना ही समस्त कर्म-धर्मका सिद्ध कर लेना है) ।।१।। वेद और पुराण कहते हैं, कि जितने देवता, सिद्ध, बड़े-बड़े मुनि और योगाभ्यासी हैं वे सब पूजा लेकर उसके बदलेमें सुख देते हैं (सो भी क्षण-भंगुर सुख, अर्थात् काम, काञ्चन, पुत्र कलत्र सम्बन्धी ) । और ऐसा वे अपनी हानि और लाभका विचार करके करते हैं, (यों ही बिना बिचारे नहीं दे डालते) ।। २ ।। कहिए तो, वह किसका नाम है, जिसे धोखेसे भी लेनेसे पापोंके समूह भागे-भागे फिरते हैं ? ( श्रीरघुनाथजीका ) । और अजामेल ब्राह्मण, वाल्मीकि बहेलिया, गजेन्द्र, जटायु गीध आदि करोड़ों दुष्टोंको किसने अंगीकार किया, किसने अपनाया ? (उन्हीं श्रीरामजीने) ।। ३ ।। जिन्होंने अपने सेवकोंके सुमेरु पर्वतके समान (महान्-महान्) अपराधोंको भुलाकर उनके बालूके कणके समान ( छोटे-छोटे ) गुणोंको अपने हृदयमें धारण किया है, हे तुलसीदास ! हे मूर्ख! उन्हींकी सारी आशा छोड़कर, तू क्यों नहीं भजता है ! ।।४।।

**टिप्पणी—(१) 'जो पै···जाने'—इसी भावके कतिपय पद्य कवितावली-में भी है । श्रीजानकी-जीवनके न जाननेसे जीवकी क्या दशा है, सो सुनिए—**

'काम से रूप, प्रताप दिनेस-से, सोम से सील, गनेस-से माने ।

---

* पाठान्तर 'पराने ।'

हरिचंद्र-से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा-से महीय विषै-सुख-साने ॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।
ऐसे भये तो कहा 'तुलसी' जुपै राजिवलोचन राम न जाने ॥'

* * *

'सुरराज-सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धन भो ।
पवमान-सो, पावक-सो, जस सोम-सो, दूषन-सो भवभूषन भो ॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो ।
सब जाय सुभाय कहैं 'तुलसी' जो न जानकी-जीवन को जन भो ॥'

**( २ ) 'तौ सब............सयाने'—प्रमाण लीजिए—**

'ये नराधमाः लोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः ।
जपस्तपो दया शौचः शास्त्राणामवगाहनम् ॥
सर्वं वृथा विना येन शृणुध्व पार्वतिप्रिये ।'

**तथैव—**

'जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥'—(दोहावली)

**(३) 'धोखेहूँ सुमिरत'—प्रमाण भी मिलता है—**

'श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि ।
तेषां नास्ति भयं पार्थ, रामनाम-प्रसादतः ॥' —( आदिपुराण )

**(४) 'विप्र'—अजामेल, ५७ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।**
**(५) 'बधिक'—वाल्मीकि; १४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।**
**(६) 'गीध'—जटायु, ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।**
**(७) 'रेनु से....आने'—भाव-सादृश्य देखिए ।**

'जन-गुण-परमाणुम्पर्वतीकृत्य नित्यम् ।'

**यहाँ भगवान् की अप्रतिम गुण-ग्राहकता दिखायी गयी है ।**

( २३७ )

काहे न रसना, रामहि गावहि ?
निसिदिन पर-अपवाद बृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ॥ १ ॥
नरमुख सुन्दर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधाकत रबिकर-जल कहँ धावहि ॥ २ ॥

काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहिं।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन-कलंक नसावहि ॥ ३ ॥
जातरूप-मति जुगुति* रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि।
सरन-सुखद रविकुल-सरोज-रवि राम नृपहिं-पहिरावहि ॥ ४ ॥
बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—अपवाद=निन्दा। रविकर-जल=मृगतृष्णाका (झूठा) पानी। जातरूप=सोना। पुनीत=पवित्र।

**भावार्थ**—अरी जीभ! तू श्रीरामचन्द्रजीका गुणगान क्यों नहीं करती? क्यों दिन-रात दूसरोंकी निन्दा कर-कर व्यर्थ ही राग (द्वेषादि) बढ़ा रही है? ॥१॥ मनुष्यके मुखरूपी सुन्दर और पवित्र मन्दिरमें रहकर क्यों उसे लज्जित कर रही है? (मुखकी सार्थकता तो इसीमें है, कि वहाँ से सदा भगवद्नामका शब्द निकला करे)। चन्द्रमाके पास रहती हुई भी अमृत को छोड़कर मृग-तृष्णाके जलके अर्थ क्यों दौड़ रही है? (भगवद्-गुणानुवाद पीयूष है और विषयालाप मृगजल। क्योंकि विषयवार्तामे कोरा भ्रम-ही-भ्रम है स्थायी आनन्द तनिक भी नहीं है) ॥ २ ॥ कामप्रवृतिकी कथाको, जो कलिरूपी कुमोदिनीके लिए चाँदनीके तुल्य है, खूब कान लगाकर प्रेमपूर्वक सुना करती है (कलि कैरव-चंदनी इसलिए है, कि जैसे कुमोदिनी चाँदनी रातमे प्रफुल्लित और विकसित हुआ करती है उसी प्रकार 'काम-कथा'के सुनते ही कलियुग प्रसन्न होकर फूल उठता है। मन-ही-मन कहता है, कि बस, अब दाव मार लिया, अब इस कामान्ध जीवका निस्तार होना दुर्लभ ही है) अरी जीभ! उस काम-कथाको रोककर भगवान्की सुंदर कीर्तिका गान कर, जो कानोंके कलंकको दूर कर देती है (विषयोंकी वार्ता निरन्तर सुनते-सुनते कान कलंक-भाजन हो गये हैं, उनका यह कलंक भगवत्कथाके सुननेसे ही दूर हो सकेगा, अन्यथा नहीं ॥ ३ ॥ बुद्धि-रूपी सुवर्ण और युक्तिरूपी सुन्दर मणियोका रच-रचकर एक हार तैयार कर। और उस हारको शरणागतोंको सुख देनेवाले; सूर्यवंश-रूपी कमलके सूर्यस्वरूप महाराज रामचन्द्रजीको पहिना, हृदयपर धारण कर।

* पाठान्तर 'युवति'।

भाव यह है, कि विशुद्ध बुद्धि और युक्तियों द्वारा श्रीहरि कीर्तन कर और वह कीर्तन भगवत् अर्थ ही हो ॥४॥ वाद-विवाद तथा स्वादको छोड़कर भगवान्का भजन कर और उनकी रसवती लीलामें लौ लगा। यदि तू ऐसा करेगी, तो तुलसीदास संसार-सागरसे पार हो जायगा (जन्म-मरणसे मुक्त हो जायगा) और तू भी तीनो लोको मे पवित्र यशकी भाजन बन जायगी। (एक पंथ दो काज सध जायँगे) ॥५॥

**टिप्पणी—'काहे····गावहिं'—जीभकी सार्थकता श्रीराम-गुण-गान करनेमें ही है। जो जीभ भगवत्भजनसे पराङ्मुख है उसके संबंधमें गोसाईंजी लिखते हैं—**

'रसना साँपिनि, बदन बिल, जो न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम॥' —( दोहावली )

**सूरदासजीने भी कहा है—**

'रसना-जुगलनिधि-रस बोल।'

**( २ ) 'जातरूप ··बनावहिं'—दो-एक विचित्र अर्थ भी देख लीजिए—**

**( अ ) "और हे बुद्धि ! ( जैसे मनुष्य सुवर्ण और सुन्दर मणियोंका हार बनाकर राजाओंकी भेंट करते हैं ऐसे ही ) तू ( भगवान्का यश सो ही हुआ ) सुवर्ण और (उनका नाम हुआ) मणि इन (दोनों) का अपनी युक्तिसे रच-रच कर सुन्दर हार तैयार कर।" —(श्रीरामेश्वर भट्टजी)**

**( इ ) "मति जो अमल बुद्धि सोई सुन्दर युवती करु, पुनः हरि-कीरति सोई जातरूप नाम सोना है, पुनः हरि नाम सोई मुक्ता आदि मणि है, राम-चरित की लर सोई धागा है, सोई बुद्धि रचि रचि हार बनावहिं, रामकथामय माला रचहिं।"—श्रीबैजनाथजी )**

**श्रीबैजनाथजी 'जुगति' के स्थान पर 'युवति' पाठ लिख रहे हैं। आप एक युवतीको बुलाकर उसके हाथसे माला बनवा रहे हैं। हरिकीर्ति और हरिनाम भी बाहर से बुला लिये गये हैं। यही अनुसरण पूज्य भट्टजीने किया है, केवल 'युवती' बाहर निकाला है। स्पष्ट और संचित अर्थ तो यही हो सकता हैं, कि—"सुवर्ण-रूपी बुद्धि और युक्ति-रूपी मणि इन दोनोंकी माला बनाकर भगवान् को अर्पित करो, अर्थात् भगवच्चरित वर्णन करनेमे बुद्धि और युक्तियोंका उपयोग करो।"**

**( ३ ) 'स्वाद तजि'—क्योंकि कहा है—**

'जितं सर्वं रसे जिते।' —( श्रीमद्भागवत )

**जीभका उत्तम स्वाद, सच्चा रस, तो यही है—**

'सहज तराजू आन करि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोई जानै बोल॥' —कबीरदास

(४) **'भजि हरि'—पद्माकर भी यही चेतावनी दे गये हैं—**

'आनँदके कंद जग-ज्यावन जगत-बन्द्य,
दसरथ-नंद के निबाहे ही निबहिए।
कहै पदमाकर पवित्र पन पालिबे कों
चारु चक्रपानि के चरित्रन को कहिए॥
अवध-बिहारी के बिनोदनि मे बींधि-बींधि,
गीध गुह गंधे के गुनानुवाद गहिए।
रैनदिन आठोजाम राम राम राम राम
सीताराम सीताराम सीताराम कहिए॥'

( २३८ )

आपनो हित रावरे सों जो पै सूझै।
तौ जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यो कबंध ज्यों जूझै॥ १॥
निज अवगुन,गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै॥ २॥

**शब्दार्थ**—अछत=( अक्षत ) जिसका नाश न हो, अमर। कबंध=धड़, रुण्ड। जूझै=लड़े। रूझै=रुद्ध हो जाय, रोक हो जाय।

**भावार्थ**—हे नाथ! इस जीवको अपनी भलाई आपकी ओरसे दीख पड़े, तो यह शरीरपर सिर रहते हुए तथा स्मरण रहते हुए, कबन्धकी तरह क्यो लड़ता फिरे? भाव यह है, कि जैसे वीरपुरुषोंका मस्तक-विहीन रुंड ही, जो उसके आगे आता है उसे, मारता चला जाता है, ( चेतना-रहित होनेके कारण यह नहीं देखता, कि किसे मारना चाहिए और किसे नहीं ), वैसेही यह जीव कामान्ध होकर अपना हित तो समझता नहीं, किन्तु सभीके साथ वैर करता फिरता है, यद्यपि इसके शरीरपर सिर है। इसे इस बातका ज्ञान ही नहीं, कि मेरा हित, मेरा कल्याण आपकी कृपासे ही हो सकता है। इसीलिए यह अन्धेकी तरह, ब्रह्म-पीयूष छोड़कर विषय विष पान कर

रहा है ॥१॥ अपने दोष और आपके गुणोंको देखकर व सुनकर, हे रघुनाथ-जी ! मेरी बुद्धि और मन हट जाते हैं, आगे नहीं बढ़ सकते। ( जीमें तो आता है, कि आपके चरणारविन्दोंकी शरणमें जाऊँ, पर अपने दोषोकी ओर देखकर बुद्धि पंगु हो जाती है, मन लज्जित हो जाता है। सोचता हूँ, कि भला मुझ-सरीखे पापीको वहाँ कैसे स्थान मिल सकेगा ! )। तुलसी का आचरण, कथन और रहस्य आपको छोड़कर, हे कृपालो ! और कौन समझ सकता है ? ( आप घट-घटकी बात जाननेवाले है, सो आप ही सब समझ सकते हैं ) ॥२॥

**टिप्पणी—( १ ) 'निज अवगुन'—श्रीबैजनाथजीने पतित जीवके निम्न-लिखित मुख्य-मुख्य दोष गिनाये हैं—**

'काम-क्रोध-युत कृपाहत, दुर्वादी अति लोभ।
लंपट लज्जाहीन गनि, विद्याहीन असोभ॥
आलस अति निद्रा बहुत, दुष्ट दया कर हीन।
सूम दरिद्री जानिये, रागी सदा मलीन॥
देत कुपात्रहिं दान पुनि, मरण दान दृढ़ नाहिं।
भोगी सर्ब न समुझई, कछु सास्त्रन के माहिं॥
अति अहार-प्रिय जानिये, अहंकारयुत देखु।
महा अलच्छन पुरुष के, ये अट्ठाइस लेखु॥'

**( २ ) 'गुन राम रावरे'—वाल्मीकीय रामायणमें श्रीरघुनाथजी के दिव्य गुणोंका बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया गया है। कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—**

'इक्ष्वाकु-वंशप्रभवो, रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो, द्युतिमान्धृतिमान्वशी॥
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी, श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च, प्रजानां च हिते रतः॥
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः, शुचिर्वश्यः समाधिमान्।
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः॥
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥

*　　*　　*

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानंदवर्द्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥' (वाल्मीकि-बालकांड)

**(१) 'रहनि···बूझै'—क्योंकि अन्तर्यामी ही हृदयकी बात जानकर उसका यथेष्ठ प्रतीकार कर सकता है। कबीर साहब विनय कर रहे हैं—**

'मैं अपराधी जनम का, नख-सिख-भरा विकार।
तुम दाता दुखभंजना, मेरी करो सम्हार ॥
अंतरजामी एक तुम आतम के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तौ, कौन उतारै पार ॥'

( २३६ )

जाको हरि दृढ़ करि अङ्ग कर्‌यो। *
सोइ सुसील पुनीत बेदबिद, बिद्या-गुननि-भर्‌यो ॥ १ ॥
उतपति पांडु-तनय † की करनी सुनि सतपंथ डर्‌यो।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि सुनि लोक तर्‌यो ॥ २ ॥

---

*इसी भावका महात्मा सूरदास-रचित पद देखिए—
'जाको मनमोहन अंग कर्‌यो।
ताको केस खस्यो नहिं सिर तें, जो जग बैर पर्‌यो ॥
हिरनकसिपु परिहारि थक्यो प्रह्लाद न नेकु डर्‌यो।
अजहूँ तौ उत्तानपाद-सुत राज करत न मर्‌यो ॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की कोपित चीर हर्‌यो।
दुरजोधन कौ मान भङ्ग करि बसन-प्रबाह भर्‌यो ॥
बिप्र भक्त नृग अंधकूप दिय, बलि पढ़ि बेद छर्‌यो।
दीनदयालु कृपानिधि कौ गुन कापै कह्यो पर्‌यो ॥
जो सुरपति कोप्यो ब्रज ऊपर कहिधौं कछु न सर्‌यो।
राखे ब्रजजन नँदके लाला गिरिधर बिरद धर्‌यो ॥
जाकौ, बिरद है गर्वप्रहारी सो कैसे बिसर्‌यो।
'सूरदास' भगवंत भजन करि सरन गहे उधर्‌यो ॥'

† पाठान्तर 'सुतन।'

जो निज धरम बेद-बोधित सो करत न कछु बिसरयो।
बिनु अवगुन कृकलास कूप-मज्जित* कर गहि उधरयो ॥ ३ ॥
ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जरयो।
अजर अमर कुलिसहुँ नाहिंन बध सो पुनि फेन मरयो ॥ ४ ॥
बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगरयो।
उनको कियो सहाय बहुत, उर को संताप हरयो ॥ ५ ॥
गनिका अरु कंदरप तें जग महँ अघ न करत उबरयो।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धरयो ॥ ६ ॥
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तौ न जानि परयो।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खरयो† ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**—अङ्ग करयो = अपना लिया, पक्ष किया। बोधित = बिहित। कृकलास=गिरगिट। बिसिख=बाण। छम=( क्षम ) समर्थ। नृपति=महाराज परीक्षितसे आशय है। कन्दर्प=कामदेव। उबरयो=बचा,बाकी रहा। जोवत= देखता है। खरयो=खड़ा हुआ।

**भावार्थ**—जिसे भगवान् ने दृढतापूर्वक अपना लिया, वह सुशील है, पवित्र है, वेदज्ञ और समस्त विद्या एवं गुणोंसे परिपूर्ण है ( क्योंकि वह रामका प्यारा है, इसलिए बिना बुलाये ही सर्वगुण उसकी सेवामे उपस्थित रहते हैं ) ॥ १ ॥ पाण्डुके पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनके करतबको सुनकर सन्मार्ग तक डर गया था, किन्तु वे श्रीहरि-कृपासे, तीनों लोकोमे पूजनीय माने गये और उनका पवित्र यश सुन-सुनकर लोग तर गये ( मुक्त हो गये ) ॥ २ ॥ जो वेद-विहित वर्णाश्रम धर्मसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ था और विना ही किसी दोषके गिरगिट होकर कुएँमे पड़ा हुआ था उस ( नृग राजा ) को आपने हाथ पकड़-कर बाहर निकाल लिया और उसका उद्धार कर दिया ( गिरगिट की योनिसे छुड़ाकर दिव्यलोकको भेज दिया ) ॥ ३ ॥ ब्रह्माड तकको भस्म कर देनेवाले ब्रह्मास्त्रसे राजा (परीक्षित) गर्भमे न जल सका और अजर एवं अमर (नमुचि) दैत्य वज्रसे भी न मरकर फेनसे मर गया ( अस्त्र-शस्त्र सब रखे ही रह गये ) ॥ ४ ॥ अजामेल ब्राह्मण और इन्द्रसे क्या बात नहीं बिगड़ी (दोनों ने ही बड़े-

* पाठान्तर 'मज्जतु।' † पाठान्तर 'खरेउ, करेउ, परेउ' इत्यादि।

बड़े घोर पातक किये ) ? किन्तु, आपने उनकी बड़ी सहायता की और उनका कष्ट भी दूर कर दिया ॥५॥ वेश्या और कामदेवने, ऐसा कोई भी पाप नहीं है जो न किया हो, किन्तु भगवान्‌ने उनका चरित्र पवित्र समझकर उन्हें अपने हृदय-मन्दिरमे स्थान दिया ॥६॥ भगवान् किस आचरणसे प्रसन्न होते है, यह समझमें नहीं आता । तुलसीदास तो श्रीरघुनाथजीकी कृपाका मार्ग देखता रहता है (और कुछ नहीं जानता, केवल कृपाकी ही प्रतीक्षा करता रहता है) ॥७॥

**टिप्पणी**—(१) 'उतपति पांडु-तनय की'—पांडुके पाँचों पुत्र पाँच देवताओंके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे। युधिष्ठिर धर्मराजसे, भीम वायुसे, अर्जुन इन्द्रसे और नकुल-सहदेव अश्विनीकुमारसे उत्पन्न माने जाते हैं। विस्तृत कथा महाभारतमें है।

(२) 'करनी'—सबसे बुरी करनी तो यही है, कि पाँचों भाइयोंने एक ही स्त्री 'द्रौपदी' के साथ पत्नीभाव माना।

(३) 'जो निज धरम ······ उधरयो'—२१३ पदकी टिप्पणी देखिए।

(४) 'ब्रह्म······ जरयो'—अश्वत्थामाने, पांडवोंको निर्वंश करनेके लिए परीक्षितको गर्भमें ही ब्रह्मास्त्रसे मारना चाहा था, पर भगवत्कृपासे वह ब्रह्मास्त्र से बाल-बाल बच गये।

(५) 'अजर·· 'मरयो'—नमुचि दैत्यने ब्रह्मासे यह वर माँग लिया था, कि मैं किसी अस्त्र-शस्त्रसे न मारा जाऊँ, न शुष्क पदार्थसे ही मेरी मृत्यु हो, न आर्द्रसे ही। देवासुर संग्राममें इसने बड़ा घोर उपद्रव किया। इन्द्र इसे जब न मार सके, तब आकाशवाणी हुई, कि यह अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मारा जा सकता। इसकी मृत्यु समुद्रके फेनसे हो सकेगी, क्योंकि वह न शुष्क है और न आर्द्र। बस, फिर क्या, यह फेन द्वारा मारा गया! यह कथा श्रीमद्भागवत्‌में है।

(६) 'अजामिल'—५७ पदकी टिप्पणी देखिए।

(७) 'सुरपति'—इन्द्रने ऋषि-पत्नी अहल्याके साथ भोग किया, विश्वरूप ब्राह्मणका वध किया, तथा और भी कई पातक मदांध होकर किये। इंद्रकी अनेक पापमयी कथाएँ पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं।

(८) 'गनिका'—पिंगलासे आशय है; श्रीमुखसे भगवान्‌ने उद्धवके प्रति इसकी प्रशंसा की है। १४ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

( १ ) 'कंदर्प'—यह प्रसिद्ध ही है, कि श्रीकृष्ण भगवान् के पुत्र प्रद्युम्न कामदेवके अवतार थे।

( २४० )

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि, राम ! तुम रीझे।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गये, लै करसी* प्रयाग कब सीझे ॥१॥
कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग, नृग जग जानि जिते दुख पाये।
गजधौं कौन दिछित जाके सुमिरत, लैसुनाभ† बाहन तजि धाये ॥२॥
सुर मुनि बिप्र बिहाय बड़े कुल, गोकुल जनम गोपगृह लीन्हों।
बायों दियो बिभब कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर-घर कीन्हों ॥३॥
मानत भलहि भलो भगतनि तें, कछुक रीति पारथहिं जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम बस, और सबै जल की चिकनाई ॥४॥

**शब्दार्थ**—सुकृती=पुण्यकर्मा। करसी=कंडी। निगमगम=वैदिक धर्म। दिछित=(दीक्षित) मत्र शास्त्री, गुरुमुख; यज्ञमें सोमरसका पान करनेवाला। सुनाभ=चक्र। बाहन=गरुड़से आशय है। बिभव=ऐश्वर्य। कुरुपति=दुर्योधनसे अभिप्राय है। पारथ=अर्जुनसे आशय है।

**भावार्थ**—हे रामजी! जिसपर आप प्रसन्न हो गये हैं, वही सच्चा पुण्यात्मा है और वही पवित्रात्मा है। वेश्या ( पिंगला ), गीध ( जटायु ) और बहेलिया (वाल्मीकि) जो साकेत धाम चले गये वे कब प्रयागमें कण्डोंकी आगमें जलकर मरे थे (पञ्चाग्नि तप करते हुए मरे थे)? (कभी नहीं, उन्होंने कोई तप नहीं किया था) ॥१॥ राजा नृग कभी वेदोक्त मार्ग परसे एक पैर भी नहीं हटा था ( सदा धर्म-मार्गपर डटा रहता था ), किन्तु संसार जानता है, उसने कितने दुःख भोगे ( अर्थात् गिरगिटकी योनि पाकर सहस्रो वर्ष कूएँमें पड़ा सड़ता रहा )! और वह हाथी कहाँका दीक्षित था, जिसके एक बार ( राम ) नाम-स्मरण करते ही (उसे ग्राहसे छुड़ानेके लिए) आप गरुड़को छोड़कर, चक्र सुदर्शन लिये हुए, दौड़े आये ?॥२॥ देवता, मुनि और ब्राह्मणोंके ऊँचे कुल छोड़कर आपने गोकुलमें

* पाठान्तर 'कासी' † पाठान्तर 'सुनाम'। 'नभबाहन'।

एक गोपके घरमें जन्म लिया (क्योंकि आप वसुदेव और नन्द पर प्रसन्न थे)। कौरवेश महाराज दुर्योधनका ऐश्वर्य भी तुच्छ समझकर आपने (दीन) विदुरके घर जाकर (साग भाजीका) भोजन किया, (यह भी आपकी रीझ ही थी) ॥३॥ भगवान् अपने सद्भक्तोंके साथ प्रेमका नाता मानते हैं। भाव, भक्तोंके प्रेमाधीन रहते हैं, अन्य साधनों द्वारा वशमें नहीं होते। यह भक्त-वत्सलताकी रीति कुछ-कुछ आपने अर्जुनको बतायी थी। हे तुलसीदास! श्रीरघुनाथजी निष्कपट प्रेमके अधीन है, और जितने साधन हैं, वे ऐसे है, जैसे पानीपरकी चिकनाई! भाव यह है, कि पानी पड़ते ही, थोड़ी देरके लिए, शरीर चिकना-सा मालूम होता है, पर सूखनेपर फिर ज्यों-का-त्यों रूखा हो जाता है। इसी प्रकार अन्य साधनोंद्वारा क्षणिक सुख-शान्ति प्राप्त हो जाती है, मायारूपी हवा लगते ही न जाने वह सुख-शान्ति कहाँ विलीन हो जाती है ॥ ४ ॥

**टिप्पणी**—(१) 'गनिका'—६४ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(२) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।

(३) 'बधिक'—वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

(४) 'हरिपुर···सीझे'—'करसी' के स्थानपर 'काशी' पाठ माननेवाले इसका यह अर्थ करते हैं—

"वेश्या, गिद्ध, निषादको वैकुंठ ले गये, सो इन्होंने काशी और प्रयागमें कब स्नान किये थे।" कौन वैकुण्ठ ले गया?—यह नहीं बतलाया।

(५) 'बायों दियो···कीन्हो'—एकबार अभिमानी दुर्योधनने अपना ऐश्वर्य दिखानेके लिए श्रीकृष्णको निमंत्रण दिया। गर्वप्रहारी भगवान् उसका कपट भाव जान गये। वे उसके यहाँ न जाकर दीन विदुरके घर चले गये और विदुरकी परमसाध्वी स्त्रीसे भोजन माँगने लगे। वहाँ सिवा साग-भाजीके रखा ही क्या था? उसीका आपने बड़े प्रेमसे भोग लगाया। विदुरकी स्त्रीने प्रेमावेशमें केलेका गूदा तो अलग फेंक दिया और छिलके भगवान्के हाथमें दे दिये। आप छिलके ही बड़े भावसे खा गये। सूरदासजीने भी लिखा है—

'कौनधौं जाति अरु पाँति बिदुर की, ताके गृह पग धारत।'

× × ×

'संतन-भक्त-मित्र-हितकारी, स्याम बिदुर गृह आये।
अतिरस बाढ्यो प्रीति निरन्तर, साग मगन ह्वै खाये॥'

( ६ ) 'रीति पारथहिं जनाई'—अधिक क्या, भगवान्‌ने सारथी बनकर अर्जुनका रथ हाँका, समय-समय पर उनकी भली-बुरी बात सुनी, और सदा मैत्रीका निर्वाह किया।

( ७ ) श्रीसूरदासजी भी इसी रीझ पर एक पद लिख गये हैं—

'जापै दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ो, सुंदर सोइ, जा पर कृपा करै॥
राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्बहिं गर्ब गरै।
रंक सु कौन सुदामाहू तें, आप समान करै॥
रूपव कौन अधिक सीता तें, जनम बियोग भरै।
अधिक कुरूप कौन कुबजा तें, हरि पति पाइ बरै॥
जोगी कौन बड़ो संकर तें, ताकहँ काम छरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद तें, निसिदिन भ्रमत फिरै॥
अधम सु कौन अजामिलहू तें, जम तहँ जात डरै।
'सूरदास' भगवत्-भजन बिनु, फिरि-फिरि जठर परै॥'

( २४१ )

तब तुम मोहू से सठनि को हठि गति देते *।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर, सुनि सादर आगे ह्वै लेते॥१॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये ताको भे ते।
लियो † छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गये रिस-रेते॥२॥
गोतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि हैं नाथहि नीके मालुम जेते ‡।
तिन्ह तिन्ह काजनि साधु-सभा § तजि कृपासिंधु तब तब उठि गे ते॥३॥
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते।
मेरे पासंगहु न पूजिहैं, ह्वै गये, हैं, होने खल जेते॥४॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मो पै परिहास एते॥५॥

---

* पाठान्तर 'तौ तुम मोहूँसे शठनि हठि न गति देते; 'तौ तुम मोहूँ से सठनिको हठि गति देते।' † पाठान्तर 'लिये।' ‡ पाठान्तर 'तेते।' § पाठान्तर 'तिन्हके काज साधु-समाज।'

**शब्दार्थ**—गति=मोक्ष । पामर=पापी । तमकि=क्रोध करके । रिस-रेते=क्रोधिता । विटप=यमलार्ज्जुनसे आशय है । गे ते=वे गये थे । पासंग=तराजू के पलड़ोंकी कसर ।

**भावार्थ**—तो आप मुझ-जैसे दुष्टोंको भी हठपूर्वक मोक्ष देते ( यदि आपने दुष्टोको मोक्ष दी है ) । कोई कैसा ही पापी क्यों न हो, पर ज्योंही वह आपका नाम लेता है, आप आदरके साथ उसे आगे होकर लेते है ( यह तो सिद्ध हो चुका, कि आप बड़े-बड़े पापियों और दुष्टोंको शरणमें ले लेते हैं, उन्हे संसारसे मुक्त कर देते हैं । पर मुझे अभीतक क्यों गति नही दी ? क्या मैं दुष्ट नहीं हूँ ? सो तो नहीं, कुछ और ही कारण होगा ) ॥१॥ (पापियोंके उद्धारके उदाहरण लीजिए) यमदूतोने अपने जीमे अजामेलको पापोकी खानि समझकर, उसे डॉट-डपटकर भय दिखाते हुए, कष्ट दिया, किन्तु आपने उसे उनके हाथसे छुड़ा लिया । बेचारे यमदूत हाथ मलते और दाँत पीसते हुए क्रोध-भरे चले गये ( कुछ भी वश न चला ) ॥ २ ॥ गौतमकी स्त्री ( अहल्या ), हाथी, गीध (जटायु), वृक्ष (यमलार्ज्जुन), बदर और जो-जो आपको अच्छीतरह मालूम हैं, उन सबका जब कोई काम पड़ा, तब आप संत-समाजको भी छोड़कर वहाँसे चले गये ( उनका कष्ट आपको क्षणमात्र भी सहन न हो सका ) ॥ ३ ॥ इस दरवाजेपर आज भी पापियोंका बड़ा आदर है । कितने पापी नित्य पवित्र नही बनाये जाते हैं ? (यदि यही बात है, कि पापियोका ही आदर और उद्धार होता है, तो मै इतना भारी पापी हूँ, कि) ससारमे जितने पापी हुए हैं, हैं, और होगे, वे सब मेरे पसगेमे भी पूरे न होगे ! ( तब तो मेरा उद्धार सबसे पहले होना चाहिए था, पर अभी-तक हुआ नही, इसका क्या कारण है ? ) ॥४॥ अबतक मैं आपके, करतबकी ओर टक लगाये देख रहा था ( कि कब आप मुझे शरणमे लेते हैं), पर आपने इधर आँख भी नहीं उठाई ! ( अबतक कृपा ही नहीं की ) । बस, अब तुलसीदास आपके नामका पुतला बाँधेगा, क्योकि मुझसे अब इतना उपहास सहन नही हो सकता । ( लोग खूब तालियाँ पीट-पीटकर कहते हैं, कि देखो, यह कैसा पाखडी है ! बनने चला रामदास ! जो यह रामदास होता तो क्यो मारा-मारा फिरा करता ? ) ॥ ५ ॥

**टिप्पणी**—( १ )'कैसेहुँ ···लेते'—विभीषण इस प्रसंगका प्रमाण है । कैसा

घोर पातकी था, पर शरणमें जाते ही भगवान्‌ने उसका कैसा आदर किया, यह किसीसे छिपा नहीं है। निम्नलिखित पद देखिए—

'रामहिं करत प्रनाम निहारिकै।
उठे उमँगि आनन्द-प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारिकै॥
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपुनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारिकै॥
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं, निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे मारिकै॥
नाथ! कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत लेत जे नाम रावरो विनय करत मुख चारिकै॥
जो मूरति-सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै॥'(गीतावली)

(२) 'अजामिल'—पद ५७ की टिप्पणी देखिए।
(३) 'गोतम तिय'—अहल्या; पद ४३ की दूसरी टिप्पणी देखिए।
(४) 'गज'—५७ पद की टिप्पणी देखिए।
(५) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।
(६) 'बिटप'—यमलार्जुन; ७८ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।
(७) 'पूतरो बाँधि है'—जब नटोंको खेल दिखाने पर कुछ नहीं मिलता है, तब वे कपड़ेका पुतला बनाकर बाँसपर लटकाये हुए कहते फिरते हैं, कि देखो यह सूम है। सूम इस नकलसे लज्जित होकर उनको कुछ-न-कुछ दे ही देता है। इसी तरह मैं भी एक पुतला बनाकर लिये फिरूँगा। जब लोग पूछेंगे, कि यह क्या है, तो मैं यही उत्तर दूँगा, कि यह सूम-शिरोमणि अयोध्याधिप महाराज रामचन्द्रजी हैं! इससे आपकी आँखें अवश्य नीची हो जायँगी। और मारे शर्मके मुझे अपनाना ही पड़ेगा।

( २४२ )

तुमसम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई।
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुमसम हरि न हरन कुटिलाई॥१॥
हौं मन बचन करम पातक रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु, तुम अनाथ-हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई॥२॥

हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुराननि गाई।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ॥३॥
तुम सुखधाम राम स्रम-भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ, राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥४॥

**शब्दार्थ**—मौलिमनि=शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ। रत=लगा हुआ, सना हुआ। गति=मोक्ष। आरति=कष्ट। त्रिबिध स्रम=दैहिक, भौतिक, दैविक।

**भावार्थ**—हे महाराज रामचन्द्रजी! आपके समान तो कोई ग़रीबोंका भला करनेवाला नहीं है, और मेरे समान कोई गरीब नहीं है। (एक संबध तो मेरा-आपका ठीक हो गया, अब दूसरे नाते देखिए) संसारमे मेरी बराबरीका दुष्ट-शिरोमणि भी कोई नही है और आपके बराबर, हे नाथ! कुटिलता दूर करने-वाला भी कोई न मिलेगा (यह भी बन गया)॥ १ ॥ मैं मनसे, वचनसे और कर्मसे पापोमें सना हुआ हूँ और आप कृपाकर पापियोंको मोक्ष देनेवाले है (यह भी ठीक है)। हे प्रभो! मै अनाथ हूँ, मेरा कोई धनी-धोरी नहीं है, और आप अनाथोका हित करनेवाले हैं। यह बात मेरे मनसे कभी नहीं जाती (सदा मुझे इसका स्मरण रहता है, कि मै अनाथ हूँ तो क्या हुआ, मेरा भला करनेवाले श्रीरघुनाथजी तो है) ॥२॥ मै दुखी हूँ, तो आप दुःखोंके दूर करनेवाले हैं। आपका यश वेदो और पुराणोने गाया है। मैं ससारसे डरा हुआ हूँ (जन्म-मरणके असह्य दुःखसे डर रहा हूँ) और आप समस्त भय नाश करनेवाले हैं। (जब आपके और मेरे इतने नाते हैं, तब) क्या कारण है, कि आप मुझपर कृपा नहीं करते? ॥३॥ हे श्रीरामजी! आप आनन्दके स्थान तथा श्रमके नाश करनेवाले है। मै भी संसारके तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक श्रमोसे अत्य-न्त दुखी हो रहा हूँ। सो अपने मनमे इन सब बातोंपर विचार करके तथा अपनी प्रभुताको समझकर तुलसीदासको अपनी शरणमे रख लीजिए, हाथ पकड़कर उसे अपना लीलिए ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) इस पदमें गोसाईंजीने जीव और ब्रह्मके भक्तिके अन्त-र्गत दास्यभावके अनुसार, कई संबंध गिनाये है। कवितावलीमें भी यही बात दूसरे ढंगसे लिखी गयी है। देखिए—

'राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहिब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥

पैरोंपर सिर रखता फिरा), किन्तु, हे भगवन् ! पापके कारण तीनों तापोंसे जलते हुए मुझे किसीने दयाकर शान्ति नहीं दी ( वे बेचारे स्वयं ही त्रितापसे जले जा रहे हैं, मुझे क्या शीतलता देंगे ! ) ।।३।। मैंने सुखके अर्थ अनेक उपाय किये, पर भगवच्चरणोंसे विमुख होनेके कारण सदा दुःख ही मिला ( क्योंकि समस्त सुखोंके मूल श्रीहरि-चरणारविंद ही हैं ) । संसारमें विपत्तियोंका जाल बिछा हुआ देखकर अब मैं ( समस्त साधनोंसे ) ऐसा थक गया हूँ, जैसे बिना पानीके नौका थक जाती है ( नाव तो तभी चल सकती है,जब पानी हो, बिना पानीके वह कैसे चलेगी ? इसी तरह भगवद्भक्ति-रूपी यदि जलका आधार है, तो यह साधन नौका चलेगी । बिना इस आधारके नौकाका चलना असम्भव है ) ।।४।। हे नाथ ! समझ लीजिए, मेरी यह दशा इसलिए हुई है, कि मैंने अपने सुख-निधान स्वामीको भुला दिया । अब, हे हरे ! क्रोध छोड़कर इस शरणागत तुलसीदासपर दया कीजिए ।।५।।

**टिप्पणी—( १ ) 'जननि····हौं जायो'—ऐसे स्वार्थी माता-पिता और भाई-बन्धु किस कामके ? कहा है—**

'जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ।।'—(दोहावली)

**(२) 'हरिपद···पायो'—सो तो ठीक ही है, क्योंकि—**

'बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ?
गावहिं बेद-पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु ?' (रामचरितमानस)

**(३) 'सुखनिधान निज पति'—वास्तवमें इस जीवका सच्चा पति परमात्मा ही है । उसे भुला देनेसे जीवको, विधवा स्त्रीकी तरह, कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ती है, यह कहनेकी बात नहीं है । देखिए, महात्मा कबीर कांताभावसे परम विरहाकुल होकर इस 'सुखनिधान निजपति' से मिलनेके लिए कैसे अधीर हो रहे हैं—**

'अबिनासी दुलहा कब मिलिहौ भक्तनके रछपाल ।
जल-उपजी जल ही सो नेहा, रटत पियास-पियास ।।
मैं ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊँ, प्रियतम, तुमरी आस ।
छोड़े गेह नेह लगि तुम सों, भई चरन-लौलीन ।।
तालाबेलि होति घट भीतर, जैसे जल बिन मीन ।

दिवस न भूख रैन नहिं निंदिया, घर-अँगना न सुहाय ॥
सेजरिया बैरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय ।
हम तो तुमरी दासी, सजना, तुम हमरे भरतार ॥
दीनदयाल दया कर आवो, समरथ सिरजनहार ।
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपनी कर लेव ॥
दास कबीर बिरह अति बाढ्यो, हमको दरसन देव ।'

**जिस घड़ी यह विरही जीव अपने प्राणप्यारे पतिसे मिल जायगा, उसी क्षण इसे अखंड सुख मिलेगा। जबतक उस सुखनिधान सजनसे भेंट नहीं हुई, तबतक इसकी जो दुर्दशा हो वह थोड़ी है।**

( २४४ ) 

याहि तें मैं हरि ! ग्यान गँवायो ।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत बिकल भयो धायो ॥ १ ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो ।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौं आयो ॥ २ ॥
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो ।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो ॥३॥
ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन, तापर दुसह दरिद्र सतायो ।
अपनेहिं धाम नाम सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो ॥४॥
तुम-सम ग्यान-निधान, मोहिं सम मूढ़ न आन पुराननि गायो ।
तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो ॥५॥

**शब्दार्थ**—कुरंग=हिरण । मद=कस्तूरीसे आशय है । सिवार=काई । त्रिबिध ताप=दैहिक, भौतिक और दैविक ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! आपको अपने हृदय-कमलमे छोड़कर जो मैं बाहर इधर-उधर अनेक साधनोमे व्याकुल होकर दौड़ता, फिरा, इसीसे मैने ज्ञान खो दिया (अज्ञानमें पड़ गया, जिसका फल यह हुआ, कि आजतक आपके दर्शन नहीं हुए) ॥१॥ जैसे महान् मूर्ख मृग अपने ही शरीरमें सुन्दर कस्तूरीका भेद नहीं समझता, और पहाड़, पेड़, लता, पृथ्वी और बिलोमे ढूँढ़ता फिरता है, कि

यह सुन्दर सुगन्ध कहाँ से आ रही है ( उसी प्रकार मैं इधर-उधर सुख के लिए दौड़ रहा हूँ, यद्यपि अखंड आनन्दस्वरूप परमात्मा मेरे हृदय में ही निवास कर रहे हैं। यह मेरा भ्रम नहीं तो क्या है ? ) ॥२॥ तालाब निर्मल पानी से लबालब भरा है, किन्तु ऊपर से कोई और घास छाया हुआ है। उस तालाबका स्वच्छ जल छोड़कर मै दुष्ट अपना हृदय जला रहा हूँ, और इस प्रकार अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ ! इसका भाव यह है, कि हृदय सरोवरमे आत्मानन्दरूपी जलअगाध भरा है, किन्तु माया-मोह की काई लग जाने से वह दिखायी नहीं दे रहा है, और यह जीव आनन्दरूपी प्यासके मारे मरा जाता है, सांसारिक त्रिविध तापसे जला जा रहा है ॥३॥ एक तो वैसे ही शरीरमें त्रिविध ताप व्याप रहे है जो असहनीय हैं और तिसपर दारुण दरिद्रता सता रही है। यह सब इसलिए हो रहा है, कि अपने ही घरमे राम-नामरूपी कल्पवृक्ष छोड़कर मैने विषयरूपी बबूल के बाग़-मे अपना मन लगा दिया। (भला उस बागमे काँटोको छोडकर और क्या रखा है ?) ॥४॥ आपके समान तो ज्ञानराशि और मेरे समान मूर्ख और कोई नहीं है, यह बात पुराणोंने कही है (ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है और जीव अज्ञ है)। हे नाथ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। सो, जो आपको अच्छा लगे, वह इस तुलसीदासके लिए कीजिए ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—(१) 'बाहर फिरत ···धायो'—किसी-किसी टीकाकारके मतसे 'बाहर' शब्दका अर्थ तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा आदि है। किन्तु यह उपयुक्त नही जान पड़ता, क्योंकि गोसाईं जीने तीर्थ-सेवन और मूर्ति-पूजनका कहीं भी खण्डन नहीं किया, प्रत्युत उन्हे भगवत्प्राप्तिका साधन बताया है। 'बाहर'से यह अभिप्राय है, कि संसारी भ्रम-भरे झूठे सुखोंमे परमानन्दकी इच्छा कर रहा है, सो कैसे हो सकता है ? 'विषयासक्ति' ही यहाँ 'बाहर' है।**

**(२) 'कुरङ्ग'—कबीरसाहब भी यही नज़ीर दे रहे हैं—**

'तेरा साईं तुज्झ मे, ज्यो पुहुपन मे बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़ै घास ॥' —कबीरदास

**(३ 'ज्ञान-निधान'—श्रुति कहती है—**

'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म।'

**वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् रामचन्द्रजाके ज्ञानके सम्बन्धमें लिखा है—**

**'सान्त्वयन्सर्वभूतानि, रामः शुद्धेन चेतसा।'**

'गृह्णाति मनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥
सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः ।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥
सत्यन्दानन्तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ॥
विद्या च गुरूशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥'

( २४५ )

**मोहिं मूढ़ मन बहुत बिगोयो ।**
**याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो ॥१॥**
**सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत दूरि जनु खोयो ।**
**बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥२॥**
**करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।**
**तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ॥३॥**
**तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहि गोयो ।**
**डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो ॥४॥**

**शब्दार्थ** - बिगोयो = बिगाड़ा । सहजसुख = आत्मानन्द । बिलोयो = मथन किया । कीच = कीचड़ । निचोयो = निचोड़ा । गोयो = छिपाया । डासत = बिछौना बिछाते ।

**भावार्थ**—मुझे तो इस मूर्ख मनने खूब बिगाड़ा, बिल्कुल ही बरबाद करके छोड़ा । हे करुणामय ! सुनिए, संसार मे इसके लिए मै जन्म-जन्मान्तर में दु.ख ही रोता फिरा ( जिस योनिमे गया, वहाँ इसके मारे नाकोदम रहा ) ॥१॥ शीतल, मीठा अमृत के समान आत्मानन्द को जो समीप ही रहता है, मैने यों भुला दिया, जैसे बहुत दूर हो (यह भुलावा मनहीने दिया, यह सब मनहीकी करतूत है)। अज्ञानवश मैने नाना प्रकारका श्रम किया । मुझ मूर्खने व्यर्थ ही पानीका मथन किया । ( विषय-वासनाओ का जल मथकर उसमें से आत्मदर्शन रूपी घी निकालना चाहा । पर कहीं पानी से भी घी निकलता है ? वह तो भगवद्भक्तिरूपी दूधसे ही निकलेगा) ॥२॥ यद्यपि, मन में यह जानता था, कि कर्म कीचड़ है, फिरभी चित्तको उसीमे सान दिया । ( देखते हुए भी अँधेकी तरह विषय-वासना-रूपी

पंकमें जा फँसा )। मैं ऐसा दुष्ट और मूर्ख हूँ, कि प्यास के मारे गंगाजी को छोड़कर बार-बार व्याकुल हो आकाश निचोड़ता फिरा ( वास्तवमें, आकाश कोई स्थूल पदार्थ नहीं हैं, जो उसके निचोड़नेसे पानी निकले। इसी प्रकार मिथ्या जगत् आत्मानन्द प्राप्त करने की चेष्टा करता फिरा, जो असम्भव है) ॥३॥ हे नाथ! मैंने अपना एक भी अपराध नहीं छिपाया है, सो अब इस तुलसीदास पर कृपा कीजिए, मुझे बिस्तर बिछाते-बिछाते ही सारी रात बीत गयी, पर हे नाथ! कभी नींद भर नहीं सोया। भाव यह है, कि सुख-प्राप्ति के उपाय करते-करते ही सारा जीवन बीत गया, पर भरपूर सुख आजतक कभी न मिला। वह अखण्ड सुख केवल आपकी कृपा से ही मिल सकता है, अन्यथा नहीं, सो, अब कृपा कीजिए ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'मोहिं······बिगोयो'—बरबाद करेगा ही, क्योंकि—**

'बाजीगर का बंदरा, ऐसा जिउ मन साथ।
नाना नाच नचाइकै, राखै अपने हाथ॥' —कबीरदास

**( २ ) 'कर्म-कीच'—इस पदसे यह न समझ लेना चाहिए, कि गोसाईंजी ने कर्म का खंडन किया है। निष्काम कर्मका आदेश तो वह यत्र-तत्र दे ही चुके हैं। यहाँ सकाम और विषयासक्त कर्म से तात्पर्य है, जो वास्तवमें बंधनका कारण है।**

**( ३ ) 'मलहि मल धोयो'—रामचरितमानस में लिखा है**

'मल की जाइ मलहिं के धोये?'

**वह तो—**

'राम-भक्ति-जल बिनु खगराई। अभ्यंतर मल कबहुँ न जाई।'

**( ४ ) 'तृषावंत······निचोयो'—अन्यत्र भी कहा है—**

'तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं वाञ्छति दुर्भगः।'

**किन्तु गोसाईं जीकी उक्ति इससे बढ़कर है। 'आकाश निचोयो' में आपने चमत्कारका सारा निचोड़ निचोड़ दिया है।**

( २४६ )

**लोक बेद हूँ बिदित बात सुनि समुझि**
**मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति।**
**छोटे बड़े, खोटे खरे, मोटेऊ दूबरे,**
**राम, रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥१॥**

होती जो आपने बस रहती एक ही रस,
दुनी न हरष सोक ससाँति सहति।
चाहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई,
केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥२॥
करम काल सुभाउ गुन-दोष जीव जग माया तें,
सो सभय भौंह चकित चहति।
ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनीसनि हूँ,
छोड़ति छोड़ाये तें* गहाये तें गहति ॥३॥
सतरंज को सो राज, काठ को सबै समाज,
महाराज बाजी रची प्रथम न हति।
तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ!
बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥४॥

**शब्दार्थ**—थिति=( स्थिति ) स्थिरता, शान्ति। दुनीं=दुनिया साँसति=कष्ट। लालसा=इच्छा। हति=थी, मारना।

**भावार्थ**—छोटे-बड़े, बुरे-भले, मोटे और दुबले, इन सबकी, हे श्रीरामजी! आपकेही निभानेसे निभती है—यह बात संसार और वेदोंमें प्रकट है। किन्तु इसे सुनकर और विचारकर भी अज्ञानवश, मेरी बुद्धि ऐसी व्याकुल हो रही है, कि वह स्थिर नहीं होती, सदा चक्कर लगाया करती है ॥ १ ॥ जो यह संसार अपने वशका होता, तो सदा एक-सा ही न रहता, न किसीको हर्ष होता, न शोक। और न यातना ही भोगनी पड़ती। जो जिस वस्तुको इच्छा करता, वही उसे मिल जाती। किसीकी कोई इच्छा बाक़ी न रहती (सारी कामनाएँ पूरी हो जातीं) ॥ २ ॥ किन्तु ऐसा है नहीं। कर्म, काल, स्वभाव, गुण, दोष, जीव, जगत् और माया ये सभी मारे डरके भौचक्केसे होकर आपकी भ्रकुटिकी ओर देखते रहते हैं ( आपके रुखपर चलते हैं )। वह माया शिव, ब्रह्मा और दिग्पालोंको, योगीश्वरों और मुनीश्वरोंको आपके ही छुड़ानेसे छोड़ती है और आपके ही पकड़ानेसे पकड़ लेती है। साराश, यह आपके रुखपर चला करती है ॥ ३ ॥ इस

* पाठान्तर 'ते जो गहाये।'

मायाका सारा समाज शतरञ्जका-सा राज्य है (झूठा है), सब काठका बना है(असल में न कोई राजा है, न वज़ीर)। वे महाराज! शतरञ्ज की यह बाज़ी आपही की बनाई हुई है। यह पहले नहीं थी। तुलसीदास कहते हैं, कि हे प्रभो! इस बाज़ीकी हार जीत आपही के हाथमें है (चाहे हराइए, चाहे जिताइए, अर्थात्, चाहे बन्धनमें डाल दीजिए, चाहे मुक्त कर दीजिए) यह बात सरस्वतीने अनेक वेष धारणकर, अनन्त मुखोंसे, ही कही है ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'राम''' निबहति—कहा भी है—**

'होइ है वही जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहि साखा ॥'

× × × × ×

'राम कीन चाहैं सो होई। करै अन्यथा अस नहि कोई ॥'

**( २ ) 'छोड़ति'''गहति'—प्रमाण लीजिए—**

'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया'। —( भगवद्गीता )

**तथा—**

'उमा दारु-जोषित की नाईं। सबै नचावत राम गोसाईं ॥'

**( ३ ) 'सतरंज'''हति'—श्रीबैजनाथजीने 'हति' का अर्थ 'थी' लिखा है और 'प्रथम' का अर्थ 'माया-मोहकी बाजी'। यहाँ आपका अर्थ-चमत्कार मंतव्य है। देखिए—**

**'हे रघुनन्दन! महाराज! मोह दल लैकै माया तथा विवेक दल लैकै जीव दोऊ बाजी रचे खेलि रहे हैं तथा प्रथम जो मोहकी सेना है सो न हति नहीं मारे जाते है अरु पीछे कहे जो विवेक सेना सो मरत जाती है अर्थात् श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, हाथ, पद, लिंग, इति आठ कोठा हैं, पुनः प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इति आठों पाँ तिनके चौंसठि कोठा भये, पुनः मायाके दिशि मोह बादशाह ताकी मिथ्या दृष्टि आठहू दिशिकी चाल विवेक दलको नाश करता है। काम वज़ीर पर-स्त्रीमें रति टेढ़ी चाल विवेक नाश करता है।" इत्यादि। यहाँ टीकाकार महोदयने शतरञ्जका पूरा-पूरा खेल रूपक अलङ्कारमें दिखाया है। आपका परिश्रम और चातुर्य परमश्लाघ्य है।**

**( ४ ) 'बहु बेष बहु मुख'—अनेक भाषाओं और युक्तियोंसे तात्पर्य है।**

( २४७ )

राम जपु, जीह ! जानि, प्रीति सों प्रतीत मानि,
रामनाम जपे जैहै जिय को जरनि।
रामनाम सों रहनि, रामनाम की कहनि,
कुटिल-कलि-मल-सोक-संकट-हरनि ॥१॥
रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराव कही आपनी करनि।
भव-सागर को सेतु, कासी हूँ सुगति हेतु,
जपत सादर* सम्भु सहित घरनि ॥२॥
बालमीकि ब्याध हे अगाध-अपराध-निधि,
मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिधु घटजहूँ नाम-बल,
हार्‍यो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥३॥
नाम-महिमा अपार सेष सुक बार-बार,
मति-अनुसार बुध बेदहूँ बरनि।
नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु,
रामनाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥४॥

**शब्दार्थ**—जीह=जीभ ! गनराउ-गणेश। घरनि = स्त्री, पार्वतीसे तात्पर्य है। हे-थे। घटज=घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य ऋषि। भूसुर=ब्राह्मण। तरनि=सूर्य।

**भावार्थ**—हे जीभ ! राम-नामका जपकर, उसे जान ( नाम-सम्बन्धी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर, अर्थात् वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा, इन चारों वाणियोंसे नाम-स्मरण किस प्रकार किया जाता है, इसे जान) और प्रेमपूर्वक उसमें विश्वास रख। एक राम-नाम स्मरण करने से ही जीवका दाह दूर हो सकेगा (त्रिविध ताप शान्त होगा)। राम-नामके साथ रहा कर (यावत् आचरण राम-नामके अनुकूल

* पाठान्तर 'सारद'।

कर ) और राम-नाम ही का कथन किया कर । क्योंकि वह नाम क्रूरकर्म कलियुगके पापों, दुःखों और अनिष्टोंका हरनेवाला है ( इससे यही निष्कर्ष निकलता है, कि एक राम-नाम-स्मरण ही सर्वसाधनोंमें श्रेष्ठ और अमोघ है, क्योंकि-इससे जीव सहज ही मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है ) ॥१॥ राम-नामके प्रभावसे गणेश (सर्व-प्रथम ) पूजे जाते हैं । गणेशजीने अपनी करनीको स्वयं कहा है, कुछ छिपाव नहीं रखा (किस प्रकार वह सर्वप्रथम पूज्य माने गये, यह कथा स्वयं उन्होंने अपने मुखसे सुनायी है) । यह राम-नाम संसाररूपी समुद्रका पुल है(इसपर चढ़कर भक्तजन सहज ही संसारसे तर जाते हैं ) । काशीमें भगवान शंकर भी पार्वतीके सहित मोक्ष प्रदान करनेके लिए इसे जपा करते हैं ॥२॥ वाल्मीकि पहले दोषोंकी खानि थे और जातिके बहेलिया थे, किन्तु उलटा नाम 'मरा-मरा' जपकर वे ऐसे बड़े हो गये, कि मुनियों और देवताओंने भी उनकी पूजा की । अगस्त्य ऋषिने भी इसी नामके बलपर विन्ध्याचलको रोक लिया एवं समुद्रको सुखा दिया था । पीछे समुद्र उन्हीं ब्राह्मण (अगस्त्य) के भयके मारे खारा हो गया ॥३॥ नामका माहात्म्य अपार है । इसे शेष, शुकदेव, वेद और पण्डितोंने बारबार अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया है । राम-नामसे प्रीतिका होना तुलसीदासके लिए कामधेनु है । इसी प्रकार वह कल्पवृक्ष भी है (मनोवाञ्छित फल देनेवाली है ) । अधिक क्या राम-नाम अज्ञानान्धकार दूर करनेके लिए सूर्यरूप है ॥४॥

**टिप्पणी— ( १ ) 'राम जपु······जरनि'—दोहावलीमें इस सिद्धान्तके पुष्टिरूप कई दोहे मिलते हैं । दो-चार सुन्दर दोहे देखिए—**

> 'रामनाम-रति, रामगति, राम-नाम-विस्वास ।
> सुमिरत सुभ मंगल कुशल, दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥
> प्रीति प्रतीति सुरीति सो, रामनाम जपु राम ।
> तुलसी, तेरो है भलो, आदि मध्य परिनाम ॥
> सकल कामनाहीन जे, राम-भगति-रसलीन ।
> नाम प्रेम-पीयूष-ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन ॥
> हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम ।
> मनहुँ पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥'

**( २ ) 'पूजियत गनराउ'—बचपनमें गणेश बड़े उपद्रवी थे । एक तो**

मदोन्मत्त हाथी जैसे मुखवाले, दूसरे शिवजीके गणोंके नायक ! इन्होंने सैकड़ों मुनियोंको मार डाला, वृक्ष गिरा दिये' जंगल उजाड़ डाले। शिवजीको बड़ी चिन्ता हुई। रघुनाथजीका स्मरण किया। प्रकट होकर भगवान्ने शंकरसे पूछा, किस कार्यवश आपने मुझे बुलाया है ? शंकरजीने अपने पुत्रकी व्यथा-मयी कथा कह सुनाई। बोले—भगवान् ! कुछ ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे मेरा पुत्र ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाय। भगवन्ने कहा—

'ब्रह्महत्या सहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते।
मुच्यते कोटिहत्याभ्यो जपन्नाम सहस्रकम् ॥'

भगवान्ने गणेशजीको 'रामसहस्रनाम' जपनेका उपदेश किया। अनन्य-निष्ठासे श्रीराम-नाम-स्मरणसे गणेशजी कुछ ही कालमें 'मंगलमूर्ति' माने जाने लगे। स्वयं ही गणेशजीने कहा है

'ततस्तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽस्मि तदैव हि।
तदादिसर्वदेवाना पूज्योऽस्मि मुनिरुत्तम ॥'

यह कथा ब्रह्माण्ड-पुराणमें प्रसिद्ध है।

( ३ ) 'संभु सहित घरनि'—शिवजीने स्वय ही कहा है—

'अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिश भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मत्रं तव रामनाम ॥' (अध्यात्म रामायण)

( ४ ) 'बाल्मीकि'—६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए।

( ५ ) 'रोक्यो विन्ध्य'—विन्ध्याचल बड़ा ऊँचा था। सूर्यके प्रचन्ड तेजके कारण जब उसके पेड़ जलने लगे, तब उसे बड़ा क्रोध आया और सूर्यके ढक-नेके लिए अपना शरीर बढ़ाने लगा। देवता बहुत घबराये। अगस्त्य ऋषिसे आकर विनय भी की। महर्षिने राम नाम-स्मरणकर विन्ध्याचलके मस्तकपर हाथ रखकर उससे कहा, देख, जबतक मैं न लौट आऊँ, तबतक यहाँ ऐसा ही पड़ा रह। न अगस्त्यजी फिर कभी लौटे और न वह उठा। वैसा ही बना रहा यह रामनामका ही प्रभाव है।

( ६ ) 'सोख्यो सिंधु'—एक बार सन्ध्या-समय महर्षि अगस्त्य समुद्र-तट पर पाठ-पूजा कर रहे थे। पूर्णिमाका दिन था। समुद्रका ज्वार प्रतिक्षण बढ रहा था। उसकी लहरें महर्षि की पूजाकी सामग्री बहा ले गयीं। इन्हें बड़ा क्रोध आया और 'ॐ राम' ऐसा कहकर तीन आचमनसे समुद्रको सुखा दिया। पीछे

देवताओंके सानुनय आग्रहसे, मूत्रके मार्गसे, खारा कर, उसे बाहर निकाल दिया। यह भी रामनामकी महिमा है।

( ७ ) 'काम-तरु रामनाम'—दोहावलीमें लिखा है

'रामनाम कलि-कामतरु, सकल सुमंगलकंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग-पग परमानद॥
नाम राम को कलपतरु, कलि-कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भयो भाग ते, तुलसी तुलसीदास॥'

( २४८ )

पाहि पाहि राम! पाहि, रामभद्र रामचंद्र
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन।
दीनबंधु! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख-
दारुन- दुसह- दर- दरप- हरन॥ १॥
जब जब जग-जाल-व्याकुल करम काल
सब खल भूप भये भूतल-भरन।
तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि
थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन॥ २॥
बेद लोक सब साखी, काहू की रती न राखी,
रावन की बंदि लागे अमर मरन।
ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ
रामराज भयो धरम चारिहु चरन॥ ३॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर,
ख्याल ही कृपालु कीन्हें तारन-तरन।
पील-उद्धरन सीलसिन्धु ढील देखियतु
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन॥ ४॥

**शब्दार्थ**—पाहि=रक्षा करो। दर=डर। दरप=अभिमान। भरन=भार। थापे=स्थापित किये। रती=तेज। अमर=देवता। ओक=आश्रय। सिला=पत्थर, यहाँ अहल्यासे तात्पर्य है। रातिचर=राक्षस। ख्याल ही=लीलापूर्वक, योंही। पील=हाथी।

**भावार्थ**—हे श्रीरामजी ! हे कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए । आपका सुयश सुनकर शरणमें आया हूँ । हे दीनबन्धो ! आप दीनता, दरिद्रता, जलन, दोष, कठिन दुःख, असहनीय भय और गर्वके नाश करनेवाले हैं । मुझमें ये सभी बातें हैं: दीन हूँ, दरिद्र हूँ, त्रितापसे जल रहा हूँ, अपराधी हूँ, बड़ा ही दुखी हूँ, संसारसे डर रहा हूँ, और महान् अभिमानी हूँ, विश्वास है, आप मुझे इन दोषोंसे मुक्त कर अंगीकार कर लेंगे, ससार-सागरसे उबार लेंगे ॥१॥ जब-जब आपके भक्त जगज्जालमें फँसकर दुखी हुए, काल और कर्मके वशमें जा पड़े और पृथ्वीपर भारस्वरूप दुष्ट राजे हुए, तब-तब आपने शरीर धारण कर पृथ्वी-का बोझ दूर कर दिया (दुष्टोंका नाश कर दिया) और मुनि, देवता, संत एवं, वर्णाश्रम-धर्मकी स्थापना की (उद्धार किया) ॥२॥ वेद और संसार दोनोंमें ही प्रसिद्ध है, कि जब रावण ने किसी का भी तेज न रहने दिया, सबको निस्तेज वा ऐश्वर्यहीन कर दिया है और उसके काराग्रहमें पड़े-पड़े कभी न मरनेवाले देवता भी मरने लगे, तब, हे भगवन् ! आपहीने लोक-पतियोंको, इन्द्र, कुबेर आदिको, आश्रय देकर निश्चिन्त किया और उन्हें फिरसे लोकोंका अधिष्ठाता बनाया (जिसका जो लोक था उसे वह दिला दिया)। और आपके राज्यमें धर्म चारों चरणोंसे हराभरा हो गया, सत्य, तप, दया और दान पनप उठे ॥३॥ हे कृपामूर्ते ! आपने लीलापूर्वक ही अहल्या, निषाद, जटायु, बंदर, भील, भालु और राक्षसोंको तरण-तारण कर दिया, ( उन्हें तो मुक्त किया ही, किन्तु साथ ही उन्हें ऐसा पवित्र बना दिया, कि उनके संसर्गसे दूसरे भी संसार-बन्धनसे छूट गये )। हे गजेन्द्र-उद्धारक ! हे शीलसागर ! तुलसीपर आपकी ओरसे ढील सी दिखाईदेती है, सो वह ग्लानिके मारे गला चाहता है । सारांश, उसे इस बातपर लज्जा आ रही है, कि बड़े-बड़े पापी तो तर गये, वही क्यो अभी तक बन्धनमें पड़ा सड़ रहा है। अतएव कृपाकर शीघ्र ही उसे अपना लीजिए ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जब-जब···बरन'— यह गीताके निम्नलिखित श्लोकोंका छायानुवाद जान पड़ता है**

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥'

( २ ) 'शिला'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।
( ३ ) 'गुह'—निषाद; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए।
( ४ ) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पांचवीं टिप्पणी देखिए।
( ५ ) 'रातिचर'—विभीषण; १४५ पदकी पांचवीं टिप्पणी देखिए।
( ६ ) 'पील'—गजेन्द्र; ५७ पदकी टिप्पणी देखिए।

( २४६ )

भली भाँति पहिचाने जाने साहिब जहाँ लौं जग
जूड़े होत थोरे ही, थोरे ही गरम।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाधीन* सब किये कालहू करम ॥ १ ॥
दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े
जीते लोकनाथ नाथबल निभरम।
रीझि रीझि दिये बर खीझि खीझि घाले घर
आपने निवाजे की न काहू को सरम ॥ २ ॥
सेवा-सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सदगुन-धाम राम पावन परम।
सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहि
बिदित बिसेषि घटघट के मरम ॥ ३ ॥
तोसो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो सो
दया में बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माँह
तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—साहिब = मालिक। जूड़े = शीतल, प्रसन्न। गरम = असंतुष्ट।

---

* पाठान्तर 'मायाहीन।'

निभरम = निडर, निर्भय। घाले=नष्ट किये। सुरुख=कृपा करनेवाले। घट-घटके = प्रत्येक शरीरके, प्रत्येक हृदयके। नतपाल=दीनोंके पालनेवाले।

**भावार्थ**—जहाँतक दुनियाँमें मालिक हैं, उन्हें मैने अच्छी तरह जाँच और समझ लिया है। वे थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं और थोड़ेमें ही असंतुष्ट! (उनमे यह बात नहीं है, कि जिसे बना दिया, उसे फिर बिगाड़ना क्या? जरा-सी भूल होनेपर, वे अपने सेवकोका सर्वनाश कर डालते हैं)। न तो वे प्रेमके निभानेमें ही कुशल हैं और न नीति ही समझते हैं। उनका बर्त्ताव कपटभरा है, क्योंकि काल, कर्म और मायाने उन्हें अपने अधीन कर लिया है (जब स्वयं वे बद्ध पड़े हैं; तब दूसरोंको भला कैसे मुक्त कर सकेंगे?)॥१॥ हे नाथ! आपके बलपर दानव, दैत्य आदि बड़े-बड़े दुष्ट शिरपर चढ़ गये थे और उन्होंने लोक-पालो को भी निःशंक होकर जीत लिया था। इन लोगोको इनके मालिकोंने (ब्रह्मा, शिव आदिने) पहले तो इनपर प्रसन्न होकर वर दिये, पर पीछे इनके घरका स्वाहा करा दिया! अपने कृपापात्रोंको बिगाड़ते समय किसीको शर्म न आई (ऐसे स्वार्थी हैं)॥२॥ हे रामजी! सेवकोंको आपही भली-भाँति पहिचा-नते हैं, क्योकि सच्चे, समर्थ, सद्गुणोंके स्थान और परम पवित्र आपही हैं। आप सबपर कृपा करनेवाले, प्रसन्न-मुख, सदा एक-से रहनेवाले (न हर्षमें प्रफुल्लित और न शोकमें चिंतित; त्रिकालाबाधित) और एकरूप हैं। आपको विशेष रीतिसे घट-घटका भेद मालूम है। (जो जैसा होता है, उसे वैसा ही फल दे देते हैं, कहनेकी आवश्कता ही नहीं पड़ती)॥ ३॥ आपके समान गरीबोका पालनेवाला और कृपा करनेवाला दूसरा कोई नही है, और मुझ-सरीखा कोई कंगाल नहीं है। (अधिक क्या कहूँ?) हे देव! दयामें ही समस्त धर्मोंका निवास है (तात्पर्य यह, कि यदि आपको पूर्ण धर्मात्मा बननेकी इच्छा है, तो मुझ दीनपर दया कर दीजिये)। हे नाथ! आप कल्पवृक्ष हैं। मेरी अभिलाषा है, कि आपकी छायामें रहूँ। (शरण मे पड़ा रहूँ) बलिहारी! यह तुलसी कलियुगके कुटिल धर्मों (हिंसा, असत्य, पाखण्ड, व्यभिचार आदि) से बड़ा व्याकुल हो रहा है (कृपाकर इसकी रक्षा कीजिए, नहीं तो अब यह बचनेका नहीं)॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'साहिब' 'गरम'—दो शब्दोंमें 'मतलबी यार' है। गिरिधर कविरायने इन स्वार्थियों पर क्या अच्छी कुण्डलियाँ कहा हैं—**

'साई या ससारमे, मतलब का व्यवहार।

जबलगि पैसा गाँठ में, तबलगि ताको यार ॥
तबलगि ताको यार, यार संगहि सँग डोलैं ।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलैं ॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई ।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं ॥'

**ऐसा बिरला यार तो एक परमात्मा ही है। इन स्वार्थियोंकी ओरसे ऊब कर कविवर लछिराम कह रहे हैं—**

'भरम गँवावै भरबेरी भाग नीचन ते, कंटकित बेल केतकीन पै गिरत है ।
परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि, अधम अरूसन के अङ्ग अभिरत है ॥
'लछिराम' सोभा-सरवर मे बिलास हेरि, मूरख मलिन्द मन पल न थिरत है ।
रामचन्द्र-चारु-चरनाम्बुज बिसारि देस बन-बन बेलिन-बबूर में फिरत है ॥'

( २ ) **'सद्गुनधाम'—वाल्मीकीय रामायणके निम्नलिखित पद्य देखिए—**

'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥
बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः ।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः ॥
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥'

( ३ ) **'घटघट के मरम'—कबीरसाहब कहते हैं—**

'पावकरूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय ।
चित-चकमक लागै नहीं तातें बुझि-बुझि जाय ॥'

( २५० )

**तौ हौं बार-बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न**
**जो पै मोको होतो कहुँ ठाकुर ठहरु ।**
**आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले-पोसे,**
**राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु ॥१॥**

**सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस, गौरी,**
**हित कै न माने बिधि हरिउ न हरु।**
**रामनाम ही सों जोग छेम, नेम प्रेम-पन,**
**सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु, ॥२॥**
**समाचार साथ के अनाथ-नाथ! कासों कहौं।**
**नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु।**
**निज काज, सुरकाज, आरत के काज राज,**
**बूझिये बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥३॥**
**रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों,**
**डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु।**
**कहैही बनैगी, कै कहाये, बलि जाउँ, राम,**
**'तुलसी! तू मेरो हारि हिये न हहरु' ॥४॥**

**शब्दार्थ**—ठहरु=स्थान। सहरु=शहर। हित कै=प्रेमपूर्वक। हरु=हर, शिव। जोग-छेम=(योगक्षेम) वस्तु-प्राप्ति और उसकी रक्षा। पहरू=(पाहरू) चौकीदार। गहरु=विलम्ब। कहरु=अनीति।

**भावार्थ**—हे नाथ! यदि मुझे कहीं कोई दूसरा स्वामी या स्थान मिल जाता, तो मैं बार-बार आपको पुकारकर अप्रसन्न न करता (पर, क्या करूँ, मुझे तो कोई ऐसा मिलता ही नहीं, कि जिसकी शरणमें जाकर निर्भय रहूँ। इसीसे बार-बार आपके द्वारपर पुकारा करता हूँ)। हे महाराज रामचद्रजी! मुझ-सरीखे आलसियो और अभागोंका पालन-पोषण तो आपने ही किया है। इसलिए हे कृपालो! आपही मेरे राजा हैं और अयोध्या ही मेरे लिए नगर है (आप स्वामी हैं और अयोध्या रहनेके लिए स्थान है। यही दो चीजें तो मुझे चाहिएँ, सो मिल गयी) ॥१॥ न तो मैने दिग्पाल (कुबेर, वरुण आदि), सूर्य, गणेश और पार्वतीकी प्रेम-पूर्वक सेवा की है और न श्रद्धा-सहित ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी ही आराधना की है। मेरा तो योगक्षेम एक रामनामसे ही है। उसीसे मेरा नेम है, उसीसे प्रेम है और उसीसे अनन्यता है। उसका भरोसा मेरे लिए अमृतके तुल्य है और दूसरे

साधन विषय के समान हैं। सारांश, रामनामपर ही मेरी अनन्यनिष्ठा है, यही मेरा सिद्धान्त है ॥२॥ हे अनाथोंके स्वामी! मैं अपने साथवालोंकी बात किससे कहूँ? क्योंकि चोर और चौकीदार सब आपहीके हाथमें हैं (आप काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोरोंको रोक देंगे, तो मेरा ज्ञान-रूपी धन बच जायगा और जो इन्हें इशारा दे देंगे, तो लुट जाऊँगा। अब बचाना या लुटवाना आपकी मरजी-पर है। मैं क्या कहूँ?)। हे महाराज! तनिक विचारिये तो, आपने अपने कामोंमें, देवताओंके कामोंमें और दीन-दुखियोंके कामोंमें क्या कभी देर की है? (कभी नहीं)। फिर मेरे ही लिए क्यों इतना विलम्ब हो रहा है? तात्पर्य यह है, कि मुझे इस संसार-सागरसे शीघ्र ही पार कर दीजिए ॥३॥ आपकी रीति (पतित-पावनता, जन वत्सलता आदि) सुनकर मैं आपपर प्रतीति कर रहा हूँ, और इसीसे आपके प्रति मेरा प्रेम हो गया है, किन्तु कलियुगकी अनीति देखकर मैं बहुत ही डरता हूँ (कि कहीं वह मुझे आपके चरणारविन्दोंसे विमुख कराकर विषयोंमें न फँसा दे)। हे रघुनाथजी! मैं आपकी बलयाँ लेता हूँ; कहिए तो, मेरी आपके कहनेसे बनेगी या किसीके द्वारा कहलानेसे? केवल इतना ही कह देनेमें मेरी बन जायगी कि 'तुलसी! तू मेरा है, निराश होकर हृदयमें मत घबरा' ॥४॥

**टिप्पणी—'चोरऊ पहरू'—जीवके जन्म-संघाती चोर और चौकीदार ये हैं—चोर—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, हिंसा, व्यभिचार आदि। चौकीदार–विवेक, वैराग्य, संतोष, शान्ति, दया, समता आदि। जो भगवदाश्रित होकर रहता है, उसे चोरोंका क्या भय है! कहा भी है—**

'कहु 'रहीम' का करि सकैं, जारी चोर लबार?
जो पति-राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥'—रहीम

**अथवा—**

'काहू के बल भजन को, काहू के आचार।
'ब्यास' भरोसे स्याम के, सोवत पाँव पसार ॥'

**( २ ) 'रीति'—कदाचित् इसी रीतिसे तात्पर्य है—**

'सकृदेव प्रपन्नाय 'तवास्मीति' च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रत मम ॥' ( वाल्मीकि रामायण )

**अथवा—**

'सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'—(गीता)

( ३ ) **'कलिकाल को कहरू'—कबीरसाहब इस कराल कलिकालका असद्व्यवहार देखकर कह रहे हैं—**

'बाबा, ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि व्यवहारा।
को अब अनख सहै प्रतिदिन को, नाहिन रहन हमारा॥
सुमति सुभाव सबै कोइ जाने हृदया तत्त न बूझै।
निरजिव आगे सरजिव थापै, लोचन कछुव न सूझै॥
तजि अमरत बिष काहे अँचवूँ, गाँठी बाँधूँ खोटा।
चोरन को दिय पाट-सिंहासन, साहुहिं कीन्हो ओटा॥
कह कबीर, झूठा मिलि झूठा, ठग-ही-ठग व्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है, नाही है पतियारा॥'—कबीर

( ४ ) **'कै कहाये'—क्या हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि के द्वारा कहलाना होगा !**

( २५१ )

**राम, रावरो सुभाव, गुन सील महिमा प्रभाव,**
**जान्यो हर हनुमान लखन भरत।**
**जिन्हके हिये - सुथल राम-प्रेम - सुरतरु,**
**लसत सरस सुख फूलत फरत॥ १॥**
**आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ पति,**
**ते सनेह - सावधान रहत डरत।**
**साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परिमिति नीति,**
**नेम को निबाह एक टेक न टरत॥ २॥**
**सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं,**
**राम - की भगति बड़ी विरति-निरत।**
**जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ,**
**समुझि सयाने नाथ ! पगनि परत॥ ३॥**

छ-मत विमत, न पुरान मत, एक मत*
नेति नेति नेति नित निगम करत।
औरनि की कहा चली ? एकै बात भलै भली,
राम-नाम लिये तुलसी हूँ से तरत ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**—फरत = फलता है। बिरति-निरत = वैराग्यमें अनुरक्त या परम विरक्त होनेसे। छ-मत = छः शास्त्रोंका मत। बिमत = प्रतिकूल मत। निगम = वेद।

**भावार्थ** – हे रामजी ! जिनके हृदयरूपी सुन्दर थाल्हेमें भगवद्भक्तिरूपी कल्प-वृक्ष सुशोभित हो रहा है और जिसमें सरस फूल फूलते और सुखरूपी मीठे फल फलते हैं, ऐसे शिव, हनुमान्, लक्ष्मण और भरत आपके स्वभाव, गुण, शील और महिमाका प्रभाव जानते हैं (बिना अनन्य भगवद्भक्त हुए भगवदीय रहस्यका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है) ॥१॥ आपने अपने सुशील स्वभावके वश होकर शिवको स्वामी, हनुमान्‌को मित्र और लक्ष्मण एवं भरतको अपना भाई माना है, पर वे सब आपको अपना स्वामी ही मान रहे हैं, प्रेममें सावधान रहते हैं और आपसे डरा करते हैं (कि कहीं सेवामें कोई चूक न पड़ जाय)। यदि स्वामी और सेवक इस रीतिसे प्रेम करते रहें, नीति और नेमका निर्वाह सदा एक-सा रखें और अपनी टेकसे न टलें, तो उनकी प्रीति परम सीमातक पहुँच जाती है, आजीवन निभ जाती है ॥२॥ परम-विरक्त होनेसे ही श्रीरघुनाथजीकी महती भक्ति मिलती है—यह शुकदेव, सनकादिक, प्रह्लाद, नारद-प्रभृतिने कहा है। और ज्ञानके बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती है; किन्तु वह ज्ञान, हे नाथ ! आपके हाथमें है (आपकी ही कृपासे जीवको 'स्वरूप और परस्वरूप' का ज्ञान मिलता है), इस बातको खूब सोच-समझकर चतुर लोग आपके चरणोंपर आकर गिरते हैं (जिन्हें आपकी भक्ति एवं आपके स्वरूप-ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा है, वे सब छोड़-छाड़कर आपकी ही शरणमें आते हैं) ॥३॥ छः शास्त्रोंके सिद्धान्त एक दूसरेके विरुद्ध हैं, पुराणोंका भी मत एक-सा नहीं है (आपसमें एक दूसरेके विरुद्ध है) और वेद भी नित्य 'नेति नेति' करते रहते हैं। (परमेश्वरके स्वरूपका यथार्थ बोध

* पाठान्तर 'पथ'।

वेद, शास्त्र और पुराण नहीं करा सकते )। अब औरोंके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या ? ( जब वेदतक 'नेति नेति' कह रहे हैं, तब भला और लोग परमार्थके विषय में क्या बतला सकते हैं ? )। मुझे तो बस एक ही बात अच्छी समझ पड़ती है और इसीसे भला हो सकता है। वह यह, कि राम-नाम-स्मरण करनेसे तुलसी सरीखे भी ( संसार-सागरसे ) मुक्त हो जाते हैं। ( राम-नाम-स्मरण ही सर्व-प्रधान साधन है ) ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'हर'— श्रीरघुनाथजी के ऐश्वर्यको शिवजी ही जानते हैं। ऐश्वर्यका बखान करते हुए आप कहते हैं—**

'आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम अस गावा ॥
पग बिनु चलै, सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन-रहित सकल-रस-भोगी। बिनु बानी बकता बड़जोगी ॥
तनु बिनु परस, नयन बिनु देखा। गहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
'जेहिं इमि गावहि बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोई दसरथसुत भक्तहित, कोसलपति भगवान् ॥'—(रामचरित-मानस)

**(२) 'हनुमान्'— भगवान्के सौशील्यके विषयमें हनुमान्जीका ही कथन पर्याप्त होगा। देखिए—**

'कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मै विद्यमान की।
कहँ हरि अज-शिव-पूज्य ग्यानधन नहीं बिसरति यह लगनि कान की ॥'

**( ३ ) 'लखन'—जब रघुनाथजीने लक्ष्मणजी को धर्म और नितिका उपदेश किया, तब आप प्रेम-विह्वल होकर कहने लगे कि, हे नाथ :—**

'धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मै सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मंदर लेहि कि बाल मराला ॥'

**( ४ ) 'भरत'—भगवान्का स्वभाव तो एक भरतजी ही जानते हैं। अहा !**

'मैं जानौं निज स्वामि-सुभाऊ। अपराधिहु पर कोप न काऊ ॥
मै प्रभु-कृपा-रीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही ॥'

**अन्यत्र—**

'जद्यपि मोतें, कै कुमातु तें, ह्वै आई अति पोची।
सनमुख गये सरन राखहिंगे, रघुपति परमसँकोची ॥'

( ५ ) 'आप माने ··· भाई'—शिवजीको रघुनाथजी पूज्य भाव से मानते थे। सिद्धान्त वाक्यसे आपने कहा है—

'औरौ एक गुपुत मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
संकर-भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ॥' (रामचरितमानस)

सख्यभाव से हनुमान्‌जी से कहते हैं—

'प्रत्युपकार करौं का तोरा। सनमुख ह्वै न सकत मन मोरा ॥'

भरत और लक्ष्मण के विषय में क्या कहा जाय! शक्ति-आहत लक्ष्मण को गोदमें लिये रघुनाथजी कहते हैं—

'और निबाहि भली बिधि भायप, चल्यो लषन - सों भाई।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि, जेहि बन बिपति बँटाई ॥
ता संग हौं सुरलोक सोक तजि, सक्यों न प्रान पठाई।
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ॥
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई।
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनो गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुल कालिमा लगाई ॥'

( ६ ) 'शुक'—श्रीमद्‌भागवतमें शुकदेवने कहा है—

भजन्ति ये विष्णुमनन्यचेतसस्तथैव तत्कर्मपरायणा जनाः।
विनष्टरागादिविमत्सरा नरास्तरन्ति संसारसमुद्रमश्रमम्। '

( ७ ) 'प्रहलाद'—भक्तवर प्रह्लादका भी सिद्धान्त सुनिए—

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोऽज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्च्यात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ।'
—( श्रीमद्भागवत )

( ८ ) 'जानिबो तिहारे हाथ'—कहा भी है—

'सो जानै जेहि देहु जनाई।' —( रामचरितमानस )।

( ९ ) 'छ-मत'—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर-मीमांसा, इन छः शास्त्रों के मत, १५५ पद की पहली टिप्पणी देखिए।

( २५२ )

बाप, आपने करत मेरी घनी घटी गई।
लालची लबार की सुधारिये बारक, बलि,
रावरी भलाई सबही की भली भई ॥१॥
रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मन,
पर-अपवाद मिथ्या-बाद बानी हई।
साधन की ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि
बिगरी बनावै कृपानिधि को कृपा नई ॥२॥
पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबंधु दई।
इन्द्व में न एको भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो,
ताहिते त्रिताप-तयो लुनियत बई ॥३॥
स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलितें अधिक
परलोक फीकी मति लोक-रंग-रई।
बड़े कुसमाज राज आजुलौं जो पाये दिन,
महाराज! केहू भाँति नाम-ओट लई ॥४॥
रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि-कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥५॥

**शब्दार्थ**—घनी=बहुत। लबार=झूठा। बारक=(बार+एक) एक बार। अपवाद=निन्दा। हई=नष्ट की। दई=दयालु। जयो=जीता। जूझ्यो=युद्ध किया। रई=रँग गई। निरमई=बनाई। निलजई=बेशर्मी।

**भावार्थ**—हे पिता! मैने अपने ही हाथ अपनी करनी यहाँतक बिगाड़ डाली है (पहले मेरी करनी बहुत कुछ अच्छी थी, पर अब सब नष्ट हो गयी)। बलि-हारी! इस लोभी और झूठेकी बात एक बार तो सुधार दीजिए; क्योंकि जिस

जिसके साथ आपने भलाई की, उस-उसकी बात बन गयी (सो आज मेरी भी खोटी बात खरी कर दीजिए) ॥१॥ शरीर रोगी है, मन बुरी-बुरी इच्छाओंसे मैला हो गया है और वाणी दूसरोंकी निन्दा और वितंडावादसे खराब हो गयी है; रहे साधन, सो वे भी बिना साधे सिद्ध नहीं होते । इससे, हे कृपानिधे ! आपकी एक कृपा ही ऐसी अनूठी है, जो मेरी बिगड़ी बातको बना देगी । (क्योंकि मुझसे न कर्म-कांड सध सकता है, न ज्ञान-निरूपण कर सकता हूँ, और न आपका भजन ही बनता है) ॥२॥ आप पापियोंका उद्धार करते हैं, दुखियों और अनाथोंके हितू हैं, जिनका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं उन्हें आश्रय देते हैं, दीनोंका भला करते हैं और सबपर दया-भाव रखते हैं । किन्तु, मैं तो इनमेंसे एक भी नहीं हूँ (मुझ-पर आप क्यों कृपा करेंगे ? ) । न तो मैंने ज्ञान प्राप्त करके अपने शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह ) के ही साथ युद्ध किया और न उनपर विजय ही प्राप्त की (उलटा उनके अधीन हो गया हूँ, फिर भला मेरा निस्तार कैसे होगा ? ) इसी-से मैं दैहिक, भौतिक और दैविक इन तीनों तापों से जल रहा हूँ । जो बोया सो काट रहा हूँ (किसे दोष दूँ ? ) ॥३॥ मैंने स्वाँग तो सरल-साधु-जैसा बना लिया है, पर दुराचारी इतना अधिक हूँ कि कलियुग भी मेरे सामने कुछ नहीं है । मेरी बुद्धिको पारमार्थिक विषय नीरस जान पड़ता है, क्योंकि वह संसार की बातों-में रँगी हुई है (विषय-वासनाएँ ही उसे अच्छी लगती हैं, पुत्र-कलत्र और धनपर वह लालायित हो रही है )। हे महाराज ! इस बुरे समाजके साथ आजतक जितने दिन बीते वे व्यर्थ ही गये । आज किसी-न-किसी तरह आपके नामका आश्रय लिया है ( इससे समझ पड़ता है, कि अब मेरे दिन फिरेंगे और करनी सुधर जावेगी ) । आप भलीभाँति जानते हैं, कि आपके नामका कैसा प्रताप है । सिवा आपके नामके विधाताने मेरे लिए तो दूसरी गति बनाई ही नहीं है । मेरा भला तो एक आपके नामसे ही होगा, यह मुझे निश्चय है । आपके असंतुष्ट होनेके लायक मेरे करोड़ों कुकर्म हैं, किन्तु संतुष्ट होनेके लायक एक निर्लज्जता ही है । मेरी निर्लज्जतापर ही प्रसन्न होकर कृपा कर दीजिए, (क्योंकि मेरी निर्लज्जता अनोखी है) । ॥४॥

**टिप्पणी—(१) 'स्वांग सूधों साधु को ''' रई'—कलियुगी साधुओं की ओर संकेत जान पड़ता है । व्यासजीने भी यही बात कही है—**

'साधत बैरागी जड़ बंग ।
धातु रसायन औषध सेवत, निसिदिन बढ़त अनंग ॥
सुक-बचनन को रंग न लाग्यो, भयो न ससय-भंग ।
बिष-बिकार गुन उपजै बित लगि सबै करत चित-भंग ॥
बनमें रहत, गहत कामिनि-कुच, सेवत पीन उतंग ।
धनि धनि साधु ! दंभ की मूरति, दियो छाँड़ि हरि-संग ॥
लोभ-बचन बानति अँग-अँगनि सोभित निकर-निखग ।
'व्यास' आस जमपास गरे तिहि भावै राग न रंग ॥'

( २ ) **'लुनियत बई'**—
'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'
'तुमसों कहा न होय, हा हा ! सो बुझैये मोहि ।'
हौं हूँ रहौं मौन ह्वो, बयो सो जानि लुनिए ॥'—(हनुमान्बाहुक)

## ( २५३ )

**राम राखिये सरन, राखि आये सब दिन ।**
**बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो,**
**आरत-प्रनत पाल को है प्रभु बिन ? ॥१॥**
**लाले-पाले, पोषे-तोषे आलसी अभागी अघी**
**नाथ पै अनाथनि सों भये न उरिन ।**
**स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो-तैसो**
**काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥२॥**
**खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार**
**'तुलसी तू मेरो,' बलि, कहियत किन ?**
**जाहि सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल,**
**महाराज ! राम ! रावरी सौं तेहि छिन ॥३॥**

**शब्दार्थ**—अघी=पापी । उरिन=(उऋण) बेबाक । घनी=बहुत । अनख=क्रोध ।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजो, मुझे अपनी ही शरणमें रखिए, क्योंकि आप सदासे

दीनोंको अपनाते आये हैं। यह प्रत्यक्ष है, कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपके समान कृपालु कोई दूसरा नहीं है। हे नाथ! आपको छोड़कर दुखियों और दीनोंकी रक्षा करनेवाला कौन है? (कोई भी नहीं) ॥१॥ आपने आलसी, अभागे और पापी लोगोंका लालन-पालन किया, पाला-पोसा और प्रसन्न रखा, तिसपर भी आप उनसे उऋण नहीं हुए, कर्जदार ही बने रहे। हे प्रभो! आप तो समर्थ हैं, पर मैं जैसा हूँ, तैसा आपहीका हूँ (मेरा कहीं कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, न मेरा कोई धनीधोरी ही है)। कलिकालकी कुटिल चाल देखकर मेरे हृदयमें बड़ी घिन हो रही है (यह शंका है, कि कहीं यह दुष्ट आपके चरणोंकी ओरसे मेरे मनको फेर न दे, तो सब बनी-बनायी बात मिट्टीमें मिल जाय) ॥२॥ बलिहारी! एक बार नाराजीसे, अथवा राज़ी से, मुसकराकर या तेवरी चढ़ाकर; किसी भी तरह सही, इतना क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी, तू मेरा है'? इतना कह देने मात्र से ही मेरा सारा दुःख जड़से उखड़ जायगा, दुःखका लेश भी न रहेगा। हे महाराज रामचन्द्रजी! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ, उसी क्षण समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायँगे (क्योंकि 'भगवदीय' होनेमें ही सच्चा और संपूर्ण आनन्द है) ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'काल-चाल······घिन'—कलिकाल की माया देखकर व्यासजी भी घबराकर कह रहे हैं—**

'धर्म दुरयौ, कलिराज दिखाई।
कीनों प्रगट प्रताप, आपुनो सब बिपरीत चलाई॥
धन भो मीत, धर्म भो बैरी, पतितन सों हितवाई।
जोगी जती तपी संन्यासी ब्रत छाँड्यो अकुलाई॥
बरनास्रम की कौन चलावै, संतनहू में आई।
देखत संत भयानक लागत, भावते ससुर जमाई॥
संपति सुकृत सनेह मान चित ग्रह ब्यौहार बड़ाई।
कियों कुमंत्री लोभ आपुनो महा-मोह जु सहाई॥
काम क्रोध मद मोह रु मत्सर दीन्हीं देस दुहाई।
दान लेन को बड़े पातकी मचलन को बँभनाई॥

लरन-मग्न को बड़े तामसो बारौ कोटि कसाई।
'व्यासदास' के सुकृत साँकरे में गोपाल सहाई ॥'

( २ ) 'जाहि ··छिन—'क्योंकि—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥'—( श्रीमद्भागवत )

( २५४ )

राम, रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन, सनेही, गुरु, साहिब, सखा, सुहृद,
राम-नाम-प्रेम-पन अबिचल बितु है ॥१॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि* मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहूँ फल को फल,
सुमिरिये छाँड़ि छल, भलो कृतु है ॥२॥
स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम
राम-नाम सारिखो न और दूजो हितु हैं।
तुलसी सुभाव कही, साँचिये परैगी सही
सीतानाथ-नाम नित चितहूँ को चितु हैं† ॥३॥

**शब्दार्थ**—बितु=( वित्त ) धन। दधिनिधि=दहीका समुद्र। वामदेव=शिवजी। कृतु=कर्म, यज्ञ। स्वारथ=व्यवहार। परमारथ=मोक्ष।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! आपका नाम ही मेरा माता-पिता, सगा-सम्बन्धी, प्रेमी, गुरु, स्वामी, मित्र और सखा है। और, आपके नाम से जो मेरा अविरल प्रेम है, वही मेरा अटल धन है ( और धन तो खर्च करनेसे कम हो जाते हैं, पर आपका नाम-धन दिन-पर-दिन बढ़ता है, अतएव अक्षय है ) ॥१॥ शिवजीने सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि-सागरसे नामरूपी घी मथकर निकाला है

---

* पाठान्तर 'दयानिधि।' † पाठान्तर 'सीतानाथ नाथनके चितहू को चितु है; सीतानाथ-नाम चितहू को चितु है।'

( आपके समस्त चरित्रोंका सार 'रामनाम' ही माना है )। आपके नामका बल-भरोसा चारों फलों का फल अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका साररूप है। अतएव कपटभाव छोड़कर इसी का स्मरण करना चाहिए। यही सर्वोत्तम यज्ञ है। ( कलियुग में नाम-कीर्त्तनके तुल्य कोई भी यज्ञ नहीं है) ॥२॥ आपका नाम स्वार्थका साधनेवाला अर्थात् सांसारिक सुख देनेवाला एवं परमार्थ, मोक्षका प्रदान करनेवाला है। श्री रामनामके समान हित करनेवाला और कोई भी नहीं है। यह बात तुलसीने स्वभावसे ही कही है, निष्कपटभाव से कही है, सो सचमुच ही इसपर सही पड़ेगी। हे जानकीरमण! आपका नाम चित्तका भी चित्त है (चैतन्य आत्माको भी चैतन्य करनेवाला है, परमार्थका साधक एवं जीवका उद्धारक है) ॥३॥

**टिप्पणी—( १ ) 'नामको भरोसो'—गोसाईंजीने अन्यत्र कहा है—**

'राम-नाम पर राम तें, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन-सुमंगल-कोस॥
राम-नाम-अवलंब बिनु, परमारथ की आस।
बरषत वारिद बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास॥'

**(२) 'भला क्रतु है'–राम-नामरूपी यज्ञ का फल सद्यः सुफल है। कहा भी है**

'तुलसी प्रीति प्रतीति सों, राम-नाम-जप-जाग।
किये कोई विधि दाहिनो, देइ अभागेहि भाग॥'

**( ३ ) 'परमारथ-दायक'—यथा—**

'अविकारी विकारी वा, सर्वदोषैकभाजनः।
'परमेशपदं याति, रामनामानुकीर्त्तनात्॥' ( विष्णुपुराण )

( २५५ )

**राम! रावरो नाम साधु-सुरतरु है।**
**सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत काम**
**सकल-सुकृत-सरसिज को सरु है॥१॥**
**लाभहू को लाभ, सुखहू को सुख सरबस,**
**पतित-पावन, डरहू को डरु है।**
**नीचे हू को, ऊँचे हू को, रंक हू को राव हू को,**
**सुलभ, सुखद अपनो सो घरु है॥२॥**

बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,
नाम-प्रेम चारिफल हू को फरु है।
ऐसे राम-नाम सों न प्रीति न प्रतीति मन,
मेरे जान जानिबो सोई नर खरु है ॥३॥
नाम सो न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु
साहिब सुधी सुसील—सुधाकरु है।
नाम सों निबाह नेह, दीन को दयालु देहु
दासतुलसी को, बलि, बड़ो बरु है ॥४॥

**शब्दार्थ**—सरु=तालाब। पुरारि=पुर दैत्यके शत्रु, शिवजी। फरु=फल। खरु=( खर ) गधा। सुधी=बुद्धिमान्। बरु=बल।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी। आपका (राम) नाम साधुओंके लिए कल्पवृक्ष है। उसका स्मरण करनेसे तीनों ताप (दैहिक, भौतिक और दैविक) दूर हो जाते हैं। चित्त शान्त और सुखी हो जाता है, समस्त कामनाएँ सफल हो जाती हैं। क्योंकि वह समग्र पुण्यरूपी कमलोंका सरोवर है ( पुण्य-प्रतापसे ही त्रिविध ताप दूर होता है और चित्तमें सुख-शान्ति का उदय होता है ) ॥१॥ वह लाभका भी लाभ, सुखका भी सुख और सर्वस्व है। वह पापियोंका उद्धार-कर्त्ता और भयका भी भय, अर्थात् मृत्युको भी भयभीत करने वाला है ( अजामेलके मुखसे भगवन्नाम निकलते ही यमदूत डरकर भागे थे )। वह नीचको,ऊँचको, रंकको, रावको, सभी को सुगम है। सभीको सुख देनेवाला है। और अपने निजी घरके समान आराम देनेवाला है। ( जो उसे जपते हैं, उन्हे किसी प्रकारका दुःख नहीं रहता, सदा चैनसे रहा करते है ) ॥२॥ वेदोंने, पुराणोंने और शिवजीने भी पुकार-पुकारकर कहा है, कि रामनामसे लौ लगाना चारों फलोंका फल है (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का भी सार है )। ऐसे श्रीराम-नामपर जिसका प्रेम और विश्वास नहीं है, मेरी समझमें, उस मनुष्यको गधा समझना चाहिए( जैसे गधेको दिनरात पीठपर बोझा लादे हुए घूमना पड़ता है, उसी प्रकार वह मनुष्य जीवन-भार ढोता हुआ रात-दिन भटकता फिरता है ) ॥३॥ पिता, माता, मित्र, हितकारी, भाई, गुरु और स्वामी, इनमेंसे कोई भी श्रीराम-नामके समान नहीं है। वह बुद्धि-स्वरूप,

शीलमूर्ति और चन्द्रमाके समान सुन्दर हैं। हे कृपालो ! बलिहारी—तुलसीदासको वही महान बल दीजिए, जिससे आपके नाम के साथ उस दीनका प्रेम निभ जाय ( बीचमें कोई बाधक न हो ) ॥४॥

टिप्पणी—( १ ) 'साधु सुरतरु है'—इसका यह भी अर्थ हो सकता है, कि श्रीरामनाम सन्त और कल्पवृक्ष दोनोंके ही समान सब फलों का देनेवाला है। साधु से जो कुछ भी माँगो, वह दे देता है। यही प्रभाव कल्पवृक्षका भी है। अतएव साधु और कल्पवृक्ष दोनों ही नाम के उपनाम हो सकते हैं।

( २ ) 'पुरारि हू कह्यो'—देखिए, काशी की बीथियोंमें कोई जटिल तपस्वी क्या कहता फिरता है—

'पेय-पेय श्रवणपुटके रामनामाभिरामम्;
ध्येय-ध्येय मनसि सतत तारक ब्रह्मरूपम्।
जल्प्य-जल्प्य प्रकृति विकृतौ प्राणिना कर्णमूले,
वीथ्या-वीथ्या अटति जटिल कोपि काशी-निवासी॥'

कदाचित् यह जटिल काशी-निवासी भगवान् शंकर ही हैं।

( ३ ) 'सोई नर खरु है'—भगवद्विमुख जीव को गधेकी उपाधिसे विभूषित करना कोई नई बात नहीं है। श्रीमद्भागवत में भी इसका प्रमाण मिलता है। स्वयं श्रीमुखसे भगवान्ने कहा है—

'यथा खरश्चन्दन-भारवाही भारस्य वेत्ता नतु चंदनस्य।
तथाहि विप्रा षट्शास्त्रयुक्ताः मद्भक्तिहीना खरवद्वहन्ति॥'

( ४ ) 'बरु है'—श्रीबैजनाथजी और भट्टजी ने इसका अर्थ 'वरदान' किया है।

( २५६ )

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत।
तुमसे सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो
काल की करम की कुसाँसति सहत॥१॥
करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत ?

**नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर**
**हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत* ॥२॥**
**सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु, आप**
**माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत।**
**मेरी तौ थोरी ही† है सुधरैगी बिगरियो**
**बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥३॥**

**शब्दार्थ**—कुसाँसति = असह्य कष्ट। हहरि = घबराकर।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! बिना कहे तो रहा नहीं जाता और कहदेने पर कुछ रस नही रहता (मज़ा किरकिरा हो जाता है)। आप सरीखे सुन्दर स्वामीकी शरण पाकर भी आपका सेवक—भलेही वह बुरा या भला हो—दारुण दुःख भोग रहा है, जो काल और कर्मके कारण हो रहे हैं (यही बात है जो मुँहसे रोकने पर भी निकल आती है। यदि किसी दूसरेको यह सुनाऊँ तो उसमें क्या रस रहेगा? क्योंकि कोई मेरा क्लेश तो हरेगा नहीं, उलटा हँसी उड़ायेगा ॥१॥ बिचार किया करता हूँ, पर कहीं कुछ सार नहीं मिलता, ठीक-ठीक समझमें नहीं आता कि सब लोगोने कहाँसे बड़प्पन पाया है, वह कौन-सा द्वार हैं, जहाँसे ये लोग बड़े बन-बनकर आते हैं। आपकी महिमा सुन-समझकर और फिर अपनी ओर देखकर निराश हो जाता हूँ और घबराहटसे हृदय जलने लगता है (यह सुनकर, कि आप पतित-पावन हैं, मै आपकी शरणमें जाना चाहता हूँ, पर जब आपकी ओरसे कोरा जवाव मिलता है, तव जीमें हार मानकर निराश बैठ जाता हूँ। और हृदयमें जलन होनेसे कुछ-का कुछ बकने लगता हूँ) ॥२॥ सुनिए, न तो मेरा कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है और न सुन्दर स्त्री है। हे नाथ! मेरे तो सच्चे माई-बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच बात कह रहा है (कविकल्पना न समझिएगा) मेरी तो थोड़ी ही वात है, बिगड़ने पर भी सुधर जायगी, किन्तु, बलिहारी! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ—मै आपकी लाज रखना चाहता हूँ (कहीं संसारमें आपका यह उपहास न हो, कि भगवान्‌की जन-वत्सलता अथवा

* पाठान्तर 'हेरि कै हारिकै हहरि हृदयउ दहत'; हेरि कै हारि हरि हृदय दहत।' † पाठान्तर 'मेरी तौ थौरी है।'

पतित-पावनता मिथ्या है। इसलिए यदि आपको अपनी लाज रखनी है, तो मुझे तार दीजिए, नहीं तो व्यर्थ ही आपकी कीर्तिमें धब्बा लग जायगा)॥३॥

टिप्पणी—(१)'सकल......लहत'—जैसे वाल्मीकि बहेलिया थे, किन्तु पीछे महर्षि और आदिकवि माने गये; काकभुशुण्डि शूद्र थे, पर पीछे महान् तत्त्ववेत्ता होगये; नारद दासी-पुत्र थे, किन्तु उनकी गणना प्रधान भागवतोंमें हुई; व्यास मत्स्योदरीके पुत्र थे, किन्तु वह भी महर्षिपुंगव कहे गये, ऐसे अनेक उदाहरण हैं। इन सब लोगोंने श्रीरघुनाथजीके भजनके प्रभावसे ही महत्त्व प्राप्त किया। अतएव भगवद्भक्ति ही सर्वप्रधान है।

(२५७)

दीनबंधु दूरि किये दीन को न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ,
सब को भलो है, राम! रावरो चरन॥१॥
पाहन पसु पतंग कोल भील निसिचर
काँच ते कृपानिधान किये सुबरन।
दंडक-पुहुमि पाँय परसि पुनीत भई
उकठे बिटप लागे फूलन फरन॥२॥
पतित-पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव
दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन।
सीलसिंधु तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा,
तोसों तुही तुलसी को आरति-हरन॥३॥

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी। उकठे=उखड़े हुए, सूखे पड़े हुए। बाम= प्रतिकूल। दाहिनो=अनुकूल, प्रसन्न। दुनी=दुनिया। दरन=दलनेवाले, नाशक।

भावार्थ—हे दीनबंधो! यदि आपने इस दीनको सामनेसे हटा दिया, तो फिर इसे कहीं और शरण न मिलेगी। क्योंकि अपनी भलाई चाहनेवाले तो प्रायः सभी हैं, किन्तु अपने सेवकोंका भला करनेवाला कोई एकाध है (लाखमें एक मिलेगा)। किन्तु, हे रघुनाथजी! आपके चरण ऐसे हैं, जो सभीका भला करनेवाले हैं (आपके चरणोंके चिंतवनसे ही समस्त जीवोंका कल्याण होता

है ) ॥१॥ पाषाणी ( अहल्या ), पशु ( बंदर, रीछ ), पक्षी ( जटायु ), कोल-भील, राक्षस (विभीषण) आदि पहले काँचके समान थे, किन्तु, हे कृपानिधान ! आपने उन्हें सुवर्ण बना दिया ( क्षुद्रसे उच्च कर दिया ) । दण्डकारण्यकी भूमि आपके चरणोंको छूकर पवित्र हो गई और उखड़े हुए सूखे पत्ते फिर फूलने-फलने लगे ॥२॥ जो जीव आपके विमुख रहे हैं, उनके लिए भी आपका पतितपावन नाम अनुकूल होजाता है, अथवा आपका पतित-पावन नाम विमुख और सम्मुख दोनों ही प्रकारके जीवोंको पवित्र करनेवाला है । हे देव ! आपके समान संसारमें दारुण दुःखों और दोषोंका दूर करनेवाला कोई दूसरा नहीं है । आप शीलके तो समुद्र ही हैं, अतएव आपसे नीची-ऊँची बात कहनेमें भी शोभा है ( क्योंकि आप सब कुछ सह लेते हैं, कभी बुरा नहीं मानते ) । आपकी भलाईका कहना ही क्या है ! आपसे आप ही हैं । तुलसीके दुःख दूर करनेवाले एक आप ही हैं ( इसीसे मैं आपके द्वारपर धरना दिये बैठा हूँ ) ॥३॥

**टिप्पणी—(१)'दीनबंधु……सरन'—कहीं ऐसा न करना, कि—**

'हरि 'रहीम' ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूरि ।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूरि ॥'

**क्योंकि मुझे फिर कहाँ ठौर ठिकाना मिलेगा ?**

**(२) 'पाहन'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए ।**

**(३) 'पतंग'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए ।**

**(४) 'कोल'—गुह निषाद; १०६ पदकी तीसरी टिप्पणी देखिए ।**

**(५) 'भील'—वाल्मीकि; ६४ पदकी चौथी टिप्पणी देखिए ।**

**(६)' निसिचर'—बिभीषण; १४५ पदकी पाँचवी टिप्पणी देखिए ।**

**(७) 'दंडक……भई'—दण्डकारण्य शुक्राचार्यके शापसे अपवित्र होगया था । उसके वृक्ष, लता, तृण आदि सब सूख गये थे । वहाँ कोई भी नहीं जाता था । दलितोद्धारक भगवान् रामचन्द्रजीने दण्डक वनको, प्रवेश करते ही, पवित्र कर दिया और पूर्ववत् उसके वृक्षादि फिर हरे-भरे होगए ।**

( २५८ )

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं ।

करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥१॥
मोसे दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।
गाड़ी के स्वान की नाईं, माया मोह की बड़ाई
छिनहि तजत, छिन भजत बहोरि हौं ॥२॥
बड़ो साईं-द्रोही न बराबरी मेरी को कोऊ
नाथ की सपथ किये कहत करोरि हौं।
दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची
सुधा सों सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं ॥३॥
राखिये नीके सुधारि, नीच को डारिये मारि,
दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढील किये नाम-महिमा की नाव बोरिहौ ॥४॥

**शब्दार्थ**—खोरि = दोष। दोस-कोस=अपराधोंका खजाना, महान् अपराधी। भुवन-कोस=चौदहों लोकोंसे तात्पर्य है। टकटोरि आयो=खोज डाला। लबार= झूठा। गहडोरिहौं = मथ कर मैला कर दूँगा।

**भावार्थ**—हे कृपानिधान! जान-पहचानकर भी मैंने आपको भुला दिया है। और, गर्वके मारे ऐसा ढीठ हो गया हूँ कि, उलटा आपही पर दोष मढ़ता हूँ (कि आप, शीलसिन्धु होकर भी, मेरे लिए ढील कर रहे हैं, मुझे तारते नहीं हैं)। जिससे प्रीति जोड़नेके लिए बड़े-बड़े योगी यत्न किया करते हैं, उससे येनकेन प्रकारेण थोड़ी-सी प्रीति जुड़ गयी थी, सो मैं ऐसा कर्महीन हूँ, कि बैठकर उसे अपने ही हाथसे तोड़ डाला है (विषयोंमें फँसकर भगवद्भक्तिसे विमुख हो गया हूँ) ॥१॥ चौदहों लोकोंमें मेरे समान अपराधोंका निधान दूसरा नहीं है, मैं अद्वितीय अपराधी हूँ। अपनी समझमें तो मैंने खूब ढूँढ़ डाला है (तथापि कहीं कोई मेरे समान दोष-भाजन नहीं मिला)। जैसे गाड़ीके पीछे लगा हुआ कुत्ता

कभी गाड़ीको छोड़कर आगे बढ़ जाता है और कभी दौड़कर उसके साथ हो लेता है, वैसेही मैं माया-मोहके बड़प्पनको कभी तो क्षण मात्रामें ही छोड़ बैठता हूँ ( कभी मरघट-वैराग्य चढ़ जाता है ) और क्षण भरमें ही फिर उसीको बटोरने लगता हूँ ( सारांश, चित्त बड़ा ही चंचल है, दृढ संकल्प तो कभी होता ही नहीं है ) ॥२॥ मैं आपकी करोड़ों शपथ खाकर कह रहा हूँ, कि स्वामी के साथ द्रोह करनेवाला मेरी बराबरीका कोई भी नहीं है। इसलिए मुझ झूठे, लंपट और लुच्चे को द्वारसे हटा दीजिए, नहीं तो मैं अमृत-जैसा जल शूकरकी तरह गँदला कर डालूँगा ( आपके निर्मल यशको मलिन कर दूँगा। दुनिया भरमें यह कहता फिरूँगा, कि रघुनाथजीकी पतित-पावनता झूठी है, व्यर्थ ही वह भक्त-वत्सल और दीनबन्धु बने फिरते हैं ) ॥३॥ या तो मुझे अच्छी तरह शरणमें रख लीजिए और या मुझ नीचको मार डालिए ( क्योंकि यदि मैं जीवित रहूँगा, तो आपकी बदनामी करता फिरूँगा, इससे दुष्टको मार डालना ही अच्छा है )। बस, आप अब इन दोनों बातोंपर विचार कर लीजिए, अब मैं आपका निहोरा न करूँगा ( जो करना हो, वह तुरन्त तय कर दीजिए, मुझे अब हा हा करने की आवश्यकता नहीं )। बारबार लकीर खींचकर तुलसीने सच बात कह दी है। देखिए, जो आप ( मेरे फैसले में ) देरी करेंगे, तो मैं आपके नामकी महिमारूपी जो नौका है, उसे डुबो दूँगा। भाव यह है, कि जहाँ-तहाँ यह कहता फिरूँगा, कि राम-नाम जपनेसे कुछ नहीं होता ( वह कोरा ढकोसला है ) ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) 'मोसे…टकटोरिहौं'—यही तो सूरदासजीने कहा है—**

'हरि, हौं सब पतितन को राव।
को करि सकै बराबरि मेरो, सोधौ मोहि बताव॥
व्याध गीध अरु पतित पूतना तिनमें बढ़ि जो और।
तिनमें अजामेल गनिका पति, उनमें मैं सिरमौर॥
जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई, मो समान नहिं आन।
सब रहे आज-कालिह के राजा, हौं तिनमें सुलतान॥
अबलौं तो तुम बिरद बोलायो, भई न मोसो भेट।
तजौ बिरद कै मोहिं उधारो सूर गही कटि-फेंट॥'

**( २ ) ढील किये……'बोरिहौं'—जीव अणु होनेके कारण स्व भावसे ही**

अधीर है ! गोसाईंजी महाराज तो धमकी ही दे रहे हैं, कि जल्दीसे मुझे तारो, नहीं तो मैं नाम-महिमाकी नौकाको डुबा दूँगा, पर कविवर बिहारीको धीरज न बँध सका, वह तो इतना कह ही उठे—

'कब को टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुम ही लागी जगतगुरु, जगनायक ! जगबाय ?'

सहृदय 'प्रीतम' ने इस दोहेको एक शेरमे ढाला है—

'हूँ कब का मुल्तिजी सुनते नहीं कुछ इल्तिजा साहिब !
तुम्हें भी लग गई शायद जमाने की हवा साहिब !' ( गुलदस्तए बिहारी* )

( २५६ )

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि, बेद की न. लोक कहा कहैगो ?
प्रभु को उदास-भाव जन को पाप-प्रभाव,
दुहूँ भाँति दीनबन्धु ! दीन दुख दहैगो ॥१॥
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत† परबस, को न सहैगो ?
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु !
अन्त मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो ? ॥२॥
करमी, धरमी, साधु, सेवक, बिरत, रत,
आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो ?
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ॥३॥
काल पाय फिरत दसा दयालु, सब ही की,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो।
बचन करम हिये कहौं राम ! सौंह किये,
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥४॥

**शब्दार्थ**—उदास = निरपेक्ष; लापरवाह। पबि = वज्र। साँसति = कष्ट।

---

*यह पुस्तक भी हमारे ही यहाँ से प्रकाशित हुई है। † पाठान्तर 'सहस।'

करमी = कर्मकाण्डी, कर्मठ। रत = संसारी जीव, मोही। लटे = नीच, खोटे। लटपटे = लथपथ, गिरे-पड़े। सौंह = सौगन्ध।

**भावार्थ**—यदि तुम्हारी बनाई हुई मेरी बात मेरे बिगाड़नेसे बिगड़ जायगी, तो तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ, कहो तो, संसार क्या कहेगा? वेदकी बात नहीं पूछता हूँ। ( वेदमें चाहे जो लिखा हो, उससे मुझे कोई मतलब नहीं, पर संसार क्या कहेगा? यही कहेगा न, कि तुलसी ही ईश्वर है, क्योकि रघुनाथजीकी बनाई बात उसने बिगाड़ दी। पर, ऐसा हो कैसे सकता है। मेरी क्या शक्ति, कि मै तुम्हारी बात बिगाड़ सकूँ? )। स्वामीकी तो निरपेक्षता और सेवकका पाप-प्रभाव यदि ये दोनो ही मिल गये, तो हे दीनबंधो! यह दीन दु:खके मारे जल मरेगा (सारांश यह, कि मै तो महापापी हूँ ही, पर तुम निरपेक्ष न हो जाओ, क्योंकि तुम्हें यह उदासीनता शोभा न देगी) ॥१॥ मैने तो छातीपर बज्र रख ही लिया है (हृदयको दुःख सहनेके लिए बज्रके समान कड़ा कर लिया है), कारण कि कलियुगने मुझे दबोच दिया है। और अब पराधीन होकर कष्ट भोग रहा हूँ। (मै ही क्या) जो भी परतन्त्र होगा, वह कष्ट भोगेगा। किन्तु, हे कृपानिधान! तुम्हें अपनी बाँकी विरदावलीके वश होकर मुझको पालना ही होगा (क्योकि पतित-पावन, भक्तवत्सल आदि तुम्हारे नाम हैं। यदि मेरी रक्षा न करोगे, तो लोग मुझे झूठा कहेंगे)। और अन्तसमय तो मेरा हाल देखकर तुम्हारा यह उदासीन भाव रह ही नही सकता, तुम्हें अवश्य ही पिघलना पड़ेगा (क्योकि जब पापी अजामेलको यमदूतोंने पकड़ा था, तब तुम उसका आर्त्तनाद सुनकर पानी-पानी हो गये थे ) ॥२॥ कर्म-काण्डी, धर्मात्मा, साधु, सेवक, विरक्त और संसारी जीव, ये अपने सत्कर्मोंसे कहाँ स्थान पायेंगे? ( जिसने जैसा सुकृत किया होगा, वह उसीके अनुसार स्वर्ग, ब्रह्म-लोक, शिवलोक आदिको चला जायगा, इसमें तुम्हारी कोई कृपा नहीं है)। पर तुम्हारे मुँह फेर लेनेसे, उदासीन हो जानेसे, मुझ-जैसे कायर, कुपूत, दुष्ट, नीच और गिरे-पड़े जीवोंको कौन अंगीकार करेगा? (कोई भी नहीं) ॥३॥ हे दयालो! समय आनेपर सभीकी दशा लौट आती है, सभीके दिन फिरते हैं, किन्तु तुम्हें छोड़कर मुझे तो कभी कोई न अपनायगा। भाव, मेरी दशा कभी पलटनेकी नहीं, यदि तुमने कृपा न की। हे रघुनाथजी! तुम्हारी शपथ खाकर, वचन, कर्म और मनसे कहता हूँ, कि इस तुलसीका निर्बाह तो तुम्हारे ही हाथमें है ॥४॥

टिप्पणी—(१) 'बाँकी बिरुदावली ... कृपालु'—न पालोगे, तो बिरदावलीमें बट्टा लग जायगा। बिलम्ब करनेसे यहाँ सुनना पड़ेगा, कि—

'वेद और पुरानन में कीन्हों है बखान ऐसो,
सतजुग बीच ध्रुव प्रह्लाद को तूठे हौ।
त्रेता बीच नीचकुल की न करी कानि कछु,
भीलनी के हाथ प्रभु खाये बेर जूठे हौ॥
द्वापरके अन्त तुम द्रौपदी की राखी लाज,
पांडव के काज दल कौरव के रूठे हौ।
अब कलिकाल में जो करो न सहाय मेरी,
तुम्हें लोग हँसिके कहैंगे—'हरि झूठे हौ॥'

( २६० )

**साहब उदास भये दास खास खीस होत**
**मेरी कहा चली ? हौं बजाय जाय रह्यो हौं।**
**लोक में न ठाऊँ, परलोक को भरोसो कौन ?**
**हौं तौ बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं॥ १॥**
**करम सुभाउ काल काम कोह लोभ मोह**
**ग्राह, अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं।**
**छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट,**
**पाहि, प्रभु पाहि, तिहुँ पाप-ताप-दह्यो हौं॥ २॥**
**रीझि बूझि सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,**
**दूध को जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।**
**रटत रटत लट्यो, जाति पाँति भाँति घट्यो**
**जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो * हौं॥ ३॥**
**अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो**
**नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।**

---

* पाठान्तर 'दूभौ ध्यौ।' 'दुह्यौ, नह्यौ।'

**तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार**
**अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निरबह्यो हौं ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**—खीस होत=बरबाद हो जाते है। बजाय=डंकेकी चोटसे, उजागर होकर। जाय रह्यो हौ = बिगड़ा जा रहा हूँ। कोह=क्रोध। ग्राह=मगर। गाढ़े=दृढतासे। भट=योद्धा। पाहि=रक्षा करो। मह्यो=मट्ठा। नह्यो न चहौं=नहाना नहीं चाहता। अनत=अन्यत्र।

**भावार्थ**—जब मालिक अपना रुख फेर लेता है, तब खास नोकर तक बरबाद हो जाता है, फिर मेरी तो पूछनी ही क्या है? मै तो डंकेकी चोटसे बिगड़ा जा रहा हूँ, ऐसा बिगड़ गया हूँ, कि संसार भर जानता है। जब कि, मेरे लिए इस दुनियामें ही कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है, तब परलोकका क्या विश्वास है! ( कौन जानता है, कि मरने के बाद मुझे स्वर्ग मिलेगा? ) हे नाथ! मैं आपकी बलैयाँ लेता हूँ, मै तो एक राम-नाम हीके हाथ बिक चुका हूँ ( वही मेरे लिए लोक है और वही परलोक ) ॥१॥ मुझ गरीबको कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध लोभ और मोह-रूपी बड़े-बड़े ग्राहोंने खूब ज़ोरसे पकड़ लिया है। ( तात्पर्य यह, कि, जैसे आपने गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ा लिया था, वैसे ही मुझे भी इन विकराल ग्राहोकी पकड़से खींच लीजिए, क्योंकि ) हे महाराज! बन्धन काटनेके लिए तो केवल एक आप हैं और बाँधनेके लिए करोड़ों योद्धा हैं। इससे, हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिए। मैं पापरूपी तीनो पापेंसे जल रहा हूँ ( अपनी कृपावृष्टिसे इस अग्निको बुझा दीजिए) ॥२॥ (कदाचित् आप यह कहें, कि हमारे ही पास बारबार आ जाता है, और कहीं क्यों नहीं जाता, तो ) हे प्रभो! सबका विश्वास और श्रद्धा तथा रीझ-बूझ एक आपके ही द्वार पर है। मैं दूधका जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता हूँ। भाव यह है, कि मुझे सभीने धोखा दिया है, इसलिए मै आपका द्वार छोड़कर और किसी देवी-देवताके पास नहीं जाता। मै तो अब बहुत ही बच-बचकर चल रहा हूँ। चिल्लाते-चिल्लाते मैं बेकाम हो गया हूँ। जाति-पाँति और चाल चलन सभीसे हाथ धो बैठा हूँ। अब मै केवल आपके जूठनका ही लालची हूँ। मैं दूध से नहीं नहाना चाहता। भाव, मुझे ऐश्वर्यकी इच्छा नहीं है, मैं तो केवल आपका प्रेम-प्रसाद चाहता हूँ ॥३॥ मै और कहीं सुमार्गपर अच्छी चाल चलकर अपना भला नहीं चाहता हूँ। और यहाँ आपके

द्वारपर मैं तिरस्कृत होकर भी अच्छा हूँ। (तात्पर्य यह है, कि और किसी देवी देवताके सान्निध्यमें रहकर धर्म-पालन करता हुआ भी निःशंक नहीं रह सकता, क्योंकि वह तनिक-सी भूलपर रुष्ट होकर भ्रष्ट कर देगा, और आप निरादर भी करेंगे, तो भी मुझे प्रसन्नता है, क्योंकि मा-बाप की अप्रसन्नता अच्छाईके लिए ही होती है)। तुलसीने समझ कर अपने मनको बार-बार समझा बुझा दिया है और वह अपने स्वामी से भी कहकर निश्चिन्त हो गया है, उसका निर्वाह आपके ही हाथमें है ॥४॥

टिप्पणी—( १ ) 'लोक में ·····कौन'—क्योंकि—

'जाकी यहाँ चाहना है, ताकी वहाँ चाहना है,
जाकी यहाँ चाह ना है, ताकी वहाँ चाह ना।'

**( २ ) 'दूध-नह्यो'—श्री बैजनाथजी 'दूधौ ध्यौ हौं' पाठ मानते हुए यह अर्थ लिखते हैं कि—"दूध घृतादि उत्तम भोजन चाहता नहीं।" और स्वर्गीय भट्टजी 'न दूह्यो नह्यौं हौं' ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ कर रहे है कि "कुछ दूध मलाई नहीं चाहता हूँ।" नह्या का अर्थ मलाई लिखा गया है। हमें नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रति अधिक शुद्ध जान पड़ती है उसमें 'दूध-नह्यो' पाठ है, मुहावरा भी है, कि वह तो दूधसे नहा रहा है अर्थात् बड़ा भारी विभवशाली है। आशीर्वाद देती हुई बड़ी-बुढ़ी स्त्रियाँ भी बहू-बेटियोंसे कहा करती हैं, 'दूधों नहाओ, पूतों फलो।'**

**( ३ ) 'जूठनि को लालची'—इस 'जूठन' पर व्यासजीका निम्नलिखित पद याद आ जाता है। अहा! क्याही ऊँचा भाव है!**

'ऐसे ही बसिये ब्रज-बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोखिए सीथिन॥
घूरन मेंके बीन चिनगटा, रच्छा कीजै सीतन।
कुंज-कुंज प्रति लोटि लगै रज उड़ि ब्रज की अंगीतन॥
नितप्रति दास स्याम-स्यामाको नित जमुना-जल पीतन।
ऐसेहि 'व्यास' रुचै तन पावन ऐसेहि मिलत अतीतन॥'

**( ४ ) 'अपनो ·····निरबह्यो हौं'—बस,**

'अरजी हमारी, आगे मरजी तुम्हारी है।'

## ( २६१ )

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं
राम! रावरे बनाये बनै पल पाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
लिये बेर बदलि अमोल-मनि-आउ मैं॥ १॥
मानस मलीन, करतब कलिमल पीन
जीह हू न जाप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहू भलो,
बाल-दसा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं॥ २॥
देखा-देखी दंभ तें कि संग तें भई भलाई
प्रकटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं।
राग रोष द्वेष पोषे, गोगन समेत मन,
इनकी भगति कीन्हीं इनही को भाउ मैं॥ ३॥
आगिली पाछिली, अबहूँ की अनुमान ही तें
बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं।
जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हू
झूठे साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं॥ ४॥

**शब्दार्थ**—आउ = आयु। पीन = पुष्ट। जीह = जीभ। आउ-बाउ = आयँ बायँ, अंट-संट। दुरित = पाप। गोगन = इन्द्रियोंका समूह। काउ = कभी।

**भावार्थ**—मेरी करनी मेरे बनानेसे करोड़ों कल्प-पर्यन्त भी न बनेगी। किन्तु, हे रघुनाथजी! आप चाहें तो पाव पलमें ही उसे बना दे सकते है। हे कृपा-निधान! मैं क्या कहूँ, आप तो स्वयं परमचतुर हैं, मैंने अनमोल मणिके समान आयुके बदलेमें बेर ले लिये! भाव, विषयोंमें सारी आयु व्यर्थही गँवा दी, आपका भजन-भाव कुछ भी नहीं किया॥ १॥ मन मलीन हो गया और कर्म कलियुगके कारण और भी पुष्ट हो गये, नित्य नये पाप बढ़ते गये। रही जीभ, सो उससे भी आपका नाम नहीं जपा, नित्य आयँ-बायँ-साँय ही बकता रहा ( इस प्रकार

मन, वचन और कर्म तीनोंसे ही बेकार हो गया) बुरे-बुरे मार्गोंपर बुरी चालें चलता रहा (काम-क्रोधमें ही सना रहा)। भूलकर भी कभी कोई अच्छा काम नहीं बन पड़ा। अरे! बचपनमें भी कभी खेलते समय अच्छा दाव हाथ नहीं लगा ( भगवत्संबन्धी खेल नहीं खेला ) ॥२॥ हाँ, किसीकी देखा-देखी या सत्संगसे कभी कोई भलाई बन गयी, तो उसे ढिंढोरा पीटता हुआ कहता फिरा, और पापोंको छिपा लिया। राग-द्वेष, क्रोध और इन्द्रियाँ एवं मन अत्यन्त पुष्ट किये अथवा इन्द्रियों और मनको राग-द्वेष और क्रोधसे खूब मोटा किया। इन्हींकी भक्ति की और इन्हींका भाव ( सदा इन्द्रिय-लोलुप ही बना रहा ) ॥३॥ मैंने बीते हुएका, अबका और आनेवालेका अनुमान कर लिया है, कि मैंने कभी कोई भला काम नहीं किया, त्रिकालमें भी अच्छा काम नहीं किया। किन्तु संसार कह रहा है, कि—'तुलसी रामजीका है' और मुझे भी रघुनाथजीपर पूर्ण विश्वास है और उनसे प्रेम है। अब चाहे झूठ हो, चाहे सच, हे स्वामिन्! मैं तो आपके ही आसरे पड़ा हूँ ॥४॥

टिप्पणी—( १ ) 'मेरी न·····कलप लौं'—ज्यों-ज्यों पारमार्थिक साधन कर-कर छूटनेका उपाय करता हूँ, त्यों-त्यों माया-मोहमें फँसकर और भी उलझता जाता हूँ। इस क्रमसे भला मैं कैसे अपनी करनी बना सकता हूँ?

'ज्यों-ज्यों सुरझन को चहत, त्यों-त्यों उरझन जात।'

( २ ) 'बाल···सुदाउँ'—ऊँटपटाँग खेल खेलता फिरा, कभी यह भी न हुआ, कि बालकोंके साथ 'रामलीला' का खेल खेलूँ। आजकलके नवयुक भारतीय खेलोंकी अवहेलना कर 'क्रिकेट, फुटबॉल और हॉकी' पर लट्टू हो रहे हैं। दुर्भाग्य है इनका, जो इन बेचारोंको कभी अच्छा दाँव हाथ नहीं लगता।

( २६२ )

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता ॥ १ ॥

दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामि समीचीनता।
नाथ-गुनगाथ गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता ॥ २ ॥
एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
मोटो दसकंध सो न, दूबरो बिभीषन सो,
बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ॥ ३ ॥
यहाँ को सयानप अयानप सहस सम,
सूधौ सतभाय कहे मिटति मलीनता।
गीध, सिला, सबरी की सुधि सब दिन किये
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता ॥ ४ ॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता।
करुनानिधान ! बरदान तुलसी चहत,
सीतापति - भक्ति-सुरसरि-नीर - मीनता ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**—पीनता=पुष्टि, मोटाई। सहमत=डर जाता है, पिछड़ जाता है। समाचीनता=सनातन स्वभाव। प्रवोनता=चतुरता। छेम=(क्षेम) रक्षा। मिसकीनता=ग़रीबी, नम्रता। अयानप=अज्ञान। हीनता=कमी।

**भावार्थ**—हे नाथ ! कुछ कहा नहीं जाता और बिना कहे धीरज नहीं बँधता। बलिहारी ! किन्तु अपनी ग़रीबी बड़े के आगे सुनाने में बड़ा आनन्द आता है (क्योंकि, यह आशा रहती है न, कि बड़े लोग ग़रीबी दूर कर देंगे)। अस्तु, स्वामीका बड़ा बड़प्पन और अपनी छोटी-सी क्षुद्रता, इसी प्रकार स्वामीकी पवित्रता और अपने पापों की अधिकता ॥१॥ इन दोनों ओरकी बातोपर विचार करके मन संकोचके मारे डर जाता है (आगे बढ़कर कहनेका साहस नहीं पड़ता)। किन्तु स्वामीकी सनातन रीति (पतित-पावनता, जन-वत्सलता आदि) सुनकर यह मन

फिर सामने जाता है। ( वह 'समीचीनता' यह है, कि ) हे नाथ! जो आपके गुणो और चरित्रोंका गान करता है और हाथ जोड़कर प्रणाम करता है उस नीच-को भी आप, अपनी प्रीति और पद्धतिकी चतुरतासे, निहाल कर देते हैं ॥ २ ॥ इस दरबारमें ( श्री रघुनाथजीके सामने ) गर्वसे सर्वनाश हो जाता है। यहाँ तो ग़रीबी और नम्रतासे ही योग-क्षेमका लाभ है। रावण-सरीखा तो कोई मोटा नहीं था, बलवान् और वीर नहीं था और विभीषणके समान कोई दुर्बल अर्थात् दीन नहीं था। किन्तु, वहाँ आपकी प्रेमाधीनता ही मुझे समझ पडी। अर्थात् शरणापन्न भक्त विभीषणको ही आपने अंगीकार किया, रावणका तो सर्वनाशकर डाला ॥३॥ यहाँ, अर्थात् आपके सामने जो चतुर बनता है, वह हजारों मूर्खों के समान है। यहाँ तो सीधे-सादे सच्चे भावसे स्वीकार कर लेनेमे ही पापोंका नाश होता है। यदि तू नित्य जटायु, अहल्या और शबरीकी याद किये रहेगा, तो स्वामीके प्रति तेरा प्रेम कभी कम न होगा। भाव यह, कि उन सबमें अहङ्कारका लेशमात्र भी नहीं था, इसीसे भगवान्ने उन्हे अपना अनन्य भक्त और कृपापात्र बनाया ॥४॥ आपका नाम कल्पवृक्षकी तरह सारी कामनाएँ सफलकर देता है। उसका स्मरण करते ही कलियुगके पाखंड और पाप क्षीण हो जाते हैं। हे करुणानिधान! तुलसी यही वर माँगा चाहता है, कि "वह श्रीसीतारमण रामचन्द्रजीकी भक्ति-भागीरथीके जलमें मछलीकी तरह डूबा रहे।" ( आपका अनन्य होकर रहे ) ॥ ५ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'गरीबी'—गरीबी पर एक कविने क्या अच्छा कवित्त कहा है—**

'करी है गरीबी तो बिभीषन ने राज पायो,
रावन ने करी खुदी खोई खूबी जान की।
ध्रुव ने गरीबी कै अटल पद राज पायो,
केसी कंस छेद्यो सुधि न रही गुमान की॥
द्रौपदी गरीबी करी नगन न होन पाई,
हारे पचि कौरौ देखि लीला भगवान की!
गरीबी और बंदगी को चारो बेद स्तुति करैं,
कहै को गरीबी? यह बीवी है जहान की॥'

और भी—

'ऊँचे-ऊँचे सब चलै, नीचे चलै न कोय,
जोपै, कोउ नीचे चलैं, ध्रुव तें ऊँचो होय ॥'

( २ ) 'मिसकीनता'—'मिसकीन' अरबीका शब्द है।

( ३ ) 'लाभ जोग छेम को'—जो अभिमान छोड़कर केवल भगवान्के आश्रयमें रहते हैं, उनके लिए भगवान् यह वचन दे चुके हैं—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते ।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहत् ॥'—(गीता)

(४) 'विभीषन'—१४५ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

(५) 'गीध'—जटायु; ४३ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

(६) 'सिला'—अहल्या; ४३ पदकी दूसरी टिप्पणी देखिए।

(७) 'सवरी'—१०६ पदकी पाँचवीं टिप्पणी देखिए।

(८) 'चहत······मीनता'—धन्य, गोस्वामीजी! भावना हो तो ऐसी। यह मनोराज्य महाभागोंको ही नसीब होता है। महात्मा सहचरिशरणजी ने भी अधीर होकर कुछ ऐसी ही भावना प्रकट की थी।

छितपति लेत मोल पसु पच्छिन, इहि बिधि कबै लहौगे ?
रबि-दुहिता सुरसरित-भूमि जिमि रस उर कबै बहौगे ?
पकरत भ्रंग कीट कों जैसे, तैसे कबै गहौगे ?
'सहचरिसरन' मराल मानसर मन इमि कबै रहौगे ?

हमें तो निश्चय है, कि इन महात्माओंकी यह उच्च भावनाएँ अवश्य पूरी होती होंगी।

( २६३ )

नाथ! नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की।
रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेम-नेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति-गति-तीय की ॥ १ ॥
दुकृत सुकृत बस सबही सों संग पर्यो
परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की।
मेरे भले को गोसाईं पोच को न सोच संक
हौंहूँ किये कहौं सौंह साँची सिय-पीय की* ॥ २ ॥

---

* पाठान्तर 'पोचहू कौ सकल भाव किये।''पोच को सकल भाव हौंहू किये'।

ग्यानहू गिरा के स्वामी बाहर-अन्तरजामी†
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की ।
तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलसी को हित
राखि कहौं हौं जो पै ह्वैहौं माखी घीय की ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—नाह=नाथ, पति । दुकृत=कुकर्म, पाप । सुकृत=सत्कर्म, पुण्य । कीय की=किये हुए की । पोच=नीच । सौंह=शपथ ।

भावार्थ—हे नाथ ! आप अपने दासके मनकी बात ठीक-ठीक, भलीभाँति, समझ ले । मेरी बुद्धि-रूपी सुन्दर पतिव्रता स्त्रीने आपके विश्वासके साथ पतिका सा भाव और प्रेम किया है (तात्पर्य यह है, कि जैसे पतिव्रता स्त्री स्वप्नमें भी कभी पर-पुरुषका ध्यान नहीं करती है, वैसेही मेरी बुद्धि सदा आपके विश्वासको ही जानती है, अनन्य भावसे आपके विश्वासपर ही उसका प्रेम है) ॥ १ ॥ पाप और पुण्यके अधीन होकर सभीका मेरा साथ पड़ा है । और अपनी और परायी दोनों ही गतियाँ जाँच चुका हूँ (जैसा काम किया, वैसोंका संग मिला । और उनके साथ रहकर उनका करना परख ली । फिर अपना करनीका मिलान किया, तो) मुझ नीचको तो न चिन्ता ही है और न डर है, क्योंकि मेरा तो सब तरहसे मेरे स्वामीने भला कर दिया । (जिसकी करनी बिगड़ी हो, वह सोच करे, मैं तो अपने स्वामीके भरोसेपर निश्चिन्त बैठा हूँ) यह मैं श्रीजानकी-वल्लभजीकी शपथ खाकर सच-सच कह रहा हूँ ॥ २ ॥ (यदि मैं बात बनाकर कहता होऊँ, तो यह कैसे हो सकता है, क्योंकि) आप ज्ञान और वाणीके अधिष्ठाता हैं । बाहर और भीतर दोनोंकी बात जाननेवाले हैं । भला आपके आगे मुँहकी और हृदयकी बात कैसे छिप सकती है ? तुलसी आपका है और आपहीसे उसका हित लगा है । जो मैं कुछ कपट-भरी बात कहता होऊँ तो मैं घीकी मक्खी हो जाऊँ । भाव, जैसे मक्खी घी में गिरकर तुरन्त मर जाती है उसी प्रकार मेरा भी सर्वनाश हो जाय ॥ ३ ॥

टिप्पणी—(१) 'रावरो ... तीय की'—यहाँ गोसाईंजी रघुनाथजीके आश्रयके प्रति अपना अनन्य भाव सिद्ध कर रहे हैं । यह अनन्यता तलवारकी धार है । अनन्य होना हँसी-खेल नहीं है । मनसा, वाचा, कर्मणा सबकी ओरसे चित्त मोड़कर अपने प्रियतम में लगाना होता है सर्वत्र, सर्वथा, सर्वकाल, अपना

† पाठान्तर 'भीतर जामी' ।

प्यारा-ही-प्यारा देखना होता है। यह महादशा प्राप्त हो जाने पर जीवके मुखसे हठात् निकल पड़ता है—

'लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मै भी हो गई लाल॥'—कबीरदास

अनन्य रामभक्त गोसाईंजी अपनी अनन्यता इस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं—

'एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाति-सलिल रघुबंसमनि, चातक तुलसीदास॥'

( २ ) 'गिरा'—क्योंकि—

'जापर कृपा करहिं जन जानी। कवि-उर-अजिर नचावहिं बानी॥

( ३ ) 'ग्यान'—इसी प्रकार—

'सो जानहि जेहि देहु जनाई।'

( २६४ )

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो।
चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहुँ काल कहु को है हितु हरि-सो॥१॥
नये नये नेह अनुभये देह-गेह बसि
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो।
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत
जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो॥२॥
बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके
देत एक गुन लेत कोटि गुन भरि सो।
करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो॥३॥
आदि अंत बीच भलो भलो करै सबही को
जाको जस लोक बेद रह्यो है बगरि-सो।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान
कैसे कल परै सठ बैठो सो बिसरि-सो॥४॥

जीव को जीवन-प्रान, प्रान को परम हित
प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो।
तुलसी, तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

**शब्दार्थ**—अनुभये = अनुभव किये। प्रपञ्चो = मायावी। सौदासूत = लेन-देनका व्यवहार। ऊसर = वह ज़मीन जहाँ बीज नहीं उगता है। वरिसो = वर्षा। वगरि-सो = फैला-सा। चेतु = याद कर।

**भावार्थ**—अरे जीव! एक बार तो मेरी बात सुन ले। फिर जो तुझे अच्छा लगे सो करना (क्योंकि करना-न-करना तेरी इच्छापर निर्भर है)। तू अपने चारों नेत्रों (बाहरी नेत्रोंसे और हृदयके नेत्रोंसे) देख तो-तीनों लोक और तीनों कालमें कहीं कोई भगवान्के समान तेरा हित करनेवाला है? (हृदयसे यही उत्तर मिलेगा, कि कहीं कोई भी नहीं है) ॥१॥ तूने शरीर-रूपी घरमें रहकर नये नये प्रेमका अनुभव किया और मायावी प्रेमियोंको भी परख लिया। अंतमें, सबके प्रेमका भेद खुल गया, कपट-ही-कपट निकला। और मित्रोंका समाज क्या है? धोखेबाज़ी का लेन-देन। जब जिसका काम अटकता है तब वह पैरोंपर गिरने लगता है (और काम निकल जानेपर उधर देखता भी नहीं। सब मतलबी यार हैं) ॥२॥ तूने देवताओंको भली भाँति पहिचाना या नहीं? वे भी बड़े चतुर हैं। देते तो एक गुणा है, पर ले लेते हैं करोड़ गुणा, (देखा, कैसे चट हैं!)। अब रहे कर्म-धर्म, सो बिना रघुनाथजीके वे भी केवल परिश्रम-मात्रके हैं। उनका करना ऐसा है, जैसे कोई राखमें हवन करे या ऊसर जमीनपर पानीकी वर्षा हो (राखका हवन और ऊसरकी वर्षा निष्फल है। इसी प्रकार यदि भगवान्से प्रेम नहीं है, तो समस्त कर्म-धर्म व्यर्थ ही हैं ॥३॥ जो आदिमें, मध्यमें और अंतमें भले हैं और जीवमात्र का कल्याण करते हैं तथा जिनकी कीर्ति-कौमुदी लोक और वेदमें छिटक रही है ऐसे श्रीजानकी-वल्लभ रघुनाथजीके समान शीलनिधान स्वामी दूसरा और कोई नहीं है। अरे मूर्ख! तू उसे भूला-सा बैठा है। तुझे कैसे कल पड़ रहा है ॥४॥ अरे मूर्ख! जो जीवका भी जीव, प्राणोंका भी प्राण, परमहित, अत्यन्त प्रिय और नीचोंको पवित्र करनेवाला है, उसका तू निरादर कर रहा है?

तुलसी ! कोशलेन्द्र कृपामूर्ति रघुनाथजीने तेरे लिए चित्रकूटमें जो लीला रची थी, उसे चित्तमें स्मरण कर ।।५।।

**टिप्पणी—( १ ) 'नये नेह·····उघरि-सो'—इस प्रसंगपर नागरीदासजी-का निम्नलिखित पद देना अनुपयुक्त न होगा—**

'कहाँ वे सुत नाती हय हाथी ।
चले निसान बजाइ अकेले, तहँ कोउ संग न साथी ।।
रहे दास-दासी मुख जोवत, कर मीड़ैं सब लोग ।
काल गह्यो तब सबहीं छाँड़्यो, धरे रहे सब भोग ।।
जहाँ-तहाँ निसिदिन बिक्रम को, भट्ट कहत बिरदत्त ।
सो सब बिसरि गये एकैरट, राम-नाम कहौ सत्त ।।
बैठन देत हुते नहिं माखी, चहुँ दिसि चँवर सचाल ।
लिये हाथ में लट्ठा ताकौ, कूटत मित्र कपाल ।।
सौंधेन भोगौ गात जारिकैं, करि आये बन ढेरी ।
घर आये ते भूलि गये सब, धनि माया हरि तेरी ।।
'नागरिदास' बिसरिए नाहीं, यह गति अति असुहाती ।
काल-व्याल कौ कष्ट-निवारन भजि हरि जनम-सँघाती ।।'

**( २ ) 'बिबुध सयाने'—गोसाईंजीका देवी-देवताओंपर विश्वास नहीं था । उन्होंने देवताओंकी जहाँ-तहाँ खूब धूल उड़ाई है । रामचरितमानसमें तो स्थान-स्थानपर इन स्वार्थियोंको खरी-खरी सुनाई है ।**

**( ३ ) 'करम······बिनु'—इसपर एक क्या ही उत्तम पद्य मिलता है । देखिए—**

'आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ?
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ?
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ?
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ?'

**( ४ ) 'जीवको······प्रीतम'—अहा ! यह भाव तो कोल-भीलोंकी भोली-भाली स्त्रियोंको ही नसीब था । सुनिए, प्रीतमको देखकर वे क्या कह रही हैं—**

'प्रान हूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से ।
प्रेम हूँ के प्रेम, रंक कृपन के धन हैं ।।'

× × × ×

आँखिनमें सखि राखिबे-जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है।'

भक्त-शिरोमणि कबीरकी भी भावना देखिए। वह अपने प्राण-प्यारेसे कहते हैं—

'आओ प्यारे मोहना, मूँदि पलक तोहि लेउँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देउँ ॥'

(५) 'चित्रकूटको चरित्र'—एक दिन चित्रकूटमें गोसाईं तुलसीदासजी को घोड़ोंपर चढ़े हुए दो अपूर्व सुन्दर राजकुमार दिखायी दिये। वे एक मृगके पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए जा रहे थे। गोसाईंजी कुछ ध्यानावस्थित-से थे। ध्यानमें विघ्न पड़नेकी आशंकासे उन्होंने अपने नेत्रोंको बन्द करके भूमिकी ओर कर लिया। कुछ देर बाद हनुमान्‌जीने दर्शन देकर उनसे कहा, कि क्यों श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन मिले या नहीं? जो दो राजकुमार अभी घोड़ेपर चढ़े इधर से गये हैं, वही रामचन्द्र और लक्ष्मण हैं। गोसाईंजी पछताने लगे। बोले—

'लोचन रहे बैरी होय।
जान-बूझ अकाज कीनों, गये भू में गोय ॥
अविगत जु तेरी गति न जानी, रह्यो जागत सोय।
सबै छबि की अवधि में हैं निकसि गे ढिग होय ॥
करम-हीन मैं पायो हीरा, दियो पल में खोय।
'दास तुलसी' राम बिछुरे, कहो कैसी होय ॥'

इसी प्रत्यक्ष दर्शनकी ओर गोसाईंजीका, इस पदमें संकेत जान पड़ता है।

( २६५ )

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सिय-पी को।
केहि अभाग, जान्यो नहीं, जो न होइ नाथ सों नातो नेह न नीको ॥१॥
जल चाहत पावक लहौं, विष होत अमी को।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहिं कछु फहम न तरनितमी को ॥२॥
जानि अन्ध अंजन कहै बन-बाघिनी-घी को।
सुनि उपचार बिकार को सुबिचार करौं जबतब बुधि बल हरै ही को ॥३॥
प्रभु सों कहत सकुचत हौं, परौं जनि फिरि फीको।
निकट बोलि, बलि, बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जीको ॥४॥

शब्दार्थ—अमी = अमृत। फहम = ज्ञान। तमी = रात। उपचार = इलाज। फीको = नीरस, बुरा।

**भावार्थ**—हे प्रभो ! मैं शरीरको स्वच्छ रखता हूँ, मनमें भी रुचि है और मुँहसे भी कहता हूँ, कि मैं श्रीजानकी-वल्लभजीका सेवक हूँ, किन्तु समझमें नहीं आता, कि किस दुर्भाग्यके कारण नाथके साथ भला-भाँति मेरा सम्बन्ध और प्रेम नहीं होता (तन, मन, वचनसे आपका बनना चाहता हूँ, और यथाशक्ति बनता भी हूँ, पर न जाने किस दुर्भाग्यसे विघ्न-बाधाएँ बीचमें आ जाती हैं, जो सारा किया-कराया मिट्टी में मिला देती हैं) ॥१॥ चाहता हूँ पानी, पर मिलती है आग ! (भक्ति-जलके बदलेमें विषयाग्नि मिलती है)। इसी प्रकार अमृत विषमें परिणत हो जाता है (अमृत-रूपी सत्कर्म, दंभके संपर्कसे विषाक्त हो जाते हैं)। संतोंने कलियुगकी जितनी कुछ कुटिल चालें कही हैं, वे सब ठीक हैं। मै यह नहीं जानता, कि क्या सूर्य है और क्या रात्रि (अर्थात् मैं ज्ञान और अज्ञानको ठीक-ठीक नहीं पहचान सकता। मुझे तो संतोंका कथन ही सच जँचता है) ॥२॥ कलियुग मुझे अन्धा समझकर बनकी सिंहनीके घीका अंजन बताता है ! (सिंहनी तो जाते ही खा जायगी। कहाँ से घी मिलेगा और कैसे अंजन बनेगा ? संसार-काननमें माया-रूपी सिंहनी रहती है। काम-वासना ही उसके दूधका घृत है। भला इस अंजनसे कोई बचेगा ! कलियुग औषधि क्या बता रहा है, प्राणघातक विषका प्रयोग सिखा रहा है)। जब मै यह विकार-भरा उपचार सुनता हूँ और इसपर विचार करता हूँ, तब हृदयसे-बुद्धि-बल नष्ट हो जाता है। (साहस छूट जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बल-पराक्रम क्षीण हो जाता है) ॥३॥ (बुद्धि-बल नष्ट होने पर मुझे कलियुगका बताया हुआ उपचार अच्छा लगता है। सारांश, मायामें फँस जाता हूँ। कामी होकर विषयोपभोग करता हूँ। इसीसे आपके साथ निर्विघ्न नाता नही जुड़ पाता, और न आपके चरणोंमें प्रेम ही होता है) हे नाथ ! कुछ आपसे कहना है, पर उसे कहते हुए संकोच होता है, कि कही मेरी बात फीकी न पड़ जाय। इससे मै आपकी बलैयाँ लेता हूँ, पास बुलाकर इसे (कलियुगको) रोक दीजिए, जिससे वह तुलसी-सरीखे अज्ञानी प्राणियोंपर ध्यान न दे, उनका पिंड छोड़ दे (क्योंकि जबतक यह विघ्न बाधा पहुँचाता रहेगा, तब तक मै आपका होकर रह नहीं सकता) ॥४॥

**टिप्पणी**—(१) **इसमें यह दिखाया गया है, कि भगवत्प्राप्तिके उपाय करते हुए भी यह जीव दिन-पर-दिन और भी मलिन होता जाता है। प्रत्येक**

सत्कर्ममें दुष्कर्म अथवा पुण्यमें पाप सूक्ष्मरूपसे व्याप्त रहता है। हमें तो यही ज्ञान पड़ता है, कि हम पुण्य कर रहे हैं, किन्तु हमारे सुकृत-वस्त्रको छिपे-छिपे अभिमान-रूपी मूषक कुतर-काट डालता है, या कर्मरूपी दीमक उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। जाते तो हैं हरि-कथा सुनने, पर वहाँ भी स्त्रियोंके हावभावोंको देखा करते हैं, उनके मधुर गानमें मन-कुरंगको फँसा देते है ! छिपे छिपे ये कुचालें कलियुग खेला रहा है। इसीने बड़े-बड़े धर्मध्वजोंको नरकका रास्ता बताया है। अतएव जैसे-तैसे भगवच्चरणमें जाना ही श्रेयस्कर है। अहा।

'यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगभेदपट्टम्।
तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥'
(श्रीमद्भागवत)

( २६६ )

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्‌यो हौं।
तुम चहुँजुग रस एक राम हौं हूँ रावरो, जदपि अघ अवगुननि भर्‌यो हौं।
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि, सुमति तें कुमति कर्‌यो हौं।
अगनित गिरि कानन फिर्‌यो, बिनु आगि जर्‌यो हौं।
चित्रकूट गये हौं लखी कलि की कुचाल सब, अब अपडरनि डर्‌यो हौं॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खर्‌यो हौं।
चीन्हों चोर जिय मारि है तुलसी सो कथा सुनि, प्रभु सों गुदरि निबर्‌यो हौं॥

**शब्दार्थ**—छरनि छर्‌यो हौ=छलोंसे छला गया हूँ। कुमति=दुर्बुद्धि। अपडरनि=अपने ही डरसे। खर्‌यो=खड़ा। गुदरि निबर्‌यो हौं=कह चुका हूँ।

**भावार्थ**—हे कृपानिधान ! ज्यो-ज्यो मै आपके समीप आना चाहता हूँ, त्यो-त्यो दूर होता जाता हूँ (आपका सान्निध्य प्राप्त करनेके जितने उपाय करता हूँ, वे माया-मोहके संसर्गसे ऐसे बाधक हो जाते हैं, कि मै क्षण-प्रतिक्षण संसार-मार्ग-पर पिछड़ जाता हूँ) हे रामजी ! आप चारो युगोंमें सदा एक-से रहे हो और मैं भी आपका रहता आया हूँ, यद्यपि मैं पापो और दोषोंसे परिपूर्ण हूँ (तात्पर्य, तात्त्विक दृष्टिमें ब्रह्म और जीवका सनातन सम्बन्ध है) ॥१॥ आपसे पृथक् रहनेका मौक़ा पाकर इस नीच कलियुगने मुझे बीचहीमें छलोंसे छल लिया (ज्योंही मैं

'जीवत्व' प्राप्त कर अविद्यावश भगवच्चरणारविन्दों से विमुख हुआ, त्योंही दुष्ट कलिने अपना इन्द्रजाल फैलाकर मुझे भूल-भुलैयोंमें डाल दिया)। मैं सुवर्ण था, पर इसने कुवर्ण कर दिया, सोनेसे राँगेमें परिणत कर दिया। राजा से रंक बना डाला। और ज्ञानीसे अज्ञानी कर डाला। साराश, पहले मैं शुद्ध सच्चिदानन्द का अंशस्वरूप था, पर इसने इन्द्रियपरायण करके दो कौड़ीका कर डाला ॥२॥ तबसे मैं अगणित पहाड़ों और जंगलोंमें घूमता-फिरा और वहाँ विनाही आगके जलता रहा, शान्तिका कहीं लेशमात्र भी नहीं मिला (नाना योनियोंमें भटकता रहा और वहाँ त्रिविध ताप से जला किया)। परन्तु जब मैं चित्रकूट गया, तब मेरी समझ में इस कलिकी सारी बुरी चालें समझ में आई। अब मैं अपने ही डर से डर रहा हूँ ॥३॥ मैं हाथ जोड़कर प्रभुके सम्मुख खड़ा हूँ और मस्तक झुकाकर कह रहा हूँ, कि पहिचाना हुआ चोर फिर जीवको जीता नहीं छोड़ता, मार ही डालता है, इस बातको सुनकर तुलसी अपने स्वामीसे विनय-प्रार्थना कर चुका, (अब आगे जो आपकी मरजी हो सो कीजिये) ॥४॥

**टिप्पणी— (१) इस पदका सारांश यह है, कि यह जीव पहले सच्चिदानन्द परमेश्वरका अंश होनेके कारण स्वयं सच्चिदानन्दवत् था, किन्तु अविद्यावश पीछे जीवत्व सज्ञामें आने से अत्यन्त मलिन हो गया। और यह कृपा कलि महाराजकी है! भगवच्छरणागत जीव ही इन हजरतसे बरी रह सकता है।**

**(२) 'चित्रकूट'—गोसाईंजीने चित्रकूटमें भगवत्प्राप्तिका बड़ा कठोर साधन किया था। इनकी अनन्यनिष्ठा देखकर कलिके पेटमें चूहे लोटने लगे। एकबार आकर उसने इन्हें बड़ी डाँटदपट बतायी। किन्तु हनुमान्‌जीकी कृपासे इनका बाल भी बाँका न कर सका। मनमें अवश्य खार खा गया और निश्चय कर लिया कि कभी-न-कभी इन्हें समझेंगे। इसी डरके मारे गोसाईंजी सदा शंकित रहते हैं। नीतिका बचन है—**

'शत्रु-शेषं न करयेत्'

**इसलिए यह भगवान्‌से कहते हैं—**

'चीह्नो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि,
प्रभु सों गुदरि निबर्‍यो हौं ॥'

**अथवा—**

'गरजी बिचारे को तो अरजी किये ही बनै,
माननी न माननी सो मरजी हुजूर की।'

( २६७ )

प्रन करि हौं हठि आजु तें राम-द्वार पर्‌यो हौं।*
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि,प्रभु की सौं करि निबर्‌योहौं।
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्‌यो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकर्‌यो हौं॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं, जेहि लागि अर्‌यो हौं।
तुम दयालु बनिहै दिये, बलि, बिलम्ब न कीजिये जात गलानि गर्‌यो हौं।
प्रगट कहत जो सकुचिये अपराध-भर्‌यो हौं।
तौ मन में अपनाइये तुलसिहिं कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्‌यो हौं॥

**शब्दार्थ**—साँसति=कष्ट। मचला=मचलनेवाला। अर्‌यो हौं=अड़ा हूँ। हहर्‌यो हौं=डर गया हूँ।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! आज से मैं सत्याग्रह करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। इसीसे मैं आपके द्वारपर पड़ा हूँ, धरना दिये बैठा हूँ। जब तक आप यह न कहेंगे, कि 'तू मेरा है,' तबतक मैं यहाँसे उठनेका नहीं, भले ही जीवन बीत जाय। आपकी शपथ खाकर कह चुका हूँ। (इसे असत्य न मानियेगा) ॥१॥ (मैं ऐसा-वैसा अड़नेहारा हटी नहीं हूँ। विश्वास न हो तो सुनिए, पहले) यमदूत मुझे धक्के मार-मारकर थक गये, मुझे ज़बरदस्ती नरकके द्वारसे हटाना चाहा, पर मैं वहाँ से टस-से-मस भी न हुआ ( भाव, इतने अधिक पाप किये, कि अनेक जीवन

---

*इधर सूरदासजी भी ऐसी हठ पकड़े हुए हैं।

'आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै हम हीं कै तुम ही माधव! अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तौ पतित सात पीढ़िन को, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उधरि नचन चाहत हौं, तुम्हें बिरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
'सूर' पतित तबहीं लै उठिहै जब हँसि दैहौ बीरा॥'

फिर भी गोसाईंजीके और सूरदासजीके मचलनेमें अंतर है। वह हैं दास, और यह हैं सखा। वह राजाधिराजके दरबारी हैं, और यह हैं गोकुलिया अहीर के कृपापात्र।

नरकमें ही बीते । जब मेरे मारे यमदूतोंका नाकों दम आ गया, तो मुझे वहाँसे हटाने लगे, पर मैं कहाँ हटनेवाला था !) । संसारमें बारबार जन्म लिया, बार-बार पेटका दारुण क्लेश भोगा, तब कहीं नरकका निरादर कर वहाँ से निकला हूँ (जब समझ लिया, कि यमदूत मेरे मारे तङ्ग आ गये, तब वहाँ से हटा)॥२॥ जिस चीज़के लेनेके लिए मैं अड़ा हूँ, उसे मैं लेकर ही छोड़ूँगा, क्योंकि मैं बड़ा ही मचलनेवाला और जिद्दी हूँ । हे दयालु ! आपको भी वह वस्तु देते ही बनेगी । बलिहारी ! (जब देना ही है, तब) देर न कीजिए (तुरंत दे डालिए), क्योंकि मैं ग्लानिके मारे गला जाता हूँ । (इसलिए तुरंत इतना कह दीजिए, कि, 'तुलसी मेरा है' । बस, इतना सुनते ही मैं अपनी ज़िद छोड़ दूँगा ) ॥३॥ मैं बड़ा ही अपराधी हूँ, इस कारणसे यदि आप उजागर हो कहनेमें संकोच करते हैं, तो मनमें ही कृपाकर तुलसीको अङ्गीकार कर लीजिए, क्योंकि मैं कलिको देखकर बहुत डर गया हूँ ( ऐसा जान पड़ता है, कि जो आपने विलम्ब किया, तो यह दुष्ट तुरंत अपने जालमें फँसा लेगा और फिर आपको भी अपने दासके छुड़ानेमें व्यर्थ ही कष्ट उठाना पड़ेगा ) ॥४॥

**टिप्पणी—( १ ) इस पदमें गोसाईंजी भगवच्चरण-शरण प्राप्त करनेके लिए कैसे अधीर हो रहे हैं । न जाने किस घड़ी क्या हो जाय, यह विचारकर जीवमें भगवान्से मिलनेके लिए ऐसी ही आतुरता और विरहाकुलता होनी चाहिए । एक भक्त की अधीरता तो देखिए ! कहता है—**

'कृष्ण त्वदीय पद-पंकज-पंजरान्तरद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः ।
प्राण-प्रयाण-समये कफवातपित्तैः कंठावरोधन-विधौ स्मरणं कुतस्ते ?'

**हे कृष्ण ! अच्छा हो, कि तेरे चरणारविन्दरूपी पिंजड़े में मेरा मन-रूपी मराल आज ही प्रवेश कर जाय । क्योंकि प्राणपखेरू उड़ते समय जब कफ, वात और पित्तसे गला बन्द हो जायगा, तब तेरा स्मरण कैसे बन सकेगा ?**

**विरही कबीर भी अपने प्यारेके दीदारके लिए अधीर ही रहे हैं—**

'प्रीति लगी तुव नाम की, पल बिसरै नाहीं ।
नजर करो अब मेहर की मोहि मिलौ गोसाईं ॥
विरह सतावै हाय अब जिव तड़पै मेरा ।
तुम देखन को चाव है, प्रभु मिलौ सबेरा ॥

नैना तरसैं दरस को पल पलक न लागै।
दरदवंद दिदार का निसि-बासर जागै॥
जो अबके प्रीतम मिलैं करूँ निमिष न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया मिला है प्रान पियारा॥'

( २ ) 'हौं मचला लै छाँड़िहौं'—यहाँ भक्त वात्सल्य भावकी सूचना देता है। जैसे माता-पिताके आगे बच्चे मचल जाते है, वैसेही भक्त जगत्पिताके सामने बालभावसे हठ कर रहा है। धन्य इस भव्य भावनाको!

( २६८ )

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परि है।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै॥१॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुँ बिधि-चातक ज्यों एक टेक ते नहिंटरिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै सम चित हित अनहित कलि-कुचाल परिहरिहै॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसीदास भयो रामको बिस्वास प्रेम लखि आनंद उमगि उर भरिहै॥४॥

**शब्दार्थ**—फिरि परिहै=फिर जायगा; हट जायगा। चातक=पपीहा। ढरिहै=बहायेगा।

**भावार्थ**—जब मेरा मन (विषयोंकी ओरसे) फिर जायगा, तभी मैं समझूँगा, कि आपने मुझे अङ्गीकार कर लिया। जब यह मन, जिस सहज भावसे विषयोंमें लग रहा है, उसी प्रकार कपट छोड़कर आपके साथ प्रेम करेगा (तभी मैं जानूँगा, कि अब मैं आपका हो गया, क्योंकि जबतक मैं काम-दास रहूँगा, तब तक राम-दास होना असम्भव है) ॥१॥ जैसे यह मन पुत्रको प्यार करता है, मित्रपर विश्वास रखता है और राज-भयसे डरता है, उसी तरह जब वह अपने स्वामीसे ही अपना सब मतलब रखेगा, और चारों ओरसे चातककी तरह अपने हठसे न हटेगा (अनन्य होकर एक प्रभु रामचन्द्रजीका ही हो जायगा) ॥२॥ बहुत सम्मान पाने पर जब उसे प्रसन्नता न होगी, तिरस्कृत होने पर जलकर न मरेगा, और

हानि-लाभ सुख-दुःख सबको एक-सा लखेगा तथा भलाई-बुराईमें समभाव रखेगा। तात्पर्य, समताका स्वरूप हो जायगा, और कलिकालकी कुचालें छोड़ देगा ( तभी मुझे यह ज्ञात होगा, कि अब मैं, हे नाथ, 'भवदीय' हुआ ) ॥३॥ जब मेरा मन प्रभुका गुणानुवाद सुनकर प्रफुल्लित हुआ करेगा और मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रु-धारा बहने लगेगी, तभी तुलसीदासको यह विश्वास होगा, कि वह श्रीरामजीका दास हो गया। उस समयके प्रेमको देखकर आनन्द-रस हृदयमें उमड़कर भर जायगा, फूला नहीं समायगा ( क्योंकि ब्रह्मानन्द-प्राप्तिका सुख अगोचर है, उसका वर्णन नहीं हो सकता ) ॥ ४ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'तुम......परिहैं'—जो जीव "भगवदीय" हो जाता है, उसकी दशा ही अलौकिक हो जाती है। न वह तन रहता है, न वह मन। शरीरमें एक विचित्र कांति छा जाती है, मुखपर दिव्य सौंदर्य झलकने लगता है। वाणी अमृतमयी हो जाती है आँखोंमें प्रेमोन्मादकी लहर उठती दिखायी देती है। विषयोंकी ओर से मन एकदम फिर जाता है। विराग और अनुरागका अपूर्व सम्मेलन होने लगता है। अधिक क्या, वह दशा विलक्षण और अगोचर है। जिनके मन दुनियाँसे फिरकर परमार्थकी ओर दौड़ रहे है, उनकी दशा, उन्हींके शब्दोंमें, सुनिए—**

'दुनिया के परपंचो मे हम मज़ा नहीं कछु पाया है।
भाई बधु पिता माता पति सबसो चित अकुलाया है ॥
छोड़-छाड़ घर गाँव-नाँव कुल यही पथ मन भाया है।
'ललितकिसोरी' आनँदघन सों अब हठि नेह लगाया है ॥
जगल में अब रमते हैं दिल बस्तीसे घबराता है।
मानुप-गंध न भाती है, सँग मरकट मोर सुहाता है ॥
चाक गरेबाँ करके दम-दम आहे भरना आता है।
'ललितकिसोरी' इश्क़ रैन-दिन ये सब खेल खिलाता है ॥'

**( २ ) 'चातक......टरिहै'—चातककी अनन्यता गोसाईंजीके हृदयमें स्थान कर चुकी थी। जहाँ-तहाँ उन्होंने चातकके प्रेमका बड़ा ही अनूठा वर्णन किया है। देखिए, निम्न दोहे कैसे भावपूर्ण हैं—**

'डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरनि बारि।
सुजस-धवल चातक नवल ! तुही भुवन दसचारि ॥

बढ्यो अधिक परयो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
'तुलसी' चातक प्रेम-पट मरतहु लगी न खोंच ॥'

( ३ ) 'प्रभु गुन······ढरिहैं'—महाराज नागरीदासजी इस प्रेम-दशाका क्या ही सजीव चित्र खींच गये हैं! अहा!

'कब दुखदाई होयगो, मोकों बिरह अपार ?
रोय रोय उठि दौरिहौं, कहि-कहि कित सुकुमार ॥
ता दिन ही तें छूटिहैं, खान-पान अरु सैन।
छीन देह जीरन बसन, फिरिहौं हिये न चैन ॥
नैन द्रवें जलधार बह, छिन-छिन लेत उसाँस।
रैनि अँधेरी डोलिहौं, गावत जुगलउपास ॥
हेरत-टेरत डोलिहौं कहि-कहि स्याम सुजान।
फिरत-गिरत बन सघन में, योंही छुटिहैं प्रान ॥'

वास्तवमें, जिस क्षण यह प्रेमाधीरताकी दशा प्राप्त हो जायगी, उसी क्षण यह जीव 'तदीय' हो जायगा। किन्तु यह दशा लगन-तलवारकी धारपर चलनेसे ही प्राप्त होगी।

( २६६ )

**राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को ?**
**सुख जीवनज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को, हित ज्यों धन लोभ लीनको ॥१॥**
**ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को।**
**त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥२॥**
**मनसा को दाता कहैं स्रुति प्रभु प्रबीन को।**
**तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ, दयानिधि दीजै दान दीन को ॥३॥**

**शब्दार्थ**—फनि=साँप। सुभाय=स्वभावसे ही। नागरनवीन=नवयुवक, नायक। लालसा=इच्छा। पीन=पुष्ट, मोटा। भावतो=मनचाहा।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी! क्या कभी मुझे आप इतने प्यारे लगेंगे, जितना कि मछलीको जल प्यारा लगता है, या जीवको आनन्दमय जीवन लगता है, अथवा मणि साँपको प्रिय जान पड़ता है, या भारी कंजूसको धन प्यारा लगता है ? ॥१॥ अथवा नवयुवक नायकको जैसे स्वभावसे ही चतुर और नवोढ़ा नायिका

परमप्यारी लगती है, उस प्रकार, हे करुणामय ! मेरे मनमें अपने चरणारविन्दो में पवित्र और अनन्य प्रेमको कामना अंकुरित कीजिए ( मै यही चाहता हूँ, कि मै सदा आपके चरण-कमलोमे अपने मन-मधुकर को बद्ध किये रहूँ, एक क्षणको भी वह अन्य पुष्पो के पराग पर लुब्ध न हो । क्या ऐसा कभी आप करेगे ? ) ॥२॥ वेद कहते हैं, कि प्रभु रघुनाथजी मनोवाञ्छाके देनेवाले है, और बड़े ही चतुर है ( वह मनकी बात तुरन्त ताड़ लेते हैं, कहने की आवश्यकता ही नही पड़ती ) । हे दयानिधे ! मै आपकी बलैयाँ लेता हूँ, इस दीन तुलसीदास को उसका मन-चाहा दान दे दीजिये ( वह दान यही है, कि उसे आप अत्यन्त प्यारे लगे, वह आपको ही अपना प्राणाधार और जीवन-सर्वस्व समझे, इधर-उधर न भटकता फिरे ) ॥३॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जैसे नीर मीनको'—मछलीकी जलके साथ कैसी अनन्य प्रीति है, इसे बतानेकी आवश्यकता नहीं। और पशुपक्षी तो जलके सूखते ही अन्यत्र चले जाते है, पर बेचारी मछलियाँ उसीके साथ सूखकर मर जाती हैं उन्हें अपने प्रियतमका विछोह एकपल भी सहन नहीं होता—**

'सर सूखे, पछी उड़ै, औरै सरनि समाहि ।
दीन मीन बिनपच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहि ॥' —रहीम

**गोसाईंजी भी मीनका गुन-गान कर रहे हैं—**

'देउ अपने हाथ जल, मीनहि माहुर घोरि।
'तुलसी' जियै जो बारि बिनु, तौ तु देहि कबि खोरि ॥
मकर, उरग, दादुर, कमठ, जल जीवन जल गेह ।
'तुलसी' एकै मीन को, है साँचिलो सनेह ॥' —दोहावली

**( २ ) 'प्रिय ·· नवीनको—आजकल तो काम-प्रवृत्ति पराकाष्ठा तक पहुँची जान पड़ती है। मध्यकालीन कवियोंने नायिका भेद और रसके ग्रन्थ लिख-लिखकर समाजको चौपट कर दिया। उनसे जो काम शेष रह गया था, वह ऐय्यारी उपन्यासोने पूरा कर दिया। समाज एकदम गन्दा हो गया। जहाँ देखो तहाँ अश्लील भावोंका बाजार गर्म हो रहा है। जो स्त्रियाँ पूजी जाती थीं, वे आज केवल उपभोगकी सामग्री हो गयी हैं। आज सुन्दरदास-सरीखे कवियोंकी माँग है, न कि देव, मतिराम और पद्माकरकी। सुन्दर दासजीको नवीन नागरी कैसी प्रिय थी, सो सुन लीजिए—**

अगुन अलायक आलसी जानि अधम†अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो॥२॥
भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनि हूँ, देव ! परिहर्‍यो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो॥३॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी समुझिये धौं अपने लोक कि बेद बड़ेरो॥४॥
ह्वैहै जब तब तुम्हहिं तें तुलसीको भलेरो।
देव ! दिनहूँ दिन बिगरिहै, बलि जाउँ, बिलंब किये, अपनाइये सबेरो॥५॥

**शब्दार्थ**—अगुन = मूर्ख। अलायक = नालायक, अयोग्य। अनेरो = बेकाम तिजरा = तिजारी। टोटक = टोटका। भलेरो = भला, कल्याण। सबेरो = जल्द ही।

**भावार्थ**—हे रघुनाथजी ! आप मेरे लिए उदासीन मन न करें, निरपेक्ष न हों, और न मेरी ओरसे अपनी आँखें ही फेरें। हे नाथ ! सुनिए, इस संसारमें और परलोकमें आपको छोड़कर मेरा कल्याण करनेवाला कहीं कोई और नहीं है॥१॥ स्वार्थी मित्रोंने मुझे मूर्ख, नालायक, आलसी, नीच और बेकाम समझकर, तिजारीके टोटकेकी तरह, छोड़ दिया और फिर भूलकर भी वे पलटकर मेरी ओर नहीं हेरे (ऐसा छोड़ा, कि फिर कभी मेरी याद तक नहीं की)॥२॥ मुझे भक्तिरहित, वेदोक्तमार्गसे बहिष्कृत एवं कलिकालके पापों से घिरा हुआ देखकर, हे नाथ ! देवताओंने भी छोड़ दिया (यदि मैं आपका भक्त होता, वैदिक मार्ग पर चलता होता और कलिके पापोंसे विमुक्त होता, तो देवता मेरी बलैयाँ लेते, खुशामद करते, पर मैं वैसा नहीं हूँ। इसलिए उन लोगोंने भी मुझे त्याग दिया) यह कुछ उनका अन्याय नहीं है। मैं ही सबका अपराधी हूँ (जब मैंने कभी आजतक किसी देवता की सेवा-पूजा नहीं की, तब वे मेरा निरादर क्यों न करें ?)॥३॥ यद्यपि मैं आपके नामकी ओट लेकर पेट भरता हूँ, पर लोग मुझे 'रामदास' कहते हैं। यह बात जगत्प्रसिद्ध हो गई है। अब आप विचार तो कीजिए, कि संसार बड़ा है या वेद ? (संसार ही बड़ा मानना होगा, क्योंकि वेदकी लिखी बातपर चलनेवाला-तो कोई हजारमें एक मिलेगा, पर, लोककी रीति प्रायः सभी मानते हैं। जब लोक

† पाठान्तर 'अघन।'

में यह ढिढोरा पिट चुका है, कि—'तुलसी रामदास है' तब आपको यही सिद्ध करना होगा, झूठी बात भी सच साबित करनी पड़ेगी। तात्पर्य, मुझे अपना दास सचमुच ही बना लीजिए ) ॥४॥ तुलसीका भला चाहे जब हो और जैसे हो, पर होगा आपके ही हाथ से। ( जब आपको मेरा भला करना ही है, तो तुरन्त क्यों नहीं कर देते ? क्योकि) मै आपकी बलैयाँ लेता हूँ, यदि आप देर करेंगे, तो यह ग़रीब दिन-पर-दिन बिगड़ता ही जायगा। ( व्याधिका उपचार आदि में हो कर लेना अच्छा है, पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है ) अतएव मुझे शीघ्र ह अङ्गीकार कर लीजिए ॥५॥

**टिप्पणी—(१) 'तिजरा को-सो टोटक'—जिसे तिजारी आती हैं, उसके ऊपर मिट्टीके कूड़े मे आटेके सात दीपक जलाकर और उसमें खीर, हल्दी, सेंदुर और सफेद फूल रखकर आधीरात के समय लोग उतारते हैं। और फिर उस कूड़ेको चौराहेपर रखकर चले आते हैं। उसकी तरफ लौटकर देखना भी नहीं होता है। कहते हैं, यदि उस टोटकेकी ओर रखनेवाला देख ले, तो उसे** तिजारी आने लगती है। **कुछ हेर-फेर के साथ भारतवर्षके प्राय. प्रत्येक प्रांतमे** ऐसे-ऐसे टोटके प्रचलित है।

(२) **'वेद बाहिरो'**—क्योंकि **मुझमे ब्राह्मणोचित धर्म एक भी नहीं है। मनुस्मृतिमे** लिखा है—

'न तिष्ठति तु य. पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मण. ॥
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥'

**गोस्वामीजी ! हम आपको 'वेद-बाहिर' नही समझ सकते। यह तो आपकी** निरहंकारिता है। **पर हाँ, आजकलका** ब्राह्मण-समाज निसन्देह **वेद-बहिष्कृत** होगया है। **न कोई गायत्री जानता है, न संध्यावदन। हवन तो कभी का विदा लेगया। सेवा-वृत्ति कर-कर सब पेट भरते हैं। 'निरक्षर भट्टाचार्य' बन लड़ाई-झगड़े करनेमे** 'द्विजत्व' सिद्ध कर रहे है।

'दान लेन को बड़े पातकी, मचलन को बॅमनाई।
लरन-मरन को बड़े तामसी, बारौ कोटि कसाई ॥' —व्यासजी

**इन ब्राह्मणोंसे तो भगवद्भक्त श्वपच ही कहीं अच्छा है। कहा भी है—**

'श्याम' मिटाई विप्र की, तामें लागै आगि ।
बृन्दावनके स्वपच की, जूठनि खैए माँगि ॥' —व्यासजी

( २७३ )

**तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?**
**दीनबधु ! सेवक सखा आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ॥१॥**
**बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि* बिनु बेरे ।**
**कृपा कोप सतिभायहूँ धोखेहुँ तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ॥ २ ॥**
**जो चितवनि सौंधी लगै चितइये सबेरे ।**
**तुलसिदास अपनाइये कीजै न ढील, अब जीवन-अवधि अति नेरे ॥ ३ ॥**

**शब्दार्थ**—छोह=कृपा । तरि=नौका । बेरे=बेड़ा । सौंधी=भली । सबेरे=शीघ्रही । नेरे=समीप ।

**भावार्थ**—हे नाथ ! आपको छोड़कर मै और किससे कहूँ ? मेरा और कौन-हितू है ? ( जहाँ-तहाँ स्वार्थी ही मिलेंगे । वे दूसरों का मर्म कैसे समझेंगे । मेरा भला तो आपसे ही होगा । इसीसे मै बराबर आपसे कहता हूँ ) हे दीनबन्धो ! सेवकपर, मित्रपर, दुखियापर और अनाथपर स्वभाव से ही किसकी कृपा है, निष्कारण और निष्काम स्नेह कौन करता है ? (एक आपही) ॥१॥ बहुत-से पापी इस संसार-सागरको बिना ही नाव और बेड़ेके पार कर गये । हे रामजी ! उनकी ओर कृपासे या क्रोधसे, सच्चे भावसे या धोखे से ही अथवा तिरछी दृष्टिसे ही आपने देख लिया था ( इससे सिद्ध होता है, कि आपकी दृष्टिमात्रही पापियों के तारने में मुख्य कारण है ) ॥२॥ इन दृष्टियों में जो आपको अच्छी लगे, उसीसे अविलम्ब देख दीजिए (चाहे कृपा-दृष्टिसे, चाहे कोप-दृष्टिसे अथवा प्रेम-दृष्टिसे या बाँकी दृष्टिसे, जो आपको पसंद हो, उससे मुझे देखिए । मेरी तो किसी भी दृष्टिसे देख देनेसे बन जायगी ) । तुलसीदास को अब अपना ही लीजिए । शिथिलता न कीजिए, क्योंकि अब जीवनका अन्त बहुत ही समीप आगया है । ( जीवन-ज्योति टिमटिमा रही है, न जाने किस क्षण बुझ जाय ) ॥३॥

**टिप्पणी—(१) 'कृपा कोप · हेरे'—यह बिल्कुल सच बात है । देखिए—**

कृपा-दृष्टिसे अहल्या, जटायु आदिको मुक्त किया;
कोप-दृष्टिसे, रावण, कुम्भकर्ण, कंस आदिको मुक्त किया ।

---

* पाठान्तर 'तरिनी ।'

सतिभाय अर्थात् सत्यभावसे निषाद सुग्रीव विभीषण आदिको अपनाया; और धोखेकी दृष्टिसे यवन आदिको अंगीकार कर लिया।

( २ ) 'चितइये ··नेरे'—न जाने किस घड़ी क्या हो जाय, इसलिए, हे नाथ! मुझे शीघ्र ही शरणमें लीजिए। कबीरसाहब कहते हैं—

'साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, तातें लागी बार ॥
'कबिरा' रसरी पाँव में, कह सोवै सुख-चैन।
स्वाँस नगाड़ा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥'

रसिकवर हरिश्चन्द्र भी, जीवन-अवधि समीप जानकर, अपने प्यारेसे प्रेमाधीर हो कह रहे हैं—

'थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद,
सब झाँझरी-सी ह्वै कै देह लागी पियरान।
बावरी-सी बुद्धि भई, हँसी काहू छीन लई,
सुख के समाज जित-तित लागे दूर जान ॥
'हरीचंद' रावरे विरह जग दुखमयो,
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे, बैनहु अथान लागे,
आओ प्राननाथ! अब प्रान लागे मुरझान ॥'—हरिश्चन्द्र

( २७४ )

**जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित दीन को ?**
**को कृपालु स्वामी सारिखो राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को ॥१॥**
**गनिहि गुनिहिं साहिब लहै सेवा समीचीन को ।**
**अधन*, अगुन, आलसिनको पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥२॥**
**मुख कै कहा कहौं ? बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को ।**
**तिहूँ काल, तिहुँ लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को ॥३॥**

**शब्दार्थ**—गनिहि=(ग़नी) धनीको। समीचीन=अच्छी।

**भावार्थ**—हे देव! कहाँ जाऊँ? मुझ दुखी और गरीबके लिए कहाँ ठिकाना

* पाठान्तर 'अधम'।

है? आपके समान दयालु स्वामी और कहाँ मिलेगा, जो सब साधनोंसे सब भाँति हीन सेवकको अपनी शरणमें रख ले? (मेरी समझमें तो ऐसा स्वामी मिलना असंभव है। इसीलिए इधर-उधर न भटककर मैं सीधा आपके पास चला आया हूँ। यदि आप अपने पाससे हटा देंगे तो फिर कहीं मुझे कोई ठौर-ठिकाना नहीं है) ॥१॥ संसारमें जितने मालिक मिलते हैं, वे सब उसी सेवकको अपनाते हैं, जो धनी हो, गुणी हो और भली-भाँति सेवा करना जानता हो (पर, मैं न तो धनी ही हूँ, न गुणी ही और न भली भाँति सेवा ही करनेवाला) मुझ-सरीखे, कंगालों, मूर्खों और काहिलोंका पालना नित्यकिशोर रघुनाथजीको ही शोभा देता है ॥२॥ मुँहसे क्या कहूँ! प्रभो! आप तो स्वयं चतुर हैं। आपको मेरी सारी करनी प्रकट है। तुलसी जैसे मलीन मनवालेके लिए तीनों लोक (स्वर्ग पृथ्वी, और पाताल) में एक आपका ही सहारा है (भाव, जब उसे आपका ही आश्रय है, तब आप भी निःसंकोच होकर उसे अपना लीजिए।) ॥ ३ ॥

**टिप्पणी—( १ ) 'जाऊँ कहाँ'—हमारे रसिक-वर व्यासजी भी दुनियाँके प्रपंचोंसे घबराकर यही बात कह उठे थे।**

'जैए कौन के अब द्वार।
जो जिय होय प्रीति काहू के दुख सहिए सो बार॥
घर-घर राजस तामस बाढ़ो, धन जोबन को गार।
काम-बिबस ह्वै दान देत नीचन को होत उदार॥
साधु न सूझत बात न बूझत यह कलि के ब्योहार।
'ब्यासदास' कत भाजि उबरिए परिए माँझी-धार॥'

**( २ ) 'गनिहिं'—गनी; यह शब्द अरबी भाषाका है।**

**( ३ ) 'नवीन को'—कतिपय टीकाकार इसका यह अर्थ करते हैं, कि रघुनाथजी को छोड़कर गरीबोंका पालनेवाला और कौन नया है? हमारी समझमें 'नवीन' शब्द 'रघुनायक' का विशेषण है।**

**( ४ ) 'विदित है जीकी'—क्योंकि आप घट घटकी जाननेवाले हैं। आपसे छिपा ही क्या है? और कुछ अच्छी करनी की हो, तो आपसे कहूँ भी! मैंने तो ऐसे-ऐसे घोर नारकीय कर्म किये हैं कि कहते लज्जा आती है। मैं अपनी बात क्या मुँह लगाकर कहूँ? आप स्वयं चतुर हैं। मेरी बात योंही जान जायँगे।**

( ४ ) 'एक टेक……को'—इस चरणमें गोसाईं जी, सिद्धान्तरूपसे, भावानन्यता प्रदर्शित कर रहे हैं। यहाँ उन्होने अपनी निष्ठापर और भी पक्की छाप लगा दी है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकंशरणं व्रज'—इस सिद्धान्त-वाक्य पर आप सोलहो आने चल रहे हैं। वस्तुतः गोसाईंजीने सारे धर्म छोड़कर रघुनाथजीकी शरण ग्रहण कर ली थी। उन्हे रघुनाथजीके चरणार-विन्द छोड़कर सचमुच ही त्रिलोक और त्रिकालमें कहीं दूसरा ठौर-ठिकाना नहीं रहा था।

( २७५ )

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
है दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन-छम कियो न संभाषन काहूँ ॥
तनु-जन्यो*कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु-पिता हूँ।
काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न, सरन गये रघुबर ओर-निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिनाहूँ।
नाम की महिमा सील नाथको मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥

**शब्दार्थ**—काढ़ि रद=दाँत निकालकर, निर्लज्ज और दीन बनकर। पा=पर। दुनि=दुनिया। छम=(क्षम) समर्थ। ओर=अंत तक। सिहाहूँ=सराहना करता हूँ।

**भावार्थ**–हे नाथ! मैं द्वार-द्वार पर दाँत दिखाता हुआ और पैर पड़ता हुआ अपनी दीनता कहता फिरा। ( यह बात नहीं है, कि संसारमें कोई मेरी ग़रीबी दूर करनेयोग्य नहीं है ) संसारमें ऐसे-ऐसे दयावान् पड़े हैं, जो दशों दिशाओंके दुःखों और दोषोंके नाश करनेमें समर्थ हैं, किन्तु मुझसे तो किसीने बात भी न की ( आँख उठाकर भी मेरी ओर न देखा ) ॥ १ ॥ माता-पिताने मुझे ऐसा छोड़ दिया, जैसे दुष्ट कीड़ा अर्थात् सर्पिणी अपने ही शरीरसे जने हुए ( बच्चे ) को त्याग देती है। किसलिए तब क्रोध करूँ, और किसे दोष लगाऊँ?

* पाठान्तर 'त्वचा तजत'। 'तनु तजेउ'।

यह सब मेरे ही दुर्भाग्यसे हुआ। आज लोग मेरी छायातक छूनेमें संकोच करते हैं ( मुझे ऐसा नीच और निषिद्ध मान लिया है, कि छायातक नहीं छूते) ॥२॥ (मेरी यह दुर्दशा होने पर) संतोने मुझे देखकर कहा, कि तू मनमें चिन्ता न कर। तेरे समान अधम और पापी पशु पक्षियों तकको, शरणमें जाने पर, श्रीरघुनाथजीने नहीं छोड़ा और उनका अन्ततक निर्वाह किया ( भाव, तू भी उन्हीं रामचन्द्रजीकी शरणमे जा। वे तेरी सारी करनी सुधार देंगे और अन्ततक तेरा निर्वाह करेंगे ) ॥ ३ ॥ बस, मैं ( तुलसी ) आपका हो गया और जबसे आपका हुआ हूँ, तबसे मैं चैनमें हूँ, यद्यपि आपपर मेरी प्रीति और प्रतीति नहीं है ( जो कहीं प्रीति-प्रतीति हो जाय, तब तो आनन्दकी कोई सीमा ही न रहे )। हे नाथ ! आपके नामकी महिमा तथा शीलने मेरा भला किया, यह देखकर अब मैं मनही मन लज्जित होता हूँ ( इसलिए, कि मैंने कृपा-पात्र होनेयोग्य तो एक भी कार्य नहीं किया, फिर भो मुझ कृतघ्नपर प्रभुकी ऐसी कृपा है) और प्रशंसा करता हूँ (कि धन्य है, पतित-पावन प्रभो! जिस तुलसीको कहीं ठिकाना भी न था, उसे भी आपने कृतार्थ कर दिया) ॥४॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'तनु-जन्यो'—श्रीबैजनाथजीने 'त्वचा तजत' और भट्टजीने 'तनु तजेउ' पाठ मानकर यह अर्थ किया, कि जैसे साँप अपनी केंचुलको छोड़ देता है। बैजनाथजाने तो 'त्वचा' लिखकर स्पष्ट ही कर दिया है। भट्टजी 'तनु' का अर्थ 'काँचली' कर रहे हैं। यह अर्थ भी संभव हो सकता है। नागरी प्रचारिणीसभाकी प्रतिके अनुसार हमने तनुजन्यो' पाठ शुद्ध माना है। साँप अपने बच्चोंको जनते ही छोड़ देता है। प्रवाद तो यह है कि सर्पिणी उन्हें जन्मतेही खा जाती है, जो भागकर निकल जाते हैं, वेही बचते हैं।

( २ ) 'ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ'—माता-पिता मुझे अभागा जानकर छोड़ बैठे। बचपनमें ही, मेरे दुर्भाग्यसे, मुझे छोड़कर परलोकवासी हो गये।

( ३ ) 'काहे……अभाग'—क्या ही अहिंसात्मक भाव है! सच्चे वैष्णवोंका ऐसा ही हृदय हुआ करता है। वे न तो किसी को भला-बुरा कहते हैं और न दोष देते हैं। वैष्णवोंके लक्षण लिखते हुए भगवत्‌रसिकजी कहते हैं—

'हिंसा, लोभ, दंभ, छल त्यागै, विष-सम देखै माया ।
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया ॥
सहनसील आसय-उदार अति, धीरज सहित बिबेकी ।
सत्य बचन सब कौ सुखदायक, गहि अनन्य व्रत एकी ॥'

—( अनन्य निश्चयात्म )

( ४ ) 'दुखित....कह्यो'—क्योंकि स्वभावसे ही संत दयालु होते हैं—

'कोमल बानी संत की, स्रवै अमृतमय आइ ।
'तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥
जड़ जीवन को करैं सचेता । जगमाहीं बिचरत एहि हेता ॥'

—( वैराग्य-संदीपिनी )

( २७६ )

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम-रावरे बिन भये जन जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ॥ १ ॥
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो ।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो ॥२॥
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो ।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु-खिनु पेट खलायो३
नाथ ! हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो ।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥ ४ ॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो ।
मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ॥ ५ ॥
दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जसु गायो ।
तुलसी नमत अवलोकिये, बलि, बाँह-बोल दै बिरदावली बुलायो ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**—छार=राख,धूल । असन=भोजन । खिनु-खिनु=क्षण-क्षण । तायो=जाँचा ।

**भावार्थ**—मैंने क्या करनेको छोड़ रखा ? कौन-सी जगह जानेको बची ? और किसके आगे मस्तक नहीं झुकाया ? ( जितने उपाय संभव हैं, वे सभी कर चुका हूँ । सभीके यहाँ भटक चुका, और सभीको प्रणाम भी कर चुका )

किन्तु, हे रघुनाथजी ! बिना आपका सेवक हुए संसारमे जन्म ले-लेकर मैंने दसों दिशाओंमे केवल दुःख ही पाया है (सुख किसे कहते हैं, यह आजतक नहीं जाना ) ॥ १ ॥ आशाके मारे खास दास होकर भी अपनेको क्षुद्र प्रभुओंके आगे जताता फिरा ( यद्यपि जन्मसे ही मैं आपका दास हूँ, तत्वतः यह जीव परमात्माका अंशस्वरूप है, किन्तु झूठी आशाके वश होकर संसारके नीच मनुष्योंको अपना प्रभु मान उनसे अपनी रामकहानी कहना फिरा । हाहा खाकर बारबार द्वार-द्वारपर अपनी ग़रीबी सुनायी, मुँह बाया, पर उसमे खाक़ भी न पड़ी (आशा तो भोजन पानेकी थी, पर मिली खाक़ भी नहीं) ॥२॥ भोजन और वस्त्रके बिना पागल-सा जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा । प्राणोंसे प्यारी प्रतिष्ठाको भी तिलांजलि देकर दुष्टोंके आगे क्षण-क्षणपर यह पेट खोलकर दिखाया, ( कहता फिरा, कि पेट खाली है, चार दाने दे दीजिए, पर कहीं कुछ न मिला ) ॥३॥ हे प्रभो ! लोभके मारे बहुत लालच की, पर हाथ कुछ भी न लगा । सच कहता हूँ, ऐसा कौन-सा नाच बचा है, जो क्षुद्र लोभने मुझ निर्लज्जको न नचाया हो ? भाव, जितने पेट भरनेके स्वाँग और पाखण्ड हो सकते हैं, वे सब मैंने किये ॥ ४ ॥ कान, आँखें और मन अपने-अपने मार्गपर लग गये, अपने-अपने विषयमे लिप्त हैं । सब राजे-महाराजे भी जाँच लिये । (जब कहीं किसीके द्वारा सुख-शान्ति न मिली, तब ) सिर पीटकर निराश हो गया । अब घबरा-कर आपके चरणोंकी शरण देखकर आया हूँ, क्योकि यहाँ मुझे अपना भला दिखायी देता है । (मुझे निश्चय हो गया हैं, कि आपकी शरणमे जानेसे ही मेरी जन्म-जन्मान्तरकी दरिद्रता दूर हो जायगी ) ॥ ५ ॥ हे दाशरथे ! आपही समर्थ हैं । त्रिलोकमे आपहीका यश गाया जाता है । देखिए, तुलसी आपके आगे नतमस्तक खड़ा है । बलिहारी ! आपकी विरदावलीने ही मुझे बाँह और ( अभय ) वचन देकर बुलवाया है ( यह न कहिएगा, कि मैं बिना बुलाये चला आया, अतएव उपेक्षणीय हूँ । दोषी है तो आपकी विरदावली; क्योंकि वही मुझे यहाँ तक खींचकर लायी है ) ॥ ६ ॥

**टिप्पणी**—( १ ) 'कहा न कियो······दिसि पायो'—रसिकवर हरिश्चन्द्रजीका यह पद, यहाँ, याद आ जाता है । वाह ! कैसा मर्म-भरा पद है—

'तुम बिनु प्यारे, कहुँ सुख नाहीं।
भटक्यो बहुत स्वाद रस-लंपट, ठौर ठौर जगमाहीं॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहाँ ललचाने।
तहँ तें फिर ऐसो जिय उचटत, आवत उलटि ठिकाने॥
जित देखौं तित स्वारथ ही की, निरस पुरानी बातें।
अतिहि मलिन व्यवहार देखिकै, घिन आवत है तातें॥
जानत भले तुम्हारे बिनु सब, बादिहिं बीतत साँसै।
'हरीचंद' नहिं छुटत तऊ यह, कठिन मोह की फाँसैं॥'

( २ ) **'महिमा.......ते'—गीतामें भी लिखा है—**

'संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते।'

**इसका छायानुवाद—**

'संभावित कहँ अपजस-लाहू। मरन-कोटि-सम दारुन दाहू॥' (रामचरितमानस)

( ३ ) **'सब थलपति तायो'—श्रीबैजनाथजीने 'सब थल पतितायो' पाठ मानकर यह अर्थ किया है—"....विषयनवश सब थल पतियायो, सबै स्थानपर अधिक पतितै होत गयो।" यह अर्थ भी सुन्दर है।**

**यही पाठ मानते हुए श्रीयुत् भट्टजीने यह लिखा है कि, "सब जगह पत्ति कहिये बड़े आदमियोंको ताया छाना।"**

( २७७ )

राम राय! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो?
स्वामी सहित सब सों कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो॥१॥
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये बिचार सार-कदली ज्यों मनि कनकसंग लघु लसत बीच बिच काँचो॥
"**विनय-पत्रिका**" दीन की, बापु! आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पाँचो॥३॥

**शब्दार्थ**—टाँचन=टाँकोने। कनक=सोना। पाँचो=पंचोसे।

**भावार्थ**—हे महाराज रामचंद्रजी! आपको छोड़कर मेरा सच्चा हितू और कौन है? मैं अपने स्वामीसे कहता हूँ, उसे सुन-समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर खींच दीजिए (मेरी बातको काटकर दूसरा सिद्धान्त बता

दीजिए, मुझे झूठा साबित कर दीजिए ) ॥१॥ ( यदि आप यह कहें, कि संसारमें तेरे बहुत से सगे-संबन्धी हैं क्या वे तेरा हित न करेंगे तो ) शरीर और जीवात्मा के संबन्धके जितने मित्र या हितू मिलते हैं, वे सब मिथ्या टाँकोंसे सिले हुए हैं। ( जो टाँके ही मिथ्या हैं, जिनका वास्तविक अस्तित्व ही नहीं, उनसे सिली हुई चीज कहाँ तक सच हो सकती है ? जैसा कारण, वैसा कार्य। साराश, संसारके सारे सगे संबन्धी और भाई-बन्धु 'बंध्या-पुत्र' के समान निरे झूठे हैं। उनसे हित होना असंभव है)। विचार करनेपर 'ये सखा' केलेके पेड़के सारके समान हैं। ( जैसे ऊपरसे देखनेपर यह जान पड़ता है कि भीतर गूदा होगा, पर छीलनेपर अंततक उसमें सिवा छिलकेके कुछ भी नहीं निकलता, वैसे ही विवेक-दृष्टिसे देखने पर सांसारिक संबंधी कोरे धोखेकी टट्टी जान पड़ते हैं ) ।ये इस प्रकार सुंदर जान पड़ते है, जैसे मणि-सुवर्णके संयोगसे बीच-बीच झूठा काँच भी शोभायमान होता है ( यहाँ, मणि ईश्वर है और सुवर्ण जीव, दोनोंके संयोगसे काँच-रूपी संसारी संबंधी भी सुन्दर भासित होते हैं। वास्तवमें, वे काँच ही है। सुवर्ण और मणि तो उनसे सर्वथा भिन्न हैं ) ॥२॥ हे पिताजी! इस दीनकी लिखी "**विनय-पत्रिका**" स्वयं आप ही पढ़ियेगा। (किसी पेशकारसे न पढ़वाइएगा। संभव है, वह कुछ-का-कुछ पढ़ जाय या कुछ अंश ही छोड़ दे। मैं दूधका जला हुआ हूँ, इसीलिए मट्ठा भी फूँक-फूँकर पीता हूँ। आप ही पढ़िए )। तुलसीने इसे अपने हृदयके विचारसे लिखा है, जितनी बुद्ध थी, उसके बल-भरोसेपर लिखा है। पहले आप अपने स्वभावसे इसपर 'सही' बना दीजियेगा। फिर पीछे पचोंसे पूछिएगा ( क्योंकि यदि आपने उनसे पहले ही सलाह ले ली, तो कदाचित् वे यह कहें, कि इसका मजमून बिगड़ गया है, यह पत्रिका राज-दरबारके योग्य नहीं है, तो मेरा सारा किया-कराया योंही मिट्टीमें मिल जायगा ) ॥ ३ ॥

**टिप्पणी—(१)'देह... टाँचो'—इसका यह अर्थ नहीं है, कि गोसाईंजी कुटुम्ब-प्रेम, देश-प्रेम या विश्व-प्रेमके विरोधी है। इसका अर्थ तो यही है, कि भगवत्-प्राप्ति या सत्यान्वेषणके मार्गमें जो कंटक या बाधक हैं, वे झूठे और त्याज्य हैं। इसके प्रतिकूल जो सम्बन्धी या मित्र सत्यान्वेषणके साधक हैं, वे सत्य और ग्राह्य हैं। कहा भी है—**

'गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्नपतिर्न तत्स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥'
—( श्रीमद्भागवत )

**जो इस जीवको कराल कालसे नहीं बचा सकते, उनका होना-न होना बराबर है। किन्तु जो भगवत्प्राप्तिमें सहायक है, वे ही, वास्तवमें, अपने सच्चे मित्र हैं—**

'तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासो होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो॥'—(विनय-पत्रिका)

**भक्तवर ललितकिशोरीजी भी अपना स्वर मिला रहे हैं—**

'श्रीवृन्दाबन-रज दरसावै, सोई हितू हमारा है।
राधा-मोहन-छबी छकावै, सोई प्रीतम प्यारा है॥
कालिन्दी-जल-पान करावै, सो उपकारी सारा है।
'ललितकिसोरी' जुगल मिलावै सो अँखियोंका तारा है॥'-(रस-कलिकामृत)

( २७८ )

पवन-सुवन, रिपुदवन, भरतलाल, लखन दीन की।
निज निज अवसर सुधि किये, बलिजाउँ, दास-आस पूजि है खास खीनकी॥
राज-द्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ गति भये गति-बिहीन की॥ २॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति-रीति समुझाइबी नतपाल, कृपालुहिं परमिति पराधीन की॥ ३॥

**शब्दार्थ**—खीन=(क्षीण) दुर्बल। समीचीन=अच्छा। परमिति=सीमा।

**भावार्थ**—हे पवनकुमार! हे शत्रुघ्नजी! हे भरतलालजी! हे लखनलालजी! अपने-अपने अवसर पर इस दीन तुलसीकी सुधि किये रहना। मैं आप लोगोंकी बलैयाँ लेता हूँ। आपके ऐसा करनेसे इस अत्यन्त दुर्बल दासकी आशा सफल हो जायगी (भाव, रघुनाथजी मेरी पत्रिकापर 'सही' बना देंगे)॥ १॥ राज-दरबारमें अच्छे लोगोंकी बात तो सभी कहते हैं ( इसमें कोई विशेषता नहीं है), किन्तु यदि आपलोग इस शरणरहित दीनकी सिफारिश कर देंगे, तो इसको भगवान्‌की शरण मिल जायगी, आपका पुण्य बढ़ेगा, सुयश फैलेगा, आपके

स्वामी आपपर प्रसन्न रहेंगे ( क्योंकि वह स्वयं पतित-पावन है। और जो उनके इस बानेमें सहायक बनेगा, उनसे पापियोंकी सिफ़ारिश करेगा, उसपर वह और भी प्रसन्न होंगे), और आपका स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायँगे (लोकमें यशके भागी होंगे और मैं हृदयसे आशीर्वाद दूँगा, इससे आपका परमार्थ भी सिद्ध हो जायगा ) ।। २ ।। इसलिए अवसर देखकर ( क्योंकि राज-दरबारमें बे-मौक़े बात नहीं करनी होती है ) इस पतित तुलसीकी बात सँभाल देना ( सिफ़ारिश करके 'विनय-पत्रिका' पर 'सही' लिखवा देना)। भक्तवत्सल दयालु रघुनाथजीसे मुझ परतन्त्र जीवकी प्रेम-पद्धतिकी हदको समझाकर कह देना ।। ३ ।।

**टिप्पणी—( १ )'पवन सुवन······दीन की'—इस पदमें गोसाईंजी चिट्ठी भेजनेके पूर्वही भगवान्‌के राज दरबारियोंको, विनती कर-कर, मिला रहे हैं। उन्हें लालच भी काफ़ी दीगयी है। गोसाईंजीको जान पड़ता है, राज-दरबारकी रीति-पद्धतिकी भी पूरी जानकारी थी।**

**( २ ) 'समुझाइबी' इस शब्दपर श्रीबैजनाथजी लिखते हैं—**

**''समुझाइबो' यह वाचक स्त्रीलिंग में है,ताते यह प्रार्थना किशोरीजू सों हैं।"**

**हमें यह युक्ति कुछ जँचती नहीं। 'समुझाइबी' शब्द बुंदेलखण्डी है। करबी, जायबी, समुझाइबी आदि शब्द अबभी प्रयुक्त होते हैं। इसका अर्थ 'समझा देना या समझा दीजिएगा' होता है। और यह पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनोंके ही लिए आ सकता है।**

**( ३ ) 'पराधीन'—कलिके अधीन होने से असह्य दुःख हो रहा है। परतंत्रताके समान संसारमें कोई दुःख नहीं है। कहा भी है—**

'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। करि बिचार देख्यो मनमाहीं ।।'

( २७९ )

मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ ! नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ।।१।।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है ।। २ ।।
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैंहूँ लही है'।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।।३।।

**शब्दार्थ**—मारुति=हनुमान्‌जी। लै उठी=वही बात कहने लगी। लही है=पाई है।

**प्रसंग**—दरबार लगा हुआ है, भगवान् रामचन्द्रजी श्रीजानकीजीके सहित राज्यसिंहासनपर विराजमान हैं। हनुमान्‌जी चरण दबा रहे हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी अपनी-अपनी सेवामे तत्पर हैं। उसी समय तुलसीदासकी 'विनय-पत्रिका' पहुँची। धीरेसे हनुमान् और भरतने लक्ष्मणसे कहा, कि अवसर तो अच्छा है। इस समय तुलसीदासकी चर्चा छेड़ देनी चाहिए। लक्ष्मणजीने उनका रुख पहचान कर 'विनय-पत्रिका' पेश कर दी।

**भावार्थ**—हनुमान्‌जी और भरतजीकी रुचि देखकर लखनलालजीने भगवान्‌से कहा, कि हे नाथ! कलिकालमे भी आपके एक सेवककी आपके नामसे प्रीति और प्रतीति निभ गई (देखिए, उसकी यह पत्रिका भी आई है) ॥ १ ॥ यह सुनकर सारी सभा वही बात कहने लगी, सभी लोग हाँ-मे-हाँ मिलाने लगे। बोले हम-लोग भी उसकी रीति जानते हैं (वास्तवमें, उसने आपके चरणोंमें अनन्य प्रेमका निर्वाह किया है, उसे कलिकी बाधा तनिक भी नहीं व्यापी)। यह सब ग़रीब-निवाज़ भगवान्‌की कृपाका फल है। स्वामीने सबके देखते-देखते उसे हाथ पकड़-कर अपना लिया है ॥२॥ सबकी बात सुनकर रघुनाथजीने मुसकराकर कहा कि, हाँ, सत्य है। मुझे भी उसकी ख़बर मिल गई है (कदाचित् श्री जनकनन्दिनीजीने रघुनाथजीसे चर्चा चलायी होगी) बस, फिर क्या—अनाथ तुलसीकी रची हुई विनय-पत्रिकापर रघुनाथजीने 'सही' कर दी। अपनी बात बननेपर मैंने प्रफुल्लित होकर भगवान्‌को प्रणाम किया (और सदाके लिए उनकी शरणमे स्थान प्राप्त कर लिया, मेरा सारा श्रम सफल हो गया) ॥३॥

**टिप्पणी—( १ ) 'मारुति........कही है'—हनुमान्‌जी और भरतजी का दास्यभाव था। अतएव वे स्वामीके आगे बोलनेमें संकोच करते थे। किन्तु, लक्ष्मणजीपर रामचन्द्रजीका वात्सल्य स्नेह था। उनकी ढिठाईको वह अच्छा समझते थे। भगवान्‌के मुँहलगा लषनलालजी ही थे। इसलिए उन्हींसे सिफ़ारिश करायी गयी है।**

**( २ )—'सुधि मैं हूँ लही है'—कदाचित् श्रीजनक-नन्दिनीने कहा होगा,**

क्योंकि गोसाईंजी उनसे पहले ही निवेदन कर चुके थे, जैसा कि, इसी विनय-पत्रिकाके निम्नलिखित पदसे विदित होता है —

'कबहूँक अंब ! अवसर पाइ ।

मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ ।।' —( विनय-पत्रिका )

श्री किशोरीजी भगवान्‌की अल्हादिनी शक्ति हैं । उनकी बात कहीं खाली जा सकती है ? परन्तु मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने 'प्रजानुरंजन' का ध्यान रखते हुए केवल श्रीकिशोरीजीकी ही बातपर गोसाईंजीको निहाल नहीं किया । जब सब लोग बोल उठे, कि हाँ हाँ, हम भी उसे जानते हैं'—तब आपने इतना कहा, कि 'हां, हमने भी उसका नाम सुना है ।' धन्य, इस मर्यादा और सौशील्यको !

(३) 'मुदित'—गोसाईंजी प्रसन्न इसलिए हुए, कि 'विनय-पत्रिका' पर सही हो जानेसे जो इसका पारायण करेगा, वह भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त कर लेगा और विनय-पत्रिका संसार-सागर पार करनेके हेतु सेतुका काम देगी ।

इति श्रीहरि-तोषिणी टीका-सहिता

'विनय-पत्रिका'

※ समाप्त ※

।। श्रीराम ।।

# परिशिष्ट (क)

**नोटः**—इस परिशिष्टमें 'विनय' के पदों की सूची दी गई है। अंक पृष्ठ-संख्या सूचक है।

# —हमारे साहित्यिक प्रकाशन—

## बिहारी-सतसई, सटीक

[ टीका—स्व० ला० भगवानदीन जी ]

हिन्दी-संसार में शृङ्गार-रस की इसके जोड की कोई भी दूसरी पुस्तक नहीं है। इसमें बिहारी के प्रत्येक दोहे के नीचे उसके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, वचन-निरूपण, अलंकार आदि सभी ज्ञातव्य बातो का समावेश किया गया है।

परिवर्द्धित संशोधित संस्करण का --- मूल्य ३)

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in Hindi Schools of Central Province and Berar. Vide order No. 6501, Dated 28-6-26.

## भ्रमर-गीतसार

[ सं०—पं० रामचन्द्र शुक्ल ]

महात्मा सूरदास जी के उत्कृष्ट पदों का यह सग्रह है, सागर का सार अमृत है। सूरसागर का सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमर गीत' माना जाता है। पाद टिप्पणी सहित, संशोधित संस्करण का --- मूल्य ३)

## महात्मा नंददास जी कृत भ्रमर-गीत

[ सं०—बाबू ब्रजरत्नदास, बी० ए० ]

इस पुस्तक में कृष्ण के अपने सखा उद्धव द्वारा गोपियों के पास भेजे हुए संदेश का तथा गोपियो द्वारा उद्धव से कहे गये कृष्ण-प्रति उपालंभ का सजीव वर्णन है। --- मूल्य ।)

## रहीम रत्नावली

[ संपादक—पं० मायाशंकर जी याज्ञिक ]

रहीम की आज तक की प्राप्त कविताओं का अनोखा और सबसे बड़ा संग्रह है। --- मूल्य २)

## पद्माकर की काव्य साधना

[ श्री अखौरी गंगा प्रसाद सिंह जी ]

यह ग्रंथ हिन्दी के आलोचना साहत्य का अद्वितीय रत्न है। इससे पद्माकर का जीवनवृत्तान्त उनके ग्रन्थों का आलोचनात्मक परिचय उनकी काव्य-साधना की मीमांसा और अन्त मे उनकी सरस सूक्तियो का संग्रह दिया गया है।

--- मूल्य २।)

## तुलसी-सूक्ति-सुधा

[ संपादक--श्री वियोगी हरि जी ]

गोस्वामी तुलसीदास जी के समस्त ग्रन्थों की सूक्तियों का सार है।

--- मूल्य ४)

## अनुराग-वाटिका

[ प्रणेता--श्री वियोगी हरि जी ]

इस पुस्तिका में वियोगी हरि जी प्रणीत ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह है। कविता के एक-एक शब्द अमूल्य रत्न हैं। मूल्य ।=)

## भावना

[ प्रणेता--श्री वियोगी हरि जी ]

यह एक आध्यात्मिक गद्य-काव्य है। इसमें ५० गद्य-काव्य मुर्दे को जिलाने के लिये अमृत है। --- मूल्य ।।।)

## तुलसी-चिकित्सा

[ नवीन संस्करण ]

तुलसी द्वारा अनेक रोगो से मुक्त होने के उपायों तथा औषधि का वर्णन किया गया है। पुस्तक मनुष्य मात्र के बड़े काम की है। --- मूल्य ।।।)

## गुलदस्तए बिहारी

[ लेखक—देवी प्रसाद प्रीतम' ]

यह 'गुलदस्तए बिहारी' बिहारी-सतसई के दोहों पर रचे हुए उर्दू के शेरों का संग्रह है। सचित्र संस्करण का --- मूल्य १।।)

## कुसुम संग्रह

[ लेखिका—श्रीमती बंग महिला ]

इसमें ऐसी शिक्षापद आख्यायिकाओ का समावेश है जिनको पढकर साधारणतया सभी स्त्रियो के आदर्श उच्च हो सकते है । इसको संयुक्तप्रान्त की तथा मध्य प्रदेश का गवर्नमेंट ने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत किया है । Vide order No. 9754 Dated 12/12/46 सात रंग-विरंगे चित्रों से विभूपित पुस्तक का - - - मूल्य १॥।)

## श्री कृष्ण जन्मोत्सव

[ लेखक—श्रीयुत् देवीप्रसाद जी 'प्रीतम' ]

श्रीकृष्ण जी का जन्म सबंधिनी कथाओः का एक खासा दर्पण है : अलंकारो की छटा की भी कमी नहीं है । - - - मूल्य ॥=)

## केशव-कौमुदी ( रामचन्द्रिका सटीक )

[ सं०—लाला भगवानदीन जी ]

हिंदी के महाकवि आचार्य केशव की सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक रामचंद्रिका के मूल छंदों के नीचे उनके शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, नोट, अलंकारादि दिए गए है । २ भाग—मूल्य ५॥)

## दान-लीला

[ स०—जवाहरलाल चतुर्वेदी ]

यों तो दान-लीला कई स्थानो से प्रकाशित हो चुकी है, किन्तु इतना बडा और इतना अच्छा संस्करण कहीं से भी प्रकाशित नही हुआ है । श्री हरिराय जी की उक्त दान लीला कितनी सरस और कितनी सुन्दर रचना है उसे आप स्वयं ही देखकर कहेंगे, इस विषय पर हमारा विशेष कहना आत्मप्रशंसा होगा । अष्टछाप के गण्यमान्य महानुभावों की सरस-रचनाओ का भी सुन्दर सग्रह दिया गया है । इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानो का समभाव-द्योतक सरल-सूक्तियाँ दी गई हैं । पुस्तकान्त में भर पूर शब्दार्थ, चोघडिया और श्री गोकुल नाथ जी का वचनामृत भी दिये हैं जिसमें सब श्रेणी के पाठक और वैष्णव लाभ उठा सकें । छपाई-सफाई सुन्दर । - - - मूल्य केवल ॥)

| | | | |
|---|---|---|---|
| नागरिक नीति | ३) | कायाकल्प | ६) |
| मध्यकालीन भारत | २॥) | गबन | ४) |
| भारतवर्ष का इतिहास | ३) | गोदान | ८) |
| खण्डित-भारत | ८) | गोदान ( संक्षिप ) | ४) |
| अन्तराष्ट्रीय-विधान | ६) | निर्मला | २॥ |
| पूँजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग | ५) | प्रतिज्ञा | २) |
| अपराध और दण्ड | १॥) | वरदान | २) |
| चिद्विलास | ३॥।) | रंगभूमि | ८) |
| सामविकी | ३॥) | कफन | २) |
| पत्र और पत्रकार | ६) | प्रेमतीर्थ | २॥) |
| राजनीति शास्त्र | ३) | प्रेम द्वादशी | १॥) |
| भारतवर्ष का इतिहास | ३॥) | मानसरोवर | २१) |
| कल्याण मार्ग का पथिक | १॥।=) | (भाग १ से ७ तग प्रत्येक) | ३) |
| अशोक के धर्म लेख | ३॥) | माँ-मैक्सिम गोर्की | ५) |
| पश्चिमी यूरोप ( प्रथम भाग ) | ४॥) | गर्डीवालों का कटरा | ५) |
| ,, ( द्वितीय भाग ) | २।) | मंगल सूत्र | २) |
| गीतिकाव्य | ५) | और इंसान मर गया | ३॥) |
| परमाणुशक्ति | २॥) | नयी-समीक्षा | ४॥) |
| बयालीस | ४) | खून के छींटे | २॥) |
| धरातल | २॥) | विश्व-प्रपंच | १॥) |
| शिक्षा-मनोविज्ञान | ४) | तर्क शास्त्र | १॥) |
| राष्ट्रीयता और समाजवाद | १०) | पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास | २) |
| विज्ञान की प्रगति | २॥) | हिन्दी की गद्य शैली का विकास | २॥) |
| समाजवाद | ३) | नासिकेतोपाख्यात | ।-) |
| जै हिन्द | २।) | रानी केतकी की कहानी | ।-) |
| शेर और शायरी | ८) | पृथ्वीराज रासो | २॥) |
| कर्मभूमि | ५) | हम्मीर रासो | २।) |

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| प्रेमसागर | २) |
| भारतेन्दु-ग्रंथावली | ४) |
| जायसी ग्रन्थावली | ५ |
| तुलसी ग्रन्थावली (खण्ड १) | ७) |
| ,, ( खण्ड २ ) | ४।।) |
| कबीर ग्रन्थावली | ४) |
| सूर सागर | १०) |
| संक्षिप हिंदी व्याकरण | १।) |
| गोस्वामी-तुलसीदास | १।।।) |
| हिन्दी साहित्य का इतिहास | ७) |
| त्रिवेणी | २) |
| हिन्दी टाइप राइटिंग | १।।) |
| हिन्दी का सरल भाषा विज्ञान | २।) |
| रत्नाकर (प्रथम खंड) | १।) |
| ,, (द्वितीय खंड) | १।।) |
| प्रामाणिक हिन्दी कोश | १२।) |
| अच्छी हिन्दी | ३) |
| हिन्दी प्रयोग | १।।) |
| केशव-कौमुदी २ भाग | ५।।) |
| प्रिया-प्रकाश | ३) |
| नवीन बीन | २) |
| सूर पंचरत्न | २) |
| कवितावली सटीक | २) |
| अलंकार मंजूषा | २) |
| बिहारी और देव | ।।) |
| व्यंग्यार्थ मंजूषा | ।) |
| केशव पंचरत्न | २) |

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| बुन्देलखण्ड का इतिहास | ३) |
| केशव की काव्य कला | २।।) |
| प्रिय प्रवास दर्शन | १।।) |
| कदम्ब | ३) |
| धुएँ के धब्बे | २।।) |
| आहार विज्ञान | २।।) |
| वनस्पति विज्ञान | २) |
| आरोग्य विज्ञान | २) |
| घाघ और भड्डरी की कहावतें | १।।) |
| प्रिय प्रवास | ३=) |
| हिन्दी दासबोध | ३) |
| मधुकरी ( प्रथम भाग ) | ३) |
| ,, ( द्वितीय भाग ) | ३) |
| हिन्दी ज्ञानेश्वरी | ५) |
| वैदेही बनवास | ३) |
| हिन्दी नाट्यसाहित्य | ३) |
| आधुनिक हिन्दी साहित्यका इतिहास | ३।।।) |
| वाङ्मय विमर्श | ५) |
| बिहारी की वाग्विभूति | २) |
| खड़ी बोली हि० स० का इतिहास | १।।।) |
| प्रसाद और उनका साहित्य | २।।) |
| उपन्यास कला | १।) |
| कहानी कला | १।।) |
| ठंडे छींटे | ।।।) |
| भाषा भूषण | १) |

| | |
|---|---|
| भाषा का शिक्षा | ४) |
| उर्दू साहित्य का इतिहास | ३।) |
| हिन्दी राजरंगिणी | ४) |
| जीवन रक्षा | ॥=) |
| दद्रु चिकित्सा | ॥=) |
| सिर का दर्द | ॥=) |
| दीर्घ जीवन | ॥) |
| अमृत पान | ।=) |
| सौंफ चिकित्सा | ।=) |
| धातु दौर्बल्य चिकित्सा | ।॥) |
| मिलन | २) |
| चितकबरा फेंटा | ३।) |
| आनन्दमठ ( क्रान्तिकारी ) | २) |
| निर्मोही – कुशहातागान्त | ३॥) |
| चूड़ियाँ | ४) |
| लवग | ४) |
| आहुति | ३॥) |
| पागल | २॥) |
| अकेला | २॥) |
| प्रेमनाथ | २) |
| बसेरा | २॥) |
| कुंकुम | २॥) |
| इशारा | २॥) |
| जलन | २॥) |
| भँवरा | ३।) |
| मंजिल | ४) |
| नीलम | ५॥) |

| | |
|---|---|
| सविता | ५) |
| उजड़ा घर | १॥) |
| बड़े चाचा जी | १।॥) |
| नदी में लाश | २) |
| हाहाकार | २।) |
| प्यासी तलवार | २) |
| नर और नारी | ३) |
| रोटी | २) |
| दीपदान | २॥ |
| प्यासी आँखें | २॥ |
| घर की लाज | ३॥) |
| जवानी का नशा | ३।) |
| होटल में खून | १॥) |
| अभिलाषा | २॥) |
| चीर मिलन | २॥) |
| धड़कन— श्रीयुत आवरा | ३॥) |
| पगडंडी | ४) |
| अँगड़ाई | ३॥) |
| अभिशाप ( मुंशी ) | ५) |
| प्रतिशोध ,, | ५) |
| स्वप्नद्रष्टा ,, | ५) |
| ठकुरानी बहू | २) |
| भावना | २) |
| सेवा सदन | ४॥) |
| प्रेमाश्रम | ६) |
| दहेज | २॥) |
| गीताञ्जलि | ७) |

# आँख और कविगण

[ संपादक—पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी ]

हिंदी साहित्य में यह आँख पर की गई कविताओं का पहला संग्रह है। कवियों की कल्पनातीत-कविता का रसास्वादन कर आप तृप्त हो जायँगे। हम अपने मुख से कुछ अधिक न कह कर इस अभूतपूर्व पुस्तक के संबंध में केवल दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सम्मतियाँ देना ही उपयुक्त समझते हैं।

"हिंदी में यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। हिंदी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के प्राचीन तथा आधुनिक अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की नेत्र-संबंधिनी कविताओं का यह बृहत् संग्रह है। संकलक महोदय ने उक्त चारों भाषाओं के साहित्य-सागर का पूरा मंथन कर वे सूक्ति-रत्न निकाले हैं, जो हिंदी-संसार को अपनी अलौकिक दमक से चका-चौंध कर देने के लिये पर्याप्त हैं।

आँखों से संबंध रखनेवाली ऐसी अगणित सूक्तियों का यह संकलन है, जिन्हें पढने से सहृदयों और भावुकों के हृदयोदधि में तूफान आए बिना नहीं रह सकता। इस पुस्तक से मनोरंजन तथा ज्ञानार्जन दोनों होता है। काव्य-रस-लोलुपों के लिये यह बड़े काम की चीज़ है।"

—गयाप्रसाद शुक्ल एम० ए० ( डी० ए० वी० कालेज मेगज़ीन, देहरादून )

आँख पर संसार के सभी कवियों ने सभी भाषाओं में विचित्र-विचित्र उक्तियाँ कहीं है। संस्कृत और हिंदी का तो कहना ही क्या है। इन भाषाओं के कवियों ने तो जो विषय लिया उस पर जहाँ तक मानव-कल्पना की पहुँच हो सकती थी पहुँच गए! ऐसी ऐसी उक्तियाँ संपादक महोदय को जहाँ मिली, आपने संग्रह की हैं। रसिक सज्जनों को यह पुस्तक अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ५) मात्र। —कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'आज' काशी